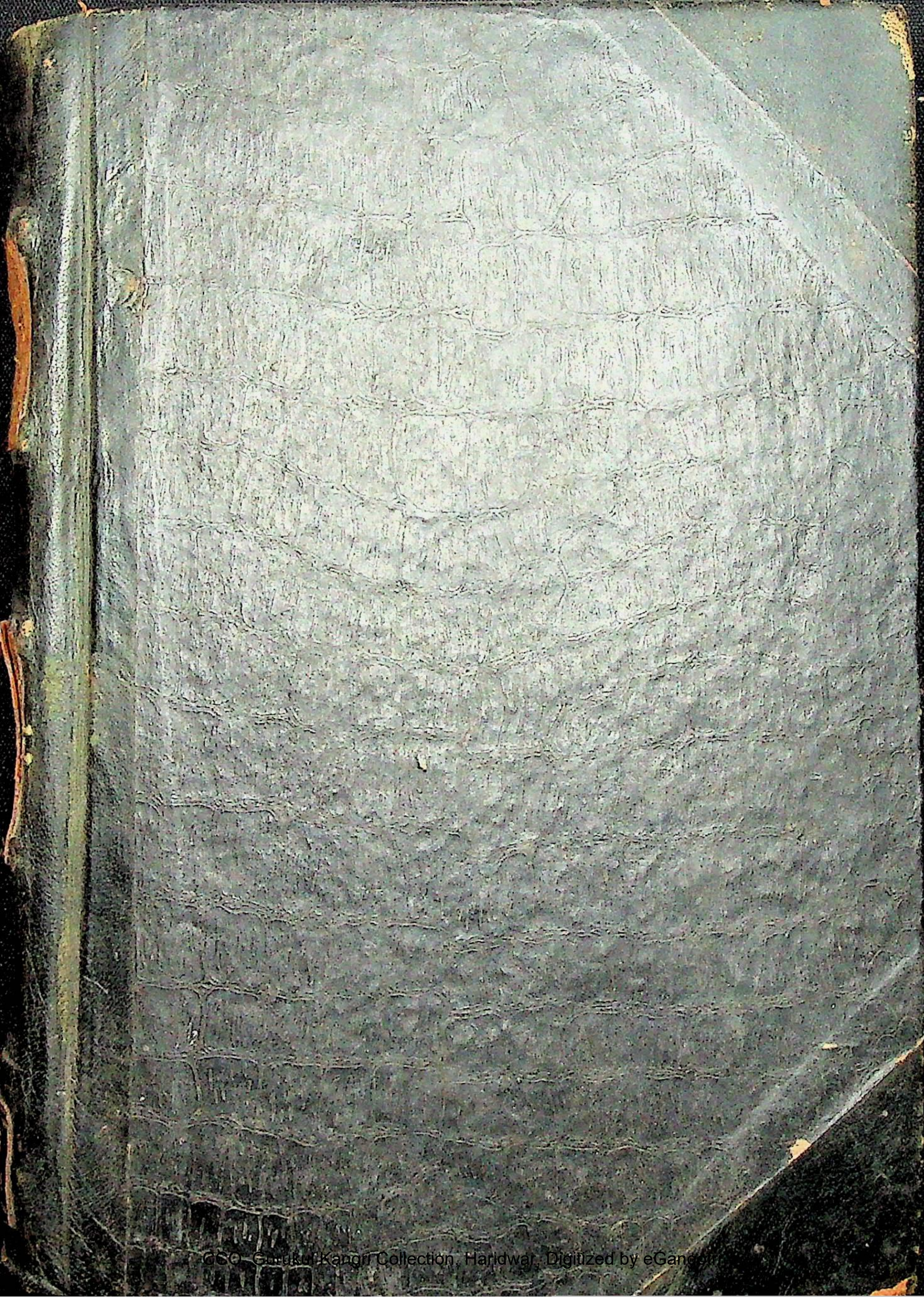








Registered No. B. 1463.

वर्ष ४, अंक १. ॐ पौष संवत् १९७९.
क्रमांक ३७. जनवरी सन १९२३.

वैदिक धर्म।

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-म



देवस्य पश्य काव्यं, न ममार, न जीर्यति ॥
अथर्व. १०।८।३२

ईश्वरका काव्य देखो, जो मरा नहीं, और जो क्षीण भी नहीं हुआ है।

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

विद्याका समुद्र।

"विद्याका बडा समुद्र विज्ञानसे उत्तेजित होता है, जो सब बुद्धियों और कर्मोंको तेजस्वी करता है।"

ऋ. १।३।१२.

मूल्य ३॥) साढे तीन रु। विदेशके लिए ४॥) साढे चार रु.

विषय सूची ।

ॐ

वैदिक धर्म

वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र ।

वर्ष ४ अंक १ | पौष १९७९; जनवरी सन १९२३. | क्रमांक ३७

" विद्या देवी । "



चोदयित्री सूनृतानां चेतंती सुमतीनाम् ॥
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ऋ. १।३।११

" सचाइयोंकी ओर प्रेरणा करनेवाली और उत्तम बुद्धियोंको उत्तेजित करनेवाली विद्या देवी सत्कर्मका धारण करती आई है । "

वैदिक धर्मका चतुर्थ वर्ष ।

धन्यवाद ।

परमात्माकी कृपासे तीन वर्ष " **वैदिक धर्म** " की सेवाका कार्य निर्विघ्नता पूर्वक हो गया, इस लिये उस अंतर्यामी प्रेरक आत्माका हार्दिक धन्यवाद करता हूं । तथा जिन ग्राहकोंने इस धर्मकार्यके चलानेमें सहायता दी, उन धर्मके प्रेमियोंका भी अत्यंत धन्यवाद है, क्योंकि ग्राहकोंकी सहायता न होती, तो इस मासिकका चलना असंभवही था । मासिकके विषयमें सच तो यह है कि, मासिकका संपादक केवल निमित्तमात्रही कारण है, परंतु इस मासिकके सच्चे चालक और इसको बढानेवाले " **ग्राहक** " ही हैं । उनकी सदिच्छासे इस मासिकका अस्तित्व और इसका संवर्धन होना है ।

सचित्र " वैदिक धर्म "

गत वर्षही इस " **वैदिक धर्म** " को सचित्र करनेका विचार था, परंतु जितनी ग्राहक संख्या होनी चाहिये थी, उतनी नहीं बढी; इस लिये गत वर्ष यह मासिक सचित्र बन नहीं सका । इस वर्षभी चित्रित करनेका व्यय चलने योग्य ग्राहक संख्या नहीं है, तथापि " **सचित्र** " करनेके विना आगेका कार्य चलना कठिन हुआ है; इस लिये इस वर्षसे इसको सचित्र करनेका विचार निश्चित

किया है । योग विषयके लेख चित्रोंके विना समझनेमें कठिन होते हैं और योग प्रक्रियाओंका विज्ञान भी चित्रोंके विना नहीं हो सकता । तथा वेदके तत्वज्ञानके स्पष्टीकरणार्थ चित्रोंकी बडी भारी आवश्यकता है । इस लिये इस अंकसेही यह मासिक " **सचित्र** " किया गया है ।

ग्राहकों का कर्तव्य ।

ग्राहक ही इस मासिकके चालक और संवर्धक हैं, इसलिये ग्राहक संख्या बढाकर वे हमारा उत्साह द्विगुणित कर देंगे, ऐसी आशा करना अस्थानमें नहीं होगा । यदि प्रत्येक ग्राहक केवल दो ग्राहक अधिक बनायेंगे तो व्ययकी पूर्तिके लिये पर्याप्त संख्या हो सकती है । इस समय ग्राहक संख्या ९०० के करीब है और चित्रादिकोंका व्यय प्राप्त होनेके लिये १६०० से ऊपर ग्राहक संख्या होनी आवश्यक है । इसलिये सांप्रतके ग्राहकों को दोतीन मासोंमें इतनी ग्राहक संख्या बढानी आवश्य है ।

विनामूल्य " वैदिक धर्म " ।

" **वैदिक धर्म** " मासिक एक वर्षके लिये विनामूल्य प्राप्त किया जा सकता है । इसकी रीति निम्न प्रकार है । जो इस सुवि- धासे लाभ उठाना चाहते हैं, वे पांच नये ग्राहक बनाकर उनका चंदा १७॥) साडे सतारह रु. मनी आर्डर से हमारे पास भेज दें, उनके नाम **वैदिक धर्म** एक वर्ष विनामूल्य भेजा जायगा ।

जो तीन नये ग्राहक बना कर उनका चंदा १०।) साढे दस रु. भेज देंगे, उनको केवल २) दो रु. में " **वैदिक धर्म** " एक सालके

लिये दिया जायगा। अर्थात् इस प्रकार १२॥) साढे बारह रु. मनी आर्डरसे भेजने होंगे। जो पुराणे ग्राहक अधिक नये ग्रहाक बनाकर इस सुविधासे लाभ उठाना चाहते हैं, वे वैसा कर सकते हैं।

ग्राहकोंके सन्मुख एक प्रश्न।

इस मासिकके सब ग्राहक "**वैदिक धर्म**" के प्रेमी हैं। वैदिक धर्म "**विज्ञानमूलक धर्म**" होनेसे इसकी श्रेष्ठता सर्वतोपरि है, इस विषयमें प्रमाण देनेकी भी आवश्यकता नहीं है। जिन पाठकोंनें वेदके थोडेसे मंत्र देखे हैं, और उनके गूढ रहस्योंका थोडासा अनुभव किया है, वे उक्त बात भली प्रकार जानतेही हैं। परंतु इस समय वैदिक धर्मका अभिमान धारण करने वालोंमें वेदकेही विषयमेंही बहुतसा अज्ञान है। उसको दूर करना हमारा पहिला कार्य है। स्वधर्मियोंमें "**सत्यधर्मकी जागृति**" करना पहिला और अत्यंत आवश्यक कार्य है। इसके पश्चात् "**वैदिक-धर्मके प्रचार**" का कार्य शुरू होना है। जिस अंतःकरणमें वैदिक धर्मकी जागृति ही नहीं है, उस अंतःकरणसे दिव्य वैदिक धर्मका ज्ञान किस प्रकार प्रचलित हो सकता है? इसलिये इस समय "**वैदिक धर्मकी जागृति**" का प्रश्न वैदिक धर्मियोंके सन्मुख है।

इस लेख द्वारा यह प्रश्न सब ग्राहकों के सन्मुख रखा जाता है। इस प्रश्नका अच्छी प्रकार ग्राहक विचार करें, इस विषयमें सोचें और यथा समय शीघ्र ही अपने विचार "**वैदिक धर्म के संपादक**" के पास भेजदें। (१) वैदिक धर्मकी जागृति किस प्रकार की जा सकती है? (२) कौनसे उपाय किस रीतिसे अम-

लमें लाने चाहिये ! (३) प्रत्येक ग्राहक इस विषयमें क्या कर सकता है ? (४) संपादक की ओर से क्या होना चाहिये ? (५) तथा अन्य सज्जनोंके द्वारा क्या कार्य होना संभव है ? इत्यादि जो अनेक प्रश्न उक्त विषयमें उत्पन्न होना संभव है, उन सबके विषयमें अपनी अपनी संमति प्रत्येक पाठक भाषामें लिखकर हमारे पास भेज दें ।

ग्राहकों की संमति आनेके पश्चात् इस विषयमें जो कुच्छ निश्चित योजना करनी है, सब पाठकों के सन्मुख रखी जायगी । इसलिये सब पाठकों से निवेदन है कि वे इस कार्य को अत्यंत उपयोगी समझकर अपने विचार शीघ्र भेजनेका कष्ट उठावें । अपनी संमति भेजनेके समय अपने स्थानीय सब मित्रोंकी संमति लेकर भेजेंगे, तो बडाही अच्छा होगा । इस विषयमें जितनी अधिक संमति आजायगी, उतनी अच्छी है । यह कोई आवश्यक नहीं है कि, संमति भेजने वाले तथा संमति देनेवाले इस मासिक के ग्राहक ही हों । अन्य सज्जनभी इस विषयके अपने विचार स्पष्ट शब्दोंमें लिख कर भेज सकते हैं ।

हमारा मार्ग ।

हमारा मार्ग सीधा है । वेदके मंत्रों में जो " **त्रिकालाबाधित सत्य तत्वज्ञान**" है, उसको वेदके अंतःप्रमाणोंसे ही निश्चित की हुई "**वैदिक दृष्टि**" से देखना, और उसको जहां तक हो सके वहां तक सुबोध भाषामें लोगोंके सन्मुख रखना यह हमारा पहिला कार्य है । यद्यपि जितनी योग्यता इस कार्य को यथा योग्य

रीतिसे करनेके लिये चाहिये, उतनी इस समय नहीं है, तथापि जितनी है उतना ही कार्य करना है। उक्त योग्यता की न्यूनता होनेके कारण ही वेदका प्रारंभसे अर्थ करनेका साहस हमने नहीं किया। इस समयतक यही क्रम हमने स्वीकार किया है कि, जो मत्रं अथवा जो सूक्त ठीक ठीक रीतिसे हमारे समझमें आगये हैं, उनका ही स्पष्टीकरण किया है। जिन्होनें प्रारंभसे क्रमपूर्वक वेदका अर्थ करनेका यत्न किया है, उनको हरएक प्राप्त मंत्रका स्पष्टीकरण करना पडा, इसलिये कई अज्ञात मंत्रोंको यथातथा अर्थ करके पाठकोंके सामने रखना पडा। यह कठिनता, जो लोकोंको हुई, हमने देखी है, इसी लिये क्रमपूर्वक वेदका अर्थ प्रारंभ नहीं किया।

हमारेसे गत तीन चार वर्षोंमें जो कार्य हुआ, वह पाठकोंके सन्मुख है। सेकडों पाठकोंके अंदर जो इष्ट परिवर्तन हुआ है वह उनके पत्रोंद्वारा स्पष्ट हो गया है; इन पत्रोंको देखने से ही हमारा उत्साह बढ रहा है और आशा हो रही है कि आगे भी इससे अधिक कार्य हो जायगा।

तात्पर्य यह कि जो वेदमंत्रोक्त मानव सत्य धर्म है उसको जानना हमारा पहिला कर्तव्य है और वह यथा शक्ति करनेका प्रयत्न हो रहा है।

इसके पश्चात् उक्त सत्यका अनुभव करनेका विचार प्रस्तुत होता है। वेदके सेंकडों मंत्र ऐसे हैं कि, जिनका अनुभव अपने अंदरही होना है, जब ऐसा अनुभव आ जायगा, तबही " निःसंदेह ज्ञान " होगा। वेदके मंत्र अनुभवके मंत्र हैं और हरएक

वैदिक धर्मीको चाहिये, कि वह अनुभवके लिये यथा शक्ति प्रयत्न करे। वेद मंत्रोंका अनुभव योग साधनसे ही होता है।

योग—मंडल।

उक्त कार्यके लिये "**योग—मंडल**" की स्थापना इस वर्ष की गई है। इस मंडलमें ऐसे करीब दस सदस्य संमिलित हो गये हैं, कि जिन्होनें शास्त्र और अनुभव की दृष्टिसे योगसाधनका अभ्यास दसपांच वर्ष किया है। कई ऐसे भी हैं कि जिन्होने इससे भी अधिक वर्ष इसमें व्यतीत किये हैं और कई शिष्य भी तैयार किये हैं। इस "**योग—मंडल**" को स्थापित करनेका उद्देश्य संक्षेपसे निम्न लिखित है।

(१) योग विषयक पुस्तकोंमें सांकेतिक शब्दोंका अर्थ बहुत अस्पष्ट है, किसीसे पूछनेपर कोई योग्य समाधान नहीं करते, (२) उक्त पुस्तकोंमें साधनविषयक फलके विषयमें बडी अत्युक्ति है, तथा (३) योगी लोग अपनी साधन क्रिया अत्यंत गुप्त रखते हैं, इस लिये कोई शिष्य उनके पास गया, तो उसको स्पष्ट शब्दोंमें साधनकी बातें नहीं बताते। इत्यादि अनेक कारणोंसे इस योग साधन मार्गमें आगे बढने वालोंको बडी काठिनतायें उत्पन्न होती हैं। इसको दूर करना अत्यंत आवश्यक है, और इसी लिये इस "**योग-मंडल**" की स्थापना की गई है।

इसमें जितने संमिलित हुए हैं उन सबका पूर्ण निश्चय है कि, किसी प्रकार गपोडोंका अवडंबर खडा न करते हुए, शास्त्र (Science) दृष्टिसे योग विषयक एक एक बातका विचार करके,

अनुभव लेनेके पश्चात् उसको सुबोध शब्दों में, जैसा अनुभव होता है, वैसाही प्रसिद्ध करना। ऐसा करनेसे जो लोग इस मार्गमें आना चाहते हैं, उनको बडी सुभिता हो सकती है, और जिस प्रकार प्रथम श्रेणीमें पढनेवाला मनुष्य अंतिम श्रेणीमें पढनेवालेके विषयमें कुछ न कुछ ज्ञान रख सकता है, और कुछ उसकी परिस्थितिके विषयमें अनुमान कर सकता है, उसी प्रकार यहांभी आगेके मार्गके विषयमें निश्चित बोध प्राप्त कर सकता है।

योगसाधन इतना व्यापक है कि, उसके संपूर्ण अंगोंमें निपुण होना किसी एकके लिये आजकलके दिनोंमें अत्यंत असंभव है। प्राचीन समयमें अनेक सुविधायें थीं, इसलिये जितना साधन करना उनको शक्य था, उतना हमको इस समयमें, जीवन युद्धके कारण, शक्य नहीं है। इसीलिये हमने " योग-मंडल " की स्थापना की है। इसमें सर्वसाधारण योग विषयमें प्रत्येक सदस्य सोचता रहेगा, परंतु किसी एक विषयमें वह अधिक तैयारी करेगा। इस रीतिसे यह संघ किसी न किसी समय योगशास्त्रकी हरएक बातके विषयमें शास्त्रीय दृष्टिसे उपपत्ति पूर्वक योग्य स्पष्टीकरण करनेका यत्न करेगा। इस विषयमें जितना कुछ आक्रमण होगा उतना निःसंदेह लाभदायक ही है।

हमारे सन्मुख जो शंकायें आवेगी, उनको सबके सन्मुख विचार के लिये रखा जायगा, और सर्वानुमतिसे योग्य उत्तरका निश्चय हो जानेपर उसका प्रकाश किया जायगा। तथा समय समयपर इस " वैदिक-धर्म " में उतनेही लेख छापे जायेंगे कि,

जितना किसी न किसीको अनुभव हुआ होगा। इस विषयमें यत्न किया जायगा कि, कोई लेख अनुभव हीन अवस्थामें किसी प्रकार प्रकाशित न होने पावे। आशा है कि, इस अवस्थामें पाठकोंको भी बड़ा लाभ हो सकेगा।

योग विषयक अनुभव का इतिहास।

कई महाशयोंको जो लाभ योग साधन करनेसे हुआ है, उसका इतिहास इसी "वैदिक धर्म" में प्रकाशित हुआ है। उसी प्रकार "अनुभव का सत्य इतिहास" समय समय पर आगेभी प्रकाशित होगा इस प्रकारके लेख उस समय ही प्रकाशित किये जांयगे, कि जिस समय उस इतिहास के विषयमें "संपादक" का ठीक ठीक निश्चय हो जायगा। तात्पर्य इन लेखोंकी सत्यता के विषयमें संपादक ही उत्तरदाता होगा। यह इस लिये लिखा है कि कोई पाठक इन लेखों को काल्पनिक न समझे। प्रत्येक लेख नाम और पूर्ण पतेके साथ प्रसिद्ध होगा, जिससे कोई पाठक उस महाशयजीसे मिलकर अपनेयोग्य प्रमाणभी प्राप्त कर सकता है।

अंतिम निवेदन।

अंतमें इतनाही कहना है कि पाठक इस वैदिकधर्मको उन्नत करना अपना कर्तव्य समझें। तथा इस "वैदिक-धर्म" का नाम अपने इष्टमित्रों, परिचितों और संबंधियोंमें ऐसा प्रकाशित करें, कि जिससे कोइ भी इससे अपरिचित न रहे। आशा है कि पाठक इस प्रकार वैदिक धर्म के परिवार को अनुगृहित करेंगे।

रक्षकोंके राक्षस ।

"रक्षः, रक्षस्, राक्षस" ये शब्द राक्षसोंके वाचक हैं, और "राक्षस" शब्दसे जो कल्पना प्रसिद्ध है, उसके साथ सब पाठक परिचित ही हैं। "रक्ष्" धातुसे उक्त शब्द बने हैं, जिसका अर्थ "रक्षण करना, पालन करना" है। अर्थात् उक्त शब्दोंका अर्थ भी "रक्षण करनेवाला, पालन करनेवाला" होना अत्यंत स्वाभाविक ही है। यही भाव रामायणमें भी है। देखिये—

प्रजापतिः पुरा सृष्ट्वा अपः सलिलसंभवः ॥
तासां गोपायने सत्वानसृजत् पद्मसंभवः ॥ ९ ॥
ते सत्वा सत्वकर्तारं विनीतवदुपस्थिताः ॥
" किं कुर्म " इति भाषंतः क्षुत्पिपासाभयार्दिताः १०
प्रजापतिस्तु तान् सर्वान् प्रत्याह प्रहसन्निव ॥
आभाष्य वाचा यत्नेन रक्षध्वमिति मानवाः ॥ ११॥
"रक्षाम" इति तत्रान्यै "र्यक्ष्याम" इति चापरैः॥
भुंक्षिताऽभुंक्षितैरुक्तस्ततस्तानाह भूतकृत् ॥ १२॥
"रक्षाम" इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवंतु वः ॥
"यक्षाम " इति यैरुक्तं यक्षा एव भवंतु वः ॥ १३ ॥

वाल्मि. रामा. उ. कां. ४

" प्राचीन कालमें प्रजापतिनें प्रजा उत्पन्न की। सब उत्पन्न हुए प्राणी कहने लगे, कि 'हम क्या करें।' प्रजापतिनें कहा कि 'संरक्षण करो'। यह प्रजापतिका भाषण सुनकर कईयोंनें कहा कि 'हम रक्षण करेंगे,' दूसरोंनें कहा कि 'हम यजन करेंगें।' जिन्होंनें 'रक्षण करेंगे' ऐसा कहा था, उनका नाम '**राक्षस**' हुआ और जिन्होंनें 'यजन करेंगे' ऐसा कहा था, उनका नाम 'यक्ष' हुआ। इसमें स्पष्ट कहा है कि रक्षा करनेवाले, दूसरोंका संरक्षण अथवा पालन करनेवाले ही राक्षस थे। जिन्होंनें अपने आपको दूसरोंकी पालनाके लिये समर्पित किया था वे "**राक्षस**" नामसे प्रारंभमें प्रसिद्ध थे। परंतु पश्चात् "राक्षस" शब्दका बडाही भयानक अर्थ हुआ है। इसके हेतुका विचार करना चाहिये। अमर-कोशमें राक्षसोंके नाम निम्न लिखित दिये हैं—

असुरा दैत्य-दैतेय-दनुजेन्द्रारिदानवाः ॥
शुक्रशिष्या दितिसुताः पूर्वदेवाः सुराद्विषः ॥ १२ ॥

अमर. १।१।१२

राक्षसः कौणपः क्रव्यात्क्रव्यादोऽस्रप आशरः॥ ५९ ॥
रात्रिंचरो रात्रिचरः कर्बुरो निकषात्मजः ॥
यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी ॥ ६० ॥

अमर. १।१।६०

इन श्लोकोंमें असुरों और राक्षसोंके बहुतसे नाम दिये हैं। सभी नाम प्रसिद्ध हैं, और इनमेंसे कई नाम वैदिक मंत्रोंमें और कई नाम लौकिक संस्कृत काव्योंमें प्रयुक्त हैं। अब इनके अर्थका

विचार करके यह निश्चय करना है कि, राक्षसोंका पहिले अर्थ अच्छा क्यों था, और पीछेसे बुरा क्यों हुआ है ?

ऊपरले शब्दोंमें " **पूर्व-देवाः** " शब्द है, जो राक्षसोंका वाचक है। (पूर्व) पहिले जो देव थे, वह " **पूर्व-देव** " कहे जाते हैं। राक्षसोंके नामोंमें यह नाम बडाही विचार करने योग्य है॥ " **राक्षस** " **ये ही पहिले देव थे, पीछेसे राक्षस बने हैं।** अर्थात् ये पहिले लोकोंका संरक्षण करते थे; लोगोंके भलाईके लिये अपने आपको समर्पित करते थे, जनताके संरक्षणके लिये अपने आत्माकी आहुती देते थे, तबतक ये देव थे; पश्चात् जब रक्षणके स्थानपर लोकोंका भक्षण करने लगे तब इनका नाम " पूर्व-देव " होगया; अर्थात् " **पहिले एक समयमें ये देव** " **थे, परंतु अब ये ' अदेव ' हो गये हैं।** इस प्रकार यही इनका नाम जो पहिले प्रशंसाका द्योतक था। अब उपहासका द्योतक हुआ।

" **पूर्व—देवाः** " इस शब्दके विषयमें अनेक टीकाकारोंकी भी यही संमति है—

पूर्वे च ते देवाः, यद्वा पूर्वं देवाः
अन्यायाद्धि देवत्वाद्भ्रष्टाः

अमरटीका। भानु दीक्षित। १।१२॥

अ—न्याद्देवत्वाद् भ्रष्टाः।

अमरटीका। क्षीर स्वामी। १।१२॥

अर्थात् " ये पहिले देव थे, परंतु अन्याय करनेके कारण देवत्वसे भ्रष्ट हो गये। " तात्पर्य न्याय्य धर्म युक्त आचरण

जबतक रहता है तबतक देवत्व रह सकता है, जब अधर्ममें प्रवृत्ति हो जाती है तब वेही देव राक्षस बन जाते हैं।

उक्त अमरकोशके राक्षस वाचक शब्दोंमें एक और विचार करने योग्य शब्द है, वह " पुण्य-जनः " है। इसका अर्थ भी राक्षसही है। पुण्य कर्म करनेवाला मनुष्य पुण्यजन कहा जाता है। **जबतक ये राक्षस जनताके संरक्षणका पुण्यकर्म कर रहे थे, तब तक इनका सच्चा नाम " पुण्य—जन " था,** परंतु जब ये ही जनताका घातपात करके अपना स्वार्थ साधन करके जनताके कष्ट बढाने लगे, तब इन्हीका नाम " **भले आदमी** " (पुण्य—जन) हुआ। पहिले जो शब्द स्तुतिके लिये प्रयुक्त था वही अब निंदाका नाम हुआ।

तात्पर्य यह कि प्रारंभमें जो जनताका संरक्षण कर रहे थे वेही जब अधर्ममें प्रवृत्त हुए, तब वेही अप्रिय बने और इसी कारण " रक्षक " वाचक "राक्षस" शब्द " भक्षक " वाचक बन गया। इस विषयमें " **असुर** " शब्द अत्यंत आश्चर्य कारक भाव बता रहा है। (असु) प्राण (र) देनेवाला अर्थात् जो अपने प्राण दूसरोंके रक्षण के लिये समर्पित कर देता है, वह (अपना जीवन देनेवाला) " **असु—र** " कहलाता है। आजकलभी धार्मिक राजकीय अथवा सामाजिक संस्थाओंके लिये अपना " **जीवन अर्पण** " करनेवाले बहुत हैं। दूसरोंकी भलाईके लिये अपना जीवन अर्पण करना अत्यंत प्रशंसनीय कर्म है। असुरोंने यही पहिले किया, इसलिये " **राक्षस, पूर्व—देव, पुण्य—जन** " शब्दोंके समान ही यह

" असु-र " शब्दभी पहिले प्रशंसाके अर्थमें प्रयुक्त होता था। इसी प्रकार वेदमें भी यह असुर शब्द दिव्य अर्थमें प्रयुक्त हुआ है, देखिये—

(१) गभीरवेपा असुरः सुनीथः ॥ ऋ–१।३५।७

(२) हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ॥ ऋ. १।३५। १०

(३) बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः ॥ ऋ १।५४।३

(४) त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ॥ ऋ. २।२७।१०

(५) त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवः ॥ ऋ २।१।६

(१) गंभीरतासे प्रेरणा देनेवाला (असु-रः) जीवनदाता (सु-नीथः) उत्तम नेता है । (२) सुवर्णके आभूषण धारण करनेवाला उत्तम नेता (सु-मृळीकः) सुखदायक (स्व-वान्) आत्मिक बलसे युक्त (असु-रः) जीवन देनेवाला हमारे पास आजाये। (३) (बृहत्-श्रवाः) विशेष कीर्तिसे युक्त जीवन दाता है। (४) हे (असु-र वरुण) जीवन दाता वरुण ! तूं देव और मनुष्य सबका राजा है। (५) हे अग्ने। तूं बडा रुद्र और बडा जीवन दाता है।

इन मंत्रोंमें " असु-र " शब्द जीवन दाता, प्राण–प्रद, दिव्य, बलवान, प्राणशक्तिसे युक्त आदि अर्थोंमें है। ये सब अर्थ अच्छा भाव बता रहे हैं। तात्पर्य " असुर " शब्दका भाव एक अवस्थामें बहुत अच्छा है, परंतु यह शब्दभी दूसरी अवस्थामें " राक्षस,

पुण्यजन, पूर्वदेव " शब्दोंके समान ही बुरे अर्थमें प्रयुक्त होता है। देखिये—

(१) हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ ऋ. १०।१५७।४

(२) असुरान् रंधयासि नः ॥ अथर्व. ६।७।२

(३) असुरान् पराभावयन् मनीषी ॥ अथर्व. ८।५।३

(४) बाधतामिंद्रो दस्यूनिवासुरान्॥ अथर्व. १०।३।११

(५) देवा असुरानभ्यवर्तयन् ॥ अथर्व. १२।१।५

" (१) देव देवत्वका संरक्षण करते हुए असुरोंका हनन करके आगे बढे। (२) हमारे असुरोंका नाश करो। (३) बुद्धिमान् असुरोंका पराभव करता है। (४) चोरोंके समान असुरोंको बाधा कीजिये। (५) देवोंनें असुरोंका पराभव किया। "

इन मंत्रोंमें " असुर " शब्द बुरे अर्थमें है। जो " असुर " एक समय मित्र थे वेही दूसरे समय शत्रु बने हैं। जो एक अवस्थामें प्रेमका स्थान थे, वेही आगे द्वेषके योग्य बने हैं। जो आदरणीय थे वेही निंदनीय बने हैं। जो अपना जीवन दूसरोंके संरक्षण करनेमें लगाते थे, वेही इतने द्वेषके योग्य क्यों समझे गये, यह विचार करने योग्य है। तात्पर्य "**राक्षस, पुण्य-जन, पूर्व-देव, असु-र**" इन सब शब्दोंमें पहिला भाव बडा अच्छा था, परंतु पश्चात् इनकाही भाव बहुत बुरा होगया है। इसमें क्या तात्पर्य है, इसका हम आगे विचार करेंगे। यहां राक्षस वाचक और कौनसे ऐसे शब्द हैं, जो कि पहिले अच्छे भाव बताते हुए, पीछे घातपातका बुरा भाव व्यक्त

करने लगे हैं, इनका और विचार करेंगे । " असुर " शब्दकी व्युत्पत्ति करनेके समय अमर टीकामें क्षीर स्वामी लिखते हैं—

असुराः सुराया अपानात् । अमर टीका १।१२

" शराब न पीनेके कारण राक्षसोंका नाम अ–सुर हुआ " अर्थात् राक्षस पहिले (अ–सुराः) शराब नहीं पीते थे । जबतक ये शराबी न थे, तबतक ये धर्मात्मा होनेके कारण प्रशंसनीय थे । परंतु जबसे शराबखोरी इनमें बढ गई, तबसे अधर्म शुरू होने के कारण येही निंदनीय बन गये । यही बात रामायणमें है—

सुरा प्रतिग्रहाद्देवाः सुरा इत्यभिविश्रुताः ॥
अप्रतिग्रहणात्तस्या दैतेयाश्चासुरास्तथा ॥

वाल्मी. रामा.

"सुरा का स्वीकार करनेसे देवोंका नाम सुर हुआ, और सुरा का स्वीकार न करनेसे दैत्योंका नाम असुर हुआ ।" इस प्रकार रामायणमें असुरोंका वर्णन है । अर्थात् ये असुर भले आदमी प्रतीत होते हैं और इस श्लोकमें कहे देव शराबी प्रतीत होते हैं । देखनेमें यह बात बडी ही विलक्षण सी प्रतीत होती है, परंतु इसका निश्चय जो कुछ है, हम अधिक विचार करके ही करेंगे । तात्पर्य यह कि असुर शब्दका एक अर्थ अच्छा भी है ।

राक्षसोंके नामों में " **शुक्र-शिष्य** " शब्द आता है । शुक्र शब्दके अर्थ—" **तेज, प्रकाश, शुभ्र, स्वच्छ, शुद्ध, वीर्य, स्त्री–पुरुष–शक्ति, जल** " इतने हैं । इनमें कोईभी अर्थ बुरा नहीं है । कईयोंका पक्ष है कि शुक्राचार्य की कथा एक अलंकार रूप है ।

यह पक्ष सत्य है वा असत्य इसका विचार करनेके लिये यहां स्थान नहीं है। परंतु कहना इतना ही है कि यदि क्षणभर इस कथा को रूपक ही माना जाय, तो "**राक्षस शुक्रशिष्य हैं**" इसका भाव राक्षस "प्रकाश, शुद्धता और वीर्यके शिष्य" हैं ऐसा स्वीकार करना पडेगा। प्रकाशके मार्गमें व्यवहार करनेवाले, शुद्धताके साथ कर्म करनेवाले और वीर्यकी रक्षा करनेवाले राक्षस शुक्रशिष्य समझने योग्य हैं। जो आचार्य नई रोशनी बतानेवाला, शुद्ध मार्गका प्रवर्तक और वीर्य रक्षणके उपाय बतानेके कारण "**संजीवनी विद्या**" का उपदेशक होता है, वही सच्चा शुक्राचार्य कहने योग्य है, और इसके जो शिष्य होंगे वे आरंभमें "**राक्षस**" अर्थात् दूसरोंकी रक्षा करनेवाले, "**पुण्यजन**" अर्थात् शुभ कर्म करनेवाले, "**पूर्व देव**" अर्थात्, पहिले देव, और **असु-र**" अर्थात् प्राण और जीवनके दाता, समझे गये, तो कोई असंभव और आश्चर्यकारक बात नहीं है। सांप्रतमें राक्षसोंके विषयमें जो भाव हमारे मनमें है उसके साथ यह भाव विपरीत प्रतीत होता है; तथापि यह भाव उक्त शब्दोंमें नहीं है, ऐसा कभी नहीं कहा जा सकता। ये भाव किस कारण बदलते हैं, इसका हेतु बडा बोधप्रद है, इस लिये इसका अधिक विचार करना आवश्यक है।

उक्त शब्दोंके पश्चात् "**यातु—धान**" शब्द विचार करने योग्य है। इसकी व्युत्पत्ति भानुदीक्षित अमर टीकामें निम्न प्रकार करता है—

यातूनि यातनाः धीयन्तेऽस्मिन् ॥ अमरटीका १।१।६०

" जिसमें यातनायें धारण की जातीं हैं । " टीकाकारका यह तात्पर्य है कि जिसको यातनायें अर्थात् कष्ट दिये जाते हैं । परन्तु राक्षस वाचक शब्दोंमें जो उत्तम भाव हम देखते आये हैं, उसके साथ यह अर्थ सजता नहीं है । यातनायें जिसमें धारण की जातीं हैं, अर्थात् जो यातनाओंको धारण कर सकता है, कष्टोंको अपने अंदर सह सकता है वह यातुधान है, जो दूसरोंकी रक्षाके लिये अपने आत्माका बलिदान करनेको सिद्ध होता है, उसमें कष्ट सहन करनेकी शक्ति विशेष ही चाहिए; नहीं तो वह कदापि दूसरोंका रक्षण कर नहीं सकेगा, और अपने आपको दूसरोंकी भलाई के लिये पूर्णतया समर्पित भी नहीं कर सकेगा । जितने महात्मा इस समयतक हुए हैं, उनमें कष्ट सहनेकी शक्ति सबसे अधिक थी । अमरकोशका पाठ " **यातुधानः पुण्यजनः ।** " है, अर्थात् " **पुण्य–जन** " ही " **यातु-धान** " है । इसका तात्पर्य यह कि " **वह पुण्यात्मा है, कि जो दूसरोंके लिये स्वयं खुशीसे यातना भोगता है ।** "

इतने शब्द देखनेके पश्चात् " **पूर्व–देवाः** " शब्दके विषयमें एक श्लोक देखना आवश्यक है—

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः ॥
न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥

मनुस्मृति. ३।१९२

" क्रोध न करनेवाले, शुद्धाचरण करनेवाले, ब्रह्मचारी अर्थात ऊर्ध्वरेता संयमी, (न्यस्त–शस्त्राः) शस्त्र न धारण करनेवाले

अर्थात् अनत्याचारी, (पितरः=पातारः) रक्षक महाशय **पूर्व–देव** कहे जाते हैं । "

इस मनुके श्लोकमें **"पूर्व-देव"** कौन हैं और उनके कर्म तथा लक्षण क्या हैं, इसका उत्तम वर्णन है । " जो **महाशय काया वाचा मनमें भी क्रोध हिंसा और अत्याचार नहीं रखते, सदा शुद्ध और सरल धर्माचरण करनेमें दत्तचित्त होते हैं, अपने वीर्यका उत्तम संरक्षण करते हैं, शस्त्र हाथमें न धारण करते हुए अनत्याचारी मार्गसे ही दूसरोंका संरक्षण करनेका सदुद्योग करते हैं, वे पूर्वदेव कहे** जाते हैं ।" जो **" पूर्व देव "** हैं, वेही **"पुण्य–जन, यातु–धान, असु–र, और राक्षस"** होते हैं । इन सबका अर्थ एक ही है । जिस भावमें इनका अच्छा अर्थ है, उसी भावको मनमें रखकर ये अर्थ देखने हैं ।

मनुके उक्त श्लोकमें " **पितरः पूर्वदेवताः** " पाठ है । अर्थात् ये " **पूर्वदेव** " पितर हैं । " पितरः, पातारः " इसमें पितर शब्द रक्षक अर्थमें है । " **राक्षस** " शब्दका जो मूल अर्थ हमने देखा, वही " **पितरः** " शब्दमें है; इससे सिद्ध है कि राक्षस वाचक पूर्वोक्त शब्दोंमें **"दूसरोंकी रक्षाके लिये अपने आपको समर्पित करनेवालोंका समावेश होता है ।** " अब अन्य शब्दोंका विचार करनेके पूर्व यहांतक जो विचार हुआ है, उसको फिर देखेंगे, जिससे इस नवीन विचारके साथ पाठकोंका अच्छी प्रकार परिचय होगा ।

(१) सृष्टि उत्पन्न होनेके पश्चात् प्रजापतिनें लोगोंसे पूच्छा कि " तुम क्या काम करनेके लिये तैयार हो ? कइयोंनें उत्तर दिया कि " (रक्षाम) हम अन्योंका संरक्षण करेंगे " इनका नाम " **राक्षस** " हुआ ।

(२) इनको ही " **पुण्य—जन** (भले आदमी) " ऐसा इस लिये कहने लगे, कि ये दूसरोंका भला कर रहे थे । दुर्बलोंके संरक्षणके लिये अपने आपको अर्पण करना पुण्यकर्म ही है ।

(३) ये अपने (असु) प्राण दूसरोंके संरक्षणके लिये (र) अर्पण करते थे, इस लिये इनको ही " **असु—र** (जीवन अर्पण करनेवाले) " ऐसा कहा गया । ये (सुरा) शराब नहीं पीतेथे इस लिये भी इनको " अ—सुराः " कहा जाता था ।

(४) (शुक्र) वीर्यका संरक्षण करनेके उपाय बतानेवाला एक आचार्य था, वह वीर्य संरक्षण द्वारा ' **संजीवनी विद्या** ' का ज्ञान अपने शिष्योंको देता था, इस आचार्यका शिष्यत्व करके उक्त " **स्वयं—सेवक** " वीर्य रक्षण करके अपना बल बढाते थे, और अपने आपको " **शुक्र—शिष्य** " अर्थात् शुक्राचार्यके शिष्य कहते थे ।

(५) दूसरोंका संरक्षण करनेके समय जितनीं (यातु) यातनायें होतीं थीं, उनको शांतिके साथ अपने अंदर (धान) धारण करते थे और अपने कर्तव्यसे पीछे नहीं हटते थे, इस लिये इनको " **यातु—धान** " कहा जाता था ।

(६) ये " स्वयं सेवक " अक्रोधी, शुद्धाचरणी, ब्रह्मचारी, अनत्याचारी महाशय होते थे, इस लिये इन पूर्णदेवोंको " पूर्व-देव " कहा जाता था ।

सारांश रूपसे राक्षस वाचक शब्दोंके मूल अर्थोंका इतना विवरण हुआ है । इस विवरणको जो पाठक पढेंगे, और साथ साथ मूल धात्वर्थका अर्थात् यौगिक अर्थका अनुसंधान करते हुए, प्रचलित रूढिगत अर्थोंको अपने मनसे दूर करेंगे, उनके मनमें निश्चय रूपसे यह भाव आजायगा कि, ये "**राक्षस**" एक समय "**स्वयं सेवक**" ही थे । जनताका रक्षण करनेके लिये इन्होंनें अपना जीवित्व अर्पण किया था । इसीलिये इनके सन्मानके लिये "**पुण्य-जन, पूर्व देव**" आदि नामोंसे इनका वर्णन होता है । यह "**स्वयं-सेवक**" की कल्पना राक्षसोंकी मूल उत्पत्तिमें है, ऐसा क्षणभर मान कर राक्षस वाचक कई अन्य शब्दोंका अर्थ यहां देखेंगे—

" रात्रिं-चर, रात्रि-चर " ये दो शब्द राक्षस वाचक हैं । यदि जनताका संरक्षण करने वाले राक्षस हैं, तो उनको आवश्यक ही होगा कि, जिस समय चोर डाकु लुटेरे तथा व्याघ्र सिंहादि हिंस्र पशुओंका उपद्रव अधिक होना संभव है, उस रात्रीके समय ही वे ग्रामोंमें भ्रमण करें । रात्रीमें अपने नियत स्थानमें भ्रमण करके अपने, मोहोल्ले, ग्राम पत्तन आदिका रक्षण करना, रक्षा करने वालोंका अत्यावश्यक कार्य हुआ करता है । आजकल भी ग्राम रक्षक रात्रीके समय पहारा किया करते हैं, मेलों और यात्राओंमें

" **राष्ट्रीय स्वयं सेवक** " रात्रीके समय पहारा करके जनताको सुरक्षित रखते हैं । तात्पर्य " **रक्षक** " अर्थ के " रात्रिंचर, निशाचर " आदि शब्दोंमें कोई बुरा भाव नहीं है । " **चर** " शब्दके अर्थ " **सेवक, दूत, गुप्त दूत, छिपके पता लगाने वाला सेवक, खबर देनेवाला, मुखबिर, जासूस** " हैं । रात्रीके समय सेवा का काम तथा उक्त अर्थोंसे व्यक्त होनेवाला काम करनेवाले जो होंगे, उनका नाम भी " **रात्रिंचर, निशाचर** " आदि होना संभव है ।

यदि रात्रीके समयके संरक्षकोंका नाम " **राक्षस** " है, तो उनके हाथमें दंड, सोटी, लाठी आदि आवश्यक ही है । रात्रीके पहारेके लिये जो स्वयंसेवक हुआ करते हैं, उनके हाथमें लाठी अवश्यही होती है । ये स्वयंसेवक शस्त्रका उपयोग करनेवाले हों, या न हों रात्रीके पहारेवाले लाठी लेकर ही पहारा करते हैं । सांप, बिच्छु, शेर, बबर, भेडिया, चोर, डाकू, लुटेरे इनको दंडसे ही वश किया जाता है । निःशस्त्र प्रतीकारका उपाय सभ्य सज्जनोंके साथ ही है । शेरके साथ निःशस्त्र प्रतीकार नहीं होता । इस लिये उक्त स्वयं सेवक हाथमें लाठी लेतेही थे । इसी कारण इनको " (कोण-प, कौण-प) लाठी रखनेवाले " कहा जाता था । " **कोण, कौण** " शब्दोंका अर्थ " लाठी, सोटी, (A Stick, staff, club) छडी, लट्ठ, सोंटा, " होता है । लाठीको पास रखनेवाले, लाठीके साथ पहारा करनेवाले जो होते हैं वे " **कोण-प** " हैं ।

" असुर " शब्दकी व्युत्पत्ति जो निरुक्तकार यास्काचार्यनें दी है, वह भी यहां देखने योग्य है—

(१) असुरा अ–सु–रताः स्थानेषु ।

निरु. वै. ३।२।२

(२) असुरिति प्रज्ञानामास्यत्यनर्थान्,
अस्ताश्चास्यामर्थाः । असुरत्वमादिलुप्तं ।

निरु. दै. १०।३।१०

टीका–ते हि न सुष्ठु रताः स्थानेषु, चपला इत्यर्थः ।

" (१) जो अपने स्थानमेंही बैठता नहीं, परंतु इधर उधर जाकर देखता है, वह फूर्तिला " अ–सु–र " कहलाता है। (२) किंवा प्रज्ञा बुद्धिका नाम " असु " है, क्यों कि बुद्धिसे ही सब अनर्थ दूर किये जा सकते हैं, किंवा उत्तम भाव इसीमें रहते हैं, ऐसे विशाल बुद्धिसे जो युक्त होते हैं, उनको "असु–र" कहते हैं। अथवा " वसु–र " शब्दसे " असुर " बना है क्यौं कि वह सबका निवासक होता है। "

जो चपल फूर्तिला है अर्थात् आलस्यसे अपनी चारपाई पर ही जो बैठा नहीं रहता, वह तेजस्वी और ओजस्वी वीर असुर कहलाता है, वह चारों ओर भ्रमण करके उत्साहके साथ कार्य करता है, और सदा सावध तथा दक्ष रहता है। किंवा बुद्धिवानको भी असुर कहते हैं, बुद्धिसे और विचारसे जो विविध कर्म करता है और पुरुषार्थसे अनर्थोंको दूर करता है। अथवा जो " वसु–र " अर्थात् सबका निवास उत्तम रीतिसे करनेके लिये जो प्रयत्न करता है, उसको भी असुर कहते हैं।

ये निरुक्तकारके अर्थ भी पूर्वोक्त स्वयंसेवकोंके विषयमें ही ठीक सजते हैं। वे जनताका संरक्षण करनेके कार्यके लिये उत्साह और स्फूर्तिके साथ चारों ओर भ्रमण करते हैं, बुद्धिमत्ताके साथ दुष्टोंको दूर करके सज्जनोंका निवास उत्तम रीतिसे करनेके लिये अपनी आहुति देते हैं। तात्पर्य मूल यौगिक अर्थकी दृष्टिसे राक्षस वाचक शब्दोंका भाव बुरा नहीं था। विद्याकी दृष्टिसे भी असुरोंकी विद्या, कला शिल्प आदिमें प्रसिद्धि दिखाई देती है। देखिये शतपथमें—

(१) कुबेरो वैश्रवणो राजेत्याह तस्य रक्षांसि विशः।
तानुपदिशति देवजनविद्यावेदः॥ १०॥
(२) असितो धान्वो राजेत्याह तस्याऽसुरा विशः।
तानुपदिशति मायावेदः॥ ११॥

श. ब्रा. १३।४।३

"(१) कुबेर राजा है, उसकी प्रजा राक्षस हैं, उनका वेद **देव-जन-विद्या-वेद** है। (२) असित राजा है उसकी असुर प्रजा है और उनका **माया-वेद** है।"

(१) देव विद्या, (२) जन विद्या, (३) माया विद्या ये तीन विद्यायें राक्षसोंके पास थीं। "मया विद्या" शब्दसे तात्पर्य कुशलताके कार्य करनेकी विद्या है। शिल्प, हुनर, कला-कौशल्य, इंद्र जाल विद्या, जादू आदि सब माया वेदमें आता है। मयासुरकी शिल्पविद्या महाभारतमें भी सुप्रसिद्ध है। आजकल सांप लेकर रास्तोंपर घूमनेवाले जो हाथ चालाखीके प्रयोग बताते

हैं, वे प्रयोग मायावेदके हैं। तात्पर्य यह सब कुशलता है। अस्तु। इस प्रकार यद्यपि ब्राह्मण ग्रंथोंमें असुरोंकी प्रशंसा नहीं है, तथापि जो उनकी विद्या वर्णन की है, वह गिरानेवाली नहीं है। इसी लिये यज्ञ प्रकरणमें आसुरी मायावेदके अनुसार कुछ विधि करना आवश्यक होता है, देखिये—

(१) सोयमिति देवजनविद्याया एकं पर्व व्याचक्षाण इवानुद्रवेदेवमेवाध्वर्युः संप्रेष्यति० ॥ १० ॥
(२) सोऽयमिति कांचिन्मायां कुर्यात्० ॥ ११ ॥

श. ब्रा. १३।४।३

(१) देवजन विद्याका एक भाग वह पढे...., (२) वह इस समय कुछ (माया) जादु करे।" तात्पर्य अश्वमेधमें इस प्रकार देवजन विद्या और मायावेदके कुछ प्रयोग करने आवश्यक होते हैं। इससे यह बात सिद्ध है कि इसमें वह हीनता नहीं, जैसी कि समझी जाती है। अस्तु। इस प्रकार ब्राह्मण ग्रंथोंके सूचक वाक्योंसे भी पता लगता है, कि प्रारंभमें असुर राक्षसोंमें वह बुराई नहीं थी, जो पश्चात् दिखाई देती है। अब विचार करना है कि, ऐसा क्यों हुआ? जो असुर और राक्षस एक समयमें सहायक थे, वेही दूसरे समयमें बाधक क्यौं समझे गये? जगत्के प्रारंभमें जो जनताका संरक्षण करनेके लिये कटिबद्ध हुए थे, वेही जनताका घात करनेवाले आगे जाकर क्यौं हुए? "पूर्व देव, पुण्यजन" आदि शब्द जो प्रारंभमें प्रशंसाके लिये बर्ते जाते थे, वेही शब्द घात पात करनेवाले दुष्ट दुर्जनोंके बोधक क्यौं समझे गये?

विचार करनेपर इसमें एक " बडी भारी सचाई " दिखाई देती है। इस लिये इसका शांतिके साथ ही विचार होना आवश्यक है। उक्त शब्दोंके जो विपरीत अर्थ आज प्रसिद्ध हैं, उसका कारण " मानवी स्वभाव " में है, जिसकी परीक्षा अब करनी है। इसका एक उदाहरण लेंगे, जिससे वक्तव्य बात अधिक स्पष्ट हो जायगी।

" राजा और राजपुरुष " अर्थात् राज्यके ओहदेदार राज्य पालनकी व्यवस्थाके लिये ही निर्माण किये गये। जनताका पालन मुख्य है, और राजा तथा राजपुरुषोंका सुख गौण है। राजा और राजपुरुष ये वास्तविक अवस्थामें प्रजाके नौकर हैं, और कार्य विशेषके लिये ही उनकी योजना हुई है। वेदमें अनेक स्थान पर स्पष्ट कहा है कि, प्रजाही राजाको निर्माण करती है। अयोग्य राजाको राजगद्दीसे अलग करती है, और उस स्थान पर दूसरे योग्यको स्थापन करती है। यह वास्तविक बात है, परंतु आजकल राजे महाराजे और सम्राटोंकी ओर देखो, तथा ओहदेदारोंके व्यवहार देखो; इनके बर्तावसे ऐसा पता लगता है कि, प्रजा कुछ भी नहीं है, और जो कुछ है, सम्राट् और उनके ओहदेदारही हैं !! कैसी विपरीत भावना है, देखिये ! प्रजाका सुख बढानेके लिये राजाकी उत्पत्ति की गई, परंतु अब वही राजा प्रजाकोही खाने और दुःख देने लगा है !!! इसका जो परिणाम होना स्वाभाविक है, वही युरोपमें हो रहा है। प्रजाके क्रोधाग्निमें कई सम्राटोंकी आहुतियां दीं गईं, और कृतकर्मोंका प्रायश्चित सम्रा-

टोंकी अंत्येष्टिद्वारा किया गया !! इस इतिहासका विचार यहां करना नहीं है, परंतु यहां इतना ही बताना है कि, जो राजा प्रजा रक्षणके लिये निर्माण किया गया था, वही कैसा प्रजाको दुःख देने लगा, तथा प्राथमिक अवस्थामें जिस राजाको " **छोटा प्रभु** " देवताका अवतार, और माननीय श्रेष्ठ पुरुष समझते थे; उसी राजाको अब " **शिरच्छेदके योग्य** " समझने लगे; न केवल समझने लगे, प्रत्युत बहुतसे प्रमुख देशोंकी जनताने अपने सम्राटोंको " **निकम्मी दुःखदायक चीज** " समझ कर ऐसी अवस्थामें फेंक दिया कि, वहांसे उनका फिर उठना अत्यंत असंभवनीय बात है।

" **रक्षकोंके राक्षस** " कैसे बनते हैं, इस बातका पता यहा लगता है। प्रारंभमें जो " **स्वयं सेवक** " जनताकी सेवा करनेके लिये ही केवल खडे हुए थे, वेही बहुत समय जानेके पश्चात् जनताका दुःख बढाने लगे, रात्रीके समय पहारा करते करते चोरी स्वयं करनी, स्त्रियोंके विषयमें अत्याचार स्वयं करना, शराब पीकर उन्मत्त होकर दुर्बलोंको क्लेश देने, इत्यादि बातें वेही स्वयंसेवक आगे जाकर करने लगे। इसी लिये जो पहिले रक्षक थे वेही भक्षक बने, पहिले जिनको " **पुण्य जन** " कहा जाता था, वही उनका शब्द आगे जाकर निंदाका वाचक होगया, और इसी प्रकार राक्षसवाचक सब शब्द निंदा व्यंजक बने। तत्पश्चात् वे शराब पीने और मांसभोजन करने लगे, इस लिये आगे जाकर इस भावको बताने वाले शब्द भी राक्षसोंके वाचक हो गये।

तात्पर्य जो प्रथमतः अनत्याचारी थे, वेही पश्चात् घोर अत्याचार करने लगे; इसी लिये गिर गये। गिरनेके पश्चात् असुरों और राक्षसोंको दूर करनेके लिये नवयुवकोंको आगे होकर लडना पडा। येही देव हैं। इसी कारण राक्षसोंको **"देवोंके बडे भाई"** कहते हैं। देखिये—

> **द्वया ह प्राजापत्याः देवाश्चाऽसुराश्च, ततः कानीयसा एव देवा, ज्यायसा असुरास्त एषु लोकेष्वस्पर्धन्त ॥**
>
> श. ब्रा. १४।४।१।१

"देव और असुर ये प्रजापतिकेही दोनों संतान थे। उनमें असुर बडे भाई और देव छोटे भाई थे। इन दोनोंकी स्पर्धा इस लोकमें चली।"

पहिले उदाहरण लेकर बतायाही है कि, प्रजाका संरक्षण करनेके लिये राजा बनाया गया; इसलिये उसको प्रजा पालन रूप अपना कर्तव्य करना चाहिये था; परंतु उसने प्रथम अपना कर्तव्य योग्य रीतिसे किया, पश्चात् स्वार्थ वश होकर प्रजाका दुःख बढाने लगा; तात्पर्य **जो पहिले रक्षण किया करता था, वही पश्चात् भक्षण करने लगा।** इस कारण पहिले वह रक्षक था, परंतु पश्चात् वही राक्षस हो गया। इसी लिये अब इसको हटाना आवश्यक हुआ। इस कार्यके लिये प्रजाजनोंमेंसे कई उत्साही सदाचारी शूरवीर खडे हुए, और उन्होंने अनेक वर्षोंके युद्धसे उस दुःखदाई राजाको हटाया और स्वसंमतिसे अपना नया अध्यक्ष

चुना। इस प्रकार "**राजसत्ता**" नष्ट होकर उस स्थानपर "**प्रजासत्ता**" स्थापित होगई। इस समय प्रजाके नेता अपने आपको "देव" और पूर्व शासकोंको "राक्षस" कह सकते हैं। इस विचारसे "पूर्व-देवाः" इस शब्दका अर्थ ठीक प्रकार ध्यानमें आसकता है। यद्यपि प्रजाका अधिकार स्थापन होनेके समय पदच्युत राजा "राक्षस" समझने योग्य बन गया था, तथापि प्रारंभमें राजसंस्था भी देवत्वका कामही करती थी। तथा इस समय जो प्रजा शासन देवत्वके समान समझा जाता है वह भी, जिस समय गिरेगा; उस समय राक्षस रूपही समझा जायगा। उस अवस्थामें फिर राजसत्ता आवेगी अथवा कुछ नई शासक संस्था बनेगी। तात्पर्य यह कि मनुष्य समाजमें कोई एक संस्था शुद्ध रूपमें चिरकाल तक रह नहीं सकती। मानवी संस्थासे प्रारं-भमें कुछ कार्य अच्छा होता है, उस समय उनमें देवत्व होता है; परंतु कुछ समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् वह संस्था गिर जाती है; उस गिरावटके समय विपरीत भावही उस संस्थामें आजाते हैं, इस लिये उसमें राक्षस भाव आजाता है।

इतिहास देखनेपर ऐसा पता लगता है कि, इसी प्रकार मानवी संस्थायें गिरतीं हैं, और उनके स्थानपर नवीन संस्थायें योग्य कार्य करनेके लिये आजातीं हैं। पहिली संस्था प्रारंभमें दैवी भावनाओंसे युक्त होती है। परंतु पश्चात् उसीमें राक्षसी भावनाओंका प्राधान्य हो जाता है, इस लिये उसको तोडनेके लिये दूसरी नवीन संस्था खडी होती है; उसमें उस समय दैवी भावनाओंकी प्रधानता होती

है। इसी प्रकार जब यह नवीन संस्था भी राक्षसी भावनाओंसे युक्त होगी, तब तीसरी एक दैवी भावनाओंकी संस्था खडी होगी, और वह पूर्व संस्थाको हटा देगी। यह चक्र सनातन कालसे ऐसाही चल रहा है। और आगे भी चलताही रहेगा। देवासुरोंका यही युद्ध है।

यहां कोई यह न समझे कि, राजकीय संस्थायेंही इस प्रकार गिर जातीं हैं, सभी संस्थाओंकी यही अवस्था है। सामाजिक सुधार करनेवाले महापुरुष पूर्व संस्थाओंको तोडकर फेंकनेके लिये इसी हेतुसे प्रवृत्त हुए। सामाजिक संस्थाओंका इतिहास देखा जाय, तो गिरावटका उक्त इतिहास ही उसमें मिलता है। पूर्व संस्थाओंमें घृणित राक्षसी भावकी उत्पत्ति होनी और समाज सुधारकों द्वारा दैवी भावनाओंकी जागृति करनेसे नवीन संस्थाका अस्तित्व होना, सब देशके सामाजिक इतिहासमें दिखाई देगा।

धार्मिक संस्थाओंकी भी यही अवस्था है। अहिंसा प्रचारक बुद्धधर्मके लोकोंमें सबसे अधिक हिंसक लोग हैं, प्रेमभाव और लीनताका प्रचार करनेवाले ईसाईधर्मके लोगोंमें सबसे अधिक पारस्परिक वैर और क्रूरता है, वैदिक धर्मका अभिमान धारण करनेवालोंमें वेदके विषयमें अंतिम सीमाका अज्ञान है, इसी प्रकार अन्य धर्मों और पंथोंमें हुआ है, हो रहा है और आगे भी होगा। इसीका निराकरण करनेके लिये धर्म संस्थापकोंके प्रयत्न होते रहते हैं। धर्मसंस्थापक आनेपर भी योग्य रीतिसे अनुयायी न मिले और घमंडी अज्ञानी ढोंगी स्वार्थी निरक्षर महंतोंके आधीन मठ

चले गये; तो फिर वही आसुरी भाव प्रचलित होता है, और दूसरे धर्म संस्थापककी प्रतीक्षा करनी पडती है।

व्यक्तिमें भी देखिये आपको उक्त सत्यही दिखाई देगा। जब बालक जन्मता है, उस समय उसके सब इंद्रिय दैवी भावनाओंसे परिपूर्ण होते हैं, वह प्रेमकी दृष्टिसे सर्वत्र देखता है, आनंदसे फूलकी तरह प्रेमपूर्ण विकसित होकर हंसता है, न वह किसीके साथ द्वेष करता है और न किसी विषयमें बद्ध होता है। ये इंद्रिय इस अवस्थामें " देव " कहलाते हैं, परंतु जब तारुण्यकी अवस्था आती है, तब वेही इंद्रिय उसको स्वार्थी बनाकर गिरानेमें प्रवृत्त हो जाते हैं। बचपनमें जो उसकी प्रेममयी दृष्टि थी, वही अब स्वार्थपूर्ण दृष्टि बनती है, और वह परस्त्रीकी ओर कुत्सित भावसे देख कर गिरने लगता है। इस वयमें उसके कान चुगलियां सुनने लगते हैं, मन बुरे ख्यालोंमें फंसता है, मुख मीठे और चट-पटे पदार्थोंके पीछे दौडता है, इसी प्रकार अन्यान्य इंद्रियां इस जवानको पकडकर अपना गुलाम बनातीं हैं और गिरातीं हैं। तात्पर्य जिन इंद्रियोंमें बालपनमें दैवी शुद्ध भाव था, उन्हीं इंद्रियोंमें युवा अवस्थामें राक्षसी स्वार्थी भाव आता है। इस प्रकार " पूर्व देवों " के राक्षस बन जाते हैं। इस अवस्थामें योगादि साधनों और शमदमादि द्वारा इन राक्षसी इंद्रियोंका पराभव करना और आत्माकी शक्तियोंका विजय करना होता है। हृदयके कुरु-क्षेत्रपर हरएक शरीरमें यह युद्ध होता ही है। जब आत्माका विजय होगा, तब वैयक्तिक मुक्ति होती है, तब तक बंध और दुःख अवश्य रहताही है।

इस प्रकार " **रक्षकोंके राक्षस** " बन जाते हैं। यद्यपि ऐसा बनना आवश्यक नहीं है तथापि मानवी स्वभावके अनुसार " **रक्षकोंके राक्षस** " बन जाने स्वाभाविक है। यह स्थित्यंतर होनेके लिये बडा काल लग जाता है, और यह रूपांतर अत्यंत सूक्ष्म प्रमाणसे होता रहता है। इस लिये थोडे समयमें किसीके ध्यानमें भी नहीं आता, तथा बहुत समय व्यतीत होने पर भी " **रक्षकोंके जो राक्षस बने हैं** " उनको अपने राक्षस बननेकी कोई कल्पना नहीं होती; वे स्वयं अपने आपको देव और रक्षकही समझते हैं !! इतनाही नहीं प्रत्युत उन राक्षसोंको हटानेके लिये जो दैवी शक्ति प्रादुर्भूत होती है, उसीको घातक मानकर हटानेके लिये सिद्ध होते हैं। परंतु राक्षसोंका नाश निश्चयसेही होना है, इस लिये दबानेसेही वह दैवी शक्ति बढ जाती है और अंतमें " **पूर्व-देवों** " का नामही शेष रह जाता है।

वेदमें " **असुर** " शब्द उत्तम रक्षक अर्थमें भी आता है और असुरों तथा " राक्षसों " का घातक भाव भी है। वेदके एकही शब्दमें जो ऐसा विभिन्न और परस्पर विरोधी भाव है, उसका " **वैदिक तत्वज्ञान** " सारांश रूपसे इस लेखमें बताया है। इससे पाठक बहुतही बोध ले सकते हैं। " **वैदिक धर्म** " का **प्रत्येक पाठक व्यक्ति रूपसे तथा समाजरूपसे अपने आपकी परीक्षा करके निश्चय करे कि वह स्वयं " रक्षक " है या " राक्षस " बन चुका है अथवा बननेके मार्गमें है।** यदि राक्षस बननेकी गति प्रारंभ होगई है, तो उससे अपना बचाव करना आवश्यक है।

वैयक्तिक दृष्टिसे अपने शरीरमें ही अपने बाह्य और आंतरिक इंद्रियों और मानसिक प्रवृत्तियोंका परीक्षण करें कि उनमें दैवी भाव कितना है और राक्षसी भाव उत्पन्न हो रहा है या नहीं हुआ है। प्रत्येक इंद्रिय शुद्ध दैवी भावसेही युक्त रहना चाहिये, प्रयत्न करके अपनी प्रत्येक भावना दैवी भावसे परिपूर्ण करनी चाहिये; यही धर्मका उद्देश्य है और यही हरएकके कल्याणका हेतु है। यदि किसी स्थान पर काया, वाचा अथवा मनमें थोडा भी राक्षसी भाव होगा, तो उसको दूर कीजिये। इस प्रकार साव-धानीसे अपना बचाव कीजिये।

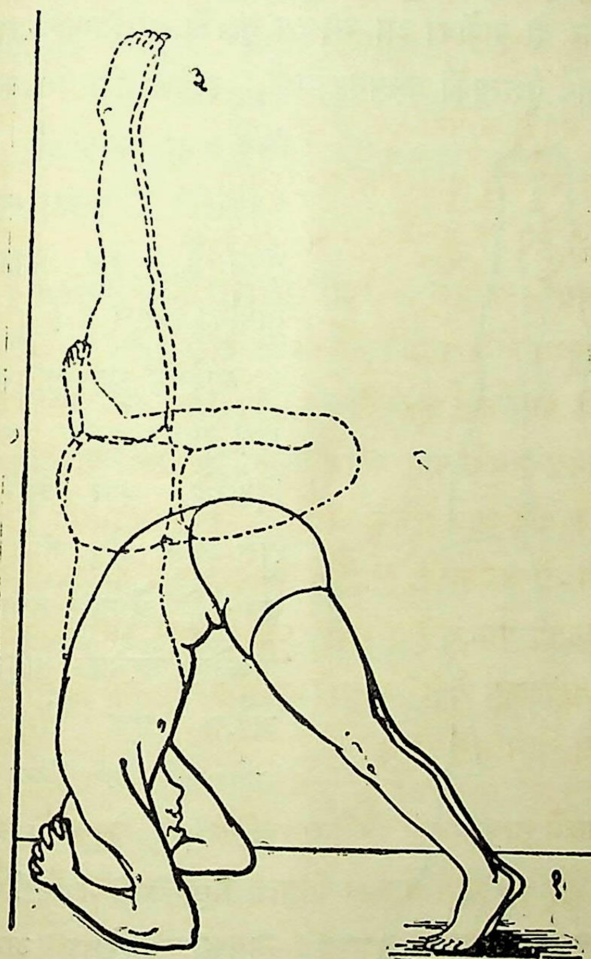
तथा आपको समष्टि दृष्टिसे भी अपने व्यवहारका विचार करना आवश्यक है। आप समष्टिसे अलग नहीं रह सकते। कुटुंब परि-वार, जाति, धर्म, समाज, राष्ट्र आदिके कारण आपको समष्टि विषयक कर्तव्य न्यूनाधिक प्रमाणसे करना आवश्यकही है। उस कर्तव्यके करनेके समय उस कर्तव्यको करनेकी रीतिसे निश्चय हो सकता है कि, आप समष्टि दृष्टिसे "**रक्षक**" हैं वा "**राक्षस**" बने हैं। कृपया इस दृष्टिसे भी अपनी परीक्षा कीजिये। यदि आप धर्म सभाके सदस्य हैं, सत्संगके प्रेमी हैं, समाजके सभासद हैं, राष्ट्रीय संगठनके अवयव बने हैं, अथवा किसी सार्वजनिक संघके सभ्य हैं, तो उस समूहके उद्देश्यसे विरुद्ध कोई कार्य करना आपको योग्य नहीं है। आपका मत विरुद्ध है, तो आप अलग होकर कार्य कीजिये, परंतु अंदर रहकर अपने आपको "**रक्षक**" बताते हुए, "**राक्षस**" बनकर विघातका कार्य न कीजिये।

इस रीतिसे वैयक्तिक और सामाजिक दृष्टिसे यदि अपने आचरण हरएक देखता रहेगा, तो बहुत संभव है, कि राक्षसी भाव उतना शीघ्र अंदर नहीं घुसेगा।

वैदिक धर्मके अभिमानियोंसे ऐसा कोई न हो कि, जो "**वैदिक धर्म**" का बहुतही बडा आडंबर रचता है, परंतु अंदर देखा जाय, तो "**वेद**" का एक भी अक्षर स्वयं जानता नहीं और जाननेका प्रयत्न करनेके लिये भी उत्सुक नहीं है। विचार कीजिये कि ऐसे मनुष्य "**रक्षक**" हैं या "**राक्षस**" हैं, ऐसा मनुष्य यदि आपके पास कोई हो, तो उसका द्वेष न कीजिये, परंतु शांतिके समय उसके पास जाइये और शांतिके शब्दोंसे उसको समझाइये। यदि आप उनके अंदर "**दिव्य भावकी ज्योति**" जगा सकेंगे तो अच्छा है, नहीं तो आप अपना कर्तव्य पालन करते जाईये, इतनाही पर्याप्त है। इसी प्रकार जहां जहां आपका संबंध आता है, वहां वहां दैवी भावको उत्तेजित करके आसुरी भावको दूर करनेका यत्न कीजिये।

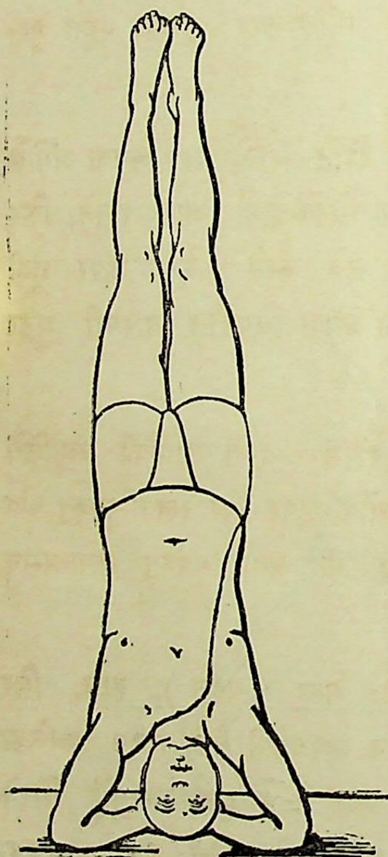
इस लेखमें तत्वज्ञानकी वैदिक दृष्टिसे "**रक्षकोंके राक्षस**" कैसे बनते हैं, इस एक बातका विचार करके बताया है कि, इस आपत्तिसे बचनेका उपाय क्या है। असुरों और राक्षसोंके विषयमें जो अन्य बातें वेदादि ग्रंथोंमें हैं, उनका विचार किसी अन्य लेखमें शीघ्रही करेंगे।

शीर्षासन ।



सिर पर खडा रहनेको “ शीर्षासन ” कहते हैं । इसीको योग शास्त्रमें (१) कपालासन, (२) विपरीतकरणी, मुद्रा, (३) वृक्षासन भी कहते हैं । सिर (शीर्ष) पर खडा

रहनेके कारण शीर्षासन; (कपाल) मस्तकपर खडा रहनेके कारण कपालासन; वृक्षकी जडे जमीनमें जातीं हैं, उनके स्थान पर केश समझें और दो पावोंको इस अश्वत्थ वृक्षकी दो शाखायें समझेंगे तो इस आसनमें वृक्षत्वकी कल्पना होगी; इसीको विपरीत करणी इस लिये कहा जाता है कि इसमें (विपरीत) उलटा खडा होना होता है। इस प्रकार इसके नामोंका विचार है।



प्रारंभमें यह आसन दिवारके साथ साथ करना अच्छा है, दिवारके साथ करनेसे पीछे झुक जाने और पीछे गिरनेका डर नहीं होता। तथा प्रारंभमें अकेलेही करनेका साहस करनेकी अपेक्षा एक दो मित्रोंको सहायताके लिये लिया जाय तो बडा अच्छा है। पांच चार दिनोंमें स्वयं ही किसी दूसरेकी सहायताके विनाही करनेका अभ्यास हो जाता है। और महिनेके अंदरही दिवारके आधारके सिवाय कमरेके मध्यमें ही यह आसन किया जा सकता है।

इस आसनमें सिर पर खडा रहना होता है, इस लिये सिरके नीचे अच्छा नर्म–मृदु–गदेला रखना आवश्यक है। अथवा धोती किंवा अंगोछेकी गिंडुरी बनाकर उसपर सिर रखनेसे भी अच्छी प्रकार कार्य चल सकता है। तात्पर्य यह कि सिरके नीचे सक्त जमीन न हो, नहीं तो मस्तिष्कपर उसका बहुत बुरा परिणाम होगा।

(१) **शीर्षासनकी पहिली रीति**—गदेलेपर अथवा अंगोछेकी गिंडुरीपर सिर रखके दोनों हाथ सिरके दोनों ओर रखने, फिर पांव ठीक सिरके ऊपर हों ऐसे लंबे करने। ऐसे ऊपर तूंदी और नीचे तालु करनेसे **शीर्षासन** अथवा **विपरीत करणी मुद्रा** बन जाती है।

(२) **शीर्षासनकी दूसरी रीति**—दोनों हाथोंकी अंगुलियें एकमें एक डालके उस दोनों हाथोंके ऊपर सिर रखके पूर्ववत् पांव ऊंचे तानके स्थिर होना। इसका भी नाम पूर्ववत् कपालासन आदि है।

इस आसनमें सब शरीरका बोझ गला (गर्दन), हाथ, सिर आदिपरही होता है। इस लिये इन अवयवोंमें बोझ सहन करनेका सामर्थ्य इस आसनके अभ्याससे आता है। वृद्ध आयुमें सिरके बोझसे गर्दन कांपने लगती है, परंतु जो लोग इस आसनका अभ्यास करेंगे, उनकी गर्दन कंपायमान नहीं होगी।

(३) **शीर्षासनकी तीसरी रीति**—पूर्व दोनों पद्धतियोंमें सिर

अपने हाथोंके साथ लगा हुआ होता है। इस तीसरी पद्धतिका आसन करनेके लिये हाथोंके बीचमेंसे सिर अलग करके उस सिरको ऊपर उठानेसे यह तीसरे प्रकारका शीर्षासन सिद्ध होता है। पहिले प्रथम वा दूसरी रीतिका आसन करके पश्चात् सिरको ऊपर उठा कर जितनी देर ऊपरही रख सकते हैं उतनी देर ऊपरही रखना। इस समय हाथके तलवे और सिरके बीचमें जितना अधिक अंतर हो, उतना अच्छा है। शीर्षासनके अन्य गुण इस रीतिमें प्राप्त होतेही हैं, और साथ साथ भुजाओंमें बहुत बल प्राप्त होता है। परंतु कंठ—गरदन—की भार सहन करनेकी शक्ति इससे नहीं प्राप्त होती, क्यों कि इसमें सब भार भुजाओंपर ही होता है।

(४) **शीर्षासनकी चौथी रीति**—कोहनीसे अंगुलियोंके अंततक हाथ भूमिपर अलग अलग रखकर सिरको भूमिसे अलग ऊपर करके भुजाओंके सहारे पूर्ववत् शीर्षासन करनेसे यह रीति सिद्ध होती है। इसमें भी भुजाओंमें बडा बल आता है, परंतु गरदनका बल बढता नहीं। जैसा पावोंपर खडा होते हैं, उसी प्रकार हाथोंपर खडा होनेसे भी एक प्रकारका आसन बन जाता है।

(५) **शीर्षासनकी पांचवी रीति**—केवल सिरपर ही खडा रहनेसे यह पंचम पद्धतिका शीर्षासन सिद्ध होता है। सिरके सिवाय और कोई भाग इस आसनमें जमीनको नहीं लगता। हाथ भी इस आसनमें जमीनको लगाने नहीं है जहां चाहे वहां ऊपरही

रख सकते हैं। इस आसनसे कंठ-गरदनमें बडा बल प्राप्त होता है, क्यों कि केवल गर्दनकोही सब शरीरका बोज सहनेका अभ्यास होता है।

(६) **शीर्षासनकी छठी रीति**— पांचवी रीतिके अनुसारही सिरपर खडा होना और दाईं हथेली दाईं ओर तथा बाईं हथेली बांई ओर सिरसे थोडी दूर जमीन पर सहारेके लिये लगा सकते हैं।

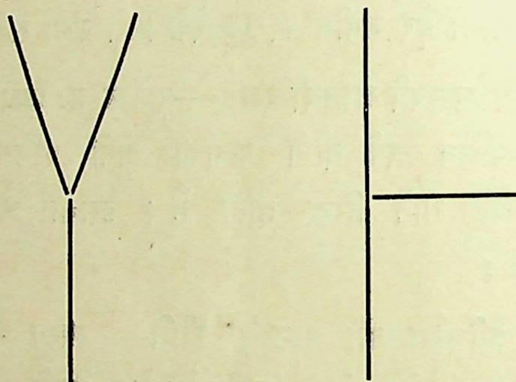
(७) **शीर्षासनकी सातवी रीति**—पूर्वोक्त छः प्रकारोंमेंसे किसी प्रकारका शीर्षासन करके दोनों पावोंकी दोनों एडियां चूतरोंको लगा देनेसे यह रीति सिद्ध होती है। इसको अर्ध वृक्षासन भी कहते हैं।

(८) **शीर्षासनकी आठवी रीति**— सप्तम रीतिके अनुसारही यह करना होता है, परंतु पांवोंके हेर फेरसे यह आसन किया जाता है। अर्थात् एक पांव सीधा ऊपर रखकर दूसरे पांवकी एंडी चूतरको लगानी तथा दूसरी वार इसको सीधा करके पहिले पांवकी एंडी चूतरको लगानी।

(९) **शीर्षासनकी नवम रीति**— पूर्वोक्त प्रकार आसन करके दोनों पावोंसे पद्मासन करना, अथवा पहिले जमीनपर पद्मासन करके पीछेसे उस पद्मासनके साथ जो चाहिये सो शिर्षासन करना।

(१०) **शीर्षासनकी दसवी रीति**— पूर्वोक्त प्रकार अपनी इच्छानुसार शीर्षासन करके पश्चात् सब पांव भूमिके साथ

समांतर रेखामें धरनेसे यह रीति सिद्ध होती है। इसमें भी एक पाव ऊपर और दूसरा समरेखामें रखनेसे कई भेद हो सकते हैं। पाठक युक्तिसे सोच सकते हैं। और अनेक नवीन प्रकार स्वयं कर सकते हैं। इसमें निम्न प्रकार पावोंको आगे पीछे किया जा सकता है—



शीर्षासनके विषयमें सावधानीकी सूचना।

शक्ति होनेपरभी यह शीर्षासन प्रारंभमें थोडी देरही करना उचित है। सिरमें रक्तका प्रवाह अधिक जानेके कारण जिनका मस्तिष्क इतना रक्तका प्रवाह सह नहीं सकता, उनको किंचित् कष्ट होंगे। इस लिये इस आसनकी अवधि निम्न लिखित प्रकार नियत करनी योग्य है—

(१) पहिले चार दिन १९ निमेषोंसे ३० निमेष (सेकंद) तक अर्थात् अधिकसे अधिक आधे मिनिट तक किया जावे। (२) चार दिनके पश्चात् दो मिनिट करनेमें कोई हानि नहीं है। (३) आठ

दिनके अभ्यासके पश्चात् पांच मिनिट करना योग्य है। (४) एक मासके पश्चात् दस मिनट तक अच्छी प्रकार हो सकता है। (५) तीन अथवा छः मासके पश्चात् आधा घंटा करनेमें कोई हानि नहीं है। इस अवधिमें अपनी प्रकृतिके अनुसार न्यूनाधिक भी हो सकता है।

शीर्षासन करनेके पूर्व दो चार प्राणायाम करके, शीर्षासन करनेके पश्चात् भी चार पांच प्राणायाम करनेसे बहुत लाभ होते हैं। शीर्षासनके समय गहरा श्वास सम प्रमाणमें शांतिके साथ चलना चाहिये। प्रारंभमें थोडी देर भस्त्रा प्राणायाम करनेकी भी कईयोंकी पद्धति है। श्वास और उच्छ्वास ठीक प्रकार गहरा और शांतिके साथ करना आवश्यक है, शीघ्रतासें नहीं, परंतु भस्त्रा सेकंदोंमे एक होती है शीर्षासनके समय भस्त्रा १५।२० वारसे अधिक करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

शीर्षासन करनेके समय शरीरके किसी भाग पर धोती या लंगोटका सख्त बंधन नहीं होना चाहिये। सब नसनाडियोंमें रुधिर प्रवाह पूर्ण प्रमाणमें चलता रहने योग्य सब शरीर खुला चाहिये। लज्जा निवारणार्थ लंगोट रहे, तथा लंगोटसे और भी बहुत लाभ हैं, परंतु उसका बंधन इस समय थोडासा ढीला रहे।

शीर्षासनसे लाभ।

शीर्षासन यथाविधि नियमपूर्वक करनेसे निम्न लिखित लाभ हुए हैं—

(१) शीर्षासन करनेके पूर्व आप अपने पावका रंग देख कर ठीक ध्यानमें रखिये। पश्चात् शीर्षासन कीजिये। ५।६ मिनिट तक शीर्षासन करने पर आप जब शीर्षासन छोड कर पांव पर खडे रहेंगे, तो उसी समय आपके ध्यानमें आजायगा कि, अपने पांवका रंग पहिलेकी अपेक्षा बहुत सफेद हुआ है। शीर्षासन करनेसे पांवका रक्त नीचे उतरनेके कारण पांव रक्त हीन हो गये थे इस लिये वे श्वेत दीखने लगे हैं। परंतु आधे मिनिटमेंही, पांवपर खडा हो जाने पर, पांवमें नये रक्तका संचार होने लगता है, और एक मिनिटके अंदर पांवमें नया रक्त पहुंचता है; इस समय पांवोंका रंग शीर्षासन करनेके पूर्वकी अपेक्षा बहुत ही लाल हुआ प्रतीत होता है। दस पंद्रह मिनिट तक शीर्षासन करनेवालोंको यह अनुभव बहुतही स्पष्टताके साथ आसकता है। शुद्ध रक्तका रंग अत्यंत लाल होता है और अशुद्ध रक्त उतना लाल नहीं होता। पहिलेकी अपेक्षा पांवका रंग अधिक लाल होना सिद्ध करता है, कि पांवमें अधिक शुद्ध रक्त पहुंचा है, जो पहिले नहीं पहुंचता था। शुद्ध रक्तसे आरोग्य और अशुद्ध रक्तसे रोग होता है। इससे निश्चय हो जाता है कि, पांवमें शुद्ध रक्त पहुंचनेके कारण पांवका आरोग्य बढ सकता है। और सब शरीरमें शुद्ध रक्त पहुंचनेके कारण सब शरीर अधिक आरोग्य पूर्ण होना भी संभवनीय है।

(२) जब शीर्षासन किया जाता है तब पांवका रक्त नीचे पेटकी तर्फ उतरनेका भान सूक्ष्म रीतिसे होने लगता है, परंतु शीर्षासन छोडकर पांवपर खडा होतेही पांवमें शुद्ध रक्तका संचार

होनेका भान अधिक स्पष्टताके साथ होता है; इतना ही नहीं, परंतु सूक्ष्म विचारसे देखा जाय तो पांवमें अधिक उष्णता प्राप्त होनेका भी स्पष्ट अनुभव हो जाता है। शुद्ध रक्त जहां पहुंचता है वहांकी सर्दी हट जाती है, और नैसर्गिक उष्णता वहां आजाती है। हाथ पांव सुन होनेकी बीमारी जिनको है, उनको दिनमें २।४ वार थोडी थोडी देर शीर्षासन करनेसे उक्त कारणही बडा लाभ पहुंचता है।

(३) जब मनुष्य पांवपर खडा रहता है तब पांवकी ओर रक्तकी अधिक गति होती है, इसी प्रकार सिरपर खडा होनेसे शीर्षासनके समय सिरमें तथा छातिमें रक्त अधिक आजाता है। शीर्षासन करनेके समय सिर, मुख और छातीका रंग अधिक लाल होता है और वह भाग अधिक पुष्ट भी दिखाई देता है, आंखमें भी अधिक रक्त पहुंचता है। इन भागोंमें अधिक रक्त पहुंचनेसे इनकी अधिक पवित्रता और अधिक पुष्टि हो जाती है। उक्त स्थानोंकी बीमारियां हट जातीं हैं। सिरका दर्द हट जानेका अनुभव कईयोंको हुआ है। तथा छातिकी कमजोरी भी हट जाती है। आंख और कानके बहुतसे दोष न्यून हो जाते हैं। तथा मस्तिष्कमें रक्त पहुंचनेसे वहांका कार्य भी ठीक प्रकार होता है। बुद्धि और स्मरण शक्ति बढनेका भी अनुभव है।

(४) बोतल साफ करनेके लिये उसमें पानी रखकर उसको उलटा और सीधा किया जाता है, इससे बोतल साफ हो जाती है। इसी प्रकार शरीरमें जो रक्त है वह सब शरीरभर अच्छी

प्रकार पहुंचनेसे सब शरीर शुद्ध और आरोग्यपूर्ण हो जाता है। मनुष्य सदा पांवपर खडा होनेके कारण रक्तकी गति पांवकी ओर स्वभावतः अधिक होती है । हृदय रक्तको ऊपर खींचता है और सब शरीरमें पहुंचाता है । इसी हृदयकी यह दधुक हृदय स्थानमें हो रही है । रात दिन इस हृदयको पावोंसे सब रक्त ऊपर खींचनेकी बडी मेहेनत होती है । शीर्षासन करनेके समय हृदयको उक्त कारणही विश्राम मिलता है अर्थात् रक्त खींचनेका कार्य करनेकी आवश्यकता नहीं होती, स्वयं स्वभावतः ही सब शरीरसे रक्त हृदय तक आता रहता है । हृदयको इस प्रकार विश्राम मिलनेसे हृदयकी शक्ति बढती है और हृदयकी शक्ति बढनेका तात्पर्य आयुष्य बढनाही है । इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई मनुष्य दिनमें आधे घंटेसे अधिक शीर्षासन करे । दिनमें आधा घंटा पर्याप्त है । अधिक करनेसे हानिकी संभावना है ।

(५) **शीर्षासनके समय पांवका रक्त ।** सिर, और छातिमें उतर जानेसे और फिर खडा होनेपर पांवोंमें वेगसे रक्त उतरनेसे सब शरीरकी नसनाडीमें रक्त पहुंचता है और इस कारण सब शरीर शुद्ध हो जाता है । प्रतिदिन यह आसन आधा घंटा करनेसे, प्रतिदिन बोतल अंदरसे धोनेके समान, शरीर अंदरसे, मानो, धोया जाता है ।

(६) हृदय सब शरीरसे अशुद्ध रक्त खींचकर अपने अंदर लाता है और पश्चात् हृदयसे वह अशुद्ध रक्त फेंफडोंमें जाकर वहां

शुद्ध प्राणवायुके साथ मिलने और संयुक्त होनेके कारण शुद्ध बनता है। पश्चात् वहांसे शुद्ध रक्त फिर हृदयमें आकर वहांसे सब शरीरमें भेजा जाता है। यह कार्य सदा चल रहा है और इसी कार्य पर मनुष्यका जीवन अवलंबित है। जिसका हृदय बलवान होता है उसके शरीरका सब अशुद्ध रक्त, हृदयकी पूर्वोक्त क्रिया ठीक होनेके कारण, सर्वदा ठीक शुद्ध होता है। परंतु जिसका हृदय किंचित् कमजोर होगा, उसके हृदयसे सब शरीरसे संपूर्ण रक्त ऊपर खींचनेका कार्य यथावत् नहीं होता है, इसी कारण उसका रक्त अशुद्ध रहता है और वह नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार बनता है। शीर्षासन करनेसे उसके हृदयमें सब रक्त विना मेहेनत पहुंचनेसे रक्त शुद्ध होनेके कार्यमें बडी सहायता होती है। आजकलके दिनोंमें जहां चा, सिगरेट, मद्य, काफी आदि घातक पदार्थ सर्वत्र फैले हैं, चिंता बढ गई है और शांति कम हो रही है, उस समय प्रायः सर्वत्र हृदयकी कमजोरी चारों ओर दिखाई देती है। ऐसी अवस्थामें योग्य प्रमाणमें शीर्षासन करनेसे बडे लाभ हो सकते हैं।

(७) पेटके आंतोंका बोझ पेटके बाह्य स्नायुओंपर पडता है और कईयोंका पेट कद्दूके समान अथवा घडेके समान दिखाई देता है। शीर्षासन करनेके समय ही ऐसा प्रतीत होता है कि नाभिके निचले स्नायुओंपरका अंदरका बोझ हट गया है और उनको मूलरूपमें आनेके लिये विश्राम मिल रहा है। नाभिके निचला पेट भी अंदरसे खाली होनेके समान हलका प्रतीत होता है और इस कारण आंतोंमें

अनुकूल गति होनेको अवसर मिलता है। आतोंमें किसी स्थान पर अपानवायु रुका हो, तो इस समय वह अपने मार्गसे चला जाता है, और पेटको आराम प्राप्त होता है। इसी प्रकार शीर्षासन छोडकर पुनः पूर्ववत् खडा होनेपर ढकार आकर कोष्टगत वायुका बाहिर निःसरण होकर स्वस्थता प्राप्त होती है।

(८) पीठकी रीढमें मेरुदंडके भीतर सुषुम्ना प्रवाह है। वह सदा मस्तिष्कसे नीचेकी ओर बहता रहता है। शीर्षासनमें सिरपर उलटा खडा होनेके समय वही प्रवाह सिरकी ओर होता है। इसीसे बुद्धि स्मरणशक्ति आदि बढनेका संभव होता है।

(९) वीर्य जलरूप होनेसे उसका प्रवाह निम्न गतिसे होता है, इस लिये वीर्यकी सब नाडियां निम्न गतिसे प्रवाहित होतीं हैं। शीर्षासनमें उनकी ऊर्ध्वगति होनेके कारण इस आसनसे वीर्य दोष हटनेका अनुभव आता है। जिनको वीर्य पतन होनेकी बुरी आदत है उनको अन्य उपायोंके साथ इस आसन करनेसे बहुतही लाभ होंगे। एक मासमें वीर्य स्थिर होनेका अनुभव आता है। सैंकडों तरुणोंके अनुभवकी यह बात है और इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। शरीर भेदके अनुसार न्यूनाधिक समयमें लाभ होनेका अनुभव होगा। परंतु लाभ होता है इसमें कोई शंका नहीं है।

(१०) शीर्षासन नियमपूर्वक योग्य रीतिसे करनेपर दो मासों- में जठराग्नि प्रदीप्त होता है, भूख बढने लगती है। भूखके अनुसार योग्य सात्विक पदार्थ परिमित प्रमाणमें खानेसे शरीरकी पुष्टि होती

है। भूख लगनेपर योग्य भोजन न खानेसे शरीर कृश होने लगता है। इस समय गायका दूध, घी, मक्खन आदि योग्य प्रमाणमें सेवन करनेसे शरीरका स्वास्थ्य अच्छा होता है।

(११) एक वर्ष नियम पूर्वक विधियुक्त शीर्षासन करनेसे सिरके श्वेत बालभी काले होने लगते हैं।

(१२) छः मास तक नियम पूर्वक ठीक प्रकार शीर्षासन करनेसे चमडेका सिकुडना, जो वृद्धापकालका चिन्ह है, दूर हो जाता है, और अधिक अभ्यास करनेपर वृद्धावस्थामें भी जवानीका अंगचापल्य प्राप्त होता है।

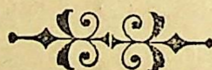
(१३) शीर्षासनके समय नेत्रकी पुतली ऊपर नीचे, दाईं ओर तथा बाईं ओर करनेसे, गोल आकारमें घुमानेसे, तथा नासाग्रपर अथवा भ्रूमध्यमें दृष्टि रखने और किंचित् काल दूरके पदार्थपर दृष्टि रखनेसे दृष्टिदोष दूर होते हैं। आयनक लगानेवालोंको वारंवार आयनकका नंबर बदलना नहीं पडता और न लगानेवालोंको लगानेकी आवश्यकता नहीं होती।

(१४) मुखकी अरुची, कंठदोष, गले पडने, छातीकी कमजोरी, पेटका अस्वास्थ्य, यकृत और प्लीहाकी शिकायत आदि सब इस आसनसे दूर होता है। परंतु गुणका अनुभव होनेके लिये देरी लगती है क्यों कि रक्तशुद्धिद्वारा उक्त अपाय दूर होने हैं, इस लिये शनैः शनैः आराम होता है।

(१९) छः वर्षोंकी ऊमरके बच्चेसे लेकर ७० वर्षके वृद्ध मनुष्य तक विविध ऊमरवाले मनुष्योंपर इस आसनके इष्ट परिणाम हमने देखे हैं। सर्वत्र योजना पूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार अभ्यास करनेसे लाभ हुआ है। प्रतिदिन थोडी देर शीर्षासन करनेसे मिर्गीका बीमार भी दो तीन मासमें ठीक हुआ था। परंतु इस विषयमें अधिक अनुभव नहीं है।

अंतमें इतनाही कहना है कि इस विषयका अनुभव डाक्टर और वैद्य लेगें तो बहुत अच्छा होगा, क्यों कि उनको शारीर शास्त्रका अच्छा ज्ञान होता है और विचार करके उनकोही ठीक प्रकार पता लग सकता है कि, कौनसा रोग किस प्रकार और किस अवस्थामें ठीक होना संभव है और कौनसा ठीक नहीं हो सकता।

साधारण दृष्टिसे जो अनुभव हैं, ऊपर दिये हैं, आगेका कार्य सुविचारी डाक्टरोंका और शारीर शास्त्रके ज्ञानियोंका है। आशा है कि वे अपनी संमति अनुभवके साथ प्रसिद्ध करेंगे।



स्वाध्याय मंडलके पुस्तक।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।" मूल्य १) एक रु.।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। "एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥) आठ आने।
(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=) दस आने।
(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. ≡) तीन आने।
(४) देवता विचार। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)
(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥) आठ आने।
(३) वैदिक-प्राण-विद्या। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.
(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।) सवा रुपया।

[४] ब्राह्मण-बोध-माला।

(१) शत-पथ बोधामृत। मू० ।) चार आने।

[५] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मृ. –) एक आना।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । मू. =) दो आने ।
(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक । मू ≡) तीन आने ।

[६] स्वयं शिक्षक माला ।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । मू. १॥) डेढ रु. ।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु ।
(३) संस्कृत स्वयं शिक्षक । प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग । प्रत्येक भागका मूल्य १।) सवा रुपया।

[७] आगम-निबंध-माला ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ≡) तीन आने ।
(२) मानवी आयुष्य । मू. ।) चार आने (द्वितीयवार मुद्रित)
(३) वैदिक सभ्यता । मू. ≡) तीन आने । (,,)
(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र । मू ।) चार आने । (,,)
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥) आठ आने। (,,)
(६) वैदिक सर्प-विद्या । मृ. ॥) आठ आने । (,,)
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय । मू ॥) आठ आने (,,)
(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥) आठ आने । (,,)
(९) शिव संकल्पका विजय । मू. ॥।) बारह आने । (,,)

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल; औंध (जि. सातारा)

प्रकाशक—बापुलाल कु. पटेल प्रभाशंकर चाळ, सान्ताक्रुझ (मुंबई)
मुद्रक—चिंतामण सखाराम देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सर्व्हंट्स् ऑफ इंडिया सोसायटीज़ बिल्डिंग, सँडहर्स्ट रोड, गिरगांव, मुंबई.

Registered No. B. 1463.

वर्ष ४, अंक २. ओ३म् माघ संवत् १९७९.

क्रमांक ३८. फर्वरी सन १९२३.

वैदिक धर्म।

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-मासिक-पत्र।

देवस्य पश्य काव्यं, न ममार, न जीर्यति॥

अथर्व. १०।८।३२

ईश्वरका काव्य देखो, जो मरा नहीं, और जो क्षीण भी नहीं हुआ है।

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मातृभूमि।

"हे मातृभूमे! तूं मेरा घात न कर! और मैं भी तेरा नुकसान कभी नहीं करूंगा।"

यजु. १०।२३.

वार्षिक मूल्य ३॥) साढे तीन रु. । विदेशके लिये ४॥) साढे चार रु.

विषय सूची ।

ॐ

वैदिक धर्म

वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र ।

वर्ष ४ अंक २	माघ १९७९; फर्वरी सन१९२३.	क्रमांक ३८

मातृभूमिकी भक्ति ।



ध्रुवमासि । पृथिवीं दृंह । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युप दधामि ॥ य. १।१७

“ (१) तूं स्थिर है । (२) मातृभूमिको स्थिर करो । (३) ज्ञानके उपासक, शौर्ययुक्त वीर और जातिके रक्षकोंका मैं धारण करता हूं ।”

वेदमें रोगजन्तु-शास्त्र ॥

एक समय ऐसा था, कि जिस समय के लोक दिलसे मानते थे कि, वेद का अर्थ समझना अशक्य है वेद केवल कण्ठ करने के लिये ही हैं, केवल वेद मंत्रों के जप से ही सम्पूर्ण पापों की निवृत्ति होजाती है; इस लिये वेद का जप करना ही वैदिक धर्मियों का परम कर्तव्य है ॥

इसके पश्चात् दूसरा काल ऐसा प्राप्त हुआ कि, जिस समय वेदार्थज्ञान की बड़ी आवश्यकता लोकों को प्रतीत हुई, अर्थ ज्ञान के सिवाय केवल कण्ठ करना उचित नहीं, ऐसा लोक समझने लगे। इस द्वितीय काल में कण्ठ करने की अज्ञानावस्था से लोग थोड़े उन्नत होगये इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु इस समय लोकों में ऐसी एक विपरीत बात उत्पन्न होगई कि, लोकों का ध्यान वेदार्थ जानने के काम में लगाना तो दूर रहा, परन्तु लोक, वेद जाननेवाले तथा न जाननेवाले, एकस्वरसे कहने लगे कि वेद में सब कुछ है। जो विद्या आसानी से निकलती थी, उसको वे लोक उद्धृत करने लगे, इतना ही नहीं, प्रत्युत जो विद्यायें वेद में स्पष्ट

तया नहीं प्रतीत होतीं थीं, उनको भी खींच कर निकालने का प्रयत्न होने लगा। इस खींचातानी के प्रयत्न से जनता में एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गई, जिसका परिणाम यह हुवा कि, वेदों का स्वाध्याय करने का उत्साह तरुण लोकों मेंसे जाता रहा। यह तीसरा काल है, जिस काल को औदासीन्य का काल समझना उचित है॥

वेद में सब कुछ है यह कथन जैसा भ्रामक है, वैसा ही वेद केवल कंठ करने के पुस्तक हैं यह विश्वास भी निरर्थक है। जो बात स्पष्टतया वेद में प्रतीत होती है, उसका स्वीकार न करना बड़ा अनुचित है, जो बात वेद में है उसका हर एक को स्वीकार करना चाहिये; तथा जो बात उसमें नहीं है, उस बात की खींचा खाची कर के आविष्कार करने का प्रयत्न करना भी बहुत बुरा है। यह खींचीतानी का प्रयत्न ही लोकों का अविश्वास बढानेका कारण है, इस लिये किसी वैदिकधर्मी मनुष्य को उचित नहीं, कि वह वेद वाक्य की खींचातानी करे, हर एक मनुष्य को उचित है कि, वह निःपक्षपाती होकर जहां तक होसके वहां तक अपने भाव वेदों के ऊपर लगाने का प्रयत्न न करे; परन्तु वेदों के भावों को शिरसावन्द्य मान कर उन् ही का प्रचारक बने। इसी प्रकार की समबुद्धि रखते हुवे यह प्रस्तुत निबन्ध लिखने का प्रयत्न मैं कर रहा हूं॥

प्रस्तुत निबन्ध के अन्दर वेद में "**रोगजंतु-शास्त्र**" है अथवा नहीं, यदि है तो किस स्वरूप में है, इसका सारांश रूप से दिग्दर्शन करना है; सूज्ञ लोकों निम्न लिखित वचनों का विचार करके निश्चय करना चाहिये कि वेद में "**रोगजंतु-शास्त्र**" किस अवस्थामें

है, इस शास्त्र का स्वरूप निश्चित करने में मुझे सूज्ञ विद्वान् लोक सहायता देंगे ऐसी आशा करके मैं इस निबन्ध का प्रारम्भ करता हूं।

आजकल प्रायः सब लोक यही समझते हैं, कि युरोपीयन विद्वानों ने रोगजंतु-शास्त्र का संशोधन किया तथा उस शास्त्रको इस शताब्दी में बहुत विस्तृत करके पूर्ण किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि युरोप के विद्वानों ने इस रोगजंतु शास्त्र का शोध करके स्वतंत्र रीती से इस शास्त्र को पूर्ण बनाया है। हमारा यहां कथन इतना ही है कि, इस की कई बातें वेद में पाई जाती हैं, । वैदिक मंत्रों को देखने से पता लगता है कि वैदिक काल में रोगजंतुशास्त्र की कल्पना प्रचलित थी, देखिये:—

ये अन्नेषु विविध्यंति पात्रेषु पिबतो जनान् ॥

यजु. १६।६२

"खाने का अन्न तथा पीने का पानी, इनके द्वारा जो शरीर में प्रविष्ट होकर विविध प्रकार की व्याधियां लोकों के (शरीर में) उत्पन्न करते हैं," इस प्रकार का वर्णन रोगजंतुओं के सम्बन्ध में उक्त वेद मंत्र में आया है, अन्न पानी के द्वारा कई क्रिमि अथवा सूक्ष्म रोगजंतु पेट में जाते हैं, और वे वहां नाना व्याधियां उत्पन्न करते हैं यह भाव उक्त मंत्र में स्पष्ट है। आजकल के युरोपीय विद्वानों की भी यही सम्मति है। जैसे ये क्रिमि पेट में जाते हैं वैसे अन्य अवयवों में जाकर वहां रोग उत्पन्न करते हैं, ऐसा निम्न मंत्र में लिखा है। देखिये:—

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जंभयामसि ॥

अथर्व, २।३१।४।

" अन्तड़ियों में, मस्तक में, पसलियों में, जानेवाले (अर्थात् वहां जाकर रोग उत्पन्न करनेवाले) व्यध्वर तथा अवस्कव क्रिमि होते हैं, इनका हम नाश करते हैं " ॥

इस मंत्र में विस्पष्ट रूप से कहा है कि, ये क्रिमि अन्तड़ियां, मस्तक, तथा पसलियों में जाते हैं और वहां नाना व्याधियां उत्पन्न करते हैं। इन क्रिमियों की अनेक जातियां होंगी, तथा उस हर एक जाति का नाम अलग अलग होगा। इस मंत्र में दो जातियों के क्रिमियों का उल्लेख है, एक **अवस्कव** तथा दूसरी **व्यध्वर** जाति। ये नाम दो भिन्न भिन्न क्रिमियों कीजा तियों के बोधक हैं, इन में "व्यध्वर" शब्द से बहुत ही बोध मिल सकता है, "व्यध्वर" शब्द का अर्थ देखिये:—

वि+अध्वर वि=विरुद्ध अध्वर=यज्ञ	यज्ञ का विरोधी।

"यज्ञ का विरोधी" ऐसा इस शब्दका अर्थ स्पष्ट है, **यज्ञ** जहां न होंगे उस स्थानपर उत्पन्न होकर वृद्धिगत होनेवाले, अथवा यज्ञ से जिन का नाश होता है ऐसे क्रिमियोंको **व्यध्वर** क्रिमी बोलते हैं। " व्यध्वर " शब्द का एक और अर्थ होता है देखियेः—

वि=विरुद्ध अ=निषेध ध्वरा=हिंसा	हिंसाके निषेध का विरोधी।

" हिंसा के निषेध का विरोधी " अर्थात् जहां हिंसा होती है वहां रहने वाले तथा जहां अहिंसा है वहां नहीं होने वाले ऐसे जो क्रिमी होते हैं वे व्यध्वर क्रिमी हैं, अर्थात् यह हिंसा से अथवा मांस संपर्क से उत्पन्न होने वाले तथा निर्मांस प्रयोग से नाश होने वाले क्रिमी होते हैं। यह शब्द मांस भोजन का विरोधी तथा निर्मांस भोजन के अनुकूल है, मांस का प्रचार करने से इन क्रिमीयों की वृद्धि होती है, और इन क्रिमियों के द्वारा विविध रोगों की उत्पत्ति होती है , इत्यादि आशय उक्त "व्यध्वर" शब्द से स्पष्ट-तया प्रतीत होता है ॥

इस प्रकार के अनेक मंत्र वेद में आये हैं, जिनको देखने से **" रोगजंतु-शास्त्र "** कि वैदिक कल्पना स्पष्ट विदित हो सकती है, इन रोगजंतुओं की कई अन्य जातियों का उल्लेख निम्न मंत्र में आया है, देखिये:—

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरुरूमतृहम्
अल्गण्डून्त्सर्वान् छलुनान् क्रिमीन्
वचसा जंभयामसि ॥ अथर्व २ । ३१ । २ ॥

"दृश्य तथा अदृश्य कुरुरू, अल्गण्डु, तथा शलुन नामक क्रिमीयों का नाश हम करते हैं " ॥

इस मंत्र में " (१) कुरुरू (२) अल्गण्डू तथा (३) **शलुन** " इन तीन क्रिमि जातियों का वर्णन है, तथा यह कहा है कि कई जातियों के क्रिमी नेत्र से दिखाई देते हैं । तथा कई अन्य जातियों के आंख से नहीं दीखते हैं । वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि वे

नेत्र से दिखाई नहीं देते। आज कल के युरोप के जन्तुशास्त्रज्ञों-की भी यही सम्मति है। अस्तु, इस प्रकारके जो जो मंत्र वेद में आते हैं, उनका विचार करने से निःसंशय विदित होता है, कि वेद में रोगजन्तुशास्त्र की विद्या है। मैंने अब तक जो मंत्र उद्धृत किये हैं उन में पांच जातियों के क्रिमियों के नामों का उल्लेख है, "(१) **अवस्कव**, (२) **व्यध्वर**, (३) **कुरुरू** (४) **अलगंडु** (५) **छलुन**" ये क्रिमियों की पांच जातियों के नाम हैं, क्रिमियों की छटी जाती का नाम "रुद्र" है, जिसका वर्णनः—

ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्॥

यजु० १६।६२.

इस पूर्वोद्धृत मंत्र में आचुका है, यही रुद्र संज्ञक जन्तु अन्न पानी के द्वारा शरीरमें जाकर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं, इन सूक्ष्म जन्तुओं को रुद्र नाम किस कारण दिया गया इसका विचार करना चाहियेः—

"रोदयन्तीति रुद्राः"॥

जो रुलाते हैं उनको रुद्र कहते हैं, यह रुद्र संज्ञक रोगजन्तु जिस ऋतु में ग्राम में प्रवेश करते हैं, और नाना रोग उत्पन्न करते हैं, उस समय लोग त्रस्त होकर रोने लगते हैं। **प्लेग—अतिसार, संनिपात** इत्यादि महा व्याधियों के उत्पन्न होनेसे लोग कितने दुःखित होते हैं, इसका विचार करनेसे विदित होगा कि, इनका नाम रुद्र क्यों कर रखा गया है, ये रुद्र क्रिमि कहां रहते हैं, इसका वर्णन आगामी मंत्र में दिया हुआ हैः—

नमो रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येऽन्तरिक्षे ये दिवि
येषामन्नं वातो वर्षमिषवः ॥ यजु० १६।६४.

"रुद्रों के लिये नमः । जो रुद्र पृथ्वी पर, अंतरिक्ष में तथा आकाश में रहते हैं, जिनका अन्न वायु है तथा वृष्टि जिनके शर है," अर्थात् ये रुद्र रूपी रोग जंतु सम्पूर्ण अंतरिक्ष में हैं और वे हवा भक्षण करके ही रहते हैं । वे इतने सूक्ष्म होने के कारण वे पानी के द्वारा पेट में जाकर नाना व्याधियां उत्पन्न कर सकते हैं, इनके निवास स्थान का वर्णन और भी देखियेः—

अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि ॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः ॥ ३ ॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः ॥ ४ ॥
ये वृक्षेषु सस्पिंजरा नीलग्रीवा विलोहिताः ॥ ५ ॥
ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ॥६॥ यजु०

"इस महान समुद्रमें, अंतरिक्षमें तथा पृथ्वीके उपर नीलग्रीव तथा शितिकंठ शर्व (संज्ञक जंतु) रहते हैं, द्युलोकमें रुद्र नामक रहते हैं, ये वृक्षोंमें भी रहते हैं," तथाः—

सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधिभूम्याम् । यजु० ॥

"ऐसे रुद्र इस पृथ्वी पर हजारों हैं, " इनमें जिनका कंठ नील होता है उनको नीलकंठ कहते हैं, तथा जिनका कंठ श्वेत होता है उनको शितिकंठ कहते हैं, इस प्रकार सहस्रों जीव पृथ्वीपर तथा सहस्रों अंतरिक्षमें रहते हैं ॥

पूर्वोक्त नामोंके अन्दर " शर्व " नाम आया है, जिसका अर्थ-शृणाति हिनस्ति इति शर्वः। जो हिंसा करता है उसको शर्व कहते हैं, प्राणिमात्रको जानसे मारने वाले ये होते हैं, इस लिये इनको वेदमें शर्व कहा है, पुराणोंमें रुद्र देवता संहार करने वाली मानी गई है, इसका भी हेतु यही है कि, इन रुद्रोंके कारण जो व्याधिया होती हैं, उनके द्वारा प्राणिमात्र मर जाते हैं, इसी कारण रुद्र, तथा शर्व इनको कहा है। इनके अनेक नाम वेदमें आये हैं, उनमेंसे कई यहां देते हैं:—

(१) रुद्र—रुलाने वाले,
(२) शर्व—प्राणघात करने वाले,
(३) विक्षिणक—क्षीणता उत्पन्न करने वाले,
(४) भीम—भंयकर,
(५) प्रभव—बहुत उत्पन्न होने वाले,
(६) खेचर—आकाशमें संचार करने वाले,
(७) गोचर—पृथ्वीपर रहने वाले,
(८) नक्तंचर—रात्रीके समय संचार करने वाले,
(९) घोर—भयानक
(१०) यज्ञघ्न—यज्ञसे जिनकी मृत्यु होती है,
(११) व्यध्वर—यज्ञके विरोधी,
(१२) कामनाशक—कामका नाश करने वाले,
(१३) बलघ्न—बलका नाश करने वाले,
(१४) महीचारी—पृथ्वी पर संचार करने हारे,

२

(१५) निशाचर—रात्रीमें संचरने हारे,
(१६) उन्माद—उन्माद वायु उत्पन्न करने हारे,

(१७) काल
(१८) निहन्ता
(१९) वध
(२०) निर्जीव
} प्राण हरण करनेवाले,

इस प्रकारके कई अन्य शब्द हैं जो रुद्रके वाचक होते हुवे व्याधि तथा संहारके वाचक होते हैं। प्रायः ऐसा देखनेमें आया है कि, जो राक्षस वाचक शब्द हैं, वे सब शब्द रुद्र वाचक तथा रोग जन्तुओंके भी वाचक हैं। इसमें आश्चर्यकी बात यह है कि, राक्षस वाचक **निशाचर, असुर, नक्तंचर, रात्रिंचर,** ये सब शब्द रुद्रके तथा रोग जन्तुओंके भी वाचक हैं। वैद्य औषधि द्वारा रोग जन्तुओंका नाश करता है, इस कारण वैद्यका नाम " **रक्षो-हा** " (अर्थात् राक्षस हंता) वेदमें आया है, जिससे सुस्पष्ट रीतिसे विदित होगा कि, राक्षस वाचक शब्द रोग जन्तुओंके भी वाचक हैं, देखियेः—

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीवचातनः ॥

ऋ. १०।९७।६.

"जिस ब्राह्मणके समीप औषधियोंका बड़ा संग्रह होता है, उस विप्रको भिषग् कहते हैं, तथा वह (रक्षोहा) **राक्षसोंका हनन करनेवाला तथा (अमीव-चातनः) रोगोंको दूर करनेवाला होता है "** ॥

इन मंत्रमें " रक्षो-हा " शब्द है, जिसका सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है, इस पदका अर्थः—

रक्षः—राक्षस, असुर,

हा—हनन करनेवाला,

"राक्षसोंका नाश करनेवाला" ऐसा स्पष्ट है, औषधियोंका संग्रह करनेवाला वैद्य राक्षसोंका नाशक कैसा होता है ? यह प्रश्न यहां उत्पन्न हो सकता है पुराणोंमें वर्णित विशाल देहधारी क्रूर राक्षसोंका यदि ग्रहण किया जाय, तो उन राक्षसोंका हनन वैद्यकी औषधियोंसे होना अशक्य प्रतीत होता है। यदि वैद्य किसीका हनन करता है, तो वह रोगबीजोंका हनन करता है, और रोग बीज रोग जन्तु होते हैं, तथा रोग जन्तुही सूक्ष्म राक्षस हैं; इन रोग जंतु रूपी राक्षसोंका औषाधि योजना द्वारा नाश करता है, इस कारण वैद्योंको "रक्षो-हा" कहते हैं। यदि राक्षस शब्दका रोग जन्तु ऐसा अर्थ न होगा, तो इस मंत्रमें इस शब्दका कोई अन्य सयुक्तिक अर्थ दृष्टिमें नहीं आता है, वैद्यका इस मंत्रमें दिया हुआ, " अमीव-चातनः " (रोगहारक) यह नाम ठीक है, परन्तु "रक्षो-हा" (राक्षस-हन्ता) इस नामसे कौनसा योग्य आशय निकलता है ? अर्थात् "रक्षोहा" शब्दसे यदि "रोग-जन्तु-हन्ता" ऐसा अर्थ लिया जाय, तोही "अमीव-चातनः" शब्दका अर्थ खुलता है, तथा रक्षो-हा शब्दका अर्थ भी पूर्वापर शब्दोंके अर्थोंके साथ सुसंगत प्रतीत होता है ॥

राक्षस रात्री के समय प्रगट होते हैं, ऐसा प्रायः सम्पूर्ण पुराणों में कहा है, इसका अर्थ " **रोग जंतु रात्री के समय प्रबल होते हैं,** " ऐसा यदि लिया जाय, तो वह अर्थ आधुनिक जंतु शास्त्र के अनुसार ठीक विदित होता है; इसी अर्थ के साधक " **नक्तंचर** " " **निशाचर** " " **रात्रिचर** " इत्यादि शब्द हैं ॥

पुराणों में राक्षसों के शरीरोंका वर्णन जहां जहां आया है वहां वहां उनके महान् महान शरीर वर्णित हैं, परन्तु यहां जिनका वर्णन आया है, उनके अतीव सूक्ष्म । हैं इस संदेह निवृत्तिके लिये कुछ विचार करनेकी आवश्यकता है । निम्न लिखित शतपथ ब्राह्मणका वचन देखनेसे राक्षसोंके शरीरके आकारका निश्चय हो सकेगा, देखियेः-

अथ कृष्णाजिनमादत्ते । शर्मासीति । चर्म वा एतत्कृष्णस्य तन्मानुषं शर्म देवत्रा तस्मादाह शर्मासीति । तदवधुनोति । अवधूतं रक्षः । अवधूता अरातयः । इति । तन्नाष्ट्रा एवैतद्रक्षाँस्यतो ऽपहन्त्यतिनत्येव पात्राण्यवधुनोति यद्वयस्याममेध्यमभूत्तद्वस्यै तदवधुनोति ॥ ४ ॥ शतपथ० १।४।४॥

" (अध्यर्यु) कृष्णाजिन उठाता हुवा मुंहसे कहता है कि तूं कल्याणकारी है, चर्म मनुष्योंके पास तथा शर्म देवोंके पास रहता है, इस लिये तूं शर्म है ऐसा चर्मको कहा है । पश्चात् वह कृष्णाजिन झड़कता है (और मुंहसे कहता है कि) राक्षस झिड़काये गये, शत्रु झिड़काये गये, झिड़कानेके समय वह अध्वर्यु चर्म यज्ञ

पात्रोंसे दूर झटकता है (इसका कारण यह है कि झड़कानेके समय चर्मसे अशुद्धि निकल कर यज्ञपात्रोंमें न गिरे) ऐसे झिड़कनेसे सब अशुद्धि निकल जाती है ॥"

कई पण्डीत इस स्थान पर यह समझते हैं कि चर्म झडक्नेके समय अध्वर्युनें उठकर दूसरी ओर जाना चाहिये; परन्तु दूसरे कई ऐसा समझते हैं कि, अध्वर्युने दूसरे स्थान पर जाकर चर्म झडकने की आवश्यकता नहीं, प्रत्युत उन्होंने चर्मको ऐसा पकड़ना चाहिये कि, झड़कानेसे जो अशुद्धि गिरेगी, वह यज्ञ पात्रोंमें न गिरने पावे, तात्पर्य चर्म की अशुद्धि किसी अवस्थामें यज्ञपात्रोंमें नहीं गिरनी चाहिये, अस्तु। पूर्वोक्त ब्राह्मण ग्रंथका वचन देखनेसे निम्न लिखित बातोंका विचार मनमें आता है:—

(१) अध्वर्यु यज्ञके समय बैठेनका कृष्णाजिन झिड़कता है।

(२) चर्म झिड़कानके समय अध्वर्युके मनमें यह भाव रहता है कि, इस झिडकानेसे चर्ममेंसे सब राक्षस गिर जावें।

(३) तथा दूसरा भाव यह है, कि जो (रक्षः) राक्षस होते हैं, वे ही (अराति) शत्रु होते हैं ॥

(४) वह चर्म झिडकानके समय यज्ञ पात्रोंके ऊपर धर कर नहीं झिड़कता, प्रत्युत यज्ञपात्रोंसे दूर पकड़ कर झिड़काता है, क्योंकि यज्ञ पात्रों के ऊपर झिडकानेसे चर्ममेंसे सब राक्षस यज्ञ पात्रों के अन्दर गिरेगें, और उनके गिरनेसे यज्ञ पात्र तथा हवि अमेध्य-अपावित्र-हो जायगा ॥

(५) इसलिये अध्वर्यु उठकर दूसरी ओर पकड़ कर चर्म झिडकता है ॥

इन पांच बातों का विचार करनेसे राक्षसोंका आकार कितना बड़ा अथवा छोटा होता है, इसका निश्चय हो सकता है ; सब पुराणों में ऐकमत्य से लिखा है कि, राक्षस देवों के, यज्ञों के तथा धार्मिकों के शत्रु होते हैं। यह इनकी शत्रुता सुस्पष्ट होनेके कारण सब जानते ही हैं, अतएव यहां उसके सम्बन्ध में कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं। यहां इतना ही देखना है, कि उक्त पांच बातों का विचार करनेसे क्या क्या अनुमान निकल सकते हैं:—

(१) राक्षसों की कई ऐसी जातियां हैं कि, उन जातियों के राक्षस इतने सूक्ष्म होते हैं कि, वे कृष्णाजिन के पृष्ठभाग पर चिपक जाते हैं ॥

(२) वे राक्षस धुलीके रजःकणसे भी सूक्ष्म होते हैं, वे हाथों से पकड़े नहीं जाते, उनको अलग करना हो, तो चर्म झिटकाना पड़ता है, अर्थात् वह धूळी के रजःकण से भी सूक्ष्म होते हैं।

(३) ये राक्षस बड़े भारी अपवित्र होते हैं, इनके गिरनेसे यज्ञ पात्र तथा हवि सम्पूर्ण अपवित्र बनता है ॥

इन तीन अनुमानों का इकट्ठा विचार करनेसे प्रतीत होने लगता है कि, ये राक्षस अत्यन्त सूक्ष्म होने चाहिये, वे चर्म पृष्ठ पर चिपक जाने के योग्य सूक्ष्म, यथा यज्ञ पात्रों को बिगाड़ने योग्य अपवित्र अथवा विषरूप होतें हैं, अर्थात् यह राक्षसों का वर्णन, वे विषमय सूक्ष्म रोगजंतु हैं, ऐसा स्पष्ट दर्शा रहा है। इतना विचार निश्चित होनेके पश्चात् शतपत का एक वचन देखना चाहियेः—

मनोर्ह वा ऋषभ आस । तस्मिन्नसुरघ्नी सपत्नघ्नी वाक् प्रविष्टास ।

तस्य ह स्म श्वसथाद्रवथादसुररक्षसानि मृद्यमानानि यन्ति । ते हासुराः समूदिरे । पापं बत नोऽयमृषभः सचते । कथं न्विमं दभ्नुयामेति । किलाताकुलीति हासुरब्रह्मावासतुः ॥ १४ ॥ तौ होचतुः । श्रद्धादेवो वै मनुरावं नु वेदावेति । तौ हागत्योचतुर्मनो याजयाव त्वेति । केनेति । अनेनर्षभेणेति । तथेति । तस्याऽऽलब्धस्य सा वागपचक्राम ॥ १५ ॥ सा मनोरेव जायां मानवीं प्रविवेश । तस्मै ह स्म यत्र वदंत्यै शृण्वन्ति ततो ह स्मैवासुररक्षसानि मृद्यमानानि यन्ति । ते हासुराः समूदिरे । इतो वै नः पापीयः सचते । भूयो हि मानुषी वाग् वदतीति । किलाताकुली है वोचतुः । श्रद्धादेवो वै मनुरावं न्वेव वेदावेति । तौ हागत्योचतुर्मनो याजयाव त्वेति । केनेत्यनयैव जाययेति । तथेति । तस्या आलब्धायै सा वागपचक्राम ॥ १६ ॥ सा यज्ञमेव यज्ञ पात्राणि प्रविवेश । ततो हैनां न शेकतुर्निर्हन्तुम् । सैषाऽसुरघ्नी वागुद्वदति । स यस्य ह एवं विदुष एतामत्र वाचं प्रत्यद्वायन्ति पापीयांसो हैवास्य सपत्ना भवन्ति ॥ १७ ॥

शतपथ ब्रा० १।१।४।१४।

अर्थ—मनुके पास एक ऋषभ था, जिसमें रक्षस तथा शत्रुओं की संहारक वाणी प्रविष्ट हो गई थी । इस कारण उस ऋषभके श्वास तथा शब्दसे राक्षस मारे जाते थे, यह देखकर राक्षस आपसमें सोचने लगे कि " यह ऋषभ हमारा नाश करता है, अतः इसका नाश हम कैसा करें," किलात तथा अकुली नामक राक्षसोंके दो

पुरोहित थे, वे कहने लगे कि " मनु श्रद्धादेव है, चलो उनहीके पास जाकर निश्चय करेंगे," वे उनके पास गये और कहने लगे कि, " हे मनो ! हम तुम्हारे लिये यज्ञ करेंगे," मनुने पूछा कि, " किस से तुम यज्ञ करो गे ?" वे कहने लगे कि " इस ऋषभसे "। यह सुनकर " ठीक है " ऐसा मनुने कहा। नंतर राक्षसोंने ऋषभका हवन करके यज्ञ किया, उसी समय राक्षस विध्वंसक शब्द उसमेंसे निकल कर मनुकी मानवी नामक स्त्रीमें प्रविष्ट होगया। जिस समय इनका शब्द राक्षसोंको सुनाई देता था, उसी समय राक्षस मर जाते थे, यह देखकर वे कहने लगे कि, "पहलेसे बड़ा संकट हमारेपर आगया है, क्योंकि मनुष्यकी वाणी अधिक शब्द बोलती है, (इस कारण हमारा नाश अधिक होने लगा है,) नंतर किलात व आकुली कहने लगे कि "मनु श्रद्धा देव है, चलो उन्हीको मिलकर निश्चय करेंगे," वे उनके पास गये, और कहने लगे कि " हे मनो ! हम तुम्हारे लिये यज्ञ करेंगे "। " किससे " ऐसा मनु ने पूछा। इसपर उन्होंने कहा कि, " इस तुम्हारी पत्नीसे। " मनुने कहा कि " ठीक है, " पश्चात् उस मानवीका वध राक्षसोंने किया, इस समय राक्षस विनाशक शब्द उनके शरीरसे निकला और यज्ञ तथा यज्ञ पात्रोंमें घुस गया, इसके पश्चात् राक्षस कुछ भी न कर सके " ॥

इस शतपथ ब्राह्मणके वचनसे एक बात निश्चित होती है, वह यह है कि, यज्ञोंके सामने राक्षसोंका बल नहीं चलता। यज्ञ पद्धति प्रारम्भ होने तक राक्षस विध्वंसन के जो जो प्रकार थे, उनके उनके ऊपर राक्षस कुच्छ न कुच्छ उपाय कर सकते थे, परन्तु जब से

यज्ञ प्रयोग प्रारम्भ होगया, उस समय से राक्षसों का बल नष्ट होगया ॥

उक्त शतपथके वचनसे प्रतीत होता है कि, राक्षसविध्वंसनके तीन प्रयोग विद्यमान थे (१) एक ऋषभ प्रयोग, (२) दूसरा जाया प्रयोग (३) तीसरा यज्ञ-प्रयोग, इन तीनों प्रयोगों में से " यज्ञ प्रयोग " सब से उत्तम निश्चित होगया। यह उक्त वचन का आशय है। यह प्रयोग क्या है, तथा इस कथनसे क्या तात्पर्य लेना चाहिये, इसका विचार अब करेंगे ॥

इन तीन प्रयोगों में प्रथम " ऋषभ प्रयोग " है, ऋषभ किंवा वृषभ प्रयोग है, ऋषभ किंवा वृषभ ये शब्द व्यवहारमें बैलके वाचक है। राक्षसोंके साथ वैद्यका सम्बन्ध पूर्व मंत्रमें आया है, इस कारण *ऋषभ शब्दसे भी वैद्यशास्त्रीय अर्थही लेना उचित है, क्योंकि ऋषभ राक्षसोंका नाश करने वाली चीज है, अर्थात् ऋषभ संज्ञक वनस्पतिके सहायसे प्रथमतः मनुष्य राक्षसों-अर्थात् रोग जन्तुओंका नाश करते थे, परन्तु पश्चात् उनको अनुभव प्राप्त हुआ कि औषधि प्रयोगसे रोग बीजोंका नाश उत्तमता से नहीं होता है। इस समय दूसरी युक्तिके विचारमें लोक लगे, उनको दूसरी युक्ति प्राप्त होगई, वही जाया प्रयोग है, मनुकी जाया " मानवी बुद्धि अथवा मनः शक्तिके प्रभावसे रोग निवृत्ति सम्भव है, ऐसा

---

* " ऋषभ " शब्दका वैद्यकमें अर्थ बलप्रद औषधि है। यह हिमालयके शिखरपर होती है (भावमिश्र)। गुण-बलवर्धक, शीतवीर्य, कामोत्तेजक, वीर्यवर्धक, दाहशामक, इ० ॥

मानस चिकित्साके प्रयोगोंसे सिद्ध है, **औषधि व मानस प्रक्रिया** इन दोनों उपायोंसे व्यक्ति गत रोगों की निवृत्ति शक्य है, परन्तु समुदायिक रोगों को दूर करनेके लिये उक्त दो प्रकार संपूर्णतया असमर्थ हैं, जो औषधिका सेवन करता है, उसको आरोग्य हो सकता है, अथवा जिनके ऊपर मानस प्रयोग किया जाय, उनका रोग दूर हो सकता है; परन्तु उनके पड़ोसी को इन उपायों से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। इस अवस्था को देख कर मनुष्य खिन्न होगये और परमेश्वर चिंतन करने लगे उस समय परमेश्वर ने "**यज्ञ प्रयोग**" दिया, औषधि चिकित्सा तथा मानस चिकित्सा इन दोनों से व्यक्ति गत रोग निवृत्ति होती है, परन्तु ग्रामों में व्यापक बिमारियां फैल गईं, सैंकड़ों लोक अस्वस्थ होने लगे, तब इन व्यक्ति गत उपायों से क्या होना है? ऐसे ग्रामिक आपत्ति में सार्वत्रिक वायु शुद्धि की अत्यन्त आवश्यकता है। यह कार्य यज्ञ **प्रयोग से उत्तम प्रकार होता है**। औषधि चिकित्सा में मुख्य दोष यह है कि, औषधि सेवन से उस व्यक्ति के शरीर के रोग जन्तु नाश होने पर भी उसके गृह में तथा उस ग्राम में रोग जन्तु रहते ही हैं, परन्तु **यज्ञ के द्वारा वायु शुद्धि करके रोग जन्तुओं का नाश किया जाय, तो जैसा एक व्यक्ति का तथा सम्पूर्ण ग्राम का लाभ हो सकता है**। यज्ञ करने वाले तथा न करने वाले इन दोनों प्रकार के मनुष्यों का लाभ होसकता है। इस लाभदायकता को देखने से पता लगेगा कि, यज्ञ प्रयोग की श्रेष्ठता अन्य दो प्रयोगों पर किस बात में है। इन बातों को ध्यान में रख

कर पूर्वोक्त शतपथीय आख्यायिका देखी जाय, तो उसका निम्न लिखित आशय प्रकट होगा:—

" मनु अर्थात् विद्वान् मनुष्यके पास ऋषभादि **वनस्पतियां** थीं, इनके द्वारा वह रोगों का उपशम करता था। पश्चात् रोग जन्तुओं ने औषधियों को जीत लिया, उस समय मनुष्यों ने मानवी—मनन शक्ति—के द्वारा रोगों का उपशम करना प्रारम्भ किया। रोग जन्तुओं ने इस शक्ति को भी जीत लिया, पश्चात् मनुष्यों ने यज्ञ प्रारम्भ किये, जिस समय यज्ञ प्रारम्भ हो गये उस समय से रोग जंन्तु रूपी राक्षस हतवीर्य होकर पराभूत होगये ॥ "

उक्त शतपथीय आख्यायिका के अन्दर " असुर तथा राक्षस " ये दो शद्ब आये हैं, पूर्वापर संबंध देखने से वे दोनों शब्द रोग जन्तुओं के वाचक प्रतीत होते हैं। " असुरः " शब्द का मूल अर्थ " असु+ल " (प्राण+हरण करने वाला) होगा, संस्कृत में " र " तथा " ल " का अभेद माना जाता है, इस नियमानुसार मुल " असुल " शब्द का रूपांतर " असुर " होगया होगा, अथवा " असुर " शब्द के देव तथा राक्षस ऐसें दो परस्पर विरोधी अर्थ हैं, देव वाचक " असु+र " शब्द का " **प्राणदाता** " ऐसा अर्थ है, इसके विरुद्ध राक्षस वाचक " असु+र " शब्द का अर्थ " **प्राणहर्ता** " होना चाहिये, तात्पर्य किसी प्रकार देखने से असुर शब्द प्राण हारक अर्थ बताता है, अत एव उस से रोग जन्तुओं का बोध हो सकता है।

अस्तु, उक्त प्रमाणों से विचारी पुरुषोंके मन में आ जायगा कि वैदिक वाङ्मयमें रोगजन्तुओं की कल्पना है। इन रोग जंतुओं के नाम पूर्व स्थल में लिखे गये हैं, अब उनके स्वरूप का थोड़ा सा विचार करते हैं। " शिति+कंठ " तथा " नील+कंठ " इन दो शब्दों से उनके कंठ का स्वरूप प्रतीत होता है, जिनका कंठ श्वेत होता है, उनको **शिति+कंठ** कहते हैं तथा जिनका कंठ नीला होता है उनको **नीलकंठ** कहते हैं, और देखियेः—

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमंगलः ॥
ये चैनं रुद्रा आभितो दिक्षु श्रिताः
सहस्रशो वैषां हेड ईमहे ॥ ६ ॥
नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

यजु. । १६

इन मंत्रों में (१) **ताम्र,** (२) **अरुण,** (**नारंगी**) (३) **बभ्रुः**—**भूरा,** (४) **महान्**—बड़ा, (५) **अर्भक—छोटा सूक्ष्म,** ये शब्द आये हैं, इन शब्दों से रोग जंतुओं के स्वरूप की कल्पना हो सकती है। " **अर्भक** " शब्द से उनका आकार सूक्ष्म होता है, ऐसा प्रतीत होता है ॥

नमो विक्षिणकेभ्यः । य. १६।४६.

इस मंत्र में " **विक्षिणक** " शब्द आया है, जिसका अर्थ " **विशेष क्षीणता उत्पन्न करने हारा** " है, ये रुद्र स्वरूपी रोग जन्तु अत्यंत क्षीणता उत्पन्न करते हैं, इस लिये इनको " **विक्षिणक** " कहते हैं, वेद में इनको " **यमदूत** " भी कहा है :—

वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतो,
ऽपसेधामि सर्वान् ॥ ११ ॥
आरादरातिं निर्ऋतिं परोग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ॥
रक्षो यत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवाप हन्मि ॥ १२ ॥

अथर्व० ८ । २ । १२ ॥

" वैवस्वतके भेजे हुए संपूर्ण यमदूतों का मैं नाश करता हुं, राक्षस, पिशाच, मांसाशी, ग्राही (पुराणा रोग), निर्ऋति, दुष्ट इनका मैं नाश करता हुं ॥ "

इन मंत्रों में जो राक्षस, पिशाच, क्रव्याद, ग्राही, निर्ऋति, आदि यमदूतों के नाम आये हैं, वे सब के सब नाम रोगोत्पादक जंतुओं के हैं, यदि ऐसा न माना जावे तो अगले मंत्र का अर्थ लगाना मुशकिल होगा देखिये :—

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् ।
रक्षः पिशाचानप बाधमानः ॥

अथर्व० १२ । ३ । १९

दिव्य गुणों के साथ वनस्पति आगई, जो राक्षसों तथा पिशाचों का नाश करती है ॥

इस मंत्र के अन्दर कहा है कि राक्षस तथा पिशाच इत्यादि यों का नाश करने वाली वनस्पति है, वनस्पति के द्वारा राक्षसोंका नाश होना किस प्रकार संभव है ? पुराणोंमें वर्णित महान देहधारी राक्षसोंका नाश वनस्पस्ति द्वारा कैसा हो सकता है ? यदि विशाल देहधारी राक्षसोंका नाश वनस्पति द्वारा होना संभव होता, तो पुरा-

णोंमें वर्णित महान् महान् युद्ध किस लिये किये जाते ? कोई कहेंगे कि, विष युक्त वनस्पतिसे राक्षसोंका नाश संभव है। इस पर उत्तर ऐसा है कि विषसे संपूर्ण प्राणिमात्रका नाश होना संभव है, फिर उक्त मंत्रमें राक्षसों तथा पिशाचों का ही उल्लेख करनेका प्रयोजन क्या है ? इसलिये यह मानना पड़ता है कि, वनस्पति द्वारा नाशको प्राप्त होने वाले राक्षस येही रोग जंतु समझने चाहिये, क्योंकि औषधि द्वारा इन्हींका नाश संभवनीय है। संपूर्ण वैद्य ग्रंथोंमें कहा है कि, औषधियोंके द्वारा रोग बीजोंका नाश होता है, यह सम्बन्ध ध्यानमें लानेसे प्रतीत होता है कि **राक्षस, पिशाच आदि शब्द रोगजंतुओंके ही वाचक हैं ॥**

'यमदूत' शब्दके विषयमें एक पौराणिक कल्पना देखनी चाहिये। वैष्णव पुराणोंमें कहा गया है, कि "यमदूतोंका पराजय विष्णुदूत सदैव करते हैं, इसलिये विष्णुके उपासक यमदूतोंके भयसे दूर रहते हैं," इस कथाका स्पष्टीकरण करनेके लिये शब्दोंके अर्थ देखने चाहिये:—

१ यमदूत=रोगजंतु,

२ विष्णु=सूर्य,

३ विष्णुदूत=सूर्य प्रकाश, सूर्य किरण,

यमदूत विष्णुदूतोंके सामने नहीं ठहर सकते हैं, इसका अर्थ इतनाही है कि '**सूर्य प्रकाशमें रोगजंतु नहीं रह सकते,**' अतः विपुल सूर्य प्रकाशके स्थानपर जो रहते हैं उनको यमदूतों अर्थात रोगजंतुओंका भय नहीं हो सकता है, इसी मुख्य सिद्धान्त पर पौरा-

णिक गाथायें रचीं गई हैं, ऐसा विदित होता है, अस्तु। अब इन बातोंको ध्यानमें रखकर पूर्वोक्त शब्दोंके अर्थ देखिये:—

ग्राही—पकड़ कर रखने वाला रोग, अर्थात् बहुत दिन तक अच्छी न होने वाली बीमारी ॥

क्रव्याद—मांस की क्षीणता करने वाले रोग।

पिशाच—रक्तका नाश करने वाले रोग।

येही नाम इन रोगोंको उत्पन्न करने वाले रोग जंतुओंके होते हैं, इसी प्रकार अन्य शब्दोंके विषयमें जानना चाहिये, अब वनस्पतिके द्वारा राक्षसोंका नाश होता है इस विषयमें अन्य प्रमाण देखीये:—

अजशृंग्यज रक्षः सर्वान् गन्धेन नाशय।

अथर्व० ४। ३७। २।

"अजश्रृंगी नामक वनस्पतिके सुवाससे सब राक्षस नाशको प्राप्त होते हैं" ॥

वनस्पतिके सुवाससे विनष्ट होने वाले राक्षस पुराण वर्णित विशाल राक्षस निश्चयसे न होंगे। वनस्पतिके गंधसे रोगजंतु अथवा ऐसेही सुक्ष्म कीट नष्ट हो सकते हैं, इसका विचार करनेसे पूर्वोक्त मंत्रमें "रक्षः" पदसे रोग जंतुओंका ही ग्रहण होना उचित है ऐसा प्रतीत होगा। इन जंतुओंका नाश एक प्रकारके वनस्पतिके गंधसे होता है इस प्रकारकी क्रिमिघ्न वनस्पतियां अनेक होगीं, उन सब का उल्लेख यहां करनेकी आवश्यकता नहीं, अब अन्य पदार्थोंका विचार करेंगे:—

यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे।
शंखेन हत्वा रक्षांसि अत्रिणो विषहामहे ॥
अथर्व० ४।१०।६।

इस मंत्रमें कहा है कि " शंखके द्वारा राक्षसोंका नाश होता है, " शंख उत्तम औषधि है, शंख भस्मसे कई व्याधियां अच्छी होती हैं, पानीमें घोलकर शंखका द्रव लेते हैं, अर्थात् यह शंख अत्यन्त रोगजंतु नाशक है, जो जो पदार्थ रोग दूर करने वाले होते हैं, वे सब प्रायः रोग जंतुओंके, अर्थात् राक्षासोंके विनाशक होते हैं। जैसी वनस्पतियां तथा शंखादि पदार्थ राक्षस नाशक हैं, उसी प्रकार " अग्नि " भी रोगजंतु नाशक हैं, देखियेः—

उपप्रागाद्देवोऽग्नी रक्षोहाऽमीवचातनः ।
दहन्नपद्वयाविनो यातुधानान् किमीदिनः ॥
अथर्व० १।२८।१॥

"यातुधान, किमीदिन तथा राक्षस इनका नाश करने वाला तथा रोगों को दूर करनेवाला अग्निदेव आता है, " इस मंत्रमें अग्निके लिये जैसा " अमीव+चातन=" (रोगोंका नाशक) कहा है, उसी प्रकार " रक्षो+हा" राक्षस विध्वंसक भी कहा है। ' यातुधान, किमीदिन, राक्षस ' ये सब नाम रोगजंतुओंके ही हैं, इनका नाश करनेवाला होनेसे ही अग्नि रक्षो+हा कहा जाता है, तथा अग्नि रक्षोहा होनेसे ही अमीव+चातन (रोग नाशक) होता है राक्षसोंका नाश तथा रोगोंका दूर होना, इनका परस्पर संबंध नित्य

है। जैसा पूर्व मंत्रमें वैद्यके लिये रक्षोहा व अमीव+चातनः कहा है, वैसा ही अग्निके लिये भी कहा है, इस प्रकार सब मंत्र विचार पूर्वक देखनेसे पता लगता है कि, राक्षसोंका विध्वंसन करनेवाली चीजें अवश्यमेव रोगनाशक होती हैं। राक्षस ही रोग जंतु होनेसे राक्षस बहुत बढनेसे व्याधियां बढती हैं, तथा उनके नाश होनेसे व्याधियां भी नष्ट होती हैं। राक्षसोंके बढने घटनेसे व्याधियोंका बढना घटना होता है, अतएव राक्षसविध्वंसक पदार्थ आरोग्यता देनेवाले समझे गये हैं। अग्नि भी इसी प्रकार आरोग्य देनेवाला पूर्वोक्त मंत्रमें कहा है। अग्नि जलनेसे उसके साथ हवा जलती है, उस समय वायु के अन्दर रहनेवाले राक्षस, रोगजंतु, जल जाते हैं। अग्निसे तपा हुआ वायु लघु होनेसे ऊपर जाता है और दूसरा वायु उस स्थानपर आता है, और उसके राक्षस जलजाते हैं। इस प्रकार अग्नि जलानेसे उस स्थानका वायु शुद्ध होता है, गृहकी तथा ग्राम की हवा इसी प्रकार शुद्ध की जाती है। इसी प्रकार आजकल म्युनिसीपालिटीके लोक भी हवा शुद्ध करते हैं, जिस गृहमें प्लेगादि रोग होते हैं, उस मकानमें तथा उसके चारों ओर अग्नि जलाया जाता है, उस अग्नि में गंधक तथा अन्य द्रव्य जलाते हैं, भूमी खोदकर उसपर घांस रख कर जलाते हैं, इत्यादि प्रकार प्लेगाक्रमित ग्रामोंमें सरकार करती है। इस बीसवी शताब्दीमें डाक्टर लोग भी अग्निको रोग–जन्तु विध्वंसक मानते हैं, वही आशय "रक्षो+हा" तथा "अमीव+चातन" इन दो-पदोंसे वेद मंत्रमें कहा है रोगदूरीकरणमें अग्निका क्या कार्य है, यह इन पदोंमें उत्तम रीतिसे वर्णित है। अग्निके द्वारा रोग जन्तु-

ओंका नाश होता है, और व्याधियां दूर हो सकती हैं। यह बात यदि मनमें ठीक प्रकार आगई, तो यज्ञका महत्व विदित होनेके लिये बहुत देर नहीं लगेगी। देखिये यज्ञमें क्या किया जाता है।

(१) विशिष्ट प्रकारके समिधाओंसे अग्नि प्रदीप्त किया जाता है, (२) गायका उत्तम घी आहुतियोंके द्वारा जलाया जाता है, (३) सुगंधित, रोग नाशक, स्निग्ध, तथा मिष्ट ऐसी चतुर्विध हवन सामग्री अग्निमें जलाई जाती है, (४) मनमें पवित्र भाव रखा जाता है, (५) परमेश्वर स्तुति रूप वेद मंत्रोंका उच्चारण किया जाता है। यज्ञमें ये पांच प्रकार किये जाते हैं, इसमें कोई प्रकार बुरा नहीं है। अग्निके जलानेसे वायु शुद्धि होता है ऐसा यदि आज कल माना जाता है, तो विशिष्ट प्रकारके लकड़ियोंसे किया हुआ तथा जिसमें विविध औषधियोंका हवन किया जाता है, ऐसा अग्नि अनिष्ट कार्य कर्ता होगा ऐसा कौन कहेगा? यज्ञमें विशिष्ट रोग निवृत्तिके लिये किस औषधीका हवन करना चाहिये, हम जिन पदार्थोंका हवन करते हैं यह सब ठीक है अथवा इसमें कुच्छ सुधारणाके लिये स्थान है, यह प्रश्न स्वतन्त्र है। यहां हमारा कथन इतनाही है कि, यदि कोई लकड़ी जलाकर प्रदीप्त किया हुआ अग्नि वायु शुद्धि करता है तो विशिष्ट लकड़ियों तथा औषधियोंसे जलाया हुआ अग्नि उत्तम गुणकारी होना संभव है। किस औषधिका कैसा उपयोग करना यह प्रश्न स्वतन्त्र है, इसका विचार वैद्य शास्त्रज्ञ तथा आरोग्य शास्त्रज्ञोंको करना उचित है। यहां इतनाही बतलाना है कि यज्ञका तत्व अति उत्तम है, और यह यज्ञ अग्निके रोग नाशक गुणकी बुनियादपर रचा गया है॥

कई कहते हैं कि, यज्ञ करना एक प्रकारका अंधविश्वास है, परन्तु यह कहने वालोंका अज्ञान है। वास्तवमें देखा जाय तो ऐसा प्रतीत होगा कि, अग्निका वायु शुद्धिकारक गुण अनुभवमें आनेके पश्चात्‌ही यज्ञ सर्वमान्य हुआ होगा, अर्थात् यज्ञ करना अंधविश्वास नहीं है, प्रत्युत यह एक अत्यन्त उपयुक्त कर्म है। अस्तु इतने विचारसे यह प्रतीत हो सकता है कि, अग्नि "राक्षसहन्ता" अर्थात् रोग जन्तु नाशक अत एव आरोग्य संवर्धक है। अब और एक मंत्र देखिये:—

दौष्वप्न्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अभ्वमराय्यः ॥
दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचास्ता अस्मन्नाशयामसि ॥

अथर्व० । ४ । १७ । ९ ॥

(१) दुष्ट स्वप्न, (२) दुर्जीवित्व, (३) राक्षस, रोग जन्तु, (४) अरायि—अशुद्धि, (५) वाचा तथा शब्दके दोष इन सबका हम नाश करतें हैं" ॥

इस मंत्रमें विविध प्रकारकी व्याधियोंके उल्लेख हैं, दुष्ट स्वप्न आने यह मन की व्याधि, जीवित दुःख मय प्रतीत होना यह शारीरिक व्याधि, वाणीके रोग इत्यादियोंका मूल कारण "रक्षः" अर्थात् रोग जंतु तथा "**अराय्यः**" अर्थात् अशुद्धि है, इनका नाश होनेसे इनके कार्यभूत व्याधियोंका नाश होता है। इस मंत्रमें आया हुआ अरायि शब्दका अर्थ अत्यन्त महत्वका है "**अ+रायि**" शब्दका अर्थ अशुद्धि, "**अदातृत्व**" है, अरायि का "**रक्षः**" पदके साथ यहा संबंध है, इससे प्रतीत होता है, कि

अशुद्धि में राक्षसों का उद्भव होता है, शुद्धि में उनकी स्थिति नहीं हो सकती। अग्नि शुद्धि उत्पन्न करने वाला होने से राक्षसों का विध्वसंक होता है, इसी उद्देश से कहा है कि हवन द्वारा रोग दूर होते हैं, देखिये:—

मुंचामित्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत
राजयक्ष्मात् ॥
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इंद्राग्नी प्रमुमुक्त-
मेनम् ॥ १ ॥
यदि क्षितायुर्यदि व परेतो यदि मृत्योरंतिकं नीत एव॥
तमाहरामि निर्ऋतेरुपस्थात् अस्पार्षमेनं शत-
शारदाय ॥ २॥
सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम्॥
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य
पारम् ॥ ३ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमंताञ्छतमु वसन्तान्॥
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हवि-
षेमं पुनर्दुः ॥ ४ ॥
अ० । १० । १६१ ॥

"हे व्याधिग्रस्त मनुष्य! तुमको ज्ञात तथा अज्ञात व्याधीसे हवनके द्वारा अच्छा करता हूं, यदि बहुत दिनों का रोग हो तो इन्द्र व अग्निके द्वारा वह अच्छा हो सकता है, यदि बीमार मरणो-

न्मुख हुआ होगा, तो भी पुनः आरोग्य संपन्न हो सकता है, शरीर के अन्दर जो कुछ दुरित गया हो, वह शत गुणित हवनसे दूर हो सकता है, इन्द्र (विद्युत्), अग्नि, सूर्य तथा बृहस्पति (ज्ञानी) इनके सहाय्यसे आसन्न मरण रोगी भी पुनः शतायुषी होसकता है।"

ये चारों मंत्र अत्यन्त उपयुक्त हैं, इसमें " दुरित " शब्द है, दुरित सब रोगोंका मूल है, ऐसा माना जाता है, इसकी सत्यता देखने के लिये इस शब्द का अर्थ देखना चाहिये:—

दुर्=विषम, दुष्ट,

इत=गत, अन्दर प्रविष्ट,

शरीरके अन्दर जो विषम, दोषयुक्त, पदार्थ गया हो, वह " दुरित " समझा जाता है, शरीरके अन्दर समता उत्पन्न करने वाले पदार्थ हितकारक तथा विषमता उत्पन्न करने वाले पदार्थ अहितकारक अर्थात् दुरित रूप होते हैं। शरीर पोषक पदार्थ हितकारक तथा रोगोत्पादक पदार्थ सब " दुरित " रूप समझे जाते हैं। यूरोपमें डा० कुन्हे ने सिद्ध करके बताया है, कि शरीरके अन्दर विषम प्रकृति (Foreign Matter) आनेसे नाना व्याधियां होती हैं। तथा उसके चले जानेसे रोग की निवृत्ति होती है। " दुरित " शब्द भी यही आशय बताता है, रोगजंतुओं से शरीरका संवर्धन नहीं होता है, इसलिये इनको दुरित कहते हैं। इनको शरीरसे दूर करनेके उपाय उक्त मंत्र में कहे हैं। हवन, अग्नि, विद्युत्, सूर्य इनके सहाय से रोगबीजोंका नाश होता है, यह उक्त मन्त्रोंका

आशय है। अग्नि से रोगजंतु नष्ट होते हैं, यह पूर्व बताया है। अब सूर्य के विषयमें देखियेः—

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु निम्लोचन्हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥१॥ विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिम् सारंगमर्जुनम्। शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः॥ २॥ प्रते शृणामि शृंगे याभ्यां वितुदायसि॥ भिनद्मि ते कुसुंभ यस्ते विषधानः॥

अथर्व० २।६।१।

" उदय पाने वाला तथा अस्त होने वाला सूर्य अपने किरणों से क्रिमियोंका नाश करे, जो क्रिमी भूमि तथा आकाश में रहते हैं, ये क्रिमि अनेक रूपों के होते हैं, कई चार नेत्र वाले, कई श्वेत, कई रक्त ऐसे अनेक प्रकारके होते हैं। इन सबका मैं नाश करता हूं, इनको दो सींग होते हैं, जिनसे वे प्राणियों को काटते हैं, तथा इनके पास एक विषकी थैली भी होती है॥ "

इस मंत्रमें ऐसा कहा है, कि सूर्य किरणोंके द्वारा क्रिमियोंका नाश होता है। जैसा अग्नि राक्षस–हंता है उसी प्रकार सूर्य भी है। सूर्य का वर्णन वेदमें इन्द्र शब्दसे तथा सूर्य शब्दसे आया है, सब स्थानमें उसको राक्षस हन्ता ही कहा है, विद्युतका वर्णन भी इन्द्रके सूक्तों में आया है, यह भी राक्षस हन्त्री है। पृथिवीके ऊपर अग्नि, अंतरिक्षमें विद्युत् तथा द्युस्थानमें सूर्य, ऐसे तीन देव राक्षसोंका नाश कर रहे हैं। ये तीन पदार्थ रोग जंतुओंके नाशक

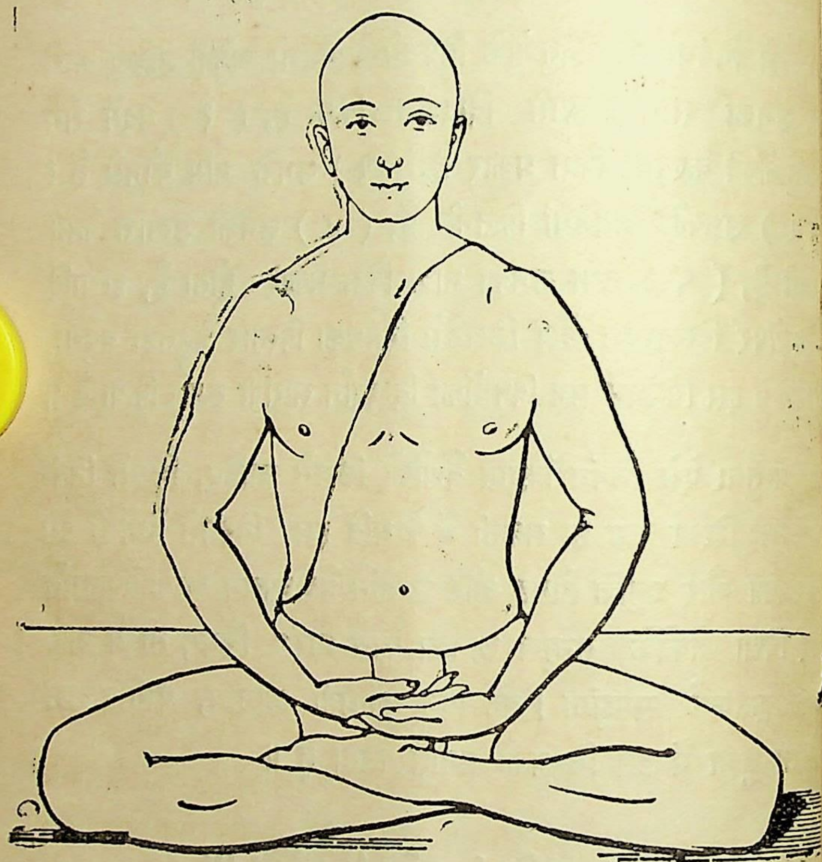
हैं ऐसा आधुनिक योरोपीय विद्वान् भी मान रहे हैं, इसलिये इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं, अस्तु ॥

इस निबंधमें रोग जंतुओंके विषयमें वेदमें जो अनेक उल्लेख आये हैं, उनका सारांश रूपसे दिग्दर्शन किया है, (१) वेदमें रोग जन्तुओंकी कल्पना किस प्रकार है, (२) उनके नाम कौनसे हैं ? (३) उनकी जातियां कितनी हैं, (४) उनकी उत्पत्ति कैसी होती है, (५) तथा उनका नाश किस प्रकार होता है, इत्यादि विषयोंपर विस्तारशः लेख लिखनेसे निबंधका विस्तार बहुतही बढेगा, इसलिये इस निबंधमें सब विषयोंका दिग्दर्शन सारांश रूपसे किया है ॥

वस्तुतः ऐसे निबंध विद्वान वैद्योंको लिखने चाहिए, जिससे निबंधमें अशुद्धिया कम हो सकती हैं । यदि इस निबंधसे वैद्योंकी इस विषयकी ओर प्रवृत्ति होगई और उन्होंने वेदाध्ययन करके वेदांतर्गत वेद विद्या लोकोंके सन्मुख लानेका कार्य प्रारंभ किया, तो मैं अपनेको कृतकर्म समझूंगा । वह दिन शीघ्रही आजाय, ऐसी इच्छा करता हुआ मैं इस निबंधको समाप्त करता हूं ॥

ओम् शांतिः ! शांतिः !! शांतिः !!!

सिद्धासन ।



रीति—बायें पांवकी एडी गुदा और अंडकोशके बीचमें दृढतासे लगाईये ; और दाहिने पांवकी एडी इंद्रियके उपरके भागमें दृढ लगाइये। ठोढी हृदयमें कंठमूलसे थोडी दूर हृदयपर लगाकर स्थिर और सीधा शरीर करके पलकों और आंखोंको न हिलाते हुऐ भौंहोंके बीचमें

दृष्टिको स्थिर कीजिये। हाथ चाहे घुटनोंपर रखिये चाहे मध्यमें रखिये। दोनों पांव एक दुसरेपर ऐसे आजाय कि दोनोंकी संधि-स्थानकी हड्डी एक दूसरेपर आजाय। इस आसनके आभ्याससे काम-वासना कम होती है और अखंड ब्रह्मचर्य सिद्ध होता है, इस कारण यह आसन गृहस्थियोंको थोडा और अन्य आश्रमवासियोंको अधिक करना उचित है। इसके फल निम्न प्रकार हैं—

(१) भौंहोंके बीचमें दृष्टि स्थिर रहनेसे मनकी एकाग्रता हो जाती है और प्रकाशदर्शन होता है। नासिकाके अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर करनेसेभी उक्त सिद्धि थोडी देरीसे हो जाती है। जो अपनी दृष्टिको भ्रूमध्यमें अथवा नासिकाग्रपर स्थिर नहीं कर सकते वे किसी बाह्य बिंदुपर भी कर सकते हैं। इसकी सिद्धिमें थोडी देरी लगेगी।

(२) सबसे प्रथम इस आसनपर केवल बैठनेका अभ्यास करना उचित है। कोई शरीरका भाग बिलकुल न हिलाते हुए जितनी देर बैठनेका अभ्यास होगा उतना मन एकाग्र करनेके लिये अधिक सहाय्यक होगा। सब शरीर और सब इंद्रिय यदि एक घंटाभर स्थिर रहेंगे और इस समय मनके व्यापारभी थोडी देर स्तब्ध किये जांयगे, तो आत्मशक्तिका स्फुरण होनेके आनंदका अनुभव आता है। यह अभ्यास गाढ अंधकारमें करने तथा अत्यंत शांतिके समयकर-नेसे अनुभव जलदी आता है। इस समय आंखके सन्मुख जो प्रकाश दीखते हैं उनमें मन स्थिर करना योग्य है।

(३) गुदा, शिस्न और आसपासकी सब नसनाडी ऊपर आक-र्षित करनेसे वीर्य स्थिर हो जाता है। गुदाको मनसे ही अंदर आक-

र्षित कीजिये तथा शिस्नके समेत सब मूलस्थानको ऊपर खींचनेका अभ्यास कीजिये। यह अभ्यास, प्राणको स्तब्ध करके अथवा प्राणकी गतिको न रोकते हुए परंतु अत्यंत शांतिके साथ प्राणको चलाते हुए किया जा सकता है। वीर्यकी गतिको अपने आधीन करनेके लिये यह अभ्यास अत्यंत उपयोगी है। एक मासके अंदर वीर्य स्थिर होनेका अनुभव होता है। सिद्धासन के विनाभी यह अभ्यास किया जा सकता है और उससे हरएकको निःसंदेह लाभ होता है।

(४) पृष्ठवंशको सीधा रखकर ठोडीको कंठ मूलमें लगानेके अभ्याससे मस्तिष्ककी शक्ति बढती है, परंतु इसका लाभ सालभरके पश्चात् अनुभवमें आता है।

(५) सिद्धासन लगाकर नाभिके समेत सब पेटको तथा गुदा समेत शिस्नको भी ऊपर आकर्षित कीजिये। अच्छी प्रकार करनेसे पेट पसलियोंमें चला जायगा और पेटका स्थान खाली होगा। जितनी देर इस प्रकार आप बैठ सकेंगे उतना लाभ होगा। प्राणकी गति बंद करकेही ऐसा बैठना होता है, इसलिये स्तब्धवृत्ति प्राणायाम जितनी देर होता होगा उतनी देर ही इस प्रकार बैठना संभव है। घडी लगाकर एक या आधा मिनिट बैठ जाइये और इस प्रकार दस पांच वार कीजिये। भूख बढ जायगी, हाजमेका दोष दूर होगा, और पेटकी शिकायतें नष्ट हो जांयगी।

(६) प्राणायाम करनेके समय निम्न बातोंका अवश्य ख्याल करना चाहिये। पूरकके समय मूल स्थानकी सब नस नाडियां ऊपर आकर्षित करनी चाहिये, कुंभकके समय ठोडीको कंठमूलमें लगाना

चाहिये, रेचकके समय नाभिके समेत सब पेटको अंदर आकर्षित करना चाहिये और बाह्य कुंभक करना हो तो उस समयमें भी पेटको अंदर ही रखना चाहिये। यदि किसीको इतना करना कठिण प्रतीत होता हो तो वह थोडा थोडा अभ्यास बढावे इस अभ्याससे प्राणकी स्वाधीनता होती है।

अभ्यासके दिनोंमें सात्विक भोजन तथा अन्य पथ्य रखने चाहिये। भूख अधिक लगनेपर गायका दूध पीना लाभदायक है, पकोडे आदि चटपटे पदार्थ हानिकारक हैं।



शीर्षासन करनेसे लाभ का अनुभव.।

" **शीर्षासन** " का चित्र और उसका वर्णन " **वैदिक धर्म** " के पूर्व अंकमें दिया है। इस आसनके करनेसे अनेकोंको अनेक रीतिसे लाभ हुए हैं, उनमेंसे कुछ संमतियां नीचे देता हूं—

' मुंबई, गंगाराम क्षत्रियचाळ—ठाकुरद्वारसे ता. १।११।२१ के पत्रमें श्री. पं. पांडुरंग गंगाधर नामजोशी लिखते हैं)—

"........किसी मनुष्यके पांव अशक्त हैं और वह पावोंपर खड़ा नहीं हो सकता, तो उसके पावोंमें शक्ति आनेके लिये "**शीर्षासन**" अत्यंत लाभदायक है। पहिले पंद्रह दिनोंमें पांच मिनिट तक करना योग्य है, तत्पश्चात् प्रति पंद्रह दिनोंमें पांच मिनिट बढाते हुए, तीन मासोंमें आधा घंटा तक कर सकते हैं। इस आसनका अभ्यास करनेसे पांवोंकी शक्ति बढती है। इस आसनमें पांव ऊपर करने होते हैं इसलिये रुधिराभिसरण अच्छी प्रकार होता है, पांवका अशुद्ध रक्त फेंफडोंमें सत्वर आता है और वहां शुद्ध बनकर फिर पांवकी ओर भेजा जाता है। इस आसनसे रक्तप्रवाह ठीक होनेके कारण अशक्त अवयव सशक्त बन सकते हैं।

" आजकल स्कूल और कालेजोंके विद्यार्थियोंमें धातु-क्षयका विकार बहुत बढा है। इस बीमारीके कारण सब जानते हीं हैं।

लडके और लडकियोंका निकट संबंध, नाटक सिनेमा आदिके अश्लील भावोंका दर्शन, **बीभत्स विज्ञापन और उनके औषधोंका स्वेच्छासे उपयोग**, अश्लील उपन्यासादिका वाचन आदि अनेक कारणोंसे इस धातुक्षयकी उत्पत्ति और बाधा तरुण युवकोंमें होती है। इसप्रकारके धातुक्षीण मनुष्यने यदि नियमपूर्वक और विधियुक्त शीर्षासन किया तो उसका वीर्यपात एकमासके अंदरही बंद होगा। इसके अनेक कारण हैं, परंतु सबको ज्ञात हो सकता है ऐसा एकही कारण यहां देता हूं, वह यह है कि जलरूप वीर्यकी ऊर्ध्वगति होति है तथा वीर्य-स्थानीय नस नाडियोंकी अशक्तता दूर होती है। इसका अनुभव कई तरुणोंपर देखा है। निःसंदेह लाभ होता है।

" हमारा एक मित्र है जो बवासीरसे दुःखी था। उसने दो मास नियमपूर्वक शीर्षासन किया, जिससे उसका बवासीरका कष्ट दूर हुआ। यहां इस विषयमें इतना कहना आवश्यक था कि यह बवासीर बिलकुल प्रारंभिक अवस्थामें थी। अधिक बढीहुई बवासीर अच्छी होगी, या नहीं और होगी तो कितनी देर के अभ्यास से होगी, इसका अनुभव लेना चाहिये। गुदाके स्थानका रक्त हृदयकी और खींचा जानेसे बवासीरके स्थानमें रक्तका प्रवाह कम हुआ, इस कारण बवासीर दूर होगई ऐसा मेरा ख्याल है। इसके साथ पथ्ययुक्त भोजन करनेसे अधिक लाभ है।

" मेरे एक मित्र म. गणपतराव रानडे हैं, उनकी घटनेकी बीमारी शीर्षासनके करनेसे ही दूर होगई। इसका वृतांत **वैदिक धर्म** में छपा ही है।

" सुस्त मनुष्य यदि नियमपूर्वक शीर्षासन करेगा, तो थोडे समयके पश्चात् उसकी सुस्ती दूर होगी और वह फूर्तिला मनुष्य बन सकता है। शीर्षासनसे आलस्य दूर होता है इसमें कोई संदेह नहीं है। प्रतिदिन नियमपूर्वक आधा घंटा शीर्षासन करनेसे बद्ध-कोष्टता दूर होती है और शौचशुद्धि उत्तम प्रकारसे होती है। इस विषयमें बहुतोंके ऊपर अनुभव लिया है।

" मस्तकके विकारोंमें शीर्षासन करनेसे बहुत लाभ होता है, शीर्षासनसे रुधिराभिसरण ठीक होनेके कारण सिरदर्द हट जाता है। इस प्रकार मेरे अनुभव हैं। "

[उक्त अनुभव श्री. पं. पांडुरंग गं. नामजोशीजीके पत्रसे उद्धृत किया है। श्री. नामजोशीजी दृढ योगाभ्यासी हैं और इस समयतक उन्होंनें आसन प्राणायाममें सेंकडों विद्यार्थियोंको दीक्षा दी है। योगके कई दुःसाध्य प्रयोग इन्होंनें सिद्ध किये हैं, इसलिये इनका पूर्वोक्त पत्र विशेष महत्व रखता है। इसी प्रकार हरिपूर-सांगली निवासी वैद्य श्री. पं. गणेश परांजपेजी शीर्षासनके विषयमें अपने अनुभव ता. ३।११।२२ के पत्रमें निम्नप्रकार लिखते हैं]

" ... ... अनेक विद्यार्थियोंके सिरदर्द केवल **शीर्षासनसे** दूर होनेका विलक्षण अनुभव मैनें लिया हैं । इनमेंसे एक दो यहां लिखता हूं—

"....श्री. लक्ष्मणराव शिंदे सुभेदारजीका पुत्र चि. गणपति, १८ वर्षकी आयुवाला सांगली हैस्कूलमें पढता है। दो तीन वर्षोंसे इसके

सिरमें बडा दर्द होता था। थोडासा पठन पाठन अथवा विचारका कार्य करनेसे सिरमें बडी पीडा होने लगती थी। आंखोंकी जलन, सिरका दर्द और रात्रीमें स्वप्नदोष होनेके कारण उक्त विद्यार्थीकी अवस्था बडी खराब होगई थी। बहुत दवाइयां कीं परंतु किसीसे लाभ न हुआ। ठंढे पानीका स्नान और शीत वायुमें सो जानेसे किंचित् आराम होता था। यह लडका हमारे दवाखानेमें ता. ९।८।२२के दिन दाखल हुआ। १९।२० दिन औषध प्रयोग करनेपरभी कोई परिणाम नहीं हुआ। पश्चात् शीर्षासनका प्रयोग किया। शीर्षासन करनेपर इन्होंने कहा कि पृष्ट वंशसे कुछ ठंढा पदार्थ सिरमें उतरनेका भास हुआ और जब वह पदार्थ सिरमें पहुंचा तब सिरदर्द बंद हुआ। १९ दिन नियम पूर्वक करनेपर सिरदर्द बिलकुल हट गया, स्वप्नदोषभी दूर हुआ। यह विद्यार्थी अबभी शीर्षासन कर रहा है।

"....मेरा नाम विष्णु कृष्ण आडके है और मैं जातिका ब्राह्मण हूं परंतु दर्जीका पेशा कर रहा हूं। (निवास स्थान-हरिपुर-सांगली) मैं पांच वर्षोंसे सिरदर्दके कारण बहुत बीमार था। दिनमें २४ घंटे बडा सख्त सिरदर्द होता था, रात्रीमें निद्रा नहीं आती थी, बैचेनी सदा ही रहती थी और हाजमा थी बिगड गया था। परदेसी और विदेशी वैद्यों और डाक्टरोंके बहुत उपाय किये, परंतु किसीसे भी कुछ लाभ नहीं हुआ। किसी औषधसे किंचित् आराम मिलता था परंतु फिर वैसाही दर्द हो जाता था। किसी उपायसे स्थिर लाभ नहीं हुआ। इसके पश्चात् सांगली हरिपुरके "आरोग्यसंवर्धक-मंडलके" संचालक श्री. गणेश पांडुरंग परांजपे जीकी प्रेरणासे ता. २८।८।२२

के दिन शीर्षासन करनेका प्रारंभ किया । पहिले दिन १०।१९सेकंद ही हुआ । बढाते बढाते इस समय २।३ मिनिट कर सकता हूं। लगातार दस दिन शीर्षासन करनेसे सब सिरदर्द हट गया । शीर्षासन करनेके समय सिरमें तथा आंखोंमें विलक्षण शीतता प्रतीत होती थी और इससे मुझे क्रमशः आराम प्राप्त होता गया । अब मैं प्रतिदिन शीर्षासन कर रहा हूं और अब किसी प्रकारका सिरदर्द रहा नहीं है ।"

[श्री. ग. पां. परांजपे वैद्यजीकेपत्रसे आवश्यक भाग ऊपर उद्धृत्त किया है । स्वयं वैद्य होनेपरभी " **विना औषधिकी चिकित्सा** " करनेका उपक्रम करनेके कारण मेरा प्रेम इनके साथ हुआ है । इनके " **आरोग्य-मंडळ** " का उद्देश्य यहां नीचे देता हूं, जिससे इनके परिश्रमकी कल्पना पाठकोंको हो सकती]—

" निसर्गकी उपासना करो । "

"सृष्टिदेवीके पवित्र नियम पालन करनेमें भूल न करो"

अपने पवित्र आर्यावर्त देशमें बहुत प्राचीन कालसे आरोग्य-देवताका निवास था । यह सृष्टिदेवता अपने सुपुत्रोंको निरोग, सशक्त तेजस्वी, दीर्घायु करनेका प्रयत्न हमेशा करती है । परंतु मनुष्य अपने ज्ञानकी घमंडके कारण निसर्गदेवीकी उपासना नहीं करता है और क्षणिक सुखके पीछे लगकर नैसर्गिक आरोग्यपूर्ण प्रतिकार शक्तिको दूर करके रोगोंका शिकार बनता जाता है । इसलिये प्रति-दिन मनुष्य रोगी, अशक्त, निस्तेज और अल्पायु बनता जाता है । यह अवस्था अत्यंत शोचनीय है और अपने मातृदेशके लिये

निःसंदेह अधोगति देनेवाली है। इस कारण इसको बदलनेका यत्न हरएकको अवश्य करना चाहिये।

“ **आसनोंके व्यायामोंसे रोगोंका संहार होता है।** ” परंतु मनुष्योंका लक्ष्य औषधियोंकी ओर अधिक खींचा जानेसे आसनादिके व्यायामका विचार दूर रहा है। औषध प्रयोगकी अपेक्षा आसन प्रयोगोंसे कई गुणा अधिक लाभ तथा चिरस्थाई गुण प्राप्त होता है। इस व्यायामपद्धतिसे रोगमुक्त होनेके नियमादि विनामूल्य दिये जाते हैं।

“ **ख्याल रखिये।** ” कि सतत औषधियोंके सेवन करनेसे शरीरमें विषकी प्रबलता बढती है और आरोग्य हटता जाता है। **तरुण युवकोंको इसका अवश्य विचार करना चाहिये।** आज कलके विज्ञापनोंसे दवाइयां मंगवाकर अपना स्वास्थ्य न जलाइये।

“ **हमें द्रव्यकी आवश्यकता नहीं है।** जो इस रीतीसे आरोग्य संपन्न होता चाहता है, वह अवश्य लाभ उठावे। इ० ”

[स्वयं वैद्य होनेपर भी इस प्रकारका उपक्रम करना बडा प्रशंसनीय कार्य है। इसलिये हम श्री. वैद्यजीका हार्दिक धन्यवाद करते हैं। आसन, प्राणायाम तथा साष्टांगप्रणिपातादिके प्रयोग करनेवाले सज्जन स्थानस्थानमें होंगे, तो इस विना औषधिकी चिकित्सासे सहस्त्रों रोगियोंको लाभ पहुंच सकता है। आशा है कि “ वैदिक धर्म ” के उत्साही पाठक इसका अधिक विचार करेंगें। —**संपादक-वै.ध.**]

इंद्रका वज्र ।

(लेखक—श्री. रा. सा. कृ. वि. वझे, इंजिनियर, नासिक)

इंद्रका वज्र वेद, ब्राह्मणों और पुराणोंमें भी प्रसिद्ध है। इससे पत्थर तोडे जाते हैं और पहाडभी काटे जाते हैं। इसीसे इंद्र पर्वतोंको काटता है। यह वज्र क्या चीज है? इस बातका विचार करना चाहिये। इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये—

(१) **अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसम्।** ऋ. १।५२।८
(२) **हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम्** ऋ. १।८१।४
(३) **मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसम्** । ऋ. १०।४८।३
(४) **अवाभरद्धृषितो वज्रमायसम्।** ऋ. १०।११३।५

"(१) तू दोनों हाथोंसे लोहेका वज्र धारण करता है। (२) अश्वोंसे युक्त वीर अपने दोनों हाथोसे लोहेका वज्र धारण करता है। (३) कारीगरनें मेरे लिये लोहेका वज्र (अतक्षत्) बनाया है। (४) प्रगल्भताके साथ उसनें लोहेका वज्र शत्रुपर फेंक दिया।"

इन मंत्रोंसे स्पष्ट होता है कि (वज्रं आयसं) यह वज्र लोहेका ही होता है। तथा दोनों हाथोंसे बर्तने योग्य भारी भी होता है। उक्त मंत्रोंमें **"हस्तयोः। बाह्वोः"** आदि प्रयोगोंसे सिद्ध है कि यह वज्र दोनों हाथोंसे उठाया जाता है, न कि एक हाथसे। तथा पकडनेवाला भी बडा बलवान शूर योद्धा वीर होता है न की मामुली आदमी। यह वज्र कैसा बनाया जाता था इस विषयमें निम्न मंत्र सहायक हो सकता है—

तस्मै त्वष्टा वज्रमासिंचत् ।
तपो वै स वज्र आसीत् । तै. सं. २।४।१२।२

"(स वज्रः) वह वज्र (तपः) तपाहुआ था । (त्वष्टा) कारीगरनें उस तपे हुए वज्रको (असिंचत्) पानीसे भिगोया और उसको दिया ।"

(१) लोहेका शस्त्र पहिले तपाया जाता है और (२) पश्चात् पानीसे भिगाया जाता है । " तपाने और भिगानेसे " शस्त्रकी धारा ठीक होती है । तात्पर्य वज्र बनानेके लिए " **तपन** और **सिंचन** " ये दो क्रियायें आवश्यक हैं । यजुर्वेद अ- ३० में " **अयस्ताप** " शब्द लुहारोंका वाचक आता है, ये लोहेको तपाते हैं और उसको इच्छित आकार देते हैं । " **त्वष्टा** " शब्दभी कारीगरका वाचक है । इस प्रकार विचार करनेसे " **वेदकी लोह-विद्या** " का पता लग सकता है । आशा है कि पाठक इस रीति-से विचार करेंगे ।

लोहेको तपाने आदिका कार्य " **विद्युत्** " से भी होता है । इस विषयमें भरद्वाज मुनिकृत " **वैमानिक प्रकरण** " देखने योग्य है । इसमें पांचसौं सूत्र हैं और सब मनन करने योग्य हैं । उसमें पांच प्रकारकी विद्युत् कही है—(१) **ताडित्**=जो विद्युत् जानवरोंके चमडेके झटकानेसे उत्पन्न होती है, (२) **सौदामिनी**=रेसीम, स्पटिक आदिके घर्षणसे जो उत्पन्न होती है, (३) **विद्युत्**=जो मेघोंसे होती है, (४) **शतकोटी, शतकुंभी**=जो रसायनोंके मिश्र-णसे बनती है, यह कुंभोंमे (बैटरीमें) बनती है इस लिये इसका नाम " **शतकुंभी** " होता है । इस विद्युत्से जो सुवर्ण शुद्ध बनाया

जाता है उसका नाम " शातकौंभ अथवा शातकुंभ (सुवर्ण)" होता है, (९) अशनि=लोहचुंबकके भ्रमणसे उत्पन्न होनेवाली विद्युत् अशनि कही जाती है ! इसका संग्रह (ह्रद) हौजमें किया जाता है, इसलिये हौजोंमें संग्रह करनेके कारण इसको " ह्रादिनी " कहते हैं । इसीको " शतह्रदा " इसलिये कहते हैं कि यह सौं हौजोंमें संगृहित कीजाती है अथवा सेकडों हौजोंमें ।

साधारण लोग ये शब्द विद्युद्वाचक हैं ऐसा समझते हैं । परंतु शिल्प संहिताओंके अध्ययनसे इन नामोंसे व्यक्त होनेवाला भाव ज्ञात होता है । आशा है कि पाठक इसका विचार करेंगे । न समझते हुए यौंही खंडन मंडन करनेकी अपेक्षा सबसे प्रथम वेदमंत्रोंका वास्तविक अर्थ जाननेकी आवश्यकता है, परंतु शोककी बात यह है कि वैदिकधर्मी लोग आदमियोंके पीछे चलनेवाले लकीरके फकीर बनते हैं, परंतु वेदका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न भी नहीं करते । देखिये मंत्र, यंत्र, तंत्र आदि शब्द बहुत लोग बोलते हैं, परंतु उसका अर्थ थोडेही जानते हैं । देखिये---

मंत्रका लक्षण.

मंत्रज्ञा ब्राह्मणाः पूर्वं जलवाय्वादिस्तंभनैः ॥
शक्तेरुत्पादनं चक्रुस्तन्मंत्रमिति गद्यते ॥ यंत्रार्णव ।

" प्राचीन कालके मंत्रज्ञानी ब्राह्मण जल, वायु आदिके स्तंभनसे जो शक्तिका उत्पादन करते रहें उसको मंत्र कहते हैं । "

यंत्रका लक्षण ।

दंडैश्चक्रैश्च दंतैश्च सरणिभ्रमकादिभिः ॥
शक्तेस्तु वर्धकं यत्तच्चालकं यत्रमुच्यते ॥ यंत्रार्णव ।

" दंड, चंक्र, दांतोंकी योजना, सरणि और भ्रामक आदिके द्वारा जो शक्तिका वर्धन और शक्तिका चालन किया जाता है उसको यंत्र कहते हैं । "

तंत्रका लक्षण ।

मानवी-पाशवी-शक्ति-कार्यं तंत्रमिति स्मृतं ॥

यंत्रार्णव ।

" मनुष्योंकी अथवा पशुओंकी शक्तिसे जो कार्य किया जाता है उसको तंत्र कहते हैं । "

इस प्रकार इन शब्दोंके भाव हैं । परंतु आज कलके विद्वानभी इन शब्दोंका मनमाना उपयोग करते हैं । वेदविद्याके प्रेमियोंको इस प्रकार करना योग्य नहीं है । वैदिक शिल्पविद्या जाननेके लिये शिल्पविद्याके ग्रंथोंकी बडी भारी आवश्यकता है, इसलिये वेदके प्रेमी इन ग्रंथोका अध्ययन करें । मैंने सों डेढसों शिल्पग्रंथ इकठ्ठे किये है, परंतु निम्न ग्रंथ अभीतक मिले नहीं.

(१) नारायण मुनिकृत विमान चंद्रिका, (२) शौनकऋषिकृत व्योमयानतंत्र, (३) गर्गाचार्यकृत यंत्रकल्प, (४) वाचस्पति रचित यानबिंदु, (५) चाक्रायणि ऋषिकृत खेटयान प्रदीपिका, (६) धुंडिनाथकृत व्योमयानार्क प्रकाश—

यदि किसीके पास ये ग्रंथ हैं तो कृपया उसकी प्रति लिपी करके देनेगी कृपा करें । आशा है कि इन ग्रंथोंकी खोज करनेमें " वैदिक धर्म " के पाठक सहायता देंगे ।

साहित्य-दर्शन ।

(१) भारत वीररत्नमाला ।

(१) श्री महाराणा-प्रतापसिंह-चरितम् । मू. १॥

(२) श्री शिवछत्रपति-चरितम् । मू. २)

(२) भारतसाधुरत्नमाला ।

(१) श्रीवल्लभाचार्य-चरितम् । मू. २)

(२) श्रीरामदासस्वामि-चरितम् । मू. १॥)

[लेखक-श्री. पं. श्रीपाद शास्त्री हसुरकर, प्रधान अध्यापक संस्कृत कालेज, इंदोर नगर]

उक्त चारों पुस्तक संस्कृत भाषामें श्रीपादशास्त्रीजीके लिखे हैं। पं. श्रीपादशास्त्री षड्दर्शनतीर्थ और ललित तथा सरल संस्कृत लिखनेमें अत्यंत कुशल हैं । हमने इस समयतक अनेक संस्कृत लेख और पुस्तक देखे, परंतु एकदो ग्रंथोंके सिवाय कोई ग्रंथ ऐसा नहीं देखा, कि जो इन ग्रंथोंके साथ विचार करने योग्य समझा जाय । पं. श्रीपाद शास्त्रीजीकी संस्कृत भाषा इतनी सरल और रसयुक्त है कि जिसको साधारण संस्कृत जाननेवालाभी विना आयास समझ सकता है । सरल और सुगम संस्कृत शब्दोंमें उत्तम

भाव यक्त करनेकी पंडितजीकी प्रवीणता इन पुस्तकोंसे अच्छी प्रकार व्यक्त हो रही है। जिनको जीवित संस्कृत भाषा देखनेकी इच्छा है वे इन पुस्तकोंको अवश्य पढें। इस समयतक संस्कृत पाठशालाओं, तथा विद्यालयोंके विद्यार्थियोंको पढने योग्य संस्कृत पुस्तक नहीं थे। इस न्यूनताकी पूर्ति पंडितजीने की है। जो संस्कृतभाषासे प्रेम करता है। उसको इन पुस्तकोंका संग्रह अवश्य करना चाहिये। संस्कृत पढनेवाले विद्यार्थी यदि इन पुस्तकोंको पढेंगे; तो उनको अच्छी प्रकार संस्कृतका परिचय हो जायगा। ऐसे उत्तम पुस्तक निर्माण करनेके लिये हम पं. श्रीपाद शास्त्रीजीका हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

(३) धर्मनीतिशिक्षणाचें पहिलें पुस्तक। —(मूल्य ।=) यह मराठी पुस्तक पूर्वोक्त लेखक श्री. पं. श्रीपादशास्त्रीजी का ही लिखा हुआ है। पुस्तक मराठी भाषामें है और अत्यंत सरल भाषामें होनेसे पाठशालाकी छोटी श्रेणियोंमें धर्म शिक्षाके लिये अत्यंत उपयोगी है।

(४) पंचरात्रम् –[संपादक–श्री. वा. गो. ऊर्ध्वरेषे, होलकर कालेज, इंदोर नगर। मू. २।।।] प्राचीन भास कविकृत अनेक नाटकोंमेंसे यह एक नाटक है। भास कविका नाटकचातुर्य इस नाटकमें भी प्रत्यक्ष होता है। संपादक महोदयनें इस पुस्तकके लिये विस्तृत भूमिका, संस्कृत टीका, अंग्रेजीमें नाटकका संपूर्ण भाषांतर और अंग्रेजी टिप्पणियां दी हैं। जिनको पढनेसे पाठक कविके हृद्गतकेसाथ अच्छी प्रकार परिचित हो सकता है। साधारणतः संस्कृत नाटक

पढने वालोंके लिये और विशेषत: कालेजके विद्यार्थियोंके लिये यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है ।

(५) **श्री विद्यारण्य स्वामि-चरित्र** ।—(मराठी मू.। लेखक-रामचंद्र हयग्रीव मणूरकर, इंदोर नगर । विद्यारण्य स्वामि चरित्र अति संक्षेपसे इस पुस्तकमें दिया है ।

(६) **जीवन**—[संपादक-श्री. पं. गणेश दत्तशर्मा गौड इं मथुरा । वार्षिक मू. ३] यह राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र है । संपाद कहते हैं-" जीवन शून्य हमारा भारत था सदियोंसे पडा हुआ वहां शीघ्र अब जीवन देने इस **जीवन** का जन्म हुआ ॥ " हमा हार्दिक इच्छा है कि संपादककी यह कामना सफल हो ।

(७) **हिंदी प्रचारक**—[संपादक-श्री. पं. हृषीकेश श तैलंग । हिंदी साहित्य संमेलन प्रचार कार्यालय, त्रिप्लिकेन, मद्रास वार्षिक मू. ३] इस " **हिंद** "की राष्ट्रीय भाषा " **हिंदी**" है । राष्ट्रकी भाषा है वह संपूर्ण राष्ट्रमें प्रचलित होना आवश्यक है परंतु मद्रास प्रांतमें द्राविड भाषाओंके कारण हिंदीका प्रचार नहीं है वहां हिंदीका प्रचार करनेके लिये इस पत्रका जन्म है, इसलि इसको देखकर हिंदी प्रेमियोंको बडा ही आनंद होगा । हिंदी प्रचार इच्छुक तन-मन-धन और लेखोंसे इसकी सहायता करें ।

श्री गौतम—[संपादक श्री. पं. गणेश प्रसादजी, सोलापूर वार्षिक मू. २॥] यह सचित्र मासिक पत्र अत्यंत बोधप्रद है । ब्रह्म चर्य, वीर्यरक्षण, जातीयता आदिविषयक लेख पढने योग्य हैं ।

स्वाध्याय मंडलके पुस्तक।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।" मूल्य १) एक रु.।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। "एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य.अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥) आठ आने।

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=) दस आने।

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. =) दो आने।

(४) देवता विचार। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥) आठ आने।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।) सवा रुपया।

[४] ब्राह्मण-बोध-माला।

(१) शत-पथ बोधामृत। मू० ।) चार आने।

[५] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. -) एक आना।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । मू. =) दो आने।
(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक । मू =) तीन आने।

[६] स्वयं शिक्षक माला ।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । मू. १॥) डेढ रु.।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु.।

[७] आगम-निबंध-माला ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।=) छ आने ।
(२) मानवी आयुष्य । मू. ।) चार आने । (द्वितीयवार मुद्रित)
(३) वैदिक सभ्यता । मू.=) तीन आने । („)
(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र । मू. ।) चार आने । („)
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥) आठ आने। („)
(६) वैदिक सर्प-विद्या । मू. ॥) आठ आने । („)
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय । मू. ॥) आठ आने („)
(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥) आठ आने । („)
(९) शिव संकल्पका विजय । मू. ॥।) बारह आने । („)
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ॥) आठ आने। („)
(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥) आठ आने ।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र । मू. =) तीन आने ।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडळ; औंध (जि. सातारा)

प्रकाशक—बापुलाल कु. पटेल, प्रभाशंकर चाळ, सान्ताक्रुझ (मुंबई.)
मुद्रक—चिंतामण सखाराम देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सर्व्हंट्स ऑफ इंडिया सोसायटीज़ बिल्डिंग, सँडहर्स्ट रोड, गिरगांव, मुंबई.

Registered No. B. 1463.

वर्ष ४, अंक ३.
क्रमांक ३९.

ॐ

फाल्गुन संवत १९७९.
मार्च सन १९२३.

वैदिक धर्म ।

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-मासिक-पत्र ।

देवस्य पश्य काव्यं, न ममार, न जीर्यति ॥
अथर्व. १०।८।३२

ईश्वरका काव्य देखो, जो मरा नहीं, और
जो क्षीण भी नहीं हुआ है ।

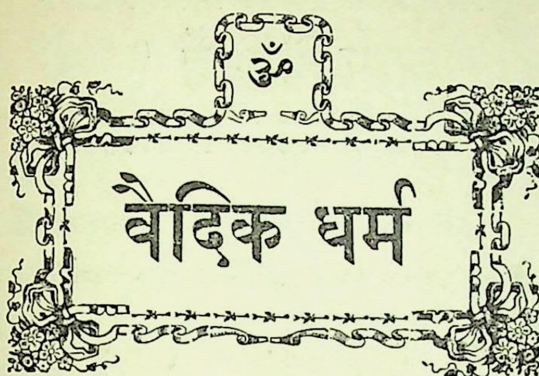
संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

ब्रह्मचर्य ।

" ब्रह्मचर्य रूप तपसे देवोंनें मृत्युको दूर किया । "
अ. ११।५।१९.

वार्षिक मूल्य ३॥) साडे तीन रु. । विदेशके लिए ४॥) साडे चार रु.

विषय सूची ।



वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र ।

वर्ष ४ अंक ३ | फाल्गुन १९७९; मार्च सन १९२३. | क्रमांक ३९

पुरुषार्थ ।

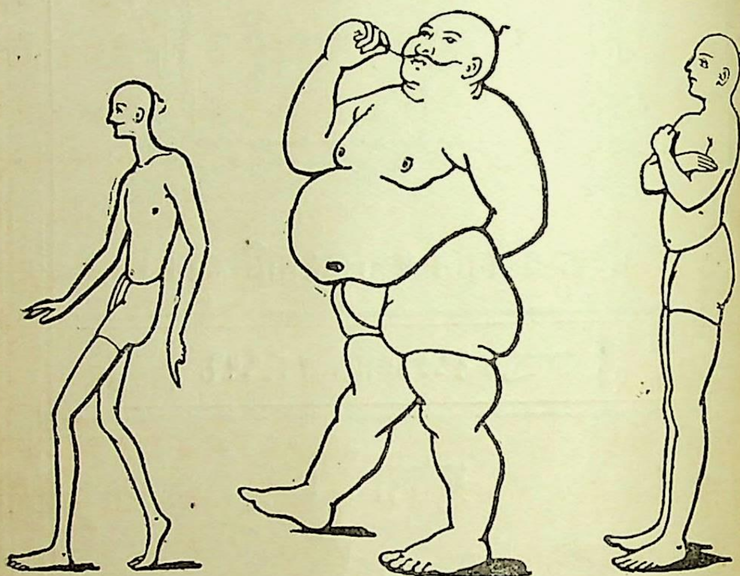


श्रमयुवः पदव्यो धियंधाः

तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ ऋ. १।७२।२।

" परिश्रमी, ठीक मार्गसे चलनेवाले, बुद्धि-मान, पुरुषार्थी, तेजस्वीके परमपदमें विराजते हैं ।"

आप कैसे हैं ?



म. लकीरचंद. सेठ कद्दूलाल. सुदेह शर्मा.

आपके सन्मुख ये तीन चित्र हैं। आप इनकी ओर देखिये औ अपना कौनसा वर्ग है इसका विचार कीजिये।

"**म. लकीरचंद**" जी का चित्र देखिये, इसमें केवल अस्थि मात्र अवशेष रहा है, मनके उत्साहके साथ ये कार्य कर रहे हैं परंतु शरीरकी अवस्था बडी शोचनीय है। आप इस वर्गमें कदापि न रहिये। यदि आपमेंसे कोई सज्जन इस श्रेणी में हों, तो उनको उद्योग करके दूसरी श्रेणीमें प्रविष्ट होना आवश्यक है।

"**सेठ कद्दूलाल**" जी की दूसरी श्रेणी है। कई लोग इस श्रेणीमें जाना पसंद करते हैं। विशाल पेट है, गोल मुख दिखाई देता है, हाथभी मोटे ताजे दीखते हैं और कदाचित् कईयोंके विचारसे यह अवस्था अच्छीभी समझी जाती होगी। परंतु यह सेठ कद्दुभाईजीकी अवस्था महाशय लकीरचंदजीसेभी खराब है। लकीरचंदजी की श्रेणीके लोग दीर्घ आयुतक जीवित रह सकते हैं, परंतु सेठ कद्दुलालजीकी श्रेणीके लोग अल्पायुमें ही यात्रा समाप्त कर लेते हैं। पेटमें जो इतना बोझ है वह अच्छा नहीं है, इसके कारण पेटके स्नायु निर्बल होते जाते हैं। इस प्रकार पेटका आकार जितना बढेगा उतना अधिक स्थान मृत्युको प्राप्त होता है। इस लिये पेटका आकार छोटा रखना चाहिये।

पेटको छोटा कैसा बनाया जा सकता है? ऐसा प्रश्न कई पाठक पूछते हैं। **प्रतिदिन योगके आसन करनेसे दो चार महिनोंमें पेट ठीक होने लगता है**। शरीरकी फूर्ति बढती है, थकावट दूर होती है और नित्य उत्साह प्रतीत होने लगता है। इसमें कोई व्यय नहीं है, परंतु प्रतिदिन व्यायाम करनेका निश्चय करना ही आवश्यक है।

आसनोंका व्यायाम करनेसे शरीरपरकी चर्बी कम होगी, स्नायु-ओंमें बल बढेगा, और शरीरकी जैसी अवस्था चाहिये वैसीही रहेगी। जो म. लकीरचंदके समान पहिले हीं कृश होते हैं, वेभी आसनोंका अभ्यास करनेसे, पहिले महिनेमें अधिक पतले हो जाते ह परंतु दूसरे महिनेसे पचनशक्ति बढ जानेके कारण पुष्ट होने लगते

हैं, क्यों कि खायाहुआ अन्न अच्छी प्रकार पचन होता है । मुखक रुचि अच्छी होती है और भी बहुत लाभ होते हैं ।

तात्पर्य यह कि म. लकीरचंदजीका तथा सेठ कट्टुलालजीक वर्ग अच्छा नहीं है । दोनोंको अपने आरोग्य के लिये यत्न अवश्य करना चाहिये । म. लकीरचंदजीको गायका घी और दू अधिक पीना चाहिये तथा सेठजीको पहिले दो तीन मास ये स्निग पदार्थ कम खाने चाहिये । जब दोनोंकी अवस्था ठीक सम हो जायगी तब वे अपने अनुकूल भोजन यथेछ कर सकते हैं ।

म. सुदेहशर्माजी का जो वर्ग है, वह सम वर्ग है और "समत्व का नामही योग है ।" गीतामें कहा है कि—

समत्वं योग उच्यते । भ. गी. २ । ४८

समता प्राप्त करनाही योग का उद्देश्य है । मन बुद्धि और चित्तक समवृत्ति होगई तो उसको समाधि कहते हैं । इंद्रियोंकी समवृत्तिको संयम अथवा निग्रह कहते हैं, तथा शरीर की समपुष्टताको भी समत्व कहते हैं । शरीरसे लेकर आत्मातक समत्व साधन करना योगक अभीष्ट है, इतनाही नहीं, परंतु समाजमें व्यवहार करनेके सम भी समवृत्ति धारण करना आवश्यक है, यह बात यमनियमोंसे साध्य होती है ।

जिनके देह म. सुदेहशर्माजीके समान पहिले से ही हैं, उनक योगका अभ्यास इसलिये करना चाहिये कि, अपना शरीर अधि दीर्घकालतक अछी अवस्थामें रहे । तथा जिनके देह ऐसी अवस्था नहीं है, उनको यह आदर्श सन्मुख रखते हुए आसनोंका उत्त अभ्यास करना अत्यंत आवश्यक है ।

कई पूछते हैं कि किस आयुमें यह अभ्यास करना योग्य है। इस प्रश्नके उत्तरमें निवेदन है कि छः वर्षकी आयुसे सत्तरअस्सी वर्षकी आयुतक के लोग इससे इस समय लाभ उठा रहे हैं। जो जो पचीस वे वर्ष वृद्ध दिखाई देते थे, वेही पचासवे वर्ष तरुण दिखने लगे हैं, जो पचीसवे वर्ष एक मीलभी नहीं चल सकते थे वेही पचास वे वर्ष हिमालयके पहाडोंकी सफर करके आये हैं। जिनके शरीरों पर यह परिणाम हुआ है वे इस समय जीवित हैं और वे स्वयं भी अपना अनुभव कह सकते हैं।

रुग्ण अवस्थामें जिनको बडी अशक्तता आगई है, वे यदि युक्तिसे शनैः शनैः आसनोंका अभ्यास करेंगे, तो उनका पेट, यकृत, प्लीहा तथा आंतोंके स्थान अच्छा कार्य करने लगेंगे। और उनकी प्रकृति शीघ्रही अच्छी होजायगी। परंतु इस अशक्त अवस्थामें बहुत थोडा अभ्यास करना चाहिये और प्रथम अत्यंत सुगम आसन करके पश्चात् जैसी शक्ति बढ जायगी वैसे कठिन आसन करने योग्य हैं। इससे विपरीत करनेसे बडा कष्ट उठाना पडता है। परंतु यह बात हरएक व्यायामके साथ ही देखनी होती है।

आसनोंके विषयमें एक मुख्य बात, जो देखनेमें आगई है, वह यह है कि, जिसप्रकार अन्य व्यायामोंसे अशक्त हृदयपर बडा दबाव पडता है और वह दिन प्रतिदिन अधिक निर्बल होता जाता है, वैसा हृदयपर दुष्परिणाम आसनोंके व्यायामोंसे कदापि नहीं होता है; प्रत्युत इस योगके व्यायामोंसे हृदयको आराम मिलता है; इसलिये ये व्यायाम अशक्त अवस्थामें भी उतने हानिकारक नहीं

हैं जैसे कि अन्य व्यायाम हैं । इस लिये रोगके कारण दुर्बल बने हुए मनुष्योंको आसनोंसे बडा लाभ होता है ।

तात्पर्य बालक, तरुण, वृद्ध, व्याधिग्रस्त अथवा दुर्बल, तथा स्त्रियोंको भी ये आसन बडे लाभदायक हैं । जो स्त्रियां विशेष प्रकारके आसन गर्भधारण के पश्चात् करतीं रहेगीं, उनको प्रसूतिके कष्ट कदापि नहीं होगे । ये अनुभव देखे गये हैं, इसलिये इस विषयमें अब कोई संदेह ही नहीं है ।

कई आसन खासकर पुरुषोंके लिये ही हैं, कई केवल स्त्रियोंके लिये हैं, कई दोनों के लिये समान हैं और कई ऐसे हैं कि जो विशेष प्रकारसे पुरुष कर सकते हैं और वेही आसन स्त्रियोंको दूसरी प्रकार करने होते हैं । इस व्यवस्थासे जो लोग आसन करते हैं, उनको बहुत लाभ होता है ।

कई लोग, आसनोंसे बडी भूख लगती है इस लिये, इतना अधिक खाते हैं कि वे अपचनसे बीमार हो जाते हैं । कितनीभी भूख लगी तो जब उससेभी अधिक खाया जाय तो अपचन होगा ही । तथा कई ऐसे डरते हैं और भूक लगनेपरभी बहुत कम खाते हैं, ये लोग सूखते चले जाते हैं । तिसरे लोग अयोग्य पदार्थोंका अयोग्य समयमें सेवन करते हैं । इत्यादि जो आदते हैं सब की सब खराब हैं । जो योगाभ्यासके क्षेत्रमें आपना कदम रखना चाहते हैं उनको उचित है कि वे अपना आचरण और व्यवहार योग्य नियमोंसे बंधा हुआ रखें, और योग्य अभ्यास करके योग्य आहार विहार के साथ अपनी उन्नति प्राप्त करें ।

निश्चय करनेपर यह सबको साध्य हो सकता है ।

ब्रह्मचर्य का विघ्न।

(१) ब्रह्मचर्य से लाभ।

ब्रह्मचर्य पालन होनेसे अनेक लाभ होते हैं, इस विषयमें किसीको संदेह नहीं हो सकता। वेदसे लेकर इस समयतकके संपूर्ण धार्मिक-ग्रंथोंमें ब्रह्मचर्यकी महिमा वर्णन की है, सब सुविचारी धार्मिक सज्जन ब्रह्मचर्य पालन करनेके विषयमें सर्वदा ही उत्तम उपदेश देते आये हैं। आर्य वैद्यकके ग्रंथ एकमतसे कहते हैं कि ब्रह्मचर्य पालन करनेसे आयु, आरोग्य, बल, उत्साह, कांति आदिकी वृद्धि होती है। इतिहास साक्षी देता है कि, जिन लोगोंनें अखंड ब्रह्मचर्य का उत्तम पालन किया, वे पराक्रमी दीर्घायुषी और वंदनीय पुरुष बन गये हैं। योगके पुस्तक बता रहे हैं कि, ब्रह्मचर्यके विना योगसाध्य श्रेष्ठ अवस्थाका अनुभव नहीं हो सकता है। ब्रह्मचर्याश्रममें ब्रह्मचर्यका पालन ठीक हुआ तोही गृहस्थाश्रम का उत्तम सुख प्राप्त होता है, तथा वानप्रस्थ और संन्यासमें उत्तम ब्रह्मचर्य पालन होनेसेही कार्य ठीक होना संभव है। चारों वर्णोंके तथा चारों आश्रमोंके कर्तव्य उत्तम पालन होने के लिये ब्रह्मचर्यके उत्तम पालन होनेकी अत्यंत आवश्यकता है। तथा वैयक्तिक, सामुदायिक, जातीय, राष्ट्रीय, धार्मिक, तथा अन्य कर्तव्य, जो मनुष्यको करने आवश्यक होते हैं, वे मनुष्यसे ठीक होनेके लिये

ब्रह्मचर्य पालन की अत्यंत आवश्यकता है। तात्पर्य मनुष्यकी उन्नतिका ब्रह्मचर्यके साथ नित्य और अखंड संबंध है। इसलिये **कार्य कर्ता मनुष्योंको ऐसे प्रयत्न करने अत्यावश्यक हैं कि, जिससे दिन प्रतिदिन ब्रह्मचर्य पालन होना सुकर हो जाय।** नेताओंके प्रयत्नभी ऐसे होने चाहिये कि जिससे पूर्व शताब्दीकी अपेक्षा इस शताब्दीमें ब्रह्मचर्यका पालन अधिक प्रमाणमें होना संभव और सुकर हो वे।

(२) मानवी हलचलका उद्देश्य।

हरएक मानवी हलचलका उद्देश्य यही होना चाहिये कि, कलकी अपेक्षा आज और आजकी अपेक्षा आगामी दिन मनुष्यका सच्चा सुख बढे। मनुष्यको आयु, आरोग्य, शांति और आनंद अधिक प्राप्त हो। कोई शिक्षित, सभ्य तथा राष्ट्रीय भावना धारण करनेवाला नेता कभी ऐसी हलचल जानबूझकर नहीं करेगा कि, जिससे अपनी जातिकी हानि और अवनति होना संभव हो। अज्ञानके कारण नेता लोगोंकी भी गलती हो सकती है, परंतु उनका दोष उनपर नहीं आसकता। इसलिये यह सिद्ध है कि, जो जो हलचल सभ्य और शिक्षित कर रहे हैं, उसका उद्देश्य मानवी उन्नति ही है। वेदभी कहता है कि—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्॥

अ. ८।१।६

"हे मनुष्य! (ऐसा प्रयत्न कर कि जिससे) तेरी उन्नति हो और अवनति न हो।" सब मनुष्योंकी इच्छा भी यही है। परंतु

हम देखते है कि, यद्यपि हलचल करनेवालोंकी इच्छा अत्यंत उत्तम है, प्रयत्न और हलचल भी बडे यत्नसे करनेका उत्साह दिखाई देता है। जोरकी हलचल भी हो रही है, तथापि फल जैसा चाहिये वैसा मिलता नहीं है । इससे स्पष्ट होता है कि, केवल इच्छासे और केवल हलचल करनेसेही कार्यभाग होना संभव नहीं है । जो प्रयत्न करते हैं, उनमें " **शुद्धता** " भी चाहिये, अन्यथा सिद्धिमें विघात होगा । जो बात सर्वसाधारण उन्नतिके विषयमें सत्य है, वही " ब्रह्मचर्य " के विषयमें भी अधिक अंशसे सत्य है; क्यों कि शुद्धता और पवित्रताके विना ब्रह्मचर्यका पालन होना अशक्य है । अन्य हलचलोंके साथ आजकल धार्मिक हलचल भी बहोत है; समाज हैं, संघ हैं, मंडल हैं, गुरुकुल, ऋषिकुल, और आचार्यकुल हैं, धार्मिक वृत्तपत्र और मासिक पत्र हैं, धार्मिक ग्रंथोंकी संख्या भी बढरही है; परंतु इतना सब होते हुए भी ब्रह्मचर्यकी कठिनता दूर नहीं हुई, और पूर्व शताब्दीकी अपेक्षा इस शताब्दीमें आयु, आरोग्य, बल शांति और आनंद बढगया है, ऐसा कहना कठिन है । ऐसा क्यों है, प्रियपाठको, सोचनेका यत्न कीजिये ।

(३) आजकलकी शिक्षाके साधन ।

योग्य शिक्षासे उन्नति और अयोग्य अभ्यास बढनेसे अवनति होती है । **सुशिक्षासे अभ्युदय और कुशिक्षासे पराभव होता है ।** इसलिये हमारे शिक्षाके साधन कैसे हैं, इसका भी थोडासा विचार करना आवश्यक है । प्राचीन कालमें वानप्रस्थी, संन्यासी, सूत,

ऋषि, मुनि, तपस्वी, योगी आदि विपुल होते थे और जनताको अपने आचरणसे शिक्षा देते थे, इसलिये– (छां. उ. ५।११।५

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।

" मेरे राष्ट्रमें चोर नहीं हैं, कृपण नहीं है, मद्यपी नहीं है, अयाजक नहीं है, अज्ञानी नहीं है, व्यभिचारी नहीं है, फिर व्यभिचारिणी कहां होगी ? " ऐसी परिशुद्ध सामाजिक स्थिति थी। वह अवस्था चली गई, इसका कारण इतनाही है कि, वैसे सदाचारी लोग नहीं रहे तात्पर्य यह है कि, धर्मकी हलचल करनेवाले स्वयं धार्मिक आचरण करनेवाले होने चाहिये, अन्यथा केवल शब्दोंद्वारा ही यदि प्रचार हुआ, तो उसका परिणाम शब्दोंतक ही रहेगा। वास्तविक रीतिसे धर्मका उपदेश मुखसे नहीं होता, वह आचरणसे होता है। जब कभी यह बात नेता लोगों के ध्यानमें आजायगी, तब सच्चे उपदेशका प्रारंभ होगा।

प्राचीन कालमें बडे बडे यज्ञ और सत्र हुआ करते थे, उनमें चारों देशोंके विद्वान संमिलित होते और धर्मका विचार किया करते थे। वे सब प्रकार अब बंद हुए हैं और नये योग्य उपाय अमलमें आये नहीं। इसलिये योग्य रीतिसे कार्य नहीं होता है इसका विचार सबकोही करना उचित है।

इस समय उपदेशक हैं, हरिकथा करनेवाले हैं, व्याख्याता और प्रवचनकार भी कोई कम नहीं हैं। परंतु उनके उपदेशोंका परिणाम

उपदेश श्रवण करनेतक ही रहता है, इसका मूल कारण ढूंढना चाहिये। प्राचीन समयमें सच्चा धर्मात्मा संन्यासी जहां होगा, वहा सहस्रों लोग जाते थे और उसके थोडेसे उपदेशसे अपने आपको पावन करलेते थे; परंतु आजकल धार्मिक संस्थाओंके वैतनिक उपदेशक मंत्रीजीकी आज्ञानुसार वैदिक धर्म प्रचारका झंडा हाथमें लेकर ग्राम ग्राममें भ्रमण कर रहे हैं, तथापि वह बात सिद्ध नहीं होती; इसका कारण क्या है ? वार्षिकोत्सव और जलसे बडी धूमधामके साथ करनेका प्रयत्न होता है, प्रभावशाली उपदेशक और जोशीले भजनीकही बुलाये जाते हैं, परंतु जलसा खतं होनेके पश्चात् दरियां उठानेके पूर्वही जोशीले व्याख्यानों और भजनोंका जोश कम होता है। और पूर्ववत् ही आपसके झगडे बढते जाते हैं और वह धार्मिक बंधुत्वका प्रेम नहीं दिखाई देता, जिसकी प्यास धार्मिक हृदयमें उत्पन्न होती है। क्या इसका कारण है ? सोचिये तो सही।

(४) हलचलका नवीन साधन।

प्राचीन लोगोंके पास जो नहीं था और हमारे पास ही जो है, ऐसा एक " **जन–शिक्षाका नवीन साधन** " प्राप्त हुआ है। इस साधनसे हम अधिक लोगोंतक अपना संदेशा पहुंचा सकते हैं और यदि हुआ तो जनताका अधिक लाभ भी कर सकते हैं। यह साधन "**मुद्रणालय और वृत्तपत्र** " है। जिसप्रकार रेल और तार अथवा " बिनतार की तार " विदेशसे यहां आगई उसीप्रकार छपाखाना और वृत्तपत्र भी आगये। इस साधनमें निःसंदेह बडीभारी शक्ति है।

प्राचीन कालमें कोई सत्पुरुष एखाद पुस्तक लिखता था, परंतु उसकी प्रतिलिपी करनेका कोई साधन नहीं होता था, इसलिये उसके शिष्य प्रतिलिपी किया करते थे, अथवा कई निर्धन पुरुष सद्ग्रंथोंकी प्रतिलिपी बेचकर, अपना गुजारा किया करते थे । इस पूर्वसमयमें प्रतिलिपियां अधिक होने की सदिच्छासे " ग्रंथके दान का पुण्य " भी प्रलोभन के लिये रखा जाता था । परंतु इस समय " मुद्रणालय " विद्यमान हैं, और जो मर्जीमें आता है, वह छपा जाता है !! अखबारें, मासिकपत्र और पुस्तक प्रसिद्ध होते हैं। प्राचीन कालमें एक मनुष्य अपने उपदेशसे अधिकसे अधिक दस हजार मनुष्यों को अपना संदेश सुना सकता था । परंतु इस समय अखबार के द्वारा लाखों मनुष्योंतक संदेशा सुनाया जा सकता है। कितनी विलक्षण बडी शक्ति हमारे हाथमें इस समय है, इसका पाठक विचार करें । परंतु इतिहास का अवलोकन करनेसे पता लगता है कि, जिस समय यह शक्तिशाली साधन नहीं था, उस समय जो धर्मभाव जनतामें था, वह इतना साधन उपलब्ध होनेके पश्चात् भी बढा नहीं, परंतु घट गया है, यह कितना आश्चर्य है ?

(५) वृत्तपत्रोंकी शक्ति ।

विचार करनेपर विदित हो सकता है कि, साप्ताहिक, दैनिक अथवा मासिक पत्रोंकी बडीभारी शक्ति है । इस शक्ति का किसी अन्य शक्तिसे मुकाबलाही नहीं हो सकता । बडे सम्राटोंकी शक्ति निःसंदेह बडी विशाल होती है, परंतु उनके सिंहासन हिलाने और उनके

मुकुट पिघलानेकी शक्ति इन वृत्तपत्रकारोंकी लेखनीमें होती है। राष्ट्रोंके अंदर जो परिवर्तन शताब्दीयोंतक होना भी असंभव था, वह परिवर्तन दशाब्दीयों में हो रहा है और जिसप्रकार छोटा बालक अपने खिलौने उठाकर फेंक देता है, उसप्रकार ये वृत्तपत्रों और मासिकोंके संपादक बडे बडे सम्राटोंको उखाडकर फेंक देते हैं, और इष्ट शासन की प्राणप्रतिष्ठा कर रहे हैं। पाठको, विचार कीजिये कि, यह शक्ति कितनी बडी है। पत्रकारोंकी जो यह शक्ति राजकीय शतरंजपर दिखाई देती है, क्या वह, इच्छा होनेपर धार्मिक भूमिमें कार्य नहीं कर सकेगी ? मेरा विश्वास है कि अवश्य कार्य कर सकती है, परंतु संपादक और प्रबंधक के मनमें इच्छा चाहिये। परंतु शोकसे कहना पडता है कि, इतनी शक्ति जिनके आधीन है, उनके मनमें धर्मभाव, सच्चा धर्मभाव, फैलानेकी इच्छा नहीं है।

(६) वृत्तपत्रोंका अंतरंग।

पाठक हमें क्षमा करें और जो लिखा जाता है, वह ठीक है या नहीं है, इसका विचार करें। वृत्तपत्रोंके संपादक और प्रबंधकर्ता जो इस समय व्यवहार कर रहे हैं, उनमें कोई दोचार ऐसे होंगे कि, जो हमारे कहनेमें अपवादक माने जा सकते हैं; परंतु शेष सबके सब प्रायः अपने कर्तव्यसे विमुख ही हैं, और अपने हाथमें कितनी प्रचंड शक्ति है, तथा उसका उपयोग अच्छे कार्यमें किया जाता है वा नहीं, इसका वे विचार भी नहीं करते।

पार्टियां और घडेबंदी बढाने, अपने मतका आग्रह फैलाने, जनताके अज्ञानका अधिकसे अधिक फायदा उठाने, एक ढोंग छोडा तो दूसरे ढोंग को अन्य रीतिसे खडा करने, असत्यको सत्यका रूप देने, ईर्षाद्वेषके विचार फैलाकर अपने ग्राहक बढाने, चमकिले शिर्षक लिखकर ग्राहकोंका चित्त आकर्षित करने में आजकलके संपादक दत्त-चित्त हो रहे हैं। क्या इसमें अत्युक्ति है ? सत्यकी निष्ठा बढाने के स्थानपर पार्टीबाजीकी घडेबंदी बढाई जा रही है। ऐसी अव-स्थामें " धर्म " के लिये स्थान कहां है ? घडेबंदीमें स्वपक्षकी सत्यता और परपक्षकी असत्यता ही दिखाई जाती है, परंतु सचाई इससे दूर ही होती है। सचाई के विना धर्मका आधार कहां है? राजकीय दलके अथवा सामाजिक दलके अखबार देखिये, तथा धार्मिक कार्य के भी पत्र देखिये; सबमें यही भाव प्रमुख है कि, अपने पक्षका समर्थन करना, फिर अपने पक्षमें सचाई हो या न हो।

परंतु यह बात सामान्य नीतिकी हुई। हमें इस लेखमें साधारणतः धार्मिक भाव और विशेषतः ब्रह्मचर्यका भाव सुरक्षित होता है वा नहीं इसका ही विचार करना है। इसलिये अन्य विवादास्पद बातोंको छोडकर इसका ही विचार करेंगे।

सब पत्रोंका मुख्य उद्देश अच्छा है, परंतु पार्टीबाजी होनेके कारण तथा अपने दलके अनुकूल ही लेख लिखनेकी आवश्यकता होती है इसलिये, सबका धर्म रक्षणका उद्देश होनेपरभी, ऐसी अवस्था आ पहुंची है कि, न केवल राजकीय पत्रोंमें परंतु धार्मिक पत्रोंमेंभी, सच्चे

मानव धर्मके विचार शुद्ध निःपक्षपातसे करना प्रायः असंभव हुआ है। तथापि धर्मकी आवश्यकता और ब्रह्मचर्यका रक्षण करनेके विषयमें प्रायः सब पक्षके पत्रकार एक मतसे अनुकूल मत देंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। अन्य पत्र छोड दिये जांय और केवल धार्मिक पत्रोंका ही विचार किया जाय, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्रह्मचर्य के विरुद्ध लेख लिखनेवाला किसीभी धार्मिक पत्र का संपादक नहीं होगा। कमसे कम यह बात अत्यंत आनंदकी है कि, धार्मिक पत्रोंके लेखक ब्रह्मचर्यके विषयमें एक मतसे अनुकूल हैं। अपने आचरणसे ब्रह्मचर्य पालन हो या नहो, कमसे कम लेखोंसे जनताका चित्त ब्रह्मचर्यकी ओर आकर्षित करनेका प्रशंसनीय कार्य ये संपादक कर रहे हैं, इसलिये इनका धन्यवाद करना आवश्यक है। इसीप्रकार धार्मिक उपदेशक भी अपने उपदेशद्वारा ब्रह्मचर्यका महत्व लोगोंको बता रहे हैं। यह सब ठीक है, परंतु इन पत्रकारोंकी जिम्मेवारी यहांही समाप्त नहीं होती, इसका कारण हम आगे बतायेंगे।

यह अपना " **आर्यदेश** " अनादिकालसे धर्मविचार केलिये सुप्रसिद्ध है। अनादि कालसे श्रेष्ठ ऋषिमुनि इस देशमें धर्म विचार करते आये हैं, और इस समयतक साधु संत महात्मा आदि धर्म की जागृति करते रहे हैं। ऐसे धार्मिक शीलमय देशमें नवशक्तिसे विभूषित संपादक अपने लेखोंद्वारा हजारों और लाखों मनुष्योंके अंतःकरणोंतक अपने धार्मिक विचारोंसे परिपूर्ण ओजस्वी लेख प्रतिसप्ताह और प्रतिमास पहुंचाता है, तथापि जैसा चाहिये वैसा धार्मिक

वायुमंडल नहीं बनता और न ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठा ठीक हो रही है, इसका कारण क्या है ? इसका दोष कहां है ? संपादकीय लेखोंमें स्वपक्षके समर्थक ईर्ष्या द्वेषके भाव अलग किये जांयगे, तो शेष लेख पूर्ण धर्मभावसे भरपूर होते हैं। ऐसे लेख पढनेके समय ऐसा प्रतीत होता है कि, कल होने वाली धर्मोन्नति निःसंदेह आज ही होगी। परंतु व्यवहारमें देखा जाय तो ब्रह्मचर्य साधक धार्मिक वायुमंडल नहीं बनता है। इसलिये उक्त लेखोंका प्रतिदिन खंडन किसी न किसी प्रकार अवश्य होता होगा।

शब्दमें विलक्षण शक्ति है और आजकलके चतुर संपादक और जोशीले उपदेशक शब्दोंको बर्तनेकी कला अच्छी प्रकार जानते हैं। इतना होनेपर भी इतने व्याख्यानों और लेखों द्वारा वह इष्ट कार्य क्यों नहीं होता, इसका हर एक को अवश्य विचार करना चाहिये।

बहुत विचार करनेपर प्रतीत होता है कि हरएक स्थानमें "**अनुष्ठानका अभाव**" है। सत्यनिष्ठापर उत्तम लेख लिखने वाले असत्यके भाव मनमें धारण करते हैं, धर्मके स्वरूपका वर्णन करनेवाले मानसिक विचारोंमें अधार्मिक होते हैं, वेदकी प्रतिष्ठाके लिये कटिबद्ध होकर प्रयत्न करनेवाले भी वेद से अनभिज्ञ, संस्कृत का महात्म्य वर्णन करनेवाले संस्कृत भाषासे पूर्ण अपरिचित, ब्रह्मचर्य का महत्व वर्णन करनेवाले स्वयं ब्रह्मचर्य हीन, योगका वर्णन करने वाले स्वयं मनके चंचल तथा शांतिका व्याख्यान देनेवाले स्वयं अशांत होनेके कारण ऐसा हो रहा है। परंतु यहां कहा जा सकता है कि, जैसे मनुष्य हैं वैसे ही हैं, उन्हींसे जो हो रहा है, क्या

वह बंद करना चाहिये ? नहीं, जैसे मनुष्य हैं उनकी मानसिक अवस्थाके अनुकूल जैसा बनना संभव है वैसाही बन रहा है। यहां हमें कोई अधिकार नहीं कि, किसीके वैयक्तिक आचरणपर आक्षेप किया करें। वैसा करनेसे कोई लाभभी नहीं है। परंतु यहां हमें जो वक्तव्य है, वह सबसे होनेवाला है, और उस पर " **केवल लालच के कारण ही ध्यान नहीं दिया जाता।**"

(७) वृत्तपत्रोंका बहिरंग।

इस लेखके लिये हम माननेको तैयार हैं कि, सब पत्रोंके संपादक और प्रबंधक सत्य धर्मके प्रचारके इच्छुक हैं, बहुत अंशोंमें वैसा होगा भी, क्यों कि पार्टी बन जानेके कारण वे भी प्राप्त नीतिके अनुकूल आचरण करनेके लिये लाचार हैं। परंतु पत्रोंका बहिरंग **शुद्ध और पवित्र रखनेमें तो कोई कठिनता नहीं है ?**

यदि मान लिया जाय कि, पत्रोंका अंतरंग भाव जो संपादकीय लेखोंसे व्यक्त होता है, अत्यंत पवित्र है, तथापि उसीका खंडन यदि उनके बहिरंगके विज्ञापनों द्वारा हुआ तो उनके उच्च लेखोंका परिणाम कैसे होगा ? **अंतरंगमें ब्रह्मचर्य पर लेख होते हैं, गुरुकुल शिक्षाप्रणाली का समर्थन होता है, वेद और शास्त्रोंकी उच्चता बताई जाती है, उसी अंकके बहिरंगपर जो विज्ञापन होते हैं, वे ब्रह्मचर्य के घातक, कामविषय का उत्तेजन करनेवाले और अश्लील विषयवासना के सहायक होते हैं ! ! ! क्या** इस बातसे ये संपादक और प्रबंध कर्ता अनभिज्ञ हैं ? जगत्का

सुधार करनेके लिये कटिबद्ध हुए हुए ये सज्जन ऐसे अश्लील विज्ञापनोंका पैसा लेनेके समय, ये विज्ञापन अपने पत्रके उद्देश्यके लिये साधक हैं, वा बाधक हैं, इसका भी विचार नहीं करते ! ! !

कई पत्रोंमें—धार्मिक पत्रोंमें भी—ये विज्ञापन इतने गंधे और अश्लील होते हैं कि, बालकों और साध्वी स्त्रियोंकी उपस्थितिमें पढने लायख भी नहीं होते। परंतु ये लोभी नेता इन विज्ञापनोंका पैसा लेकर अपने ही ग्राहकोंका स्वास्थ्य जलानेका घोर कार्य करते हैं ! वास्तविक देखा जाय, तो ग्राहकोंका हित करना ही पत्रके संपादकका कर्तव्य है, पत्रके संपादक और प्रबंधकर्ताको चाहिये कि, अपने पत्रमें ऐसी एकभी पंक्ति न हो कि, जो ग्राहकोंका नुकसान करनेवाली हो। परंतु धार्मिक पत्रोंके प्रबंधकर्ता भी विज्ञापनोंका मूल्य लेनेमें जितने दक्ष होते हैं, उससे शतांश दक्षता ग्राहकों के हित के विषयमें नहीं दर्शाते।

कामोत्तेजक गोलियां, स्तंभक बटियां, वीर्य रक्षक चूर्ण, धातुवर्धक रस, वृद्धको जवान बनानेवाले रसायन, बल बढाने वाले और आयुको दीर्घ बनानेवाले अवलेह आदि सहस्रों आजकल विज्ञापन अखबारोंके ऊपर ही दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त सुगंधशीर्ष, केशवर्धक तैल, सब सुखोंको यथेच्छ देनेवाले तावीज और मंत्र तंत्रके धागे और मणि आदिकोंके विज्ञापन कोई कम नहीं हैं। विज्ञापनोंके स्थानका विचार किया जाय तो पुस्तकोंके विज्ञापनों—विशेषतः धार्मिक पुस्तकोंके विज्ञापनों—के लिये जितना स्थान मिलता है, उससे कई गुना बडा

विज्ञापन इनका होता है, क्यों कि औषधिका मूल्य और लाभ का जो इनका प्रमाण होता है, उससे व्यस्त प्रमाणमें पुस्तक विक्रेताओंको कार्य करना पडता है । पत्रोंके संपादक और प्रबंधक इससे अनभिज्ञ हैं, ऐसी बात नहीं है; परंतु लालच के मारे वे भी बेचारे क्या करेंगे ? और इसीलिये जनताके ब्रह्मचर्य नाशका पातक, उक्त औषधियां बेचनेवालोंकी अपेक्षा, इनपरही अधिक है, क्यों कि धार्मिक संदेसा पाठकों तक पहुंचनेके पूर्वही, " कामोत्तेजक " पदार्थोंका ज्ञान ये लोग जनताको देते हैं । विज्ञापन ऊपर ही होते हैं और लेख पत्र खोलनेके बाद पढा जाता है, इसलिये पहिला बोध काम वासनाको बढानेका पाठकोंको मिलता है । बाद समय मिला तो अंदरके लेखका परिणाम होगा । सब इस बातको जानते ही हैं कि, गिरना आसान है और उठना कठिन है । ब्रह्मचर्य तोडना क्षणमें होता है, परंतु ऊर्ध्वरेता बनना सालोंसाल अनुष्ठान करनेसे हो सकता है ।

प्रियपाठको ! अब देखिये कि ब्रह्मचर्यकी हानिके उत्तरदाता कौन हैं ? और क्या येही जनताके शील का संवर्धन, धार्मिकभावका रक्षण और ब्रह्मचर्यका पोषण करेंगे ! इस विषयमें आप खूब विचार कीजिये और उपाय सोचिये ।

(८) शत्रुको सहायता न करो ।

"कामविकार" ब्रह्मचर्यका शत्रु है, " वैदिकधर्म " निश्चयसे कहता है कि, उसको बढाना अपने शत्रुको बढानेके समान ही हानि-

कारक है। चार आश्रमोंमें केवल गृहस्थका ही कामविकारसे संबंध है; और वह भी ऋतुकालमें नियत किया गया है। इस विषयमें वेद कहता है

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुं ॥ सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इंद्र ॥ ऋ. ७।१०४।२२

"(१) (कोकयातुं) चिडियोंके समान व्यवहार अर्थात् कामविकार, (२)(शुशुलूक यातुं) भेडियेके समान आचार अर्थात् क्रोध, (३) (गृध्रयातुं) गीधके समान लालची स्वभाव, (४) (उलूक यातुं) ऊल्लूके समान अज्ञान अर्थात् मोह, (५) (सुपर्णयातुं) गरुडकेसमान घमंड, (६) (श्वयातुं) कुत्तोंके समान आपस का मत्सर अर्थात् स्वकीयोंके साथ झगडा करना और परकीयोंके सामने दूम हिलाना, ये छः शत्रू हैं, इनको वैसा मारो कि जैसा पत्थरसे पक्षीको मारते हैं। हे प्रभो इंद्र। इन छः शत्रुओंसे हमारा बचाव करो।" इस वेदकी आज्ञाके अनुकूलही श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण-भगवान् कहते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विध्येनमिह वैरिणं ॥ ३७ ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ॥
कामरूपेण कौंतेय दुष्पूरेणाऽनलेन च ॥ ३९ ॥
तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ॥
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४२॥

भ.गीता.

" इस विषयमें यह समझो कि रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाला बडा पेटू और बडा पापी यह काम एवं यह क्रोध ही शत्रु है ॥ हे कौंतेय । ज्ञाताका यह कामरूपी नित्य वैरी कभीभी तृप्त न होनेवाला अग्नि ही है, इसने ज्ञानको ढक रखा है अतएव हे भरत श्रेष्ठ ! पहिले इंद्रियों का संयम करके ज्ञान और विज्ञान का नाश करनेवाले इस पापीको तू मार डाल ॥ हे महाबाहु अर्जुन ! इस प्रकार जो बुद्धिसे परे है उसको पहचान कर और अपने आपको रोक करके दुरासाद्य कामरूपी शत्रुको तू मार डाल ॥ "

कामके विषयमें "**वैदिक धर्म**" की यह संमति है, परंतु वैदिक धर्मीय संपादकोंके अखबारोंमें इसी शत्रुरूप कामको उत्तेजित करनेवाले भयानक विषरूप दवाइयोंके विज्ञापन इतने भरे हैं कि, उनसे ब्रह्मचर्य साधन के लेखभी दबे जारहे हैं। इसविषयमें मनुका कहना है कि,

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

मनु. २।९४

"कामके उपभोगसे कामकी शांति नहीं होती, वह अग्निके समान उपभोगोंसे बढता ही जाता है। " इसलिये उचित तो यह है कि,

इसको संयमके द्वारा आधिन किया जावे। परंतु आजकलकी अखबारी दुनियाका प्रवाह इसके सर्वथा विपरीतही है।

गुरुकुलोंकी स्थापना ब्रह्मचर्यके लिये है, वैदिक धर्मके सत्संगोंकी योजना ब्रह्मचर्यके लिये है, इन बातोंकी जागृति भी अखंड ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले योगीराजकी ही की हुई है, तथापि उनके कार्यको चलानेवाले अखबारोंमें भी कामोत्तेजक दवाइयां मौजूद हैं!!! और इसका विचार कोईभी नहीं करता। देखिये कितनी विपरीत अवस्था होगई है।

कामविचार न बढनेकी अवस्थामें भी कितना व्यभिचार चल रहा है। ऐसी अवस्थामें चारगुणा अथवा दसगुणा काम बढ गया, तो क्या अवस्था होगी, इसका विचार विद्वान सुविचारी पाठक ही कर सकते हैं।

(९) इन विज्ञापनोंका दुष्परिणाम।

कई विज्ञापनोंकी भाषा गंधी होती है, परंतु कईयोंकी भाषा बडी सभ्य होती है; परंतु शब्द ऐसे रखे होते हैं कि सबको "**अंदरका तात्पर्य**" समझमें आ जाय। इन विज्ञापनों को अज्ञान तरुण पढते हैं, और दवाइयां मंगवार ऐसे फँसते हैं कि, उनका वर्णन करना भी कठिण कार्य है। इस इश्तिहार बाजीके कारण सेंकडों तरुण ऐसी अवस्थामें जा पहुंचे हैं कि, जहांसे वापस नहीं आसकते; और इस पापके धनी विज्ञापनदाताही नहीं हैं, परंतु अखबारोंके लोभी संचालक भी हैं, जो अपने कर्तव्योंको भूलते हुए, ग्राहकोंके खूनोंसे भरे हुए धनसे अपने भोग बढाते रहते हैं और भावी संततिके ब्रह्मचर्य भ्रष्टताके पापके पहाडोंमें आनंदसे विचरते हैं।

जहां उपदेशक वर्गकी यह अवस्था है, वहां " **ब्रह्मचर्यका वायुमंडल** " कैसा बन सकता है, और **वैदिक-धर्म** की ज्योति भी कैसी उज्वल हो सकती है, इसका विचार प्रियपाठक ही कर सकते हैं।

(१०) प्रबंधकर्ताका अनुमोदन।

इस प्रकारके विज्ञापनोंसे संपादक और प्रबंधकर्ताको विपुल धन मिलता है, इसलिये ये इन विज्ञापनोंके अनुमोदकही हैं। पतंजलि महामुनिने कई प्रकारकी हिंसा कही है, परंतु यह पत्रकारोंकी कर्तव्य-विमुखताके कारण जो तरुणोंकी हिंसा हो रही है, वह बडी भयानक है। एक गंधा विज्ञापन लाखोंके पास जाता है, और वहां उनके विचारों और आचारोंका ऐसा बिगाड करता है कि, जिसका वर्णन होना अशक्य है।

वास्तविक रीतिसे देखा जायगा, तो अखबार ग्राहकोंका है, और उसमें विज्ञापन आने न आनेके विषयमें ग्राहकोंकी संमति लेनी चाहिये। अथवा ग्राहक भी अखबार वालोंको सूचना दे सकते हैं कि, फलाना विज्ञापन घातक है, इसलिये छापना बंद करो, अथवा यदि छापना है, तो हम अपका अखबार बंद करते हैं। संचालकोंके पास पैसा आरहा है, इसलिये उनका सुधार स्वयं नहीं होगा, अतः ग्राहकोंको ही अपना बचावका उपाय सोचना चाहिये। यह उपाय ग्राहकही कर सकते हैं। ग्राहकोंके घरमें स्त्रियां, कुमार, कुमारी तथा, नवयुवक होते ही हैं, इसलिये हरएक ग्राहकको इस बातका विचार करनेका अधिकार है

कि, फलाना विचार अपने घरमें आने योग्य है वा नहीं । जिसप्रकार अपने पेटमें पदार्थ डालनेके समय पदार्थ योग्य है वा नहीं, इसका विचार किया जाता है, उसी प्रकार अपने परिवारमें नया विचार आनेके समय वह योग्य है वा नहीं, इसका विचार अवश्य करना चाहिये । इस दृष्टिसे पाठक अखबारोंका विचार करें और अपना बचाव करनेका यत्न करें ।

(११) उत्तेजक औषधोंका परिणाम ।

उत्तेजक औषधोंसे शक्ति नहीं आती, परंतु **शरीरकी संरक्षक शक्ति प्रतिसमय न्यून होती है** । प्रत्येक मनुष्यमें एक संरक्षक शक्ति और दूसरी कार्यशक्ति होती है । कार्य-शक्तिका ऱ्हास होनेसे अशक्तता आती है और संरक्षक शक्तिके न्यून होनेसे मृत्यु आता है । कार्य शक्तिके प्रत्येक इंद्रियमें जाकर कार्य करती है, यह शक्ति नष्ट होनेसे मनुष्य कार्य करनेमें असमर्थ होता है । जिस समय उत्तेजक औषध पेटमें जाता है, उस समय सब शरीरके सूक्ष्म केंद्र उत्तेजित होते हैं, और संरक्षक शक्तिको बाहिर निकालते हैं । क्षणमात्र उस उत्तेजक औषधका परिणाम रहने तकही उत्साह प्रतीत होता है, परंतु थोडी ही देरके पश्चात फिर पूर्वकी अपेक्षा अधिक थकावट मालूम होती है । इस प्रकार जितना उत्तेजक औषधोंका प्रयोग अधिक बढ जायगा, उतनी संरक्षक शक्ति हट जायगी, और अकाल-मृत्यु शीघ्र आजायगा ।

चा, काफी, मद्य, भंग, गांजा आदि व्यसन तथा उत्तेजक औषध, इन सबका परिणाम इसीप्रकार न्यूनाधिक रीतिसे घातक ही होता है।

व्यापारमें मूल पूंजी जैसी होती है वैसी शरीरमें संरक्षक शक्ति है। तथा जैसा व्यापार व्यवहारमें लानेका धन होता है, वैसी कार्य शक्ति होती है। जो व्योपारी अपनी मूल पूंजी ही खाने लगता है उसका दिवाला निकलनेमें देरी नहीं लगती। इस प्रकार उत्तेजक औषधोंके कारण जो मनुष्य अपनी संरक्षक शक्तिका नाश करता है, उसका शीघ्र मृत्यु होनेमें शंकाही नहीं है।

कई विज्ञापनमें कहा होता है कि एक पुडिया अथवा वटी एक रात्रीमें ही गुण बताती है। पाठक विचार कर सकते हैं कि, यह उत्तेजक द्रव्य कहांसे शक्ति लाता होगा। और किस प्रकार शरीरके संरक्षक शक्तिका घात करता होगा। जो लोग इस प्रकार घात करेंगे, उनको कभी आरोग्य प्राप्त होनेकी आशा नहीं रहेगी।

इन विज्ञापनोंके कारण कई पुरुषोंकी अवस्था हमने ऐसी देखी है कि वे सवेरे शौचशुद्धिके लिये गोली लेते हैं, पश्चात भूक लगनेके लिये वटी खाते हैं, पश्चात् थोडासा अन्न खातेही हाजमेके लिये चूरण सेवन करते हैं, पश्चात् शक्तिवर्धक पाक लेते हैं, तदनंतर उत्साहवर्धक पेय पीते हैं, नंतर रात्रीमें कामोत्तेजक गोली खाते हैं और अंतमें निद्रा आनेके लिये दवा पीते हैं। इस प्रकार जिनका जीवन औषधोंसे ही चलता है, उनकी अवस्थाकी शोचनीय दशा

क्या वर्णन हो सकती है? इसका बहुतांशमें कारण मुल्कमें दवाइयोंके अत्याचारी विज्ञापन ही हैं। अज्ञान अवस्थामें औषध सेवनका क्रमशः प्रारंभ होकर अंतमें भयानक अवस्थातक पहुंचते हैं!!!

(१२) शक्ती किससे प्राप्त होती है।

औषधोंसे यदि शक्ति आती तो कोई भी अशक्त न होता। वास्तविक बात यह है, कि अंदरकी संरक्षक शक्ति की सहायतासे जबतक कार्य चलता रहेगा तबतक शक्तिका विकास होता रहता है। **सात्विक भोजन, योग्य आहार विहार, नियमित व्यायाम, इंद्रियोंका संयम, यमनियमोंके अनुसार व्यवहार, आसनोंसे नस-नाडीकी स्वच्छता, प्राणायामसे फेफडोंका बलवर्धन, ध्यान धारणापूर्वक ईश्वर भक्तिसे मन बुद्धि और चित्तकी प्रसन्नता करनेसे ही सच्चा बल बढ जाता है,** और इसप्रकार बढाहुआ बल चिरकाल रह कर आनंद को देता रहता है। यह योगसाधन की रीति है जो बिलकुल स्वाभाविक निरुपद्रवी और निःसंदेह लाभ देने वाली है।

(१३) आत्मविश्वास की आवश्यकता।

शक्तिका विकास होनेके लिये आत्मविश्वास की बडी आवश्यकता है। आत्मविश्वासके विना कोई कार्य होना सामान्यतः अशक्य ही है। और विशेषतः अपनी शक्ति बढना तो सर्वथा अशक्य है। **औषधोंका प्रयोग जितना अधिक बढेगा, उतनाही आत्मवि-**

श्वास न्यून होता जाता है। जिस प्रकार पहारेदारपर ही केवल विश्वास रखनेवाला मालक प्रतिदिन शक्तिहीन होता है, वैसा अपना संरक्षण स्वयं करनेवाला मनुष्य अशक्त नहीं होता; अथवा सम्राट् के सैन्यसे अपना बचाव करनेवाला रियासतका छोटा मांडलिक राजा जिस प्रकार प्रतिदिन परावलंबी होता है, वैसा अपने सैन्यसे अपने राज्यका रक्षण करनेवाला महाराजा कमजोर नहीं बनता; ठीक इसी-प्रकार औषधोंकी योजनासे अपने शरीरके व्यवहार करनेवालेकी अवस्था होती जाती है। इसीलिये योगसाधनमें अपनी आंतरिक शक्तिका विकास अपने प्रयत्नसेही करनेका विचार प्रधान होता है।

आजकल ऐसी दुष्ट प्रवृत्ति बढरही है कि, थोडासा सिर दर्द हुआ तो डॉक्टरकी दवा ली, थोडीसी बदहजमी हुई तो पाचक चूरण लिया; इस प्रकार " **हरसमय स्वकीय आत्मिक शक्तिका अनादर, और परकीय शक्तिका आदर** " बढ जानेके कारण प्रतिदिन परवशता बढ रही है । प्रतिसमय औषध पीनेके कारण शरीर औषधोंका अभ्यासी होता है, और फिर औषधोंका वह परि-णाम भी नहीं होता, जो कि शास्त्रोंमें लिखा है। फिर कहने लगते हैं कि देखो, 'औषधका कुछ भी परिणाम नहीं हुआ ' परंतु इसमें दोष अपना है, औषधका नहीं । विशेषतः तरुणोंको चाहिये कि वे औषधोंके शिकार न बनें और आत्मिक शक्तिपर अधिक विश्वास रखें। साधारण बीमारिया, कम खाने, समयपर भूखा रहने, अथवा योग्य वायुसेवन और व्यायाम करनेसेही दूर होती हैं, इसलिये

थोडासा कुछ होतेही औषध लेनेका अभ्यास दूर करना अत्यं आवश्यक है । नगरके रहनेवालोंको औषध सेवनका व्यसन बहु होता है वैसा ग्रामोंके रहनेवालोंको नहीं होता, इसीलिये एक दवाईका कोई परिणाम नगर निवासी महाशयपर नहीं होता, प उसीका उत्तम परिणाम ग्रामीण किसानके शरीरपर होता है, इस परिणाम यह होता है कि एक दो वार औषध पीनेसे ग्रामीण किसा अच्छे होते हैं और नागरिक महिनोंके महिने बोतलें पी पी क थक जाते हैं, तो भी शिकायतें रहती हीं है । इस का कारण औ षधोंका सेवन हद्दसे अधिक हुआ है यही है ।

(१४) योगी वैद्य और वैद्य योगी ।

पतंजलि महामुनितक वैद्य योगीही हुआ करते थे । योगी होने तात्पर्य यह है कि जो आंगिरस चिकित्सा, आथर्वणी चिकित्स दैवी चिकित्सा अथवा मानस चिकित्सा करनेके साथ साथ औषधि प्रयोग करता है । आजकल के वैद्य और डाक्टर "**मन**" विचार न करते हुए ही औषधोंका प्रयोग करते हैं, क्यों कि उनक लक्ष्य बिल के पैसे वसूल करनेकी ओर अधिक होता है। वास्तवि देखा जाय, तो पहिले "**मन बीमार होता है, और पश्चात् शरी रोगी होता है ।**" इसलिये मनकी चिकित्साके साथ शरीरमें औषध प्रयोग होने चाहिये । जिस दिन वैद्य योगी होंगे, अथवा योगी ही वै होंगे, उसी दिन सच्चा आरोग्य जनताको प्राप्त होना संभव होगा यह अवस्था पहिले थी, परंतु पश्चात् बिगड गई ।

प्राचीन कालके आर्योंमें वैद्योंका मान बिलकुल नहींथा, सब स्मृति-ग्रंथ एकमतसे कहते हैं कि धार्मिक कार्य में अर्थात् यज्ञादि में वैद्यको बहिष्कृत–अपंक्त–समझना चाहिये। जिस समाजमें नीरोग लोग बहोत होंगे, उस समाजमें वैद्योंका मान कम होना स्वाभाविक ही है। यज्ञमें अश्विनी कुमारोंको हविर्भागभी नहीं दिया जाताथा, इसी लिये कि वे वैद्य थे। परंतु च्यवन ऋषिनें बुढापेमें कुमारिकाके साथ शादी की और उसको कामोत्तेजक गोलीकी जरूरत हुई, इस लिये उन्होंने अश्विनी कुमारोंकी शरण ली, और फीज की तौर पर च्यवन ऋषिनें अश्विनी कुमार वैद्योंको यज्ञमें हविर्भाग देनेकी प्रथा प्रारंभ की। यह कथा शतपथब्राह्मण (कां. ४ । १ । ५ । १) में है। अन्य पुराणों भी है। इस सबका तात्पर्य यह है कि, जिससमय मानवजातिमें रोग कम थे, उस समय वैद्योंका मान नहीं होता था। परंतु इस समय वैद्यों और वकीलोंका ही मान बढा है, क्योंकि रोग और आपसके झगडे बहुत बढ गये हैं।

(१५) धर्म क्या चाहता है ?

धर्म यही करना चाहता है कि, स्वकर्तव्यका ज्ञान बढे और मनुष्य अपनी मर्यादाके अनुकूल चलें। ऐसा होनेसे आपसके झगडे कम होंगे, और योगसाधनानुकूल यमनियम पूर्वक जीवन चलनेसे आरोग्य भी बढेगा। "**वैदिक धर्म**" वैद्यों और वकीलोंकी जरूरत कम करना चाहता है। इसी लिये आजकलके विज्ञापनोंका स्वरूप इस लेखमें बताया जा रहा है। "**वैदिक धर्म**" ब्रह्मचर्य पालन

होनेकी आवश्यकता बतारहा है और आजकलके वैद्योंके विज्ञाप
काम को उत्तेजित करके नवयुवकों का संहार कर रहे हैं । इसलि
इनके कारण वैदिक धर्मकी गति पीछे हट रही है ।

इन विज्ञापनी वैद्योंनें गुरुकुलों और ऋषिमुनियों के नाम
नहीं छोडे हैं । ऋषि मुनि यज्ञ करके " **सोमरस** " पीते
परंतु आज आप दोचार रु. खर्च करके डाकके द्वारा अपनी
गलिमें भी सोमरसकी बोतल मंगवा सकते हैं !! यज्ञ करने
जरूरत नहीं है, और कोई कष्ट नहीं है । गुरुकुलोंमें जाकर य
नियम न पालन करते हुए ही घर बैठे " **ब्रह्मचर्यकी वटी** " आ
वी. पी. द्वारा मंगवाइये और सेवन कीजिये । परंतु कोई पूछने वा
भी है कि, इन दिनोंमें वह " **सोम** " मिलताभी है कि जो ऋ
मुनि पिया करते थे ? शतपथब्राह्मणके समयसे वह सोम दुर्लभ हु
था । वह अब इस समय कहांसे आया ? वैदिक धर्मका ढोल बजा
वाले और अखंड ब्रह्मचारी ऋषिके ऋषित्वके संरक्षक सोम
सचाईकी अथवा झूंटाईकी पर्वाह न करते हुए, और यज्ञकी आव
श्यकता न समझते हुए ही, घरमें सोमपान करानेमें मस्त हैं !!
ऋषि यज्ञ करनेके पश्चात् सोम क्यों पीते थे और इस समय वह
सोमरस दुकानोंमें क्यों बेचा जाता है ? क्या यही वैदिक धर्मका
प्रकाश है ? और येही वैदिक धर्मके संरक्षक हैं ? ।

इस प्रकार विज्ञापनों में ऋषि और मुनि पीसे जारहे हैं । इसका
कारण इतना ही है कि विज्ञापनी वैद्य पैसा चाहते हैं और वही

पैसा अखबारवालोंको चाहिये । बस, ग्राहक मरें अथवा जो कुछ हो इसकी तो किसीको परवाह ही नहीं है ।

इसीलिये " वैदिक धर्म " इनका विरोधी है ।

(१६) ब्रह्मचर्य रक्षणकी कठीनता ।

उक्त कारणोंसे नवयुवकोंका आत्मविश्वास हटगया है । और उत्तेजक दवाइयोंके सेवनसे आंतरिक संरक्षक जीवन शक्ति कम हुई है तथा कामवासना बढने लगी है । इस कारण ब्रह्मचर्यका अभाव प्रतिदिन हो रहा है । गोलियां खा कर जो कामोपभोग करेंगे उनकी संततिभी अधिक कामातुर होगी, और इसलिये उनमें ब्रह्मचर्य सुरक्षित नहीं रह सकेगा । यही कारण है कि चार दिवारीके अंदर बंद युवकों में भी बुराइयां दिखाई देती हैं ।

संपादकोंके आधीन बडी शक्ति है, परंतु उस शक्तिका दुरुपयोग हो रहा है, इसलिये नवयुवकों को तथा जनतामेंसे प्रत्येक को अपना संरक्षण करनी चाहिये ।

(१७) ब्रह्मचर्यका रक्षण कैसा होगा ।

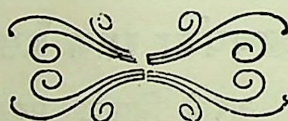
योग साधनसे और अपनी निष्ठाके प्रयत्नसे ही ब्रह्मचर्यका साधन और रक्षण होगा । अन्य उपाय नाशक ही हैं ।

इसलिये तरुणोंको उचित हैं कि वे नियम पूर्वक योगसाधन करें योग्य प्राणायाम, शीतजलप्रयोग, ऊर्ध्व आकर्षणविधि, ब्रह्मचर्य साधक आसनोंका अभ्यास, योग्य सात्विक आहार, उत्तम पुस्तकोंका पठन,

सज्जनोंकी संगति, परमेश्वर भक्ति, आत्मविश्वास, महत्वाकांक्षा आदिके कारण इस प्रकार वीर्यरक्षण होता है कि इच्छाके समय ही बिंदुका स्राव होगा अन्यथा नहीं। इसका नाम है ब्रह्मचर्यका रक्षण और यही "**वैदिक धर्म**" में प्रशंसित है।

(१८) सावधानीकी सूचना।

आज कलकी अवस्था कैसी है, अखबारोंका हमला छिपकर ब्रह्मचर्यपर कैसा हो रहा है, नव जवान कैसे उन विज्ञापनोंमें फंसते जाते और पस्ताते हैं, इत्यादि बातों का वर्णन संक्षेपसे किया। जितने अखबार वाले इस लेखक को पता हैं, उनके साथ विज्ञापनविषयक पत्रव्यवहार करके इस लेखका लेखक थक गया, अनुभव यह आया कि धनकी लालच के कारण कोई सुनता नहीं है। इसलिये जो पाठकोंसे निवेदन करना आवश्यक था वह इस लेखमें किया है। आशा है कि पाठक अपने हितके लिये जागेंगे और योग्य आचरण करके अपना संरक्षण करनेके लिये तत्पर होंगे।



सांख्य और योग।

(५)

(१) सांख्य तत्वज्ञान।

योगका विचार करनेके समय सांख्यकाभी विचार करना चाहिए। क्योंकि तत्वज्ञानकी दृष्टिसे सांख्य और योग एकही हैं। "**एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।**" जो सांख्य और योगको एकही समझता है वही ठीक समझता है, ऐसा भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें कहा है।

(१) शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक, (२) प्राणिमात्र संबंधी और (३) बाह्य जगत्के संबंधी जो कष्ट और दुःख मनुष्यमात्रको हो रहे हैं, उनको दूर करना सांख्यका उद्देश है। इस दुःख-निवृत्तिकी सिद्धि ज्ञानसे हो सकती है।

प्रकृति और पुरुष सनातन, स्वयंभू और परस्पर भिन्न हैं। प्रत्येक शरीरमें आत्मा अलग अलग है। मुक्त होनेके पश्चात् आत्मा स्वतंत्र होता है। मूल प्रकृतिसे बुद्धि, अहंकार, पंच सूक्ष्मभूत (तन्मात्रा) पंच स्थूलभूत, पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्मेंद्रिय तथा मन उत्पन्न होता है, इसीलिये ये सब जड पदार्थ हैं।

उक्त पदार्थोंका सूक्ष्म भेद और उनका कार्य ठीक प्रकार समझना ही ज्ञान है। ज्ञानकी परीक्षा करनेके प्रमाण तीन हैं, प्रत्यक्ष, अनुमान

और शब्द । इन तीन प्रमाणोंसे जिसकी सिद्धता होती हैं वह है और जिसकी नहीं होती उसका अस्तित्व नहीं है ।

कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता । तथा कारणमें कार्य विद्यमान रहता है । कार्य कारण परंपरा ही सर्वत्र सृष्टिमें है। सत्व रज और तम इन तीन गुणों की साम्य अवस्थाही प्रकृति है और उनकी विषम अवस्था सृष्टि है । सृष्टिके रूप रंग गुणादिकोंका भेद इसी कारण है।

(१) सब पदार्थ मर्यादित हैं, वे कार्यरूप होनेसे उनका कारण अन्य है, (२) विभिन्न पदार्थोंसे जो सामान्य धर्म होते हैं वे सब मूल एक कारणके ही विविध भेद होते हैं, (३) सब पदार्थ प्रगतिशील हैं और यह धर्म—अर्थात् उत्क्रांतिका सक्रिय उद्योग जो सर्वत्र दिखाई देता है, मूल कारणसेही प्राप्त है, (४) यह जगत् कार्य रूप होनेसे उसका मूल आदिकारण एकही है, (५) सब जगत् की विविधतामेंभी एकता है इसलिये आदिकारण एकही होना चाहिये।

(१) पंचमहाभूतोंके समवायका यह जगत् आत्माकी उन्नतिके लियेही बना है, (२) सुख दुःख के साधनरूप पदार्थ प्रकृति देती है, (३) कार्य के ऊपर कार्य का अधिष्ठाता होता है, (४) कार्यका उपभोग लेनेवाला कार्यसे भिन्न है, (५) उन्नत होनेकी इच्छा सब आत्माओंमें समान होनेसे सबको उन्नति प्राप्त करना शक्य है ।

कर्मानुसार दूसरा देह प्राप्त होता है और पाहिला देह छोडनेके पश्चात् अंतःकरण चतुष्टय सहित आत्मा दूसरे देहमें प्रविष्ट होता है। अंतःकरण चतुष्टयका ही सूक्ष्म देह होता है जिसको लिंगदेह कहते हैं।

प्रकृतिके साथ संलग्न हुआ आत्मा विविधप्रकार से ज्ञान प्राप्त करता है और ज्ञानसे दुःखनिवृत्ति करके सुख प्राप्त करता है। इसी प्रकार उसकी अत्यंत दुःखनिवृत्ति होनेसे मुक्ति होती है।

यह अतिसंक्षेपसे सांख्य तत्वज्ञान है । योगी लोगों ने इसीको व्यावहारिक स्वरूप दिया है । यह तत्वज्ञान साधकके लिये अत्यंत उत्तम है। योगमार्ग अनुष्ठान का भाग बताता है, इस अनुष्ठानसे उक्त तत्वज्ञान अनुभवके क्षेत्रमें आसकता है।

(२) योगका अनुष्ठान।

चित्तवृत्तियोंका निरोध करनेका नाम योग है । चित्तवृत्तियोंका निरोध होनेसे ध्यान सिद्ध होता है, ध्यानका अभ्यास बढानेसे मनका निग्रह हो जाता है और शनैः शनैः समाधि अवस्था प्राप्त होती है। एक कल्पना सहित समाधि होता है और दूसरा कल्पनारहित होता है। पांहलेमें विचार, आनंद, अहंभाव आदि रहते हैं और दूसरे में केवल स्वरूपानंद ही रहता है।

ईश्वरकी विशेष भक्ति करनेसे मन सुगमतापूर्वक स्थिर होने लगता है। **दुःख, कर्म, कामना आदि जहां नहीं होते उस विभु आत्माका नाम ईश्वर** है। वह स्वयंभु, सर्वज्ञ, अमर्याद, समर्थ अदि गुणोंसे युक्त है और वही सबका गुरु है। इसकी भक्ति

करनेसे शीघ्र समाधि हो जाता है। योगका अनुष्ठान करनपर बीचमें कभी व्याधि संशय, प्रमाद आदिके कारण अनेक विघ्न होते हैं, परं परमेश्वर भक्ति, मनकी एकाग्रता, जनहिततत्परता, विरक्ति, प्राणायाम आदिसे उन विघ्नोंकी निवृत्ति हो जाती है और योग सुकर हो जाता है।

ज्ञानसे आत्माकी स्वतंत्रता का मार्ग ज्ञान होता है और उस वह मुक्त होता है, परंतु यह अवस्था प्राप्त होने तक उसको आ साधनोंका अभ्यास आवश्यक होता है। (१) दुष्टकर्म, हिंसा असत्य, चौर्य, व्यभिचार, लोभ आदिका त्याग करना, (२) शुद्धता समाधान, सहिष्णुता, स्वाध्याय, ईश्वरभक्ति आदि करना, (३ ध्यानके लिये योग्य आसनमें बैठनेका अभ्यास, (४) श्वास नियमन, (५) इंद्रियोंको उनके विषयोंसे निवृत्त करना, (६ मनको किसी पदार्थमें स्थिर करना, (७) एकाग्रतासे ध्यान करना और (८) ध्यानकी दृढता अर्थात् समाधि स्थिर करना।

इन आठ साधनोंका अभ्यास होते होते बीचमें कई सिद्धियां होती हैं, परंतु उन सिद्धियोंमें रममाण होना योग्य नहीं है, इस लिये उनके विषयमें उदासीन रहकर आगे चलना चाहिये। इस प्रकार जो आगे चलता है उसके सब बंधन छूटते हैं और अंत वह परमात्मामें लीन हो जाता है।

इस प्रकार सांख्य और योग एकही हैं। दोनों पद्धतियों सारांश ऊपर दिये हैं, उनका मनन करनेसे अपने साधन मार्ग लिये जिस विचार की आवश्यकता है, वह विचार मनमें स्थिर सकता है, आशा है कि पाठक इसका योग्य मनन करेंगे।

शरीरके विशिष्ट मांसपिंड।

[६]

सांख्य और योगका अंतिम ध्येय प्राप्त होनेके पूर्व शरीरस्थ केंद्रोंकी स्वाधीनता प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है। स्थूल और सूक्ष्म तत्व तथा स्थूल और सूक्ष्म इंद्रियादिकोंका योग्य ज्ञान होना चाहिये ऐसा जो सांख्योंका मत है उसका तात्पर्य यही है। शरीरमें अनेक केंद्र हैं और उनमें विविध शक्तियां विद्यमान हैं, उनका पूर्ण वर्णन करना कठिन है, तथापि मुख्य दस मांसपिंड हैं उनका संक्षेपसे वर्णन नीचे देता हूं।

—सिरमें—

(१) **चिंतामणि**—(पीनियल बाडी) Pineal body.
(२) **तृतीय नेत्र**—(पिट्यूटरी बाडी) Pituitary body.

—धडमें—

(३) **फलसदृश मांसपिंड**—(थायराइय ग्लैंड) Thyreoid gland.
(४) समीपवर्ति ,, ,, —(पैरा ,, ,,) Para thyreoid.
(५) रक्ताणुमांस पिंड ,, —(थाइमस् ,,) Thymus "
(६) प्लीहा ... ... —(स्प्लीन) Spleen.
(७) ऊर्ध्ववृक्कमांसपिंड —(सुप्रारीनल ,,) Suprarenal "
(८) ईषद्रक्त ,, ,, —(क्यारोटीड स्केन्स) Carotid skeins.
(९) गोलकपूर्ण ,, —(काक्सीजियल स्केन) Coccygyeal skein.
(१०) महास्रोतस् ,, —(एओर्टिक बॉडीज़) Aortic bodies.

इनको छोडकर सेकडों मांसपिंड, ग्रंथी, और केंद्र मनुष्यके शरीरमें हैं, परंतु सबका वर्णन करना कठिन है । इसलिये नमूनेके लिये ही इनका थोडासा वर्णन यहां करता हूं ।

(१) **चिंतामणि**—यह मस्तकमें है, इसको तैत्तिरीय उपनिषद्में " **इंद्र-योनि** " कहा है । " इंद्र " अर्थात् आत्माकी शक्तिका यह, उत्पत्तिस्थान है, आत्माकी शक्ति यहां प्रथम प्रकट होती है । इसलिये इसको " **आत्म-निकेतन अथवा ज्ञान-निकेतन** " कहते हैं । योग साधनसे इसकी जागृति करनेसे मूल शक्ति ही हस्तगत हो जाती है । जो इसको जागृत कर सकता है उसके संकल्प सिद्ध होते हैं ।

(२) **तृतीय नेत्र**—यह भी मस्तकमें ही है । इसके अनेक कार्य हैं । यह छोटासा होनेपर भी बडा प्रभाव शाली है । इसके आधीन शरीरका बारीक होना अथवा मोटा होना तथा मनुष्य की समाधान वृत्ति रहनी अथवा चिडचिडा स्वभाव होना है । इस पिंडका संबंध संपूर्ण रक्त वाहिनीयोंके साथ है, जब यह बढ जाता है तब दृष्टि मंद होती है, मस्तकमें दर्द होता है और अनेक कष्ट हो जाते हैं । इसीसे एक प्रकारका रस निकलता है, साधारण मनुष्यमें यह रस श्लोष्मासा होता है, परंतु योगीके इस स्थानसे अमृतरस निकलता है । योगी लोग अपनी जिव्हाको लंबी करके उसका तालु और जिव्हामूलमें प्रवेश कराके जिस "अमरवारुणी" का प्राशन करते हैं वह यही रस है ।

(३) **फल सदृश मांसपिंड**—यह मांसपिंड गलेके पास है। यह ग्रंथी बढनेसे गलेका रोग होता है। ठीक अवस्थामें इसके अनेक अनेक उपयोग हैं। विशुद्धि चक्रका इसके साथ संबंध है।

(४) **समीपवर्ती फलसदृश मांसपिंड**—पूर्वोक्त मांसपिंडके पीछे ये मांसपिंड होते हैं, इनके साथ रक्तवाहिनियोंका संबंध है। इन पिंडोंका मानवीजीवनके साथ बडा घनिष्ट संबंध है। ये ठीक होने न होने और इनकी अवस्था उत्तम होने न होनेसे मनुष्य ज्ञानी अथवा अज्ञानी, नीरोग अथवा रोगी होता है। इनके बिगडनेसे मिर्गी आदि विकार होजाते हैं, ठीक होनेसे ज्ञानशक्ति तीव्र होती है। इसका अर्क सेवन करनेसे मस्तकके विकार तथा बहुत व्यंग दूर होते हैं।

(५) **रक्ताणु मांस पिंड**—इसका संबंध गर्दनसे हृदय तक है। इसमें सूक्ष्म ज्ञान तंतु होते हैं। इनका हृदयपर बडा परिणाम होता है। हृदयक्रिया बंद होना आदि विकार इसकी अवकृपासे होती है। इसका अर्क सेवन करनेसे कृशता, भस्मरोग, सांधिव्याधि आदिदूर होते हैं। इससे पता लग सकता है कि शरीरमें इसका कार्यक्षेत्र कितना विस्तृत है।

(६) **प्लीहा**—इसको पानथरी कहते हैं। हिमज्वरसे यह बढती है। यद्यपि डाक्टर कहते हैं कि इसको काटकर फेंकनेसेभी मनुष्य जीवित रह सकता है, परंतु इसका पचनसे संबंध है और रक्तमें जो लाल रंगके अणु हैं उनके साथ इसका विशेष संबंध है।

(७) **ऊर्ध्ववृक्क मांसपिंड**—ये मांसपिंड पेटके पीछे और मूत्राशयके ऊपर भागके पिछाडीमें हैं। रक्त स्राव बंद करने आदि कार्य करना इनके आधीन है। इसके रस का एक बिंदू दसहजार बिंदु जलमें घोलकर किसी भाग पर अच्छी प्रकार लगानेसे वहांका रुधिरप्रवाह बंद होता है। विशेषतः आंखके काटने आदिमें इसका उपयोग कई करते हैं।

(८) **इषद्रक्तमांसपिंड**—इनका स्थान गलेके दोनों ओर है। इसमें ज्ञानतंतुओंका स्थान है।

(९) **गोलकपूर्ण मांसपिंड**—गुदाके पास इसका स्थान है।

(१०) **महास्रोतस् मांसपिंड**—गर्भाशयमें इनका स्थान है और गर्भाशयकेसाथ इनका संबंध है।

इनके अतिरिक्त सेकडों पिंड और केंद्र हैं जिन का वर्णन करना कठिन काम है। शरीरकी सुस्थिति अथवा दुःस्थिति, आरोग्य अथवा रुग्णावस्था, ऊंचाई मोटाई, इत्यादि सब इन मांसपिंडोंके आधीन है।

जिस अवयवमें बीमारी अथवा रोगका वास्तव्य हुआ होगा, उस स्थानके पिंडपर मनकी एकाग्रता करने और वहांका पूर्ण आरोग्य चिंतन करनेसे बडी नीरोगता प्राप्त हो सकती है। परंतु इसके लिये **मन अच्छा एकाग्र और वेधकताके साथ एक बिंदुमें स्थिर करनेका अभ्यास पहिले होना चाहिये।** अन्यथा इनसे कार्य लेना अशक्य है। साधारण मनुष्यके आधीन ये अवयव नहीं हैं। आंखसे देखना न देखना मनुष्य स्वेच्छासे कर सकता है, परंतु

पूर्वोक्त शक्ति केंद्रोंको अपनी इच्छासे कार्यमें प्रयुक्त करना मनुष्यके आधीन नहीं है, तथापि जो ध्यान योगका अभ्यास करेंगे और मनको एकाग्रस्थित कर सकेंगे, उनको उक्तबात शक्य है । बाह्य पदार्थ पर स्थिर रहनेवाला मन अपने अंदरके अवयवों पर स्थिर करनेसे वहां चेतना उत्पन्न होती है और इष्ट कार्य शुरु होता है।

यह मनः शक्तिका नियम है, जहां आप उसको केंद्रित करेंगे, वहां वह कार्य करने लगेगा । इसलिये योगविषक अनुभव देखनेवालोंको उचित है कि वे अपने मनको सबसे प्रथम एकाग्र करें । इतना अभ्यास चाहिए कि किसी एक बिंदुपर मन १९ से ३० मिनिट तक स्थिर रह सके । शरीरके अंदर परिणाम देखनेके लिये इतनी स्थिरताकी आवश्यकता है ।

पूर्वोक्त मांसपिंडों को मनद्वारा वश करनेकी रीति क्रमशः आगे आजायगी, तबतक जिनपाठकोंको शक्य है, वे " मेडिकल कालेज " जहां कि मुर्दे चीरते और फाडते हैं, वहां जाकर उक्त मांस पिंडोंका स्थान और आकार प्रत्यक्ष देखें और उनको अपने शरीरमें अनुभव करें । ऐसा करनेसे बडा लाभ हो सकता है ।

युरोपीयन डॉक्टर इन पिंडोंके रसोंका उपयोग करते हैं, परंतु योगी लोग मनकी प्रेरणासे ही उनसे योग्य कार्य कराते हैं । यदि यह साध्य हो जाय तो दीर्घजीवन प्राप्त करनेमें बडी सुविधा हो सकती है । इसलिये पाठक इसका अधिक विचार करें ।

" शिवसंकल्प "

(लेखक—पं. धर्मदेवजी. सिद्धान्तालंकार.)

(यजुर्वेद अ. ३४)

(१)

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवेति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषांज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १ ॥

जाग्रत: स्वप्न दशा ओं में जो दूर भागता रहता है,
आत्म प्रेरित इन्द्रिय गण को ज्योति सदा जो देता है,
यह मेरा मन निशि दिन भगवन् शुभ ही शुभ संकल्प करे,
श्रेष्ठ विचारों से युत हो कर दुष्ट गुणों को दूर करे।

(२)

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥

ज्ञानी कर्म वीर जिस मन को सभी तथा शुभ कर्मों मे
सदा लगाते जो अद्भुत है अन्दर गुप्त शक्ति सब में।
वह मेरा मन निशि दिन भगवन् शुभ ही शुभ संकल्प करे।
श्रेष्ठ विचारों से युत हो कर दुष्ट गुणों को दूर करे॥

(३)

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते
तन्मे मनःशिवसंकल्पमस्तु ॥ ३ ॥

उत्तम ज्ञान बोध का साधन जो है अमृत ज्योति समान
जिसके बिना न कुछ होता है सब के अन्दर जिसका स्थान।
[illegible] मेरा मन निशि दिन भगवन् शुभ ही शुभ संकल्प करे।
[illegible]ष्ठ विचारों से युत हो कर दुष्ट गुणों को दूर करे।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता
तन्मे मनःशिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥

भूत भविष्य वर्तमान सब जिस मन ने हैं ग्रहण किये
सप्तेन्द्रिय होता जिस कारण ज्ञान यज्ञ को रचे हुए।

वह मेरा मन निशि दिन भगवन्   शुभ ही शुभ संकल्प क॰
श्रेष्ठ विचारों से युत होकर   दुष्ट गुणों को दूर करे

(५)

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित ꣳ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥ ५ ॥

जिस मन के आश्रय से होता   वेदों का सारा विज्ञ॰
हैं विचार केन्द्रित जिस मनमें   रथनाभीमें आर समान
वह मेरा मन निशि दिन भगवन्   शुभ ही शुभ संकल्प क॰
श्रेष्ठ विचारों से युत हो कर   दुष्ट गुणों को दूर करे

(६)

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनःशिव संकल्पमस्तु ॥ ६ ॥

इन्द्रियरूपी घोडों को जो   सारथि सम ले जाता
हृदयस्थित जिस मनका अनुपम   वेग न मापा जाता है
वह मेरा मन निशि दिन भगवन्   शुभ ही शुभ संकल्प क॰
श्रेष्ठ विचारोंसे युत होकर   दुष्ट गुणों को दूर करे

वैदिक गीत ।

नेताका कार्य.

(श्री. पं.—गणेशदत्तशर्मा गौड, इंद्र)

" संशितं मे ब्रह्म, संशितं वीर्यम् बलम् । संशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः । " यजु० ११।८१

(यस्या अहं पुरः—हितः अस्मि) जिनका मैं नेता हूं, उनका (ब्रह्म) ज्ञान (मे) मेरे कारण (संशितं) तेजस्वी हो, (वीर्यं बलं संशितं) वीर्य बल प्रभावशाली हों, और उनका (क्षत्रं) क्षात्रतेज भी (जिष्णु) विजयशाली हो ।

(सीतावृत्त.)

मैं जिन्होंका हूँ रहा नेता पुरोवर्त्ती सदा ।
हा उन्होंका ज्ञान पूरा वीर वे होवें सदा ।
तेजस्वी हों हों प्रतापी और योधा वे बनैं ।
ब्रह्मचारी शूरही जो वीरतामें हो सने ।

खेतीकी उत्कृष्टता ।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व ।
वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः । ऋ० १०।३४।१३

(अक्षै र्मा दीव्यः) जुआ मत खेळ (कृषिं इत् कृषस्व) खेती निश्चयसे कर (बहुमन्यमानः वित्ते रमस्व) इस प्रकारसे प्राप्त धनको ही बहुत समझकर आनंद कर—

(उपेन्द्रवज्रावृत्त)

जुआ न खेलो, कृषि कार्य कीजे
धनेश होंगे यह धारिलीजे।
जुआ बुरा है, कृषि ही भली है–
यही सदासे सुखकी गली है ॥

शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं—
शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः।
शुनं पर्ज्यन्यो मधुना पयोभिः—
शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्। " ऋ. ४।५७

अर्थ—(फालाः नः भूमिं शुनं विकृषन्तु) हलके फाल हमा भूमिकी कृषि–जुताई अच्छी तरह करें (कीनाशाः वाहैः शुनं अ यन्तु) किसान बैलोंके साथ आनन्द पूर्वक चलें (पर्जन्यः मधु पायोभिः शुनं) मेघ अच्छी तरह वृष्टि द्वारा हमारा कल्याण करे (शुना–सीरा अस्मासु शुनं धत्तं) सारांश यह कि हल और फा हम लोगोंमें आल्हाद पहुँचायें।

(मालिनीवृत्तम्)

शुभ-प्रद हलकी हो फालकी हाल भावें।
कृषकगण खुशीसे बैलके संग जावें।
जलद जलद हमें दें श्रेष्ठ कल्याण-कारी।
हल, जल, वृष फाला हों सभी मोदकारी।

साहित्यावलोकन.

(१) दो सौं वर्षोंकी जंत्री ।,–(लेखक–प्रो. बाळाजी प्रभाकर मोडक। जंत्री प्राप्त होनेका स्थान–म० विश्वनाथ बळवंत मोडक, स्टेशन मार्ग, शाहुपुरी, कोल्हापुर नं. १ । मूल्य ३=) तीन रु० दो आने)

प्रोफेसर साहेब ने यह दो सौ वर्षोंकी जंत्री बडे यत्नसे बनाई है। इसमें शालीवाहन शक, विक्रमीय संवत, राजशक, आर्बी (सुरु) सन, फसली, हिजरी तथा इसवी सन हैं। इन सबके साल, महिना, तिथी, तारीख, वार आदि सब कुछ इसमें दिया है। यह जंत्री सन १७२८ से १९२८ तक अर्थात् पूर्ण दोसौ वर्षोंकी है। जो इतिहास संशोधन करते हैं, मुलकी और दीवानी कार्य करते हैं, जिनको वारंवार प्राचीन तारीख और तिथिका निश्चय करना आवश्यक होता है, उनको यह जंत्री अत्यंत उपयोगी है। पृष्ठ-संख्या करीब पांचसौ है और अतिशुद्ध मुद्रण किया है। इसकी सहायतासे आप किसी भी सालकी तिथि तारीख आदि झटपट देख सकते हैं। यह अत्यंत उपयोगी पुस्तक है इसलिये तारिखोंके साथ संबंध रखनेवालोंको यह संग्रहमें रखना योग्य है। मेहेनत की दृष्टिसे इस पुस्तकका मूल्य अत्यंत अल्प है॥

(२) महाराष्ट्र–धर्म। (मराठी भाषाका मासिक पत्र। संपादक–विनोबा। वर्धा। वार्षिक मूल्य ३॥) साढे तीन रु०)

यह धार्मिक मासिक पुस्तक मराठी भाषामें वर्धासे प्रसिद्ध होता है। दो अंक हमारे सामने हैं, जिनको पढनेसे हम कह सकते हैं, इस प्रकारका उच्च कोटीका धार्मिक मासिक पत्र मराठी भाषामें एक भी नहीं है। इसमें केवल संपादकीय लेखही होंगे, किसी अन्यके

लखे इसमें नहीं आवेंगे। इस लिये हमें आशा हो रही है कि इ
प्रकार उच्चभावोंसे यह सदाही ओजस्वी विचार प्रकाशित करता रहेगा
हम म० विनोबा जीका हार्दिक धन्यवाद करते हैं कि उन्होंने इ
प्रकारका उच्च मासिक प्रसिद्ध करनेका श्रेय सबसे पहिले लिया है

(३) **खादीका इतिहास** ।— (लेखक—श्री. पं० गणे
दत्तशर्मा गौड, इंद्र । प्रकाशक—म. जीतमल लूणिया, हिं
साहित्य मंदिर, बनारस शहर । मू. ॥=) दस आ.)

वैदिक कालसे लेकर इस समयतकका "खादी" का इतिहा
इस पुस्तकमें है । पं. गणेश दत्त शर्माजीका ओजस्वी लेखन कौश
हिंदी भाषाके प्रेमियोंसे परिचित है । यह पुस्तकभी वैसीही उत्त
है और आज कल अत्यंत पठन और मनन करने योग्य है ।

(४) **वैश्वदेव**—(ले०—श्री. पं. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्र
विद्यानिधी, नित्यकर्ममंदिर पूना नगर । मू. =) दो आने)

नित्यकर्मोंके प्रत्येक विषयपर पंडितजी एक एक पुस्तक मरा
ठीमें प्रसिद्ध कर रहे हैं । नित्यकर्ममाला में यह सचित्र तीसर
पुस्तक है । पुस्तक उपयोगी है ।

(५) **श्री जुम्मादादा व्यायामशालाका २२ वां अह
वाल** । (प्रकाशक—श्री. प्रो. माणिकराव, बडोदा)—श्री. प्रो
माणिकरावजीकी जुम्मादादा व्यायामशाला एक आदर्श व्यायाम
शाला है । इसका संपूर्ण इतिवृत्त इसमें है । जनताको चाहिये कि
वे इसको तनमनधनसे सहाय्य करें । विशेषतः तरुण युवक वहां
जाकर प्रो० जीसे आरोग्यकी शिक्षा प्राप्त करें ॥

स्वाध्याय मंडलके पुस्तक।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।" मूल्य १) एक रु.।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। "एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता--परिचय-ग्रंथ-माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥) आठ आने।

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=) दस आने।

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. =) दो आने।

(४) देवता विचार। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग--साधन-माला।

(१) संध्योपासना। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥) आठ आने।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।) सवा रुपया।

[४] ब्राह्मण-बोध-माला।

(१) शत-पथ बोधामृत। मू० ।) चार आने।

[५] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. -) एक आना।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । मू. =) दो आने।
(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक । मू.≡) तीन आने।

[६] स्वयं शिक्षक माला ।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । मू. १॥) डेढ रु. ।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु. ।

[७] आगम-निबंध-माला ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।-) पांच आने ।
(२) मानवी आयुष्य । मू. ।) चार आने ।
(३) वैदिक सभ्यता । मू.≡) तीन आने ।
(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र । मू. ।) चार आने ।
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥) आठ आने ।
(६) वैदिक सर्प-विद्या । मू. ॥) आठ आने ।
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय । मू. ॥) आठ आने ।
(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥) आठ आने ।
(९) शिव संकल्पका विजय । मू. ॥।) बारह आने ।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ॥) आठ आने ।
(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥) आठ आने ।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र । मू. ≡) तीन आने ।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडळ; औंध (जि. सातारा)

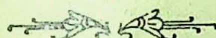
प्रकाशक—बापुलाल कु. पटेल, प्रभाशंकर चाळ, सान्ताक्रुझ (मुंबई.)
मुद्रक—चिंतामण सखाराम देवळे, मुंबई वैभव प्रेस, सर्व्हंट्स ऑफ इंडिया सोसायटीज़ बिल्डिंग, सँडहर्स्ट रोड, गिरगांव, मुंबई.

Registered No. B. 1463.

वर्ष ४ अंक ४ ॐ चैत्र संवत् १९७९.
क्रमांक ४० एप्रील सन १९२३.

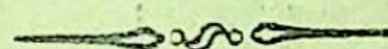
वैदिक धर्म ।

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-मासिक-पत्र ।



देवस्य पश्य काव्यं, न ममार, न जीर्यति ॥
अथर्व. १०।८।३२

ईश्वरका काव्य देखो, जो मरा नहीं, और
जो क्षीण भी नहीं हुआ है ।



संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

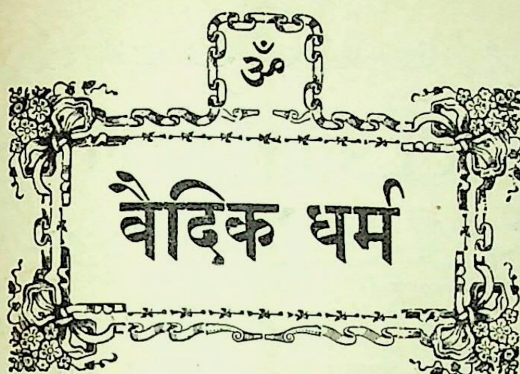
स्वराज्य ।

" जो हलचल करनेवाला, सबसे पहिले एकता सिद्ध करता है, वह स्वराज्य प्राप्त करता है, जिससे अधिक श्रेष्ठ कुछभी नहीं है । "

अथर्व, १०।७।३१

[वार्षि]क मूल्य ३॥) साडे तीन रु. । विदेशके लिए ४॥) साडे चार रु.

विषय सूची ।



वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र ।

वर्ष ४ अंक ४ { चैत्र १९८०; एप्रिल सन १९२३. } क्रमांक ४०

स्वातंत्र्यकी प्रीति ।



योऽस्मांश्चक्षुषा मनसा चित्याकूत्या च यो अघायुरभिदासात् ॥ त्वं तानग्ने मेन्याऽमेनीन् कृणु ॥ अथर्व. ५।६।१०

" आंख, मन, चित्त, कर्म आदिके द्वारा जो (अघ–आयु) पापी हम सबको सब प्रकारसे दास बनानेका यत्न करेगा; हे तेजस्वी प्रभो ! तू उसको अपनी शक्तिसे अशक्त बनाओ ॥ "

परम धर्मका पालन ।

" **अक्षर** " नाम है " **वेद और ब्रह्म** " का, क्यों कि जैसा ब्रह्म, परमात्मा अथवा आत्मा अ-क्षर अर्थात् अविनाशी है, उसी प्रकार वेद भी ज्ञानरूप होनेके कारण अविनाशी है। व्यापक आत्मा अविनाशी होनेके कारण उसका स्वाभाविक ज्ञान अविनाशी होनेमें संदेह नहीं हो सकता।

" **अक्षर** " के साथ रहनेवालोंको " **साक्षर** " कहते हैं अर्थात (१) जो आत्माका ज्ञान प्राप्त करनेके मार्गमें हैं, अथवा जिन्होंनें वह ज्ञान प्राप्त किया है; तथा (२) वेदका अध्ययन करनेमें और मनन करनेमें जिन्होंनें अपनी कुछ आयु व्यतीत की है अथवा जिन्होंनें वेदका पूर्ण अध्ययन, मनन और निदिध्यासन किया है, उनको गौण अथवा मुख्य वृत्तिसे " **साक्षर** " कहा जा सकता है। गुरुसे विद्याका श्रवण, पश्चात् उसका मनन, और तदनंतर उसका निदिध्यासन करनेसे " **साक्षर** " होना संभव है अन्यथा नहीं।

वेदके श्रवण, मनन और निदिध्यासन के विना अपने आपको " साक्षर " समझना गलती है। अन्य विद्याओंका अध्ययन

कितना भी हुआ हो, अन्य शास्त्रोंका व्यासंग कितना भी किया हो, तथा अन्य परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होनेकी उपाधियां कितनी भी प्राप्त हुई हों, जब तक वेदका अध्ययन और आत्माका अनुभव नहीं है तब तक मुख्यदृष्टिसे साक्षरता नहीं हो सकती। अर्थात् उक्त बातोंमें कुछ परिश्रम करनेपर अल्प अंशमें गौण दृष्टिसे साक्षरता मानना अयोग्य भी नहीं है। परंतु पूर्ण अंशसे ऐसे लोगोंको साक्षर मानना अयोग्य है। "**यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति ?**" (ऋग्वेद) जो उस आत्माको नहीं जानता वह मंत्रसे क्या करेगा ? यह वेदका कथन है।

परंतु जो संस्कृत जानते हुए भी वेदका श्रवण, मनन और निदिध्यासन नहीं करते, अथवा संस्कृत न जाननेके कारण प्रबल इच्छा होनेपरभी वेदका पठन कर नहीं सकते, तथा योगाभ्यासादि द्वारा आत्मानुभव के अनुष्ठानमें अपने समयका व्यय करनेकी इच्छा नहीं करते; वे कितने भी अन्य शास्त्रोंमें विद्वान, अन्य व्यवहारोंमें चतुर, अन्य काम काज करनेमें दक्ष तथा पूर्ण त्यागी होनेपर भी "निरक्षर" ही कहे जांयगे।

"**वैदिक धर्म**" वही है कि जो वेदके मंत्रोंमें कहा है। किसी अन्य पुस्तकमें कहा हुआ वैदिक धर्म नहीं कहा जा सकता। इस लिये "**वैदिक धर्म**" का ज्ञान उस समय, उसको उतनाही होना संभव है कि, जिस समय जिसको जितने मंत्र ठीक ठीक समझें हों। जब तक प्रारंभसे अंत तक संपूर्ण चारों वेदोंका ज्ञान नहीं

होगा, तब तक वैदिक धर्मके परिपूर्ण सिद्धांतोंका कदापि ज्ञान नहीं हो सकता। इस लिये तब तक वैदिक धर्मके संपूर्ण सिद्धांत परिपूर्ण रीतिसे किसीको ज्ञात हैं वा किसी दूसरेको ज्ञात नहीं हैं, ऐसा कहना, किसी दुराग्रही मनुष्यके विना, कठिन है। इस समय इस जगत्में चारों वेदोंका ज्ञाता कहीं भी एकभी नहीं है; परंतु आश्चर्यकी बात यह है कि वेदका ज्ञान न रखते हुए ही खंडन मंडनका दुराग्रही शौक बहुत बढा हुआ है, और यही सच्चे वैदिक धर्मका घातक है।

निरक्षरोंके आधीन जिस धर्मसंस्थाके अधिकार जाते हैं, वह धर्मसंस्था चिरकाल नहीं ठहर सकती। इसका कारण इतनाही है कि, उस संस्थामें चालकोंकी निरक्षरताके कारण अज्ञान और अश्रद्धा बढ जाती है, और जहां अज्ञान और अश्रद्धा बढी वहां नाश समीपही है, ऐसा समझनेमें कोई गलती नहीं होती।

निरक्षर मठाधिकारी ही "लकीरके फकीर" हुआ करते हैं। इसका कारण स्पष्टही है कि, उनको अक्षरोंका बोध तो होता ही नहीं, और अधिकार संभालना अत्यावश्यक होता है। इस लिये "लकीरके फकीर" होना उनके लिये अत्यावश्यकही होता है। जो "लकीर" सामने है वह ठीक है या नहीं, इसका विचार न करते हुए, विकारवशतासे खंडन अथवा मंडन करना बढाही घातक है। और यह प्रवृत्ति उस समय बडीही भयंकर होती है कि जिस समय जनता अज्ञानी हो, मठधारी अधिकारी धर्मपुस्तक न जान-

नेवाले हों, और ठीक रीतिसे प्रयत्न करनेके लिये कोई खडा न होता हो।

इस लिये जो महापुरुष होते हैं वे निरक्षर भट्टाचार्यों, ढोंगी मठाधिकारियों और लकीरके फकीरोंको दूर करनेका प्रयत्न करते हैं, परंतु इतिहास बता रहा है कि, किसी महापुरुषके पीछे उसी प्रकारके अथवा उससे भी अधिक निरक्षर लकीरके फकीर किसी न किसी प्रकार अधिकारमें आते ही हैं; और उसमें सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह है कि, वे अपने आपको जिसके अनुयायी बताते हैं, उसीका मंतव्य तोड़ते हैं, और वे जिस धर्मका रक्षण करनेके लिये प्रयत्न करते हैं उसी धर्मका नाश करते जाते हैं, तथापि अपनी अवस्था समझते नहीं ! ! !

इसी प्रकार धार्मिक क्षेत्रोंमें "**रक्षकोंके राक्षस**" बनते हैं और येही धर्मके नामसे अत्याचार करते हैं, सत्यको नीचे दबाते हैं और घोर अनर्थ मचाते हैं।

लोग समझते हैं कि विकारी जोश भर देनेसे, व्यर्थ बडी बडी चेतावनियां करनेसे, दिन प्रतिदिन नये ढकोसले खडे करनेसे अथवा खूब खंडन करनेकी चतुराईसे ही धर्मका बेडा पार होता है। परंतु यह खटाटोप व्यर्थ है। इन भुलभुलैयोंसे कुछ देर तक जनता फस जाती है, परंतु सच्चे धर्मकी प्यास उक्त मृगजलसे बुझना असंभव है। इस लिये जहां केवल उक्त प्रकारका जोशही होता है वहां धर्मका पिपासित आत्मा बहुत देर ठहर नहीं सकता। उसके लिये सत्य

धर्मका अमृत चाहिये । **वह निषेधरूप खंडनमें उसको नहीं मिल सकता, प्रत्युत विधिरूप स्वधर्मके मंडनसेही मिलता है ।**

बनावटी धार्मिक क्षेत्रकी कसौटी यही है कि, वहां अज्ञानपूर्ण जोश होगा । **जो ज्ञानसे घबरा जाता है वह धार्मिक नहीं है ।** अज्ञानियोंके जोशका मूल्यही क्या है ? इस लिये ज्ञानियोंको चाहिये कि वे अज्ञानियोंका अज्ञान सत्य ज्ञानके प्रचारसे दूर करें और उनमें सत्यके प्रेमके साथ सत्य धर्मकी ज्योतीका प्रकाश करें ।

प्रस्तुत " **वैदिक धर्म** "के विषयमें इतनाही कहना है कि अन्य लोग अपने अपने धर्मपुस्तक पढ सकते हैं और कुछ समझ भी सकते हैं । **वैदिक धर्मींही ऐसे हैं कि जो अपने वेदको नहीं पढते और न समझ सकते हैं । इस लिये ही " वेदका पढना, पढाना, सुनना सुनाना, वैदिक धर्मियोंका परम धर्म है । "** इस "**परम धर्म**" का पालन प्रतिदिन कौन कर रहा है ? सोचिये और विचारिये । क्या परम धर्मका पालन न करनेसे कभी उन्नतीकी आशा हो सकती है ? यदि नहीं, तो आज ही निश्चय कीजिये और अपने धर्मपुस्तक का थोडा थोडा अध्ययन प्रतिदिन करते जाइये । **इसीसे आपकी उन्नति होगी ।**

शंका समाधान.

(१) ईशोपनिषद् ।



(१) विद्या और अविद्याके अर्थका विचार ।

कुछ दिन हुए अखबारोंमें " ईश और केन " उपनिषदोंके विषयमें शंकाएं उपस्थित कीं गईं हैं। जिस रीतिसे लेख लिखे गये हैं, उस रीतिको देख कर उसका उत्तर देनेकी कोई आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती; तथापि कई पाठकोंकी प्रेरणा हुई, इस लिये आक्षेपकके मुख्य आक्षिप्त विषयोंका थोडासा विचार करनेका संकल्प इस लेखमें किया है। " ईश " उपनिषद्में " **विद्या और अविद्या** " का विषय बडा महत्व रखता है। इन दो शब्दोंके अर्थ निश्चित होनेसे तत्त्वज्ञानविषयक एक महत्त्वकी बातका निश्चय होना संभव है। इस समय तक के प्रस्थान त्रयीके आचार्योंनें इन शब्दोंके " **ज्ञान और कर्म** " अर्थ मुख्यतया स्वीकृत किये हैं। यद्यपि कईयोंके अर्थोंमें अंशरूपसे भिन्नता है तथापि उसका विचार यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है। श्री० स्वा० दयानंद सरस्वतीजीनेही अपने यजुर्वेद भाष्यमें " **अविद्या** " का अर्थ " जड " और " **विद्या** " का अर्थ " आत्माका यथार्थ ज्ञान " किया है। पूर्वापर संबंधसे स्वामिजीका भाव स्पष्ट है कि

" **अविद्या** " का अर्थ " **जडका ज्ञान** " और " **विद्या** " का अर्थ " **आत्माका ज्ञान** " है । देखिये—

अविद्या—ज्ञानादिगुणरहितं जडं परमेश्वराद्भिन्नं वस्तु ।
(यजु. ४०।१२)

विद्या—आत्मशुद्धांतःकरण...जनितं यथार्थदर्शनं ।
(यजु. ४०।१४)

इन अर्थोंमें अविद्याका संबंध जडसे निश्चित है और विद्याका अर्थ आत्मासे संबंधित है । प्रस्थान त्रयीके पूर्व चारों आचार्योंसे ये अर्थ भिन्न हैं । इस लिये यहां विवेक करना है कि कौनसा अर्थ माननीय है । इसका विचार करनेके लिये बडी दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है, पहिलाही मंत्र देखनेसे उसमें इन शब्दोंके अर्थोंका पता लग सकता है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं ॥ य. ४०।१; ईश १

यह ईशोपनिषद् का प्रथम मंत्र है । इसमें मुख्य बात " **ईशा+वास्यं×इदं** । " इन ती शब्दोंमें ही व्यक्त हो रही है, इसका विचार देखिये—

ईशा—	**वास्यं**—	**इदं**
ईश—	वसने योग्य है—	इसमें
आत्मा—	व्यापक है—	जगत्में

संपूर्ण उपनिषद्को यही एक बात कहनी है । आत्माकी व्यापकताका पता लगा और उसका अनुभव हुआ तो सब ग्रंथका

ज्ञान होगा। परंतु यही बात कठिन है, इस लिये इस बातका वारंवार मनन करना पडता है। अस्तु।

उक्त मंत्रभागमें " वास्यं " क्रिया " ईश " का अधिकार और व्यापार बता रही है, इसको अलग किया जाय तो शेष दो ही शब्द रहते हैं—

ईश+इदं

एक " ईश " है और दूसरा पदार्थ है जो " इदं " शब्दसे जाना जाता है, यह ईशसे भिन्न है, इसकी भिन्नता निम्न प्रकार बताई जा सकती है—

ईश	इदं
ईश	अनीश
आत्मा	अनात्मा
पुरुष	प्रकृति
जगत्कर्ता	जगत्

जो जीवात्मा है उसका अलग निर्देश इस लिये किया नहीं है कि वह " आत्मा " शब्दके अंदर बोधित होता है। प्रकृत्तिपुरुष का विवेक करनेके समय " आत्मा और अनात्मा " इतना ही वर्गीकरण करनेकी परिपाठी है। आत्मा शब्दसे जीवात्मा और परमात्मा दोनोंका बोध हो सकता है। इसी लिये परमात्मवाचक संपूर्ण शब्द वेदमें प्रायः जीवात्माके भी वाचक माने गये हैं। अस्तु। उक्त विचारसे यह बात सिद्ध हुई कि " ईश और ईशभिन्न अनीश जगत् " ये दोही पदार्थ हैं। अब यहां प्रश्न होता है कि—

(१) केवल ईशको जानना चाहिये, किंवा—
(२) केवल जगत् को जानना चाहिये, अथवा—
(३) दोनोंको जानना आवश्यक है ?

पहिला मंत्र पढतेही ये प्रश्न स्वभावतः उत्पन्न होते हैं और इन प्रश्नोंका उत्तर " **विद्या अविद्या प्रकरण** " से दिया गया है। यहां " **विद्या** " और " **अविद्या** " के अर्थके विषयमें निश्चय करनेके लिये निम्न शब्द उपयोगी हो सकते हैं—

ईश	इदं
ईश–विद्या	अनीश–विद्या
आत्म–विद्या	अनात्म–विद्या
(० –विद्या)	(अ०–विद्या)

विद्या और अविद्या ये शब्द इस प्रकार " **संक्षेपके शब्द** " हैं। इस लिये ईशोपनिषद्में इनका अर्थ प्रसंगसे जो प्राप्त है वही लेना उचित है। यदि " **ईश** " है तो उसको जानना आवश्यक है, तथा यदि " **इदं** " शब्दसे बोधित " **जगत्** " है तो उसकोभी जानना चाहिये। दोनोंके गुणधर्म जाननेसे ही जीवकी उन्नति हो सकती है, अन्यथा नहीं।

यहां कईयोंकी शंका हो सकती है कि, (१) ईश सर्वशक्तिशाली होनेसे हम उसको ही केवल जाननेका यत्न करेंगे; और दूसरे कई कह सकते हैं, (२) हमें जगत् प्रत्यक्ष है, ईशका तो पताही नहीं है, इसलिये हम जगत्कोही केवल जाननेका यत्न

करेंगे, तो इस विवादका निर्णय कैसा किया जा सकता है ? हमारे विचारमें इसी शंकाका समाधान ईश उपनिषद्के " **विद्या अविद्या प्रकरण** " में किया गया है, देखिये—

अंध तमः प्रविशंति येऽविद्यामुपासते ॥
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥
अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्याया ॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ॥
अविद्यया मृत्युं तीर्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

यजु. ४०।१२–१४॥ ईश.९–११

"(१) जो केवल जगद्विद्याकीही भक्ति करते हैं वे घने अंधकार में जाते हैं तथा जो केवल ईशविद्यामें रमते हैं वे उससेभी गाढ अंधकारमें जाते हैं। (२) आत्मविद्यासे एक लाभ है और सृष्टिविद्यासे दूसरा लाभ है, ऐसा बुद्धिवान् कहते आये हैं। (३) जो आत्मविद्या और सृष्टिविद्याको साथ साथ उपयोगी समझते हैं, वे जगद्विद्यासे कष्टोंको दूर कर आत्मविद्यासे अमरत्व प्राप्त करते हैं।"

इसका विचार स्थूल दृष्टिसेही देखिये । सृष्टिविद्यासे भोजन, आच्छादन आदिके सुख प्राप्त हो सकते हैं और यहां का जीवित सुखमय होना संभव है । तथा आत्मविद्यासे शांति और आनंद प्राप्त होता है । मान लीजिये कि यदि किसीने दुराग्रहके कारण केवल आत्मविद्याके लिये ही परिश्रम किये और सृष्टिविद्याका विचा-

रही छोड दिया तो उसको खानेकी भी कठिनता हो जायगी, और जीवित रहना भी असंभव हो जायगा। तथा यदि दूसरे किसी आग्रही मनुष्यनें आत्माका विचार छोडकर केवल जगद्विद्यामें ही प्रयत्न किये तो उसका भी आसुरी भाव उत्पन्न होनेके कारण नाश होगा।

इस लिये वेद कहता है कि (१) **सृष्टिविद्यासे इस जगत्का जीवित सुखमय करो, और (२) साथ साथ आत्मज्ञानसे आनंद प्राप्त करो।** इस वैदिक दृष्टिसे सृष्टिविद्या और आत्मविद्याका सम बोध होनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

(२) संभूति और असंभूति।

पूर्व भागमें " **विद्या और अविद्या** " का अर्थ ईश उपनिषद् के पहिले मंत्रके अनुसंधानसे किया है और अब संभूति असंभूति का अर्थ उसी प्रकार देखना है। संभूति का अर्थ सृष्टि और असंभूतिका अर्थ मूल प्रकृति समझा गया है। परंतु प्रथम मंत्रके पदोंका मनन करनेसे पूर्ववत् इन पदोंके भी अर्थ खुल जाते हैं। जैसे प्रथम मंत्रके प्रथम पादके " **ईश और इदं** " इन दो पदोंसे " **विद्या और अविद्या** " के अर्थ निश्चित हुए, उसी प्रकार प्रथम मंत्रके द्वितीय पादमें " **संभूति और असंभूति** " के अर्थ निश्चित करनेके साधन हैं, देखिये—

ईशा वास्यमिदं सर्वं
यत् किंच जगत्यां जगत् ॥

॥ य० ४०।१; ईश. १ ।

“ ईश इस सबमें व्याप्त है, जो कुछ जगतीमें जगत् है। ” “ ईश ” शब्दसे आत्माका बोध हो चुका है, और “ इदं ” शब्दसे जगत् का बोध लिया है। इस “ इदं ” शब्दकी व्याख्या आगेके शब्दोंमें हो रही है। “ जगत्यां जगत् ” यह स्वरूप है “ इदं ” शब्दसे बोधित सृष्टिका। जिस सृष्टिमें आत्मा व्यापक है वह सृष्टि कैसी है ? इसके उत्तरमें कहा है, सृष्टिका स्वरूप “ जगत्यां जगत् ” है। इसका भाव यह है कि, “ समूहमें एक ” यह सृष्टिका स्वरूप है। “ जगत् ” के समूहका ही नाम “ जगती ” है।

जगत् शब्दका अर्थ संपूर्ण विश्व है, उसी प्रकार विश्वका एक एक पदार्थ भी इससे बोधित होता है। इस मंत्रमें यह दूसरा अर्थ विवक्षित है, क्योंकि संपूर्ण विश्वका बोधक “ जगती ” शब्द इसी मंत्रमें अलग विद्यमान है। तात्पर्य यह कि “ जगत्यां जगत् ” इन शब्दों द्वारा सृष्टिके स्वरूपका वर्णन हुआ है। “ समूहमें एक ” यह सृष्टिका स्वरूप है। इस विषयमें निम्न शब्द देखिये—

जगत्याम्— जगत्
जगतीमें— जगत्
समूह ”— एक
समाज ”— व्यक्ति
समष्टि ”— व्यष्टि
संघ ”— एक
जाति ”— व्यक्ति

समूहके आधारसे एकका अस्तित्व है, समष्टिके साथ व्यष्टि रहती है, संघके साथ व्यक्ति है, जातिके साथ व्यक्तिका अस्तित्व है, यही भाव " **जगतीमें जगत्** " है इस मंत्रभागमें है। ये अर्थ ठीक प्रकार ध्यानमें आगये, तो " **संभूति और असंभूति** " का भाव समझमें आसकता है। (सं) इकट्ठा होकर (भूति) रहना, मिलकर रहना, संघभावसे रहना " सं-भूति " का तात्पर्य है जो " **जगती** " शब्दसे व्यक्त हुआ है। तथा संघभाव को छोड़कर व्यक्तिभावसे रहना " **अ-संभूति** " का आशय है।

मनुष्यके दो प्रकारके कर्तव्य होते हैं; उसका एक वैयक्तिक कर्तव्य है और दूसरा उसका सामुदायिक कर्तव्य है। कई मनुष्य आग्रहसे कह सकते हैं कि (१) मुझे समाजसे कुछ कर्तव्य नहीं है मैं स्वतंत्र हूं जो मर्जी आजाय करूंगा। इसी प्रकार दूसरे दुराग्रहीं हैं कि जो कह सकते हैं कि (२) हर एक व्यक्ति को जातीय हित करनेके लिये सदा परतंत्र रहना चाहिये, उसकी वैय्यक्तिक सत्ता कुछभी नहीं हैं। ये दो विवाद हैं, इनका उत्तर तत्वज्ञान की दृष्टिसे " **संभूति और असंभूति** " प्रकरणमें दिया है, देखिये—

अंधं तमः प्रविशंति येऽसंभूतिमुपासते ॥
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यां रताः ॥
अन्यदेवाहुः संभवादन्यदाहुरसंभवात् ॥
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ॥
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्याऽमृतमश्नुते ॥

यजु. ४०।९–११; ईश ११–१४

"(१) जो केवल व्यक्तिभाव की उपासना करते हैं वे अंधकारमें जाते हैं और जो केवल संघभावमें रमते हैं वे भी उससे घने अंधेरेमें डूबते हैं। (२) संघभावका फल भिन्न है और व्यक्तिभावका फल भिन्न है, ऐसा सूज्ञ लोग कहते आये हैं। (३) संघभाव और व्यक्तिभावको जो साथ साथ उपयोगी समझते हैं, वे व्यक्तिभाव से अपने दुःखोंको दूर करके संघभावसे अमर होते हैं।"

व्यक्तिस्वातंत्र्य और समाजहित के झगडेकी इस प्रकार वेदने उत्तम व्यवस्था दी है। व्यक्तिकी स्वतंत्रता समाजके हितके विरोधी न हो और संघके कारण व्यक्ति बिलकुल दबी न जावे। मनुष्य प्राणी संघके साथ रहनेवाला है वह अलग रह नहीं सकता, इस लिये "**हर एक को अपने अभ्युदय के कार्योंमें स्वतंत्र और सामाजिक उन्नतिके कार्य करनेके समय परतंत्र रहना चाहिये।**" तभी ठीक होगा। क्यों कि समाजके साथ ही व्यक्ति का अस्तित्व है, इस लिये समष्टिके लिये व्यष्टिको कुछ न कुछ स्वार्थत्याग करना अत्यावश्यक है। इन मंत्रोंके भिन्न शब्दोंसे कुछ शंकायें हो सकतीं हैं इस लिये निम्न कोष्टक देखिये—

जगत्यां	जगत्
जगती	जगत्
सं–भूति	अ–संभूति

सं—भव	अ—संभव
सं- भूति	वि—नाश
संघभाव	व्यक्तिभाव

" विनाश " शब्द " असंभूति " के अर्थमें इस मंत्रमें प्रयुक्त है । इसका भाव यह है कि यदि यह " संघ और व्यक्तिके " कर्तव्य ठीक प्रकार करता गया, तो इसका (विगत-नाश) नाश नहीं होगा । परंतु संघका ख्याल न करता हुआ व्यक्तिभावके भोगोंमें मस्त रहा तो इसका (विशेष नाश) नाश निःसंदेह होगा। इस विचारसे यह बोध मिलता है कि "**व्यक्तिको समाजके हितके अर्थ स्वार्थत्याग करना आवश्यक है ।**" इसी लिये कहा है कि—

(१) तेन त्यक्तेन भुंजीथाः ।

(२) मा गृधः

(१) इस लिये दानसे भोग कर । (२) मत् ललचाओ । " चूं कि समाजके साथही व्यक्तिका अस्तित्व है, इस लिये समाजके हितके निमित्त स्वार्थत्याग कर और लालची, खुदगर्ज अथवा लोभी न बन । इस प्रकार यज्ञ करनेका उपदेश यहां मिलता है और "**यज्ञ रूप निःस्वार्थी कर्म करता हुआ सौ वर्ष जीनेकी इच्छा कर**" यह द्वितीय मंत्रका उपदेश ठीक संगत होता है ।

तात्पर्य "**विद्या अविद्या**" के प्रकरणमें आत्मज्ञान और सृष्टिका ज्ञान प्राप्त करनेका उपदेश है; और "**संभूति असंभूति**"

प्रकरणमें व्यक्तिको अपने लिये तथा समाजके लिये कैसे कर्म करने चाहिये इसका उपदेश है। विद्या अविद्याका " **ज्ञान प्रकरण** " है और संभूति असंभूतिका " **कर्म प्रकरण** " है। जो विचार करनेकी इच्छा करते हैं वे विचार करें।

इस विषयका विचार इससे पूर्व विस्तारसे **वैदिक धर्म** के क्रमांक १९ में किया गया है, और **ईशोपनिषद्में** भी सविस्तर हुआ है। वेदके मंत्रोंका जो मनन करेंगे उनकोहि इसका रस मिल सकता है।

(२) केन उपनिषद्।

" उमा देवी "

जो केन उपनिषद् का अध्ययन करते हैं उनको " **उमा** " देवी का पता लगाना आवश्यक होता है। क्रमशः अग्नि, वायु, और इंद्र जाते हैं और यक्ष का पता लगानेका यत्न करते हैं। अग्नि पहिले वापस आता है, वायु उसके कुछ पास जाता है परंतु पता न लगाता हुआही वापस होता है, पश्चात् देवराज् इंद्र आगे बढता है, परंतु उसके सामनेसे यक्ष गुप्त होता है। इस प्रकार इंद्रकी घमंड दूर होती है, वह इस कारण लज्जित होता है। **वहां उसी आकाशमें उमा देवी उससे मिलती है और यक्षका ज्ञान देती है।** इस ज्ञानसे इंद्रका सब देवोंमें अधिक श्रेष्ठत्व सिद्ध होता है।

कई लोग इस कथा को काल्पनिक समझते हैं!! परंतु केन उपनिषद्का विचार करनेसे पता लगता है कि वहां कोई काल्पनिक मनघडंत बात नहीं कही है। वहां एक अवस्थाका अनुभव बताया है। इस विषयमें उपनिषद्के पद स्पष्ट हैं देखिये—

स तस्मिन्नेव आकाशे स्त्रियमाजगाम ॥
बहुशोभमानामुमां हैमवतीं, तां होवाच ॥
केन. ३. ३।२९

" वह इंद्र (तस्मिन् एव आकाशे) उसी आकाशमें अत्यंत शोभायमान हैमवती उमादेवी के पास पहुंचा और उसके साथ बोला।"

इस वाक्य में **" उसी आकाशमें इंद्र और उमाका संमेलन"** होनेका वर्णन स्पष्ट है। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि **" किस आकाशमें " यह हुआ ? कौनसा आकाश है कि जिसमें हैम-वती उमाका दर्शन होता है ? किस आकाशमें " इंद्र" पहुंचा था ? वह किस मार्गसे वहां पहुंचा था ? जिस यक्षका चमत्कार पहिले दिखाई देता था, उसका चमत्कार उमादेवी के आका-शमें गुप्त क्यों हुआ ?** इत्यादि प्रश्न यहां आते हैं।

सूक्ष्म रीतिसे देखनेपर उक्त शब्दोंमें विशेष मार्गका वर्णन दिखाई देगा तथा पहिले खंडके वर्णन के साथ ही इस तृतीय खंडके वर्णन की संगति दिखाई देगी। देखिये—

(१) पहिले ही मंत्रमें पूछा है कि **" किसकी प्रेरणासे मन, प्राण और वाणी कार्य करती है ? "**

(२) द्वितीय मंत्रमें उत्तर दिया है कि जो प्रेरक देव है वही **" वाणी की वाणी, प्राणका प्राण, और मनका मन है "**

(३) तृतीय मंत्रमें कहा है कि प्रेरक देवताके पास **" न वाणी जाती है,** (न प्राण जाता है) **और न मन पहुंचता है।**

इतना प्रथम खंडमें कहनेके पश्चात्, यही भाव " अग्नि, वायु, और इंद्र के वर्णनसे तृतीय खंडमें कह दिया है अर्थात्—

व्यक्तिमें	जगत्में
वाणी	अग्नि
प्राण	वायु
मन	इंद्र

जगत्के ये तत्व अंशरूपसे व्यक्तिके शरीरमें आकर रहे हैं। इसलिये शरीरमें जो बात अंशरूपसे सत्य है वही जगत् में विस्तृत रूपसे सत्य है। तात्पर्य विस्तारसे कही जाय अथवा सूक्ष्म अंशसे कही जाय, तत्व दृष्टिसे बात एक ही होती है।

इसका भाव यह है कि जो अग्नि और वायुका पराजय केन उपनिषद्के तृतीय खंडमें वर्णन किया है वह, वाणी और प्राणका ही पराजय है। आत्माका वर्णन करते करते वाणी थकती हुई पीछे हट जाती है। पीछेसे प्राण आगे बढता है, परंतु वह भी आत्मातक नहीं पहुंचता। जो शब्दोंसे आत्माका वर्णन करने लगते हैं, उनको अनुभव होता है कि, शब्दोंसे उसका वर्णन नहीं हो सकता। प्राणके उपासक आत्माको प्राप्त करनेका यत्न करते हैं परंतु आत्माके पास पहुंचनेके पूर्व ही प्राणका व्यापार बंद होता है, और एक प्रकार की "मृतावस्था" सी आती है। इस प्रकार वाचा और प्राण परास्त होते हैं, इनका पराजय देखकर इंद्रियों (देवों) का राजा (इंद्र) मन आगे बढता है, परंतु जैसा जैसा वह आगे बढता जाता है, वैसा वैसा यक्षका तेज लुप्त होता है, और वह एक ऐसे आकाशमें पहुंचता है कि जहां प्रकाश का नाम तक नहीं होता।

इस आकाशमें उसको तेजस्विनी उमाका दर्शन होता है और उमाके कथनसे ब्रह्मका तत्व उसको विदित हो जाता है। पाठकोंको विदित हुआ ही होगा कि, यह उलटा मार्ग है। देखिये दो मार्ग निम्न प्रकार हैं।—

(१) **प्रवृत्तिका मार्ग**—आत्माकी प्रेरणा बुद्धिसे मनमें, मनसे प्राणमें और प्राणसे वाणीमें होती है।

(२) **निवृत्तिका मार्ग**—वाणीका लय प्राणमें, प्राणका मनमें, मनका बुद्धिमें इ०

आत्माकी खोज निवृत्तिके मार्गसे करनी होती है। इसीको "**अंतर्मुख वृत्ति**" बोलते हैं। वाक्शक्ति आत्माकी खोज करनेके समय अंतर्मुख होती है और प्राणमें मिल जाती है। इस अवस्थामें वाणी बंद होती है और प्राण चलता रहता है। इससे आगेकी अवस्थामें प्राण अंतर्मुख होता है और वह मनमें लीन होता है, यही केवल-कुंभककी सिद्धि है। जिन्होंनें योगसाधनका थोडासा अनुभव लिया होगा उनको इस बातका पताही होगा। प्राण बंद होनेके पश्चात् अकेला मन प्रकाशके साथ चोवीस तत्वोंके प्रकाशोंका अनुभव करता हुआ प्रकाशके मूलकी खोज करनेकोलिये आगे बढता है, आगे बढते बढते, अचानक एक अवस्था आती है कि, जिसमें उसके सामनेके संपूर्ण दृश्य बंद होते हैं, और **वह गहरे अंधकारपूर्ण आकाशमें अकेला रह जाता है।** इसी अवस्थाका वर्णन केन उपनिषद्में किया है कि "**इंद्रके सामनेसे यक्षका तेज गुप्त हुआ इ०।**" इस अवस्थामें पहुंचा हुआ मन घमंड छोडता है, यही अवस्था है कि जिस समय "**बहुशोभायमान हैमवती उमा**" दिखाई देती है। कुंडलिनीका साक्षात्कार यहांही है। यह पर्वतराज

की तेजस्विनी पुत्री है। यह (a tortuous vien at the bottom of the human spinalcord) मेरुदंडके नीचे होनेवाली तेढी नस नहीं है। वह (vien) नस नाडी नहीं है, वह विद्युत् सेभी अत्यंत तेजस्विनी मायाशक्ति—मूलप्रकृति है—जो अंशरूपसे इस शरीरमें रहती है,।

इस प्रकार यह केन उपानिषद् उस पथका प्रदर्शन कर रहा है कि जो योगीं लोगोंको अनुभवसे दृश्य होता है। उनको पता है कि अग्नि और वायु कहां तक साथ करते हैं, और कहांसे पीछे हटते हैं, उनको पता है कि " **किस आकाशमें इंद्रको उमा देवीका दर्शन** " होता है, और उसके आगे जानेपर कौनसी अवस्था है। " (Fanciful interpretation) अवास्तविक काल्पनिक अर्थ " कहनेके पूर्व आवश्यक है कि मूल ग्रंथ को ठीक प्रकार समझनेका यत्न किया जाय।

इस मूल शक्तिकोही " **विद्या** " तंत्रग्रंथोंमें इसालिये कहा है कि इस कुंडलिनी शक्तिके दर्शनके पश्चात् ही " **आत्माकी सत्य विद्या** " जानी जाती है, इससे पूर्व नहीं। इससे स्पष्ट है कि कुंडलिनी वाचक " **उमा** " शब्द (जिसका कई तंत्रकार " **विद्या** " अर्थ करते हैं) ईशोपनिषद्के विद्याशब्दसे भिन्नार्थ में प्रयुक्त है और आजकलका विद्याशब्दका अर्थ तो " उमा " में है ही नहीं। जिस समय " ओं " (ॐ) के " **अ+उ+म्** " का व्युत्क्रम होकर " (**उ+म्+अ**) **उमा** " शब्द बनता है और वह एक विशेष योगमार्गका बोधक है, यह बात जानी जायगी, तत्पश्चात् उस उमा शब्दका महत्व समझना है।

इस प्रकार शंकाओंका समाधान है।

तर्क-ऋषि और तर्क-राक्षस ।

कई लोग " तर्क ऋषि " को बहुतवार अपनी सहायताके लिये लानेका यत्न करते हैं, परंतु बहुतवार देखा है कि " तर्क ऋषि " तो आता नहीं; और " तर्क-राक्षस " आता है । इस लिये तर्क ऋषि कौन है और तर्क राक्षस कौन है, इस बातका विचार करना अत्यावश्यक है । तर्क ऋषि " का वर्णन निम्न प्रकार निरुक्त में आया है—

(१) अयं मंत्रार्थचिंताभ्यूहोऽभ्यूढोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतो (२) न तु पृथक्त्वेन मंत्रा निर्वक्तव्याः प्रकरणक्ष एव तु निर्वक्तव्याः । न ह्येषु प्रत्यक्ष-मस्ति । अनृषेरतपसो वा (३) पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयो विद्यः प्रशस्यो भवति । ....(४) मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवान-ब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति, तेभ्य एतं तर्कं ऋषिं प्रायच्छन् मंत्रार्थचिंताभ्यूहमभ्यूढम् । (५) तस्माद्यदेव किंचानूचानो ऽभ्यूहति आर्षं तद्भवति ॥ निरुक्त. १३।१२

(१) यह मंत्रके अर्थकरनेका निश्चित विचार है । श्रुति प्रमाणसे तथा तर्कसे इसकी पुष्टि होती है । (२) मंत्रोंका विचार प्रकरण छोडकर करना उचित नहीं है, क्यों कि इनमें प्रत्यक्ष की स्पष्ट बात नहीं है । (३] विशेष विद्याओंका ज्ञाता इस कार्यके लिये प्रशस्त है । (४) जब ऋषि चले गये, तब मनुष्योंनें देवो

से पूछा कि वेदज्ञानके लिये हमारा मार्गदर्शक ऋषि कौन होगा ? इसपर देवोंनें ' **इस तर्क ऋषि** ' को दिया, यहीं मंत्रोंका विचार करनेकेलिये अच्छा सहायक है। (५) इसलिये जो विद्वान इसके अनुसार जो तर्क करता है, वह ऋषि सदृश तर्क होता है।

इसका अर्थ स्पष्ट है, इसलिये अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस निरुक्तकार की संमतिमें जो " **तर्क–ऋषि** " है वह " **निरुक्त–शास्त्र** " ही है । जब मनुष्योंनें देवोंसे पूछा कि, " हे देवो ! ऋषि चले गये, अब कोई भी ऋषि रहा नहीं है; इसलिये हम किसकी सहायतासे वेदका अर्थ जानें ? " इस पर देवोंनें यह " **तर्क–ऋषि** " अर्थात् " **निरुक्त–शास्त्र** " मनुष्योंको दिया और कहा कि **यही निरुक्तशास्त्र तुह्मारा सहायक तर्क** ऋषि है। जो इसका उत्तम अध्ययन करेंगे तथा अन्यान्य शास्त्रोंमें प्रवीण होकर वैदिक परंपराका ज्ञान प्राप्त करके शास्त्रानुकूल तर्क करेंगे, उनका तर्क ऋषि सदृश तर्क होगा। तात्पर्य इतनाही है कि यहां कहा हुआ तर्क ऋषि सामान्य विद्वानोंका " तर्क " नहीं है। वैदिक शास्त्रोंमें जिनकी विशेष गति है और जो निरुक्तका अच्छाज्ञान रखते है उनका तर्क ही " तर्क ऋषि " कहने योग्य हैं।

जो इस बातको नहीं समझते और " **तर्क ऋषि** " के नाम से " अपने दिलका विचार " ही लेते हैं, उनका तर्क ऋषि नहीं होता है परंतु वह " **तर्क–राक्षस**" होता है। यह" **तर्क–राक्षस**" जहां पहुंचता है, वहां वैदिक ज्ञान का लोप होता है, अवैदिक मत बढ जाते हैं, अंधपरंपरा शुरू होती है। तथा अन्यान्य अनर्थ होते हैं। इसलिये प्रिय पाठको ! इस तर्क राक्षससे अपने आपको बचाइये।

अठारह की संख्या।

वेद, ब्राह्मण और पुराण ग्रंथोंमें विशेष संख्याका संकेत किया हुआ स्पष्ट दिखाई देता है, परंतु उस संकेत का उद्देश क्या है, इस विषयमें कोई निश्चय नहीं होता। यजुर्वेदमें कहा है कि—

अष्टादशस्तपः। यजु. १४।२३

" (**अष्टादशः**) अठारह तप है। " तपके अठारह भेद हैं या अठारह प्रकारका तप है। कईयोंका यहां कहना है कि बारह महिने और छः ऋतु मिल कर जो अष्टादशरूप सांवत्सरिक काल है, उस कालानुसार तप करनेका यहां तात्पर्य है। इस विषयमें वेदमें अन्यत्र प्रमाण देखने आवश्यक हैं। यजुर्वेदके " **अठारह** " वे अध्यायमें जहां संख्याकी गिनती की है वहां एकसे अठतालीस तक संख्याकी गिनती है। बीचमें कई संख्यायें नहीं भी है। इसमें " **अठारह** " संख्या नहीं है। अथर्ववेदमें कहा है कि—

अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा। अ० १९।२३।१५

" **अठारह** मंत्रवाले सूक्तोंके द्रष्टा जो ऋषि हैं उनके लिये अर्पण करते हैं। " यह पता लगाना चाहिये कि, अथर्ववेदमें अठारह मंत्रोंवाले सूक्त कितने हैं, तथा अन्य वेदोंमें कितने हैं, उनके द्रष्टा ऋषि कौन हैं, उन सूक्तोंमें क्या तत्त्वज्ञान कहा है,

और उनका महत्त्व मानवी उन्नतिकी दृष्टिसे कितना है । इस सबका संग्रह करके अठारह मंत्रोंवाले सूक्तोंके तत्वज्ञानका विचार करना आवश्यक है । काठक संहितामें कहा है कि—

प्रतूर्तिरष्टादश इति पुरस्ताद्द्वौ त्रिवृता अभिपूर्व-मेव यज्ञमुखे दधाति ॥ काठकसं. २०।१३

" (प्र-तूर्तिः) विजय अठारह प्रकारका होता है । पहिले तीन गुणा दो करनेसे जो संख्या होती है, वह पहिलेही यज्ञके प्रारंभमें धर देता है । " यह भी किसी विशेष बातका संकेत है । यहां की संख्या निम्न प्रकार है—

२×गुणा ३=६×३=१८ होते हैं ।

इस अठारहके संकेतका कुछ थोडासा स्पष्टीकरण निम्न लिखित स्थानमें अंशतः मिलता है—

षडहेन यंति । षड् वा ऋतवः ऋतुष्वेव तत्प्रतिष्ठन्तो यन्ति । द्वौ षडहौ भवतः । तानि द्वादशाहानि संपद्यन्ते । दश वै पुरुषे प्राणाः स्तनौ द्वादशौ । तत्पुरुषमनुपर्या वर्तन्ते । त्रयःषडहा भवंति तान्यष्टादशाहानि संपद्यन्ते ॥ काठक सं. ३३।३

"छः दिनोंके साथ जाते हैं । छः ऋतु हैं ऋतुओंमें प्रतिष्ठित होकर आगे बढते हैं । छः दिनों वाले दो होते हैं । वे मिलकर बारह हैं । पुरुषमें दस प्राण हैं और दो स्तन हैं मिलकर बारह हैं । येही मनुष्यमें बारबार आते हैं । छः दिनोंवाले तीन होते हैं । सब मिलकर अठारह हैं । "

वेदका संकेत अंशमात्र यहां स्पष्ट हो जाता है। मनुष्यमें दस प्राण हैं, इनसे प्राणधारणा होकर जीवन रहता है। स्त्रीको दो स्तन होते हैं उनसे बालक की पुष्टि होती है। मनुष्यमात्रके लिये छः ऋतु हैं—(१) उत्पत्ति, (२) अस्तित्व, (३) वृद्धि, (४) पूर्णता, (५) गिरावट, और (६) नाश। दस प्राणोंकी पुष्टि करता हुआ मनुष्य इन छः ऋतुओंमेंसे गुजरता है। इस लिये ये अठारह साधन मनुष्यके विजयके लिये होते हैं। यह संक्षेपसे आध्यात्मिक तात्पर्य है। यज्ञविषयक अन्य बातोंका विचार करनेकी यहां आवश्यकता नहीं, तथापि यज्ञमें अठारह ऋत्विज होते हैं, यह बात यहां अवश्य कहनी चाहिये—

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।

"तैरकर पार होनेके यज्ञरूप साधन बडे कच्चे हैं जिनमें अठारह ऋत्विजोंका कर्म होता है।" अठारह ऋत्विजोंके नाम ये हैं—(१) होता, (२) ब्रह्मा, (३) अध्वर्यु, (४) प्रतिप्रस्थाता, (५) आग्नीध्र, (६) मैत्रावरुण, (७) ब्राह्मणाच्छंसीः, (८) पोता (९) नेष्टा (१०) अच्छावाक, (११) ग्रावस्तोता, (१२) सुब्रह्मण्य, (१३) उन्नेता, (१४) उद्गाता, (१५) प्रस्तोता, (१६) प्रतिहर्ता, (१७) सदस्य, (१८) शमिता। इनके अतिरिक्त और भी यज्ञमें होते हैं, (१) उपद्रष्टा, (२) सोमप्रवाक, (३) चमसाध्वर्यु। इसके सिवाय (१) यजमान, यजमानपत्नी आदि अनेक हैं। परंतु ऋत्विज अठारह ही हैं।

यज्ञ जो बाहिर किया जाता है जिसमें हवनकुंडमें आहुतियां डालीं जातीं हैं वह सच्चा यज्ञ नहीं है । **सच्चा यज्ञ मनुष्यके शरीरमें हो रहा है,** इसको व्यक्त रूपमें समझानेके उद्देशसे कुंडमें आहुतियोंका यज्ञ किया जाता है । इस मुख्य यज्ञमें आत्मा यजमान है, बुद्धि यजमानपत्नी है तथा मन आदि सब इंद्रियगण ऋत्विज् हैं । इस यज्ञका ज्ञान होना आवश्यक है ।

पुरुषोवाव यज्ञः । छां. उ. ३।१६

" **मनुष्य ही एक सच्चा यज्ञ है ।** " इस यज्ञके जो अठारह ऋत्विज हैं उनकी गिनती निम्न प्रकार है—

७ **ज्ञानेंद्रिय**=२ आंख, २ कान, १ नाक, १ जिव्हा, १ त्वचा,
७ **कर्मेंद्रिय**=२ हाथ, २ पांव, १ मुख, १ मूत्रद्वार, १ गुदा;
४ **अंतःकरणचतुष्टय**=मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार.
१८

इन ऋत्विजोंके साथ यह यज्ञ मनुष्य शरीरमें हो रहा है यह, यज्ञ १२ महिने और छः ऋतुओंमें एकसा चल रहा है । यहां भी अठारह ही संख्या है—

१२ मास.
६ ऋतु.
१८

इसी शरीरमें जो प्राणोंका यज्ञ चल रहा है उसके दस प्राण, दो स्तन और छः अवस्थायें मिलकर अठारह होते हैं; इसका वर्णन पूर्व स्थलमें कियाही है । अब अन्यत्र १८ संख्या का प्रभाव देखना चाहिये—

आत्माका भाव जैसा उक्त यज्ञद्वारा व्यक्त हो रहा है, उसी प्रकार आत्मा "**वाग्यज्ञ**" कर रहा है। सब शब्दसृष्टि उसीके वाग्यज्ञका विस्तार है। शब्दमें स्वर और व्यंजनोंकी व्यापकता है। इन स्वरव्यंजनोंमें भी १८ संख्या निम्न प्रकार व्याप्त है-

१८ स्वर=अ, आ, आ ३ इ, ई, ई ३, उ, ऊ, ऊ ३, ऋ, ॠ, ॠ ३, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ, (अ): । (अके साथ 'म्' लगाकर "अं" होता है इसलिये वह भिन्न है)

१८ व्यंजन=क, च, ट, त, प, । ग, ज, ड, द, ब । ह, य, र, ल, व, । श, ष, स । (पंच वर्गोंके अन्य व्यंजन इन्हींपर बल देनेसे बनते हैं, जैसा क+ह=ख; ग+ह=घ; च+ह=छ इत्यादि)

स्वर स्वयंप्रकाशी होनेसे "**आत्माका भाव**" बताते हैं, और व्यंजन स्वरोंका सहारा लेते हैं, इसलिये वे प्राकृतिक भाव बता रहे हैं। आत्मा स्वतंत्र है और प्रकृति परतंत्र है। इसी प्रकार (स्व-र) स्वयं प्रकाशी स्वर होते हैं और (व्यंजन) चटणीके समान दूसरेके साथ काम करनेवाले व्यंजन होते हैं । **व्यंजन** का अर्थ "**चटणी**" है। चटणी मुख्य भोजन नहीं है, मुख्य भोजन के साथ उसका उपयोग होता है।

आत्मा का ज्ञान प्रतिपादन करनेवाली गीतामें अठारह अध्याय हैं, उनके नाम निम्नप्रकार है-(१) विषादयोग, (२) सांख्ययोग, (३) कर्मयोग, (४) कर्मब्रह्मार्पणयोग, (५) कर्मसंन्यासयोग, (६) आत्मसंयमयोग, (७) ज्ञानविज्ञानयोग, (८) अक्षरब्रह्मयोग, (९) राजविद्याराजगुह्ययोग, (१०) विभूतियोग, (११) विश्वरूप-

दर्शनयोग, (१२) भक्तियोग, (१३) प्रकृतिपुरुषनिर्देशयोग, (१४) गुणत्रयविभागयोग, (१५) उत्तमपुरुषयोग, (१६) दैवासुरसंपद्विभागयोग, (१७) श्रद्धात्रयविभागयोग, (१८) संन्यासयोग। इन अठारह योगोंके द्वारा श्रीभद्भगवद्गीतामें आत्माका ज्ञान और आत्मोन्नतिके उपाय बताये हैं।

इन अध्यायोंका परस्पर संबंध भी है देखिये—(१) आत्मोन्नतिका प्रयत्न करनेवाला कर्तव्याकर्तव्यका विचार न होनेकी अवस्थामें खिन्न होता है, (२) इस अवस्थामें उसको प्रकृतिपुरुष विवेक का तत्वज्ञान दिया जाता है, (३) यह ज्ञान प्राप्त होते ही उसको अपने कर्तव्यका पता लगता है और परमपुरुषार्थ करनेके लिये वह सिद्ध होता है, (४) पहिले पहिले वह स्वार्थीकर्म करता है परंतु पश्चात् उसको पता लगता है कि ब्रम्हको अर्पण करकेही जो कर्म किये जाते हैं वे तारक होते हैं, (५) इस प्रकार वह कर्म-संन्यास का तत्व जानता हुआ त्यागवृत्तिपूर्वक कर्म करता है अर्थात् निःस्वार्थी कर्म करता है, (६) इस समय उसको आत्मसंयम करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। (७) तत्पश्चात् वह ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करके, (८) अक्षर ब्रह्मके साथ संयुक्त होनेकी इच्छा करता है, (९) इस समय उसको राजविद्याके गुह्य तत्वज्ञानका बोध होता है, (१०) उक्तज्ञान होतेही आत्माकी विभूतिका अनुभव उसको होने लगता है, (११) और वह विश्वरूपमें आत्मदर्शन करने लगता है। (१२) सच्ची भक्ति इस समय उत्पन्न होती है, (१३) भक्ति करते करते प्रकृतिपुरुषका अनुभव

होता है, (१४) तथा तीन गुणोंका विचार उसके मनमें ठीक प्रकार आता है, (१५) और उत्तम पुरुषके साथ संयुक्त होनेका प्रयत्न करता है, (१६) इस समय दैवी और आसुरी भावोंका युद्ध करना पडता है, (१७) इस युद्धमें विजय प्राप्त करके श्रद्धाके साथ, (१८) निष्काम संन्यासका अनुष्ठान करके अपने प्राप्तव्य अवस्थामें पहुंचता है ।

प्रत्येक अध्याय के सूचक भावोंका इस प्रकार परस्पर संबंध है, और मोक्षमार्गकी ये अठारह सीढियां हैं यह बात उक्त निरूपणसे स्पष्ट विदित हो सकती है । जिस महाभारतमें यह गीता है उस महाभारतके भी अठारह पर्व हैं—(१) आदि, (२) सभा, (३) वन, (४) विराट्, (५) उद्योग, (६) भीष्म, (७) द्रोण, (८) कर्ण, (९) शल्य, (१०) सौप्तिक, (११) स्त्री, (१२) शांति, (१३) अनुशासन, (१४) आश्वमेधिक, (१५) आश्रमवासि, (१६) मौसल, (१७) महाप्रस्थानिक, (१८) स्वर्गारोहण, ये अठारह नाम मुख्य पर्वोंके हैं, इनके अंदर छोटे मोटे मिलकर सौ उपपर्व हैं ।

इनमें पहिला " आदिपर्व " और अंतिम " स्वर्गारोहण पर्व " है । सबका आदि अंत इसी प्रकार होता है । बीचमें युद्ध करना पडता है, युद्धके पूर्वकी तैयारी वनमें जाकर एकांतमें बैठकर ही होती है । इसी प्रकार अन्य पर्वोंके नाम विशेष बातोंके सूचक स्पष्ट रीतिसे हैं । यह नामोंका भाव यदृच्छासे नहीं हुआ है

परंतु इसकी योजनामें हेतु है। विचार करनेपर इस हेतुका पता लग सकता है।

यह भारतीय कौरव–पांडवोंका युद्ध १८ दिनही चलता रहा, और उसमें १८ अक्षौहिणी सैन्य युद्धमें संमिलित हुआ था। विचार करनेसे पता लगता है कि इसमें यह संख्या विशेष रूपकका बोध कर रही है। अर्थात् किसी विशेषकारणके लियेही १८ संख्या यहां रखी है।

भागवत, देवीभागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि कई पुराणोंकी श्लोकसंख्या १८ हजार है। पुराण भी १८ हैं, उनके नाम—उनमें छः पुराण सात्विक हैं–(१) विष्णु, (२) नारद, (३) भागवत, (४) गरुड, (५) पद्म, (६) वराह। छः पुराण राजसिक हैं— (७) ब्रह्म, (८) ब्रह्मांड, (९) ब्रह्म–वैवर्त, (१०) मार्कंडेय, (११) भविष्य, (१२) वामन, तथा छः पुराण तामस हैं– (१३) मत्स्य, (१४) कूर्म, (१५) लिंग, (१६) शिव, (१७) स्कंद, (१८) अग्नि।

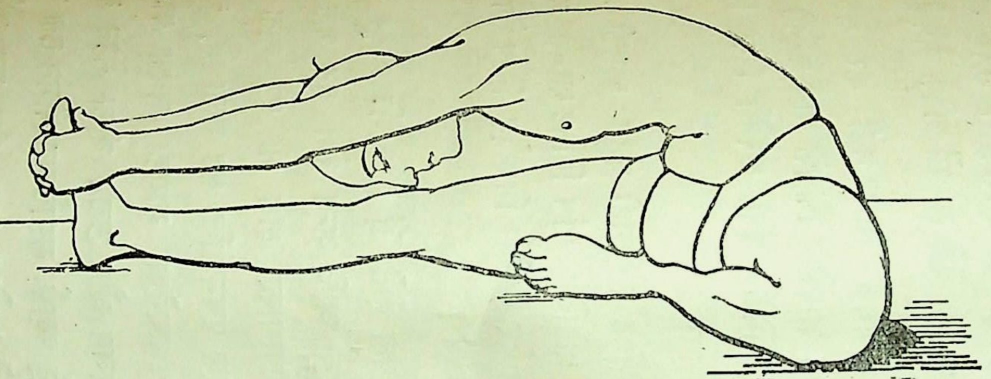
उपपुराण भी १८ ही हैं–(१) सनत्कुमार, (२) नारसिंह, (३) बृहन्नारदीय, (४) शिव, (५) दुर्वास, (६) कापिल, (७) मानव, (८) औशनस, (९) वारुण, (१०) कालिका, (११) साम्ब, (१२) नंदी, (१३) सौर, (१४) पाराशर, (१५) आदित्य, (१६) माहेश्वर, (१७) भागवत, (१८) वासिष्ठ।

स्मृतियांभी १८ हैं—(१) मनु, (२) याज्ञवल्क्य, (३)

अत्रि, (४) विष्णु, (५) हारीत, (६) औशनस, (७) अंगिराः, (८) यम, (९) आपस्तंभ, (१०) संवर्त, (११) कात्यायन, (१२) पराशर, (१३) व्यास, (१४) शंख, (१५) दक्ष, (१६) शतातप, (१७) वसिष्ठ, (१८) बृहस्पति।

अन्य पदार्थोंकी गिनती भी १८ संख्यामें की गई है, जैसे १८ देश, १८ पोशाख, १८ धान्य, १८ पशु, १८ पक्षी, १८ वृक्ष, १८ हथियार, १८ कारीगर, १८ धातु, १८ क्षार, १८ शिल्प-संहिता, १८ ज्योतिष, १८ नदियां, १८ उपनिषद्, १८ क्षेत्र, १८ पर्वत, १८ कारखाने और ओहदेदार, १८ शिरकी पगडियां, १८ भाषाएं इ०। तथापि यह गिनती ऐसी प्रतीत होती है कि किसीन किसी प्रकार १८ की संख्या पूर्ण करनी आवश्यक ही है।

इस लेखके प्रारंभ में जो प्रमाण दिये हैं, वहांकी गिनती सहेतुक है। इसलिये विचार करना चाहिये कि उसमें गुप्त बात क्या है। इस समयतक विचार करने पर हमारे ध्यानमें वह बात नहीं आई। इसलिये यह विषय सुविचारी पाठकोंके सन्मुख रखा है। जो कोई विचार करना चाहे आगे विचार कर सकता है। देश, पोशाख, धान्य आदिके भी नाम हमारे पास हैं, परंतु उनका कोई परस्पर संबंध विदित नहीं होता, इसलिये इस लेखमें उनके नाम नहीं दिये। इसके आगे विचार करके यदि कोई पाठक लेख भेजेगा, तो उसको अवश्य स्थान दिया जायगा।



जानुशिरासन ।

एक पांवकी एडीको गुदा और अंडकोश के बीचमें जमाकर दूसरा पांव सीधा आगे रखिये । परंतु ध्यान रहे कि जिसकी एडी गुदा और अंडको शके बीचमें रही है उसके पांवके तलेसे दूसरी जंघापर अच्छी प्रकार दबाव. आजावे । तत्पश्चात् दोनों हाथोंसे उस फैले पांवको पकड कर उसी पांवके घुटनेपर सिर अथवा नाक लगाकर बैठिये । यह आसन पांच मिनिटसे आधा घंटा तक कर सकते हैं ।

यह आसन करनेके समय नाभिसमेत पेटको पीठ की ओर अंदर खींचनेसे बहुत लाभ होता है; परंतु ऐसा करनेपर प्राणको स्थिर करना पडता है, इसलिये इस प्रकार यह आसन बहुत देर करना कठिण होजाता है ।

तथापि नाभिसमेत पेटको अंदर खींचकर और साथ साथ गुदा और शिस्नके आसपासकी सब नस नाडियां मनके द्वारा ऊपर खींचकर यह आसन करनेपर वीर्यस्थिरता आदिके संबंधमें अनेक लाभ होते हैं।

जो इस प्रकार आकर्षण विधिके साथ नहीं कर सकते वे उसके विनाभी कर सकते हैं। आकर्षण विधिके साथ करनेसे वीर्य-रक्षण होगा, तथा आकर्षण विधिके विना करनेसे निम्न लिखित लाभ हो सकते हैं।

यह आसन मिनिट दो मिनिट करनेसेही बहुत लाभकी आशा करना व्यर्थ है। कमसे कम प्रतिदिन पांच मिनिट करनेसे लाभका अनुभव होता है और अधिक देर करनेसे निःसंदेह निम्न रोग दूर हो जाते हैं, अथवा होतेही नहीं।

प्लीहा और यकृत्‌के दोष कम होते हैं। जीर्णज्वर दूर होता है। जीर्णज्वरसे होनेवाले पांडुता आदि अन्य रोग हट जाते हैं। कास, श्वास और प्राथमिक अवस्थाका क्षय भी हट जाता है। आंतोंके दोष दूर होनेके कारण पचनशक्ति बढ जाती है, अच्छी भूख लगने लगती है। भूख लगनेपर गायका अथवा बकरीका दूध पीना तथा सात्विक भोजन और उत्तम घीका सेवन करना अत्यंत आवश्यक है। चटपटे पदार्थ, मसालेदार भोजन तथा अन्य रूक्ष पदार्थ खाने नहीं चाहिये। योग्य फल, कंद मूल आदिका सेवन करनेसे बहुत लाभ होता है। बहुत लोग भूख लगनेपर अयोग्य पदार्थोंका सेवन करके फिर अपना स्वास्थ्य बिगाड देते हैं।

जिन रोगोंमें मलमूत्रका स्तंभन होता है, आंतोंमें उष्णता बढ जाती है और वायुका प्रकोप होता है, उन रोगोंको, यह आसन पूर्वोक्त पथ्यकेसाथ करनेपर दूर करता है। पेटका दर्द, नाभिस्थान का शूल अथवा जो सिरदर्द पेट बिगडनेसे होता है वह इस आसनके अभ्याससे दूर हो जाता है। सिरका भारा पन, नेत्रोंका दाह, अंगोंकी दुर्बलता, मूत्र स्थानके क्लेश, खुजली, आमके कारण होनेवाला सूक्ष्मज्वर, मुख की अरुचि, बेचैनी, आलस्य आदि-सब इसके उत्तम अभ्याससे दूर होते हैं। तात्पर्य यह है कि जिन रोगोंकी उत्पत्ति आंतोंके दोषोंसे होती है वे रोग इस आसनके अभ्याससे दूर हो जाते हैं।

यह आसन एक वार दांये पांवसे करनेपर दूसरी वार बांये पांवसे अवश्य करना चाहिये। इसमें भूलना नहीं चाहिये। तात्पर्य दांये और बांये अंगोंके साथ इसका अभ्यास सम प्रमाणमें होना आवश्यक है। जितनी वार और जितना समय एक अंगसे किया है उतनी वार और उतना समय दूसरे अंगसे करना चाहिये। ऐसा न करनेपर कोई दोष नहीं होगा, परंतु लाभमें अवश्य हानि होगी।

इसकी दूसरी रीति—जिस पांवकी एडी गुदा और अंडकोश के बीचमें रखनी होती है वह पांव वहां नीचे न रखते हुए, उसके तलवेको फैले हुए पांवकी जंघापर रखकर शेष आसन पूर्ववत् करनेसे भी यह आसन सिद्ध होता है। इससे भी पूर्ववत् ही लाभ होते हैं। पहिले पहिले यह आसन बहुत देर नहीं होता, परंतु अभ्यास

बढ जानेपर बहुत देरतक बैठा जा सकता है। कईयोंको तो पहिले दिन घुटनेपर सिर लगानाही कठिन प्रतीत होगा, परंतु महिना दो महिनोंके अभ्याससे लग सकता है। कमरमें और पेटमें विजातीय द्रव्य बहुत होनेके कारण घुटनेपर सिर लगाना कठिन हो जाता है। प्रतिदिन वहांके स्नायुओंपर खींचनेका दाब पडनेसे मास दो मासोंमें सब स्नायु और कमर तथा पेटकी नस नाडियां शुद्ध और निर्मल हो जातीं हैं। कईयोंका पेट कद्दुके समान बडा होता है, वे लोग ऐसा बडा पेट होते हुए भी अपने आपको तन्दुरुस्त समझते हैं, यह उनकी गलती है। मृत्युका निवास बडे पेटके अंदर होता है। अपनेही मृत्युको अपने पेटके अंदर स्थान देना कोई अच्छा कार्य नहीं है। इस आसनसे पेटकी अवस्था ठीक होती है और वहांसे मृत्युको दूर भागना पडता है।

थोडा जलपान करके यह आसन करनेसे शौच शुद्धि होनेमें बडी सहायता होती है। तथापि शौचके पूर्व इस आसनको करना योग्य नहीं है। एक पांवसे जमीनपर खडा रहकर टेबलपर दूसरा पांव फैलाकरभी यह आसन हो सकता है। इस समय टेबलपर फैले पांवके घुटनेपर सिर रखना होता है और हाथ पूर्ववत् ही रखने चाहियें।

शीर्षासन का अनुभव।

(लेखक—श्री. वैद्य गणेश पां. परांजपे, सांगली)

शीर्षासन के विषयमें मेरा अनुभव यह है कि सिरकी कई बीमारियोंमें इससे बडा लाभ होता है। पृष्ठवंशमें जो रस है वह मस्तिष्ककी ओर योग्य रीतिसे पहुंचनेके कारण मज्जातंतुओंकी दुर्बलता इस आसनके करनेसे दूर होती है। तथा जितने रोग मज्जातंतुओंकी अशक्ततासे होते हैं वे सब दूर होते हैं। सिरदर्द, आंखोंकी जलन, दृष्टिकी मंदता, कानमें आवाज होना, बधिरता, आदि विकार बहुत अंशमें दूर होते हैं। नाभिकेपास जो पाचक चक्र है, उसको योग्य गति प्राप्त होनेके कारण तथा उसका रुधिराभिसरण ठीक होनेके कारण पचनक्रिया ठीक होती है। तथा वीर्यनाश, स्वप्न-अवस्था, धातुक्षीणता आदि विकार दूर होते हैं। मैंने इस आसनसे अपने रोगियोंकी अनेक वार चिकित्सा की है और उससे विलक्षण गुण प्राप्त हुआ है। इसलिये मुझे आशा है कि अन्योंको भी इससे अवश्य लाभ होगा। कई अनुभव नीचे देता हूं—

(१) म. नरहर दत्तात्रय मुजुमदार (विद्यार्थी, विलिंगडन कालेज, सांगली) लिखते हैं—" मुझे सिर दर्दकी बहुत पीडा थी, औषधोंसे आराम नहीं हुआ। पश्चात् आपने शीर्षासन करनेको कहा। मैं यह आसन सात बजे करता था। प्रतिसमय ४।५ मिनिटही करता था जिससे मेरा सिरदर्द हटगया। मेरे अनुभवसे यह शीर्षासन सिरदर्दके लिये बडा लाभदायक है।" (ता. १४।११।२२)

(२) म. चंपालाल शिवराम मारवाडी, सोलापुर, लिखते हैं— " अपनी आयु के २१ वे वर्ष आम्लपित्तके रोगसे अशक्तता हुई। यह बीमारी ३ वर्ष थी। बहुत औषध किये परंतु कोई आराम नहीं हुआ। तेईसवे वर्ष साष्टांगप्रणिपात, शीर्षासन, शेषासन तथा इतर व्यायाम करने लगा जिससे एक वर्षके अंदर मेरा शरीर उत्तम प्रकार से सुधर गया। " (ता. ३०।७।२२)

(३) म. हरिहर वा. देशपांडे, उमरावती वऱ्हाड, लिखते हैं— " अग्निमांद्य जीर्णज्वर, बद्धकोष्ठता आदिके कारण मैं बहुतही बीमार रहा था। दो वर्ष औषध सेवन करनेपर भी कोई गुण नहीं हुआ। पश्चात् शीर्षासन, मयूरासन, साष्टांगनमस्कार, आदि करने लगा, तथा साथ साथ मलखांब, बैठक, कुस्ती, आदि भी करने लगा। तैरना भी किया करता था। इससे एक वर्षमें शरीर अच्छी प्रकार सुधरगया। अब मैं पूर्णतासे नीरोग हूं। " (ता. २२।६।२२)

(४) म. बाळू आण्णा मोजकर, जैन बोर्डिंग सोलापुर, लिखते हैं—संग्रहणी, पांडुरोग, सूझन आदिसे मैं रोगी था ! कई वर्ष औषध लेते लेते थक गया, तथापि गुण प्राप्त नहीं हुआ। पश्चात् मैं मयूरासन, शीर्षासन, दौडना, खोदना, दंड और बैठक करने लगा और दवाइयां छोड दीं। उक्त व्यायामोंसेही मेरा स्वास्थ्य अच्छी प्रकार सुधर गया। (ता० १७।६।२२)

इस प्रकार औरोंकेभी अनुभव बहुतसे हैं। आशाहै कि अन्य लोग भी दवाइयोंका दास्य छोडकर आसनोंसे लाभ उठावेंगे।

"व्यायामसे रोग दूर होते हैं।"

इस विषय पर मेरा पूर्व लेख " बैदिक धर्म " में प्रसिद्ध होने पश्चात् कई पाठकोंसे अनेक पत्र मेरे पास आगये हैं । परंतु उन पत्रोंमें रोग कौनसा है, अवस्था कैसी है, तथा अपनी आयु, रहने सहनेकी रीति, ग्रामकी आबहवा, ब्रह्मचर्यकी अवस्था, विवाहित या अविवाहित, रोगका मूल मातापितासे है या स्वकष्टार्जित है, इत्यादि बातोंका कुछभी वर्णन नहीं है । ऐसी अवस्थामें उत्तर देना अशक्य है; इसलिये जो पाठक मेरे साथ पत्रव्यवहार करना चाहते हैं, वे उक्त प्रकार अपना संपूर्ण वृत्तांत स्पष्ट शब्दोंमें लिखें, अपना पता सुवाच्य देवनागरीमें अथवा सुपाठ्य अंग्रेजीमें लिखे। यहां उर्दू पढनेवाला कोई नहीं है । तथा यदि पत्र पढा ही नहीं गया, तो उत्तर देना अशक्य हो जाता है । पत्रके साथ डाक व्यय केलिये एक आनेका टिकट भी रखना चाहिये । इस प्रकार पत्र आनेपर आरोग्य वर्धक व्यायामोंके विषयमें हमारे नियम बताये जायगे । मेरा पता निम्न प्रकार लिखिये—

वैद्य गणेश पांडुरंग परांजपे, गणपति पेठ
पो. सांगली (S. M. C.)

पता भी उर्दूमें न लिखिये । उर्दूमें पता पढनाभी यहां मुश्कील है, इसलिये पत्र समयपर मिलता नहीं, अथवा गुम हो जानेकाभी डर होता है । कई पत्र देवनागरी में लिखे होते हैं, परंतु पढना इसलिये अशक्य होता है कि अक्षर दुर्बोध रीतिसे लिखे होते हैं । इसलिये निवेदन है कि पत्र पढने योग्य देवनागरी अथवा अंग्रेजीमें लिखिये ॥

योग के व्यायाम ।

मेरा लेख " वैदिक—धर्म " के क्रमांक ३६ में प्रसिद्ध होनेके पश्चात् प्रतिदिन कई पत्र मेरे पास आ रहे हैं। प्रत्येक को उत्तर देनेके लिये मेरे पास समय नहीं है, इसलिये सबको मिलकर यह उत्तर दे रहा हूं—

(१) मेरी योगकी व्यायाम पद्धतिका पुस्तक अभी तक छपा नहीं है। यथा संभव साल दो सालोंमें पुस्तक प्रसिद्ध होगा। इस समय उसकी तैयारी हो रही है।

(२) यहां बेळगांवमें कोई सज्जन आ जायगा, तो उसको मैं अपनी पद्धति सिखा सकता हूं। परंतु यहां रहने आदिका सब प्रबंध उसकोही करना चाहिये। वह प्रबंध मैं नहीं कर सकता।

(३) मार्च, अप्रैल, तथा मई ये तीन मास यहां रहनेके लिये बहुत अच्छे हैं। रहने और भोजनादिका व्यय यहां २९) रु. प्रतिमास के करीब होगा।

(४) इस समय यहां कोई व्यायामशाला नहीं है। बनानेका विचार है। यदि कोई धनिक इस लोकोपकारी व्यायामशालाके मकानकेलिये ९।६ हजार रु. देगा, तो मैं अपनी नौकरी छोड़कर आजन्म यही आरोग्यकारक व्यायामकी पढाईका कार्य करनेकेलिये सिद्ध हूं।

नागेश वासुदेव गुणाजी, समादेवी गल्ली, बेळगांव.

वैदिक साहित्य मंडल।

देहली नगरमें " वैदिक-साहित्य-मंडळ " स्थापित हुआ है। जिसके उद्देश्य ये हैं— (१) वेदका सरळ अनुवाद अनेक भाषाओंमें करना (२) वैदिक सिद्धांतोंके पोषक लेखोंसे युक्त मासिक चलाना, (३) वैदिक धर्मसंबंधी लेखोंका मुद्रण, लेखकोंको उचित पुरस्कार देकर, करना।

इस मंडलके संयोजक—डॉ. केशवदेव शास्त्रीजी M.D. सभापति; ला. नारायण दत्तजी, ला. ज्ञानचंद्रजी, सेठ रघूमलजी, ला. दीवान चंद्रजी, ला. बुलाकी रामजी; श्री. पं. इंद्रजी विद्या वाचस्पति, मंत्री (नया बाजार, देहली)।

धनका प्रबंध—सौ रु. का एक हिस्सा ऐसे दो हजार हिस्सोंसे दो लाख रु. इकट्ठा करना और इस धनसे उक्त कार्य करना है।

[**संपादकीय संमति**—वैदिक साहित्य मंडलका उद्देश्य अत्यंत प्रशंसनीय है। जो कार्य करना अत्यंत आवश्यक है वह यही है। जहां डा. केशवदेवजी जैसे विद्वान और श्री. पं. इंद्रजी जैसे बुद्धिमान वेदशास्त्रसंपन्न कार्यकर्ता होंगे; वहां कार्य की सिद्धि निःसंदेह होगी। इसलिये सबको उचित है कि वे मंत्रीजीसे पत्रव्यवहार करके इस मंडलके हिस्सेदार बनें और अन्यप्रकार का भी सहाय्य करें। —**संपादक-'वैदिक धर्म'**]

रोगोत्पादक कृमि ।

(लेखक—पं. रामचन्द्रजी विद्यारत्न, अध्यापक
गुरुकुल—हुशंगाबाद.)

कुछ लोग वेद के एकदो शब्द को देखकर प्रकरण और विषय को न समझकर वेदकी महत्ता से परिचित न होने के कारण वृथा आक्षेप किया करते हैं। उनमेंसे यह भी एक आक्षेप है जो कई लोग करते हैं कि वेदमें असंभव बातें देखनें में आतीं हैं, जैसे अथर्व वेद के आठवें काण्ड के अनुवाक तीसरे में कुछ ऐसे प्राणियों का वर्णन आता है कि जिनके पैर पीछे को, एंडी आगे को, और मुखसामने को, जो मकानों पर सायंकाल के समय गधों सरीखे शब्द किया करते हैं, उन्हें गन्ध से दूर करो। जैसा कि:—

येषां पश्चात् प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरोमुखा ॥

अथर्व ८।६।१५

ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभ नादिनः। कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः, तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् विनाशय ॥

अथर्व ८।६।१०

इन दो मन्त्रों के पाठों से पता चलता है कि, निस्सन्देह इन मंत्रों में उपरोक्त वर्णन है। यदि लोग यहां इस प्रकरण का यथावत् अनुशीलन करें, तो पता लगेगा कि, अज्ञात हिंसक प्राणियों से रक्षण के उपाय यहां कथन किये हैं। देखिए:—

पहिले मंत्र १९ का अर्थ तो स्पष्ट है कि, "जिनके पैर पीछेको और एड़ी आगे को और मुख सामने को है।" दूसरे मंत्रका अर्थ देखिये:—

(ये) जो (कुसूलाः) कुछस्थूल (कुक्षिलाः) पेटल अर्थात् बड़े पेटवाले (ककुभाः) क नाम सुखके कुभाः दुष्मन् अर्थात् दुःख देनेवाले (स्रिमाः) सिध्मल रोगोंको (करुमाः) करनेवाले (ये) जो (गर्दभनादिनः) गधे सरीखा शब्द करनेवाले (सायं) सायंकालके समय (शालाः) गो शाला; भोजन शाला, पाक शाला, आदि शालाओंमें (परिनृत्यन्ति) नाचा करते हैं, (तान्) उन (विषूचीनान्) उड़कर लगनेवाले, रोगोंको लानेवाले, सब दुष्ट जन्तुओंको (ओषधे) हे ओषधे (त्वम्) तूं (गन्धेन) अपने सुगंधसे (विनाशय) नष्ट कर ॥

वेदकी कैसी उत्तम शैली है, जिसे विचारशील देखते ही उसकी महत्ता को समझेंगे। कैसे स्पष्ट और सार्थक विशेषणोंसे उक्त मंत्रोंमें विषयको स्पष्ट करनेकी कोशिस की गई है। अब देखना केवल यह है कि, उपरोक्त विशेषण युक्त उड़नेवाले और रोगोंको करनेवाले कौन हैं।

यदि सूक्ष्म वीक्षण यंत्र (खुर्दबीन) से देखा जावे तो रोगो-त्पादक जन्तुओंमें कुछ ऐसे प्राणी हैं, जिनके पंजे पीछेको (पार्ष्णीः) एंड़ी आगेको और पेट निकला हुआ, मुख सामने परंतु न अत्यन्त स्थूल जो दृष्टिसे गोचर हो सकें, ऐसे होते हैं और यहभी निश्चित है और सब ही जानते हैं कि सूर्यास्तके समय सायंकालके समय अत्यधिक संख्यामें—भोजन शाला या गोशाला या अन्य ऐसे ही शालाओंके आसपास कान लगाकर ध्यान से सुना जावे, तो विचित्र शब्द करते हुए ये ही नाचते हैं। वेद छोटे परंतु भयंकर जन्तुओंसे बचनेके लिये औषधि बतलाते हुए उपदेश करते हैं कि, इन्हे लोभान, गुग्गुल आदि औषधियों की धूप से नष्ट करो जिससे आप लोग सुखी हो सकें।

राष्ट्रकी उन्नतिका वैदिक गीत

(ले०—गणेशदत्त शर्मा गौड़ " इन्द्र " आगर)

(९)

एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि। एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्णवेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥

अथर्व० ३ । १९ । ९ ॥

" मैं इनके (आयुधा) शस्त्रास्त्रोंको (संस्यामि) उत्तम प्रकार से तेज करता हूं । इनका राष्ट्र (सु—वीरं) उत्तम वीरों से युक्त बना कर बढ़ाता हूं । इनका क्षात्रतेज (अ—जरं) अक्षय रहे, तथा इनका चित्त (जिष्णु) जयशाली करनेके लिये सब देव इनका (अवंतु) संरक्षण करें ।

(वसंततिलका वृत्त)

" मैं तेजयुक्त करता सब आयुधोंको ।
मैं राष्ट्रको दृढ बनाकर वीरतासे—
हूँ युक्त करता अरु मैं बढाता—
रक्षा करें जय करें सब देवता भी ॥ १ ॥
हो क्षात्रतेज इनका क्षय ना कभी भी
पावें सदा विजय और महानताको ।
हों शस्त्र अस्त्र सब शत्रु विनाशकारी—
होवें सुवीर यह राष्ट्र सदा सुखी हो ॥ २ ॥ "

(६)

अभिवर्धतां पयसाऽभि राष्ट्रेण वर्धताम् ।
रय्या सहस्र वर्चसेमौ स्तामनुपाक्षितौ ।

अथर्व. ६ ।७८।२

अर्थ—(पयसा) दूध पीकर बढ़ें, (राष्ट्रेण) राष्ट्रके स बढ़ें, सहस्रगुणित तेजसे युक्त धनोंसे ये (दोनों) भरपूर हों।

(भुजंगीवृत्त)

" बढ़ो दूध पीके अगाड़ी सदा—
बढ़ो राष्ट्र के साथ में ही मुदा ।
करो वृद्धि प्यारे सदा राष्ट्रकी—
हजारों गुणोंसे धनैश्वर्य की । "

(७)

(भद्रकामनाका वैदिक-गीत)

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः॥ स्थिरैरंगै स्तुष्टुवा ंसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः । "

ऋ० १।८९।८

अर्थ—(कर्णेभिः) कानोंसे अच्छीं बातें सुनें, (अक्षभिः आंखोंसे उत्तम पवित्र दृश्यही देखें, सुदृढ अवयवोंसे युक्त शरीरों (देवहितं) देवों भद्र पुरुषोंका हित (यत् आयुः) जितनी आयु है वहां तक करते रहें ।

(शिखरिणीवृत्त)

"सुनेंगे कानोंसे शुभ वचन कोही हम सदा ।
भले दृश्यों कोही नयन नित देखें हर घडी ।
महाशक्तीवाले अवयव हमारे वदन के—
सदा श्रेष्ठोंकाही उमरभर सच्चा हित करें ।"

(८)

(सत्यव्रतका वैदिक गीत)

ॐ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि, तच्छकेयं,
तन्मेराध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

य० १।९

अर्थ—हे तेजस्विन् ! व्रतपालक ! मैं (व्रतं) व्रत–नियम–का पालन करूंगा। उसके पालन करनेकी शक्तिसे युक्त मैं हो जाऊं। वह मेरा हेतु सिद्ध हो। यह मैं (अनृतात्) असत्यसे सत्यकी ओर जाता हूं।

(वंशस्थविल वृत्तम्)

"व्रतेश अग्ने ! व्रत पूर्ण मैं करूँ
सदा उसीके हितकष्ट मैं सहूँ ।
सु-सिद्ध होवे व्रतं पूर्ण हे प्रभो !
असत्य को छोड सदा सुखी बनूँ ।"

(९)

(विषधरोंसे बचनेका वैदिक गीत)

" ॐ यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमंतजब्धो भृमलो गुहा शये ॥ क्रमिर्जीन्वत्पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन् भोम सृपत् यच्छिवं तेन नो मृड ॥" अथर्व १२।१।४६

अर्थ— " हे पृथिवी ! जो सर्प और (तृष्टदंश्मा) सख्त काटने वाला (वृश्चिकः) बिच्छू है वह (हेमंत–जब्धः) हेमंत ऋतुकी सर्दीसे सिकुड़ा हुआ घबराकर (गुहा–शये) भूमिके विवरों रहा है, वह तथा अन्य कोई कृमि जो ये सब (प्रावृषि) वृष्टि समयमें (एजति) बहुत हलचल करते हैं, उसमें से कोई भी (मा न उपसृपत्) मेरे पास न आवे जो (शिवं) शुभ है उससे (नः मृडः) हमें सुख दो ! "

(तोटक वृत्तम्)

पृथिवी अहि वृश्चिक जो तुझमें—
घुसि बैठि रहे हिमकी ऋतुमें ।
सिकुड़े दुबके घबरा कर जो—
विषयुक्त अनेक जु कीट अहैं ।
बरसातगिरे तब दुम करें—
जब शीत पडे लुकि बैठि रहें ।
इस भाँति उपद्रव जो करते
रख दूर; सुखी कर दे उनसे ।

स्वाध्याय मंडलके पुस्तक।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।" मूल्य १) एक रु.।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। "एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥) आठ आने।

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=) दस आने।

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. =) दो आने।

(४) देवता विचार। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥) आठ आने।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।) सवा रुपया।

[४] ब्राह्मण-बोध-माला।

(१) शत-पथ बोधामृत। मू० ।) चार आने।

[५] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग। मू. -) एक आना।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग। मू. =) दो आने।
(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक। मू ≡) तीन आने।

[६] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। मू. १॥) डेढ रु.।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग। मू. १॥) डेढ रु.।

[७] आगम-निबंध-माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।-) पांच आने।
(२) मानवी आयुष्य। मू. ।) चार आने।
(३) वैदिक सभ्यता। मू.≡) तीन आने।
(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र। मू.।) चार आने।
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥) आठ आने।
(६) वैदिक सर्प-विद्या। मू. ॥) आठ आने।
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥) आठ आने।
(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥) आठ आने।
(९) शिव संकल्पका विजय। मू. ॥।) बारह आने।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता। मू. ॥) आठ आने।
(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥) आठ आने।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र। मू. ≡) तीन आने।
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. =) आने।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल; औंध (जि. सातारा)

प्रकाशक—बापुलाल कु. पटेल, प्रभाशंकर चाळ, सान्ताक्रुझ (मुंबई.)
मुद्रक—चिंतामण सखाराम देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सर्व्हंट्स ऑफ इंडिया सोसायटीज् बिल्डिंग, सँडहर्स्ट रोड, गिरगांव, मुंबई.

Registered No. B. 1463.

वर्ष ४ अंक ५ ॐ वैशाख संवत् १९८०.
क्रमांक ४१ मई सन १९२३.

वैदिक धर्म।

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-मासिक-पत्र।

देवस्य पश्य काव्यं, न ममार, न जीर्यति ॥
अथर्व. १०।८।३२

ईश्वरका काव्य देखो, जो मरा नहीं, और
जो क्षीण भी नहीं हुआ है।

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

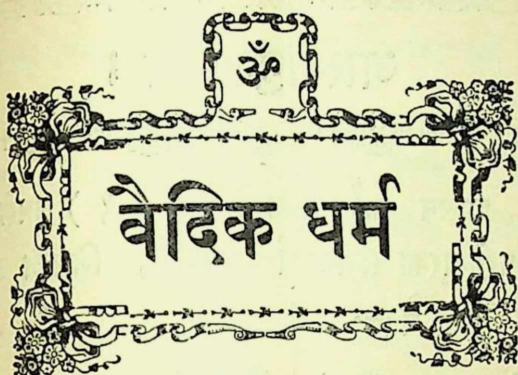
विजय कौन प्राप्त करता है ?

" उद्यमी, साहसी, धैर्यशाली, बलवान्, बुद्धिवान्, चतुर, उत्साही, पुरुषार्थी, पराक्रमी जो होता है, उसके पास विजय स्वयं आता है। "

योगवासिष्ठ । मु. व्य. ।

विषय सूची।

"तीन नवीन पुस्तकें."

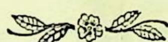


वैदिक धर्म

वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र ।

वर्ष ४ अंक ५ | वैशाख १९८०; मई, सन १९२३. | क्रमांक ४१

हमारा विजय ।



अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ॥ अस्माकं वीरा उत्तरे भवंत्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥

अ. १९।१३।११

" हमारे झंडे इकट्ठे होनेपर इंद्र हमें सहायता करे । हमारे सैनिकोंके शस्त्रास्त्र विजयी हों । हमारे वीर अधिक श्रेष्ठ बनें । देव युद्धोंमें हमारा रक्षण करें ॥ "

आत्मानुशासन ।

जगत्में शासन कई प्रकारके हैं। (१) सबसे ऊपर एक जगन्नियंता परमेश्वरका सर्वांगपूर्ण शासन है, जिसका उल्लेख वेदों निम्न प्रकार आया है—

(१) ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ॥
य. ४०।

(२) इंद्रो यातोऽवसितस्य राजा ॥ ऋ. १।३२।१५

(३) ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा ॥
ऋ. ८।६।४

(४) एकराळस्य भुवनस्य राजसि ॥ ऋ. ८।३७।३

(१) इस जगतीमें जो पदार्थ मात्र है, उन सबमें ईश बसने योग्य है, (२) स्थावर जंगम का एक प्रभु राजा है, (३) सबका पूर्वज ज्ञानी ईश्वर स्वशक्तिसे सबका एक प्रभु है, (४) वह तू भुवनका एक राजा है।" इन मंत्रोंमें त्रिभुवनके एक सम्राट् का वर्णन है। इसीका शासन सर्वतोपरि है। इसीके आधीन सब रहते हैं। हमारे राजे महाराजे सम्राट्के आधीन हैं, ऐसे प्रभावशाली सम्राट् भी उस प्रभुके आधीन हैं। इस प्रभुका जो साम्राज्य शासन है, वह जीवित और जाग्रत है। इसके शासनमें सबको योग्य न्याय

मिलता है, "**कर्मोंके अनुमार यथा योग्य फल वही देता है।**" कोई भी इसकी शक्तिका अथवा शासनका निरादर नहीं कर सकता। इतनी इस प्रभुकी शक्ति अगाध है।

इसके जागतिक शासनमें "**ऋत और सत्य**" ये दो नियम कार्य कर रहे हैं। इनका उल्लंघन कोई कर नहीं सकता। इसका शासन ऐसा शांतिसे चल रहा है कि, उसके विपरीत कोई कभी जा नहीं सकता। देखिये यदि आपने बहुत खाया, तो आपको अजीर्ण हो जाता है, बालपनमें ब्रह्मचर्यका पालन न करनेपर तारुण्यमें कष्ट होते और आयुष्य क्षीण होता है, दूसरोंको कष्ट देनेपर मानसिक क्षोभ होकर अंतमें कष्ट देनेवालेका नाश होता है, इत्यादि फल प्रभुके शासनके प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। किसी किसी समय ये फल साक्षात् नहीं दिखाई देते, परंतु सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर उनकी प्रत्यक्षता हो सकती है। इसीलिये सभी साधुसंतों, ऋषिमुनियों और महात्माओंने इस शासनको सर्वतोपरि माना है।

इसके नीचे दूसरा शासन "**राज-शासन**" है। राष्ट्रमें जो राज्यशासन चलता है, उसके नियम साधारणतः पालन करने होते हैं। साधारणतः ऐसा इसलिये कहा है कि, जो नियम प्रजाजनोंकी उन्नतिके होंगे, वे ही पालन करने योग्य हैं; परंतु यदि कोई नियम अवनतिकारक निश्चित हुआ, तो उसको न पालना आवश्यक होता है। परमेश्वरके शासनके नियम सनातन होते हैं, उनमें हेरफेरकी आवश्यकता नहीं होती, परंतु मानवी बुद्धि अल्प होनेके कारण मनुष्योंके बनाये नियम परिस्थिति बदलते ही बदलने पडते हैं। अस्तु।

मनुष्य इस राज्यशासनसेभी साधारणतः बंधा है; चोरी करनेसे तथा अन्य गुन्हे करनेसे दंड होता है, इसलिये राज्यशासनके भयसे मनुष्य सदाचारमें रहता है, इस शासनका यही उपयोग है। जिस देशमें राज्यशासन ढीला होता है, वहांके लोगोंमें अपराध अधिक और जहांके शासक स्वकार्य तत्पर रहते हैं, वहांकी जनतामें अपराधियोंकी संख्या न्यून होती है। इसलिये सुराज्यशासन बहुधा जनताका हित करनेमें सहायता करता है। परमेश्वरका शासन सर्वतोपरि परंतु गुप्त है, राजाका शासन एकदेशी है परंतु प्रत्यक्ष है। परमेश्वरके शासनमें कभी अन्याय नहीं होता, परंतु मनुष्योंके शासनमें अनेक त्रुटियां होनेके कारण अनेक प्रकारका अन्याय होना संभवनीय है।

इसके नीचे जातिके भयसे, परिवारके डरसे, कुटुंबके अभिमानसे मनुष्य दुराचारमें प्रवृत्त नहीं होता, और पवित्र आचरण करनेका यत्न करता है। उक्त कोईभी शासन लीजिये उसमें एक बात है कि, "**दूसरेके भयसे अपना बचाव करना।**" परमेश्वरके भयसे पाप न करना, राजशासनके डरसे उपद्रव न करना, जातिकी भीतिसे निंदित कार्य न करना, इन सबमें बाहिरकी भीति है, जो मनुष्यको पापसे दूर रखती है। यद्यपि यह डर मनुष्यको पापसे बचाता है, तथापि "**दूसरेके भयसे अपना बचाव होनेमें एक प्रकारकी अपनी कमजोरीही व्यक्त होती है।**" इस प्रकारकी कमजोरी जबतक रहेगी, तबतक मनुष्यमें सच्चा मानवपन प्रकाशित होना अशक्य है। पाठक यहां पूछेंगे कि, क्या हम परमेश्वरसेभी

न डरें ? उत्तरमें निवेदन है कि " वैदिक धर्ममें परमेश्वर कोई भयका पदार्थ नहीं है"—

स नो बंधुर्जनिता स विधाता । य. ३२।१०

स नः पिता जनिता स उत बंधुः । अ. २।१।३

" वह ईश्वर हम सबोंका पिता, रक्षक, जनक, भाई, मित्र आदि है।" इसलिये स्पष्ट है कि, परमेश्वर मित्र होनेसे और सच्चा बंधु होनेसे उसके साथ वैसाही बर्ताव करना चाहिये। डरनेकी क्या जरूरत है ? हां जो दुराचारी हैं, वे डरते होंगे, क्योंकि वे बंधुत्वसे भ्रष्ट हुये हैं। **वैदिक धर्मके उपदेशके अनुसार आचरण होनेपर परमेश्वरसे प्रेमका संबंध उत्पन्न होता है,** वहां फिर डरावे की बात नहीं रहती। अस्तु। जो धीरवीर पुरुष होते हैं, वे राज्यशासनमें सुधार करनेके समय निडर होकरही कार्य करते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र निर्भयता ही प्रधानतया सदाचारके साथ रहती है। दुराचारके साथ भय होता है। इसलिये जो स्वयं सदाचारी होते हैं, वे निर्भय रहते हैं, और दुराचारीही रातदिन डरते रहते हैं। अर्थात् **" सदाचारी बनकर निर्भय होना सबको उचित है।"**

बाहिरके डरसे जो सदाचार मनुष्यके अंदर रहता है, वह बाहिरका डर हट जानेपर नहीं रह सकता। किसी नास्तिक विचार से परमेश्वरके अस्तित्वके विषयमें शंका उत्पन्न हुई, तो वह नास्तिक परमेश्वरसे डर कर पापसे बचने का यत्न नहीं करेगा; इसीप्रकार अन्यान्य डर हटनेपर उक्त केंद्रोंके विषयमें होनेवाले दुराचारोंसे बचना उस मनुष्यके लिये कठिन है, कि जो बाह्य डरके कारण सदा-

चारी रहता है। इसीलिये योगमें कहा होता है कि " आत्मानु-**शासन से अपनी शुद्धता करनी चाहिये।**" अपने ही स्वीकृत किये नियमोंसे अपनी पवित्रता शुद्धता और पूर्णता करनेका नाम "**आत्मानुशासन**" है, इसमें किसी बाहिरके डरावेका संबंध नहीं होता; परंतु "**आत्मिक-इच्छा-शक्ति**" सेही आत्मोन्नति करनेका भाव इसमें मुख्य होता है; यही हेतु इसकी सर्वोत्कृष्टता होनेमें मुख्य है। नास्तिक भी आत्मानुशासनसे सदाचारी रह सकता है, अराजक भी आत्मानुशासनसे सत्कर्ममें प्रवृत्त हो सकता है, जातिके बंधन तोडनेवाला भी आत्मानुशासनसे बुरे कर्मोंमें नहीं जाता; क्योंकि "**इसमें अपनाही शासन अपने ऊपर होता है।**" इसीलिये इसकी उत्तमता है। इसलिये इस आत्मानुशासन के विषयमें थोडासा विवरण करना आवश्यक है। जो योगमार्ग में प्रवृत्त होना चाहते हैं, अथवा जो अपना सुधार अन्य बातोंमें करना चाहते हैं, उनको उचित है कि, वे अपनाही शासन अपने ऊपर स्थापित करें।

सदाचारके नियम, उन्नतिके उपनियम, अभ्युदयके आचार आपही निश्चित कीजिये, अथवा दूसरोंसे सीख लीजिये, किंवा ग्रंथोंसे निकाल लीजिये; और उन नियमोंके अनुसार चलनेका अत्यंत दृढ संकल्प-अटूट निश्चय कीजिये। यही सारांशरूपसे "**आत्मानुशासन**" है। दूसरेके बनाये नियम जबरदस्तीसे अथवा भयसे पालन किये जाते हैं; परंतु इस आत्मानुशासन के नियम, स्वयं बनाकर, अथवा स्वयं स्वीकार करके, किसीके डरको मनमें न

रखते हुए, पूर्ण निर्भयताके साथ, उत्तम रीतिसे पालन करने होते हैं। यही इसकी उत्तमता है।

" **आत्मशासन** " में अपने दृढनिश्चयकी आवश्यकता है, इसलिये इसमें उद्योगप्रियता, अत्यावश्यक है, क्यों कि—

आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ।

गीता. ६।५

" स्वयं ही अपना भाई और स्वयं ही अपना शत्रु हरएक मनुष्य होता है। " जो अपनी परीक्षा स्वयं करके दृढ निश्चयसे परमपुरुषार्थ करता है, वह उद्यमी मनुष्य स्वयं ही अपना भाई है; परंतु जो आलसी अपनी उन्नतिकेलिये कुछभी प्रयत्न नहीं करता, वह अपनाही शत्रु स्वयं बनता है। **जगत् में अज्ञानके कारण इतना नुकसान नहीं होरहा है, जितना कि आलस्यके कारण होरहा है।** प्रायः सौमें न्यानवे मनुष्य शरीरमें सामर्थ्य होनेपरभी पुरुषार्थका प्रयत्नही नहीं करते। ये आलसी अज्ञानीभी नहीं होते हैं, और उद्यम करनेके लिये सर्वथा असमर्थभी नहीं होते। परंतु सुस्त होते हैं, और बैठे रहते हैं। इसलिये उपनिषद् कहता है कि—

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत ॥ कथ० ३।१४

" उठो, जागो, और श्रेष्ठोंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो " और तत्पश्चात्—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ॥
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

य. ४०।२

" परम पुरुषार्थ करते हुए ही यहां सौ वर्ष जीनेकी महत्वाकांक्षा धारण करनी चाहिये। यही भाव तेरे अंदर रहे, इससे भिन्न कोई मार्ग नहीं है, पुरुषार्थसे नरको दोष नहीं लगता।" यह धार्मिक जीवन का वैदिक नियम है। जो इसका पालन नहीं करेगा, उसका उद्धार होनेकी आशा करना व्यर्थ है। इसलिये आमरणांत सत्कर्म करने की प्रतिज्ञा करके हरएक वैदिक धर्मी मनुष्यको आगे बढना चाहिये। परम पुरुषार्थ करके पीछेसे आनेवालोंका मार्ग सुकर करना चाहिये। यही " **उत्—योग का जीवन** " किंवा उत्कृष्ट योग का जीवन वैदिक धर्मके अनुकूल है।

नियम करनेपर भी कई लोग उसका पालन नहीं करते। यह सबसे मुख्य कारण अवनतिका है। मनुष्यकी अथवा राष्ट्रकी किसीभी बाह्य कारणसे अवनति नहीं हो सकती, जबतक वह अपने आपकी अवनति न करेगा। " **प्रत्येक मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसाही बनता है;** " यह वैदिक धर्मका अटल सिद्धांत है। इसलिये स्वयं ऐसा कभी कार्य नहीं करना चाहिये, कि जिससे अपनी अधोगति होसके। स्वयं उत्तम नियम करके उसका पालन अवश्यमेव करना चाहिये; इतनाही नहीं, परंतु जिस दिन उक्त नियमका पालन न होगा, उस दिन स्वयंही अपने आपको **"व्रतभंगका दंड"** देना चाहिये और स्वयंही उसको भोगना चाहिये। ऐसा करनेसे नियममें रहनेका अभ्यास हो जाता है। दूसरेके डरसे जो मनुष्य बाधित होता हुआ नियम पालन करता है; वह दूसरेका निरीक्षण न होनेकी अवस्थामें इतना स्वैर बर्ताव करने लग जाता है कि,

उसकी कोई मर्यादाही नहीं रहति। इस लिये आप अपने अंदर देखिये, और यदि यह दोष हुआ, तो स्वयंही "**आत्म-दंड**" से उसको दूर कीजिये। यदि आप स्वयं अपना सुधार करेंगे, तोही आपका सच्चा सुधार हो सकता है; अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

जगत्‌के अंदर छः अटल नियम हैं। (१) **उदय**, (२) **अस्तित्व**, (३) **संवर्धन**, (४) **परिपोष**, (५) **क्षीणता**, और (६) **नाश**। सब पदार्थोंको ये नियम लगते हैं। बीज उदयको प्राप्त होकर उसका अंकुर होता है, पश्चात् पौधा बनता है, वह बढने लगता है, पश्चात् वह फैलता है, फलता और फूलता है, कुछ समयके बाद क्षीण होने लगता है, और अंतमें नष्ट हो जाता है। सब पदार्थोंकी यह अवस्था है। अभ्युदयके नियमोंके अनुसार वर्ताव करनेसे पहिली चार अवस्थायें दीर्घकालतक रहतीं हैं, और अंतिम दो अवस्थायें अति दीर्घकालके पश्चात् आतीं हैं। "**उदय और नाश**" के **बीचके समयका नाम आयु है**। यह आयुष्यकी मर्यादा जितनी दीर्घ बनाई जासकती है उतनी बढानी चाहिये, तथा बीचकी दो अवस्थायें "**संवर्धन और परि-पोष**" जहांतक हो सके वहांतक अति दीर्घकालतक व्यवस्थित रखना आवश्यक है। इसीलिये वैदिक धर्मके यम नियम ब्रह्मचर्य आदि हैं। जो उनका पालन नियमसे करेंगे उनको लाभ हो सकता है। जो नियम पालन नहीं करेंगे, उनके लिये अंतिम दो अवस्थायें अति शीघ्र आ जायगीं।

प्रत्येक मनुष्यको और उसीप्रकार प्रत्येक समाज और राष्ट्रको

अपने अभ्युदयके लिये, अपनी उन्नतिकेलिये, अपनी बंधमुक्तता अर्थात् स्वतंत्रताके लिये, अपनी सुरक्षितताके लिये, तथा जातीयताके संरक्षण और संवर्धनकेलिये यत्न करना चाहिये । इसी लिये अभ्युदय विषयक धर्मके सब नियम हैं । जो पालन नहीं करेंगे, उनका गिरना स्वाभाविक है, कोई उनको उठा नहीं सकता । इस लिये, प्रिय पाठको ! **उठिये, जागते रहिये, और सत्यनियमोंका पालन कीजिये, स्वयं ही अपनी उन्नति करनेका अटल निश्चय कीजिये और पवित्र नियमोंका पालन करके उन्नत हूजिये** । आपके लिये यही उत्तम है ।

परमेश्वरके नियम ऐसे हैं कि, वे किसीकी पर्वाह नहीं करते उसके नियम स्वयं सिद्ध हैं । यदि आप अनुकूल वर्ताव करेंगे तो आपकी उन्नति होगी, यदि नहीं करेंगे तो अधोगति निश्चित है स्वच्छ वायुका सेवन करनेसे आरोग्य संवर्धन और तंग मकानमें रहने आयुष्यका नाश अवश्य होगा; ब्रह्मचर्य पालन करनेसे पराक्रम करने उत्साह बढेगा और निर्वीर्य शरीर करनेसे सर्वत्र निरुत्साह दिखाई देगा ये और इस प्रकारके सैंकडों नियम स्वयं सिद्ध हैं । इन नियमोंके पालन होनेसे जो अपराध होता है, उसका प्रायश्चित्त भोगनाही पडता है । अग्निको हाथ लगते ही हाथ जलता है, जितना यह प्रत्यक्ष है, उतनाही उक्त सत्य प्रत्यक्ष है । इस लिये अपनी जातिमें ऐसे उदाहरण देखिये कि जिन्होंनें सत्य धर्म नियमोंका पालन करके अपना अभ्युदय प्राप्त किया है तथा जिन्होंने धर्मनियमोंका धिक्कार करके यथेच्छ दुराचार करके अधोगति प्राप्त की है । दोनों

उदाहरण देखकर आप दुराचारसे बच जाइये, और उन्नतिकी दिशामें स्थिर रहकर आगे बढ जाइये । इस विषयमें दक्षतापूर्वक स्वयं यत्न करना उचित है ।

" **आत्मानुशासन** " में स्वाधीनता और स्वावलंबन की प्रधानता है । दूसरा कोई आपका हितकर्ता भी होगा, तो जबतक आप उसपर अवलंबित रहेंगे तबतक आपको परवशही होना पडेगा, और सब प्रकारकी परवशता दुःखकारक है; इस लिये स्वावलंबन कीजिये, अपने बलसे ऊपर उठनेका पुरुषार्थ कीजिये, स्वयं उठकर दूसरोंको ऊपर उठाइये, **अपने उदयसे दूसरोंको प्रकाशित कीजिये।** सूर्य आपके सामने है वह अपना उदय कराके दूसरोंको प्रकाश देता है, यह जैसा उसका " **निजधर्म** " है वैसाही यह आपका निजधर्म बने । संभव है कि, आप दूसरोंसे नियमोंका पालन करानेमें बडे कुशल होंगे, परंतु वह बात गौण है; आप अपने आपको नियमोंमें रख सकते हैं वा नहीं, इसका विचार कीजिये; आत्मोद्धारके लिये यही प्रधान बात है ।

अपना उद्धार करनेकी प्रबल इच्छा सबसे पहिले मनमें दृढताकेसाथ धारण करनी चाहिये; प्रयत्न करके मैं अपना उद्धार अवश्यमेव करूंगा, ऐसा आत्मविश्वास चाहिये; उक्त प्रकार इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास होनेसे उन्नतिका पुरुषार्थ सुकर हो सकता है । इन दोनोंके न होनेसे ही नाना प्रकार के विघ्न प्रतिबंध करते हैं, और इनके होनेसे विघ्न आनेपर अपनी शक्ति बढ जाती है ।

जगत् के प्रारंभमें एक आत्माथा, उसनें कहा कि मैं एक हूं

अब मैं बहुत हो जाऊंगा; इस इच्छाशक्तिसे वह बढगया और इतना फैला कि वह इस विश्वसे भी बढ गया। देखिये—

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्, नान्यत् किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति॥ ऐ. उ. १।१

सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं॥ २॥ तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति॥ ३॥ छां. उ. ६।२।३

"प्रारंभमें आत्मा एक था, दूसरा हिलनेवाला कुछभी नहीं था। उस आत्मानें इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊं, वह बहुत बन गया, बढगया।" यह उपनिषद्का उपदेश आत्मिक इच्छाशक्तिका बल बता रहा है। आत्माके अंदर ऐसी शक्ति है कि, उस प्रबल इच्छाशक्तिसे जो कहा जाय, योग्य कालमें बन जाता है। इसलिये इस आत्मिक इच्छाशक्तिका प्रभाव देखना चाहिये। आप जगत्में देखिये कि, यह इच्छा शक्ति कैसा विलक्षण कार्य कर रही है, और अपने अंदर की इच्छाशक्ति प्रबल बनाइये, जिस समय **संशय रहित इच्छाशक्ति प्रबल होजाती है उसीसमय वह कार्यकर्त्री होती है।** संशयही अपनी शक्तिका घातक है, दृढ विश्वास अपना बल बढाता है। इसलिये अपने अंदर संशयरहित इच्छाशक्ति बढाइये। और दृढनिश्चयसे अपने प्रयत्नकी पराकाष्ठा करते हुए अपने उद्धारका पुरुषार्थ कीजिये।

मनुष्यके संपूर्ण पुरुषार्थ उसकी इच्छा शक्तिपर निर्भर हैं। इसलिये अभ्युदयकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको संदेह रहित प्रबल इच्छाशक्ति अपने अंदर बढानी चाहिये। अन्यथा धर्मका पालन

होना असंभव है । अपने अंदर प्रबल इच्छाशक्ति बढानेके लिये पहिले अपनी तर्क शक्तिकी सहायता लीजिये । तर्कसे सोचविचार करके निश्चय कर लीजिये कि, यह कार्य करना आवश्यक है । अपने तर्क द्वारा पहिले संदेह मिटा दीजिये । जहां अपनेही तर्कसे कार्य न चलता हो, वहां आप जिसको प्रमाण पुरुष मानते हैं, उसके उपदेशके अनुसार कार्य करनेका मनका पक्का निश्चय कीजिये । वह कार्य अच्छीप्रकार करके जिन्होंनें उच्च अवस्था प्राप्त की है, उनके चरित्र ध्यानमें लाकर निश्चय कीजिये कि आपभी वैसेही अच्छे बन जांयगे । इतना होनेके पश्चात् आपके मार्गमें संशयके कारण विघ्न नहीं होंगे । जब इस प्रकार पक्का विश्वास बन जायगा, तब स्वयंही नियम बनाकर उसका पालन कीजिये, और पालनमें गलती हुई, तो आपही अपने आपको योग्य दंड लीजिये । इस प्रकार करनेसे आपका उत्कर्ष हरएक बातमें हो सकता है ।

उदाहरण के लिये प्रातःकाल उठनेके विषयमेंहि पहिले देखिये कि यह अच्छा है वा नहीं । यह देखिये कि जो प्रातःकाल उठते हैं, उपासना करते हैं, उनकी वृत्ति कैसी शांत रहती है । इस प्रकार विचार करके प्रातःकाल उठनेका पक्का निश्चय कीजिये । यही बात अन्य सब उन्नतिके विषयमें समझ लीजिये । इस प्रकार हरएक उन्नतिके नियमं पालनमें आपको दत्तचित्त होना उचित है । यह न समझिये कि, आपकी यौंही उन्नति होगी । यदि आप दृढनिश्चयसे प्रयत्न करेंगे, तोही हो सकती है, अन्यथा नहीं होगी । इसलिये

जितना प्रयत्न दृढ निष्ठाके साथ होगा, उतना आपके लिये लाभ होगा।

यहां कई पूछ सकते हैं, कि "**आत्मानुशासन**" किस रीतिसे अथवा किस युक्तिसे किया जाय। उत्तरमें निवेदन है कि "**अपनी इच्छाशक्ति की प्रेरणा**" सेही यह कार्य होगा; अन्य कोई युक्ति नहीं है। जगत्में इतने लोग नीचली अवस्थामें हैं, इसका कारण यह नहीं है कि उनको मानवी उन्नतिके नियमों के विषयमें अज्ञान है। उनको ज्ञान है परंतु उनकी इच्छाशक्तिकी कमजोरी इतनी है कि वे कुछ प्रयत्न करते ही नहीं। कौन नहीं जानता कि उपासनासे मनकी शांति प्राप्त होती है, परंतु कितने लोग योग्य रीतिसे उपासना कर रहे हैं? तात्पर्य यह है कि, आप अपनी इच्छा शक्तिको प्रबल बनाइये; अन्य फालतु कार्योंमें अपने चित्तको जाने न दें, और अपनी उन्नतिके कार्योंमें दत्तचित्त होकर निष्ठासे कार्य कीजिये। यही एक उन्नतिका मार्ग है। "**अभ्यास**" अर्थात् दृढ निश्चयके साथ सतत प्रयत्न करना, और "**वैराग्य**" अर्थात् अन्य कार्योंकी ओर न जाना, एकही अपने उद्देश्यकी सफलता के लिये परमपुरुषार्थ करना, यही अभ्युदयका एक मार्ग है। यही नियम आपको सर्वत्र उपयोगी प्रतीत होगा।—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। योगद. १।१२.

" अभ्यास और वैराग्यसे मनका निरोध होता है। " यह

महामुनि पतंजलिका कथन है, भगवद्गीतामेंभी श्रीकृष्ण चंद्रजीनें अर्जुनको यही उपदेश दिया है । यह न केवल मनोनिग्रहमें सत्य है, परंतु सब अन्य कार्योंकी सिद्धि मिलने के लिये भी यही नियम बडा उपयोगी है । " **अभ्यास** " करनेसे कार्यसिद्धि होती है, यहां अभ्यासका अर्थ दृढ निश्चयसे और योग्य रीतिसे सिद्धि मिलनेतक प्रयत्न करना है, एकबारके प्रयत्नसे सफलता और सुफलता न हुई तो पुनः पुनः प्रयत्न करनेसे सफलता होती है । " **वैराग्य** " का अर्थ है अन्य बातोंकी ओर ध्यान न देना, अन्य विषयोंसे अलिप्त रहना, जो कार्य सिद्ध करना है उसीमें दत्तचित्त होना और उसके सिवाय अन्य सब कार्योंके विषयमें उदासीन रहना । उदाहरणके लिये लीजिये कि, किसीको वेदका अध्ययन करना है, तो इसके साधक अंगोंके समेत वेदके अध्ययनमें पूर्ण प्रीति रखकर इससे भिन्न जो अन्य अध्ययन हैं, उनके विषयमें उदासीन रहनेका नाम वैराग्य है । विचार करनेपर पता लग सकता है कि, इन दो नियमोंसे सब प्रकारकी सिद्धि अति शीघ्रही प्राप्त हो सकती है ।

साधारण मनुष्य परिस्थितिका गुलाम बनकर रहता है, परंतु पुरुषार्थी मनुष्य परिस्थितिको दूर करके अपने अभ्युदयका मार्ग निकाल लेता है । पुरुषार्थ करनेवालेके सामने जो विघ्न आते हैं, वे उसकी शक्ति बढानेके हेतु बनते हैं । सुस्त मनुष्यके लिये विघ्नोंका भय होता है । अभ्यास–वैराग्य–संपन्न मनुष्यके लिये ऐसा कोई विघ्न नहीं है कि, जो उसको उसकी इष्ट सिद्धिसे दूर रख सके । इसलिये इसपर विश्वास रखते हुए आप अपने उद्देश्यका निश्चय

कीजिये, और पूर्वोक्त रीतिसे इष्ट अवस्थातक अपनी उन्नति सिद्ध कीजिये।

न श्वः श्वमुपासीत। को हि मनुष्यस्य श्वो वेद॥ शत. ब्रा. २।१।३।९

" कल करूंगा, कल करूंगा, ऐसा न कहिये, कौन जानता है कि कलकी बात क्या है। " इसलिये शुभकार्य विशेषतः अपने अभ्युदयके कार्य, कलपर छोडना पाप है। जो अच्छा कार्य होता है, उसको शीघ्रही प्रारंभ करना चाहिये। आजही कार्य प्रारंभ करनेकी तैयारी, जो कार्य करना है उसको ध्यानपूर्वक ख्यालसे करनेका गुण, व्यवस्थाके साथ कर्तव्य करनेका स्वभाव, कोई कार्य अपूर्ण न रखनेका उत्साह, कर्तव्य निश्चित करनेपर कभी सुस्ती न करनेका सद्‌गुण, उद्यमशीलता, साहसके साथ बडा प्रयत्न करनेकी हिम्मत, धैर्यसे आगे बढनेकी निभर्यता, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक बल, पराक्रम करके अपना यश बढानेका उत्साह जिस पुरुषमें होगा, वह कभी अवनत नहीं रह सकता, तथा जिस राष्ट्रमें ये गुण उच्च अवस्थामें होंगे उस राष्ट्रको कोई भी दबा नहीं सकता।

" **आत्मानुशासन** " से अपनी उन्नति सिद्ध करनेवाला उद्यमी और संयमी पुरुष प्रतिदिन अपनी उन्नति करता रहता है। आप यदि देखेंगे तो आपको पता लग जायगा कि, सिद्धियां उसके

पास दौडती हुई आतीं हैं। उसके पास न्यूनता नहीं रहती। वह कभी चिडचिडा नहीं रहता, आप उसको सदा हास्य वदनही देखेंगे। वह चातुर्यसे अपने कर्तव्य पालन करता है, फुर्ती और उद्यम उसके स्वभाव गुण हैं। सुस्ती और आलस्य उसके पास नहीं रह सकते। वह अपनी शक्तियोंको स्वाधीन रखता है, मनका संयम करता है, इंद्रियोंका दमन करता है, नियमित व्यायामसे अपना शरीर नीरोग रखता है, नित्य नवीन ज्ञान प्राप्त करके उसको अपने जीवनमें ढालता है, उसका रहना सहना, कार्य करना और विश्राम लेना सब नियमपूर्वक और व्यवस्थासे होते रहते हैं, वह नियत समयमें नियत कार्य करता है और नियत कार्यके लिये मुहूर्तका निश्चय पहिलेही करता है, इसलिये किसी कार्य करनेके समय उसको गडबड अथवा अस्वस्थता नहीं होती। कर्तव्यके विषयमें तथा कार्य करनेके मार्गोंके विषयमें उसके मनमें संदेहवृत्ति नहीं होती, परंतु निश्चितता होती है। इसलिये वह निडर होकर कार्य करता है और यशको प्राप्त करता है। लोग समझते हैं कि उसमें कोई अलौकिक शक्ति है, परंतु वैसी कोई बात नहीं होती। जैसी शक्तियां अन्योंमें होतीं हैं वैसी ही उसमें होतीं हैं। भेद इतनाही है कि वह उनका यथायोग्य रीतिसे उपयोग करता है और दूसरे सुस्त हैं।

इस प्रकार "**आत्मानुशासन**" का महत्व है। इस जगत के अंदर जो पुरुष अथवा जो स्त्री विशिष्ट बनी है, उसने इन नियमोंके

पालनसेही यश प्राप्त किया है। यह न समझिये कि उनके अंदरही कोई ऐसी खास दैवी शक्ति थी और वह शक्ति आपके अंदर नहीं है। यदि शक्तियां अलग अलग करके गिनीं जाय, तो आपके अंदरभी उतनी ही शक्तियां होंगी, कि जितनी उनमें थीं अथवा हैं। परंतु उन्होंने पुरुषार्थ प्रयत्नसे आत्मानुशासनकी रीतिके अनुसार प्रयत्न करके अपना अभ्युदय किया और आप जहांके वहांही खडे हैं!!! यह चमत्कार किसी बाह्य कारणसे नहीं हुआ है, परंतु आपके "**निश्चय अथवा अनिश्चय**" के कारण ही यह बात ऐसी बनी है। "**आपका भविष्य बनाना या बिगाडना पूर्णतया आपके आधीन है।**" इसलिये जो पहिले हुआ सो हुआ, आजही निश्चय कीजिये और अपनी उन्नतिके लिये आजसेही योग्य नियमोंके पालन करनेका पवित्र कार्य शुरु कीजिये।

(१) मैं कैसा था? (२) मैं इस समय कैसा हूं? (३) ऐसा ही चलता रहा तो मेरा क्या बनेगा? (४) मेरी किस रीतिसे शीघ्र उन्नति होसकती है? (५) मेरी अवस्थामें जो थे उन्होंने किस मार्गसे उन्नति प्राप्त की? (६) अपनी उन्नति केलिये आज ही मैं क्या कर सकता हूं? इत्यादि बातोंका विचार करके आजका कार्य आजही कीजिये और भविष्यके लिये अभ्युदयके योग्य नियम करके उनका पालन करके यशस्वी बन जाइये।



व्यायाम और प्राणायाम।

(१)

(लेखक-" **श्रीकृष्ण-योग-मंडल-निवासी** ")

मनुष्य मात्रके संपूर्ण व्यवहार के लिये " **बल** " की आवश्यकता है। बल के विना मनुष्य कुछभी कर नहीं सकता, इसलिये मनुष्यने जिस प्रकार अन्य सुखसाधनोंकी खोज की है, उसी प्रकार उसने अपनी शक्तिका संवर्धन करनेकी विविध युक्तियां भी ढूंढकर निकाली हैं। बल की आवश्यकता कितनी है, बल कैसा बढाया जा सकता है, बढाया हुआ बल किस प्रकार स्थिर किया जा सकता है, इत्यादि विषयोंमें उन्होंनें बहुत ही प्राचीन काल से विचार करके बलवर्धक नियमोंका उन्होने निश्चय किया है। इसीका नाम "व्यायाम शास्त्र" है।

वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो कहना पडता हैं कि, " आयुर्वेद और **योगशास्त्र** " ये दो शास्त्र भी शरीरका बल बढानेके साधक ही हैं। परंतु इन दोनों शास्त्रोंमें स्थूल शरीरकी शक्ति बढानेकी प्रक्रियाओंकी अपेक्षा **"आयुर्वेद"** में रोगोंसे बचनेकी रीति और रोगचिकित्सा वर्णन की है, तथा दूसरे " **योगशास्त्र** " में प्रधानतया " **आध्यात्मिक उन्नति** " का उपायही कहा है। इन दोनों शास्त्रोंका ज्ञान केवल शाब्दिक नहीं है, परंतु क्रियात्मक ही

है तथा इनका ग्रंथभंडार भी बहुत ही बड़ा है । तथापि प्राचीन कालकी ऋषिलोगोंकी व्यायाम पद्धति जैसी की वैसी इस समय किसीभी ग्रंथमें उपलब्ध नहीं है, जो इस समय इधर उधर थोडासा व्यायामविषयक ज्ञान मिलता है और प्रक्रियां भी चली हुई हैं वह प्राचीन पद्धतिका विकृत रूप है । इस लिये प्राचीन कालमें भीम जैसे शक्तिशाली पुरुष जिस विधिसे बनाये जाते थे उस विधिका पता इस समय लगाना आवश्यक है ।

प्राचीनतम ग्रंथ देखनेसे पता लगता है कि उस समय " बाल-संगोपन " का विशेष प्रबंध था और प्राचीन पाठ्यक्रममें इस विद्याकाभी शिक्षण दिया जाता था । बहुधा इस शिक्षाविधिमें ही (१) बालकका शक्तिसंवर्धन करनेकी रीति, (२) शारीरिक बलके विकास का विधि, (३) छोटे शरीरमें प्रचंड शक्ति रखनेकी पद्धति, (४) बडे शत्रुके साथ छोटे शरीर वालेका भी मुकाबला करनेका द्वंद्वकौशल्य, आदि बातोंका प्राचीन व्यायाम पद्धतिमें समावेश था, ऐसा प्राचीन ग्रंथ देखनेसे स्पष्ट पता लग जाता है; यद्यपि प्राचीन व्यायाम शास्त्रके ग्रंथ इस समय उपलब्ध नहीं हैं।

पौराणिक और इतिहासिक ग्रंथोंमें प्रचंड शारीरिक शक्तिसे युक्त बलवान मनुष्योंका वर्णन है, और मल्लयुद्धका वर्णन भी अनेक स्थानपर है, इससे स्पष्ट होता है कि, प्राचीन कालमें व्यायाम शास्त्र और मल्लविद्या प्रगल्भ अवस्थामें थी । राजे महाराजे और सरदार आदिभी उक्त विद्याओंमें स्वयंही प्रवीण थे । तथापि प्राचीन

विद्याओंके संशोधकोंके प्रयत्न अभीतक इस विद्याकी खोजके लिये नहीं हुए, यह एक विलक्षण बात है। क्योंकि अन्य विद्याओंकी अपेक्षा यह विद्या सब जनताके उपयोगी है, इसमें क्या संदेह है? "गुरुकुल" में ब्रह्मचारी जाकर रहता था, इस "ब्रह्मचर्याश्रम" में न केवल वह विद्याका अध्ययन करता था, परंतु वह शरीरके विकासके व्यायामभी सीखता था और आरोग्य प्राप्त करनेके नियम अपनाता था। यही कारण है कि उस प्राचीन समयके लोग अतिदीर्घ आयुष्यका अनुभव करते थे, और इससमय इतनी प्रगति होनेपर भी आयुका प्रतिदिन क्षय ही हो रहा है।

मध्यकालीन भारतवर्षका विश्वसनीय इतिहास उपलब्ध नहीं है, तथापि जो मिलता है उससे स्पष्ट विदित होता है, इस मध्ययुगमें भी प्रचंड शारीरिक शक्तिसे संपन्न लोग इस देशमें थे। गत १७ वीं शताब्दीके समयतक भी हम देखते हैं कि इस देशके लोगोंमें विलक्षण शारीरिक शक्ति थी। परंतु इस मध्य कालमें जो व्यायाम पद्धति थी उसकाभी ज्ञान इस समय किसीको नहीं है। इस लिये इतिहास संशोधकोंको उचित है कि वे इतिहासके कागजोंमें इस विद्याकी भी खोज करें।

स्वराज्यसंस्थापक श्री शिवछत्रपतिके समयसे मराठोंका राज्य नामशेष होनेके समयतकभी व्यायामकी ओर जनताका बहुत ध्यान था। यद्यपि उस समयके कई खेल और कई व्यायाम आजभी किसीको विदित नहीं हैं, तथापि २०० वर्षोंके आखाडे इस समयभी विद्यमान हैं और वे अपने व्यायाम और कुश्तीके पेंच गुप्त रखते हैं;

इसलिये इस व्यायामपद्धतिका ज्ञान इनसे प्राप्त होना संभव है। तात्पर्य यह है कि इस दृष्टिसे संशोधकोंको प्रयत्न करके ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है।

आजकलकी व्यायामपद्धतिमें जोर, दंड, बैठक, मुद्गल जोडी, मलखांब, कुश्ती, आदि मुख्य प्रकार व्यायामके हैं। इस रीतिसे व्यायाम करनेवाले इस समयमें भी बहुत हैं, परंतु न्यूनता इस बातकी है कि तत्वज्ञानकी दृष्टिसे इन का विचार करनेवाला उनमेंसे एकभी नहीं है। व्यायामका तत्व, व्यायामका शरीरके अंग प्रत्यंगोंपर परिणाम, प्रत्येक अंगका विकास करनेकी योजना, सहस्रों मनुष्योंपर व्यायामका अनुभव देखने और अपना बल बढाकर उसको अतिदीर्घ कालतक अपने अंदर रखनेवाला प्रचंड शक्तिसे युक्त पुरुष प्रायः देखनेमें नहीं आता। क्यों कि इस दृष्टिसे विचार करनेका अभ्यासही हमारे लोगोंको नहीं है। इसलिये हमारे पहिलवानोंमें तथा बलवानोंमें इस शोधक तत्व दृष्टिका उदय होनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

"**ब्रह्मचारीकी दिनचर्या**" का विचार करनेसे ही पता लग सकता है कि ऋषिकालमें विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और बल संवर्धन करनेके विषयमें गुरुकुल में कितना विशेष प्रबंध था, और कैसा सूक्ष्म दृष्टिसे विचार किया जाता था। विद्यार्थीको घरमें रखकर ही पढाया नहीं जाता था, उसको गुरुकुलमें भेजना आवश्यक था, इस एक नियममें भी "**आरोग्यका बडा भारी तत्व**" है। नगरोंकी तंग गलियोंकी आबहवा की अपेक्षा अरण्यमें जो गुरुकुल होते हैं,

उनका जलवायु कितना अच्छा होता है, इसका अनुभव शहरनिवासी लोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त गुरुकुलका अभ्यास, रहना सहना, भोजन आदीकी सादीदगी, नियमित अभ्यास और नियमबद्ध व्यवस्था, पवित्र विचार सुनना और शुद्धवृत्तिके साथ रहना आदि श्रेष्ठ व्यवस्थामें कमसे कम १२ वर्ष अथवा अधिकसे अधिक ४८ वर्ष रहा जाता था। इसका परिणाम मनकी शुद्धिके साथ शरीरके स्वास्थ्य आरोग्य और बलसंवर्धनपर कितना उत्तम हो जाता था इसका पाठक ही अनुमान कर सकते हैं। इस समयमें शीतोष्ण सहन शक्ति बढानेका ख्याल विशेष होता था, इसलिये इसप्रकारके तपके जीवनमें जो पाले जाते थे उनको वैयक्तिक आरोग्य और बल प्राप्त होनेके साथ साथ सामाजिक कार्य करनेकी शक्तिभी प्राप्त होती थी। इससे स्पष्ट होजाता है कि, आजकल की पाठशालाओंमें जिन बातोंका विचार भी नहीं किया जाता है, उन बातोंका क्रियात्मक अनुभव प्राचीन लोग लेते रहे हैं। शरीरका परिपूर्ण विकास होनेके पूर्व स्त्रीका विचार तक मनमें न उत्पन्न करनेके तत्वमें जो लाभ हैं, उनका जिनको अनुभव होगा, वेही गुरुकुलों के उक्त नियमबद्ध व्यवहारका महत्व जान सकते हैं। गृहस्थी होनेपरभी ब्रह्मचर्य पाला जा सकता है, परंतु ब्रह्मचर्य अवस्थामें जो वीर्यरक्षण होता है वह आयु आरोग्य और बलकी बुनियाद है। तात्पर्य यह कि ब्रह्मचर्य आश्रमकी व्यवस्थाही स्पष्ट बता रही है कि ऋषिकालमें इसविषयका महत्व कितना समझा जाता था।

यद्यपि मध्यकालीन भारतमें इन ऋषिकालीन वैदिक कल्पना-

ओंका प्रायः लोप ही हो गयाथा, तथापि मध्यकालीन राजकीय अस्वस्थताके कारण हरएकको अपना अस्तित्व रखनेके लियेही बलको बढाना अत्यावश्यक हुआ था, इसलिये उस समयके इतिहासमें भी बहुतसे पुरुष बलवान दिखाई देते हैं।

परंतु इस समयकी अवस्था कैसी है देखिये, प्राचीन ऋषिपरंपरा टूट गई है, उसके स्थानमें कुछभी अछी बात नहीं आई, मध्यकालीन राष्ट्रीय अंतर्युद्धोंकी गडबड रही नहीं, पारतंत्र्यके कारण लोगोंमें महत्वाकांक्षा रही नहीं, ऐसी विपरीत परिस्थितिका यह काल है। इसलिये इस समय नेताओंको बडे विचारके साथ बलसंवर्धनके प्रयत्न करना आवश्यक है।

कोई विद्या कितनी भी अछी क्यों न हो, यदि वह मूर्खोंके आधीन हो जायगी तो उसकी गिरावट ही होगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। यही अवस्था हमारे व्यायाम शास्त्रकी हो गई है। हमारे शिक्षित मनुष्योंमें व्यायाम की रुची रही नहीं है, इतनाही नहीं, परंतु समझा जाता है कि " **व्यायाम** " नीच लोगोंका व्यवसाय है। परंतु आजकल यह भाव थोडासा बदलने लगा है यह हमारे राष्ट्रका सुदैव निःसंदेह है। पश्चिमके देशोंमें बचपनसे व्यायामका महत्व समझाया जाता है और लडकेसे व्यायाम करायाभी जाता है, इसलिये बडे हो जानेपर भी वे व्यायाम छोडते नहीं। हमारे देशमें बडे लोग स्वयं व्यायाम करते नहीं और लडकोंसे कराते भी नहीं। बालपनमें नियमित व्यायाम करनेका अभ्यास न होनेके कारण वे तारुण्यमें भी व्यायाम नहीं करते, फिर बुढापेमें तो पूछनाही क्या है?

हमारी पुराणी व्यायाम पद्धतिमें सुधार नहीं होता है, इसका मूल कारण यही हैं कि उसका अभ्यास सुशिक्षित लोग करते नहीं। यदि सुशिक्षित लोग उसमें संमिलित हो जांयगे, तो उसमें भी नवीनता आजायगी, उसका सुधार होगा, उसकी उपयुक्तता बढेगी, उसका सर्वत्र फैलाव हो जायगा, तत्वदृष्टिसे उसका विचार होगा, और वह निर्दोष भी बन जायगी। शिक्षित लोग इस ओर नहीं आते, इसके कारण ही हमारे आखाडे खराब अवस्थामें हैं, बुरे स्थानमें रहे हैं और नीच लोगोंकी आधीनतामें हैं। व्यायामके उस्ताद ऐसे निर्बुद्ध होते हैं कि, वे नहीं जानते कि साधारण जनोंके लिये कितना व्यायाम लेना योग्य है, किस आयुमें कौनसा व्यायाम हित कारक है, शरीरप्रकृतिके भेदसे व्यायामका भेद होना चाहिये वा नहीं, शरीरके विविध दोषोंको दूर करनेके लिये कौनसा व्यायाम चाहिये, स्त्रीयों और पुरुषोंके लिये किस किस प्रकारका व्यायाम लेना उचित है। वे बिचारे इतनाही जानते हैं कि जो आजाय उससे दंड बैठकें करवा लेना, बस्स ! ! होगया ! इस कारणही अपनी व्यायाम पद्धति विविध दोषोंसे परिपूर्ण है।

पश्चिमीय लोग इस समय व्यायामकी ओर अधिकाधिक ध्यान दे रहे हैं, सरकार, शिक्षित और धनिक ये सब अपना बल, ज्ञान और धन इस ओर अधिकाधिक खर्च कर रहे हैं, नवीन तत्त्वोंका आविष्कार कर रहे हैं और उनसे अपनी जनताको लाभ पहुंचा रहे हैं। परंतु इस ऋषियोंके देशमें ऋषिकालकी व्यायाम पद्धतिका कोई विचार भी नहीं करता है और न इस

समयकी रीतिका कोई सुधार करता है । क्या यह आश्चर्य नहीं है? यदि इस देशकी सरकार इसमें ध्यान देनेको इस समय सिद्ध नहीं है, तथापि उस दिशासे हम लोगोंको विशेष अधिक प्रयत्न करने चाहिये । इसलिये प्राचीन ऋषि पद्धति और अर्वाचीन कालका अपना अनुभव इनका संयोग करके जो हमने विचार किया है, इस लेख माला द्वारा प्रसिद्ध करनेका विचार है । हमारे विचारसे **" व्यायामके साथ प्राणायामका संबंध है । "** ऋषिपद्धति और आजकलकी रीतिमें यही भेद विशेष महत्वका है । इसका विचार इस लेखमालामें क्रमशः होगा ।

शरीरमें शक्ति उत्पन्न करके उसका परिपोष करना और शक्ति के सहचारी गुण भी शरीरमें स्थापित करना यह व्यायामका साध्य है । यह साध्य शीघ्र, योग्य दिशासे और विना अधिक परिश्रम करके प्राप्त करनेवाले जो अन्य साधन हैं उन सबका इस व्यायाम पद्धतिके साथ संबंध है । व्यायामसे जैसा बल बढता है उसी प्रकार प्राणायामसे भी बढता है, इतनाही नहीं प्रत्युत व्यायामकी अपेक्षा सैंकडो गुणा अधिक शक्ति प्राणायामसे प्राप्त की जा सकती है। देखिये—

(१) बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

(२) रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वादीनि काय-संपत् ॥ ४६ ॥

(३) उदानजयाज्जलपंककंटकादिष्वसंग उत्क्रांतिश्च ॥ ३९ ॥

(४) **समानजयाज्ज्वलनम्** ॥४०॥ यो.द.वि.पा.२४-४०

ये योगके सूत्र हैं जो बता रहे हैं कि प्राणायामसे कैसी विलक्षणशक्ति प्राप्त हो सकती है। (१) हाथीके समान बल प्राप्त करना, (२) सुंदररूप, उत्तम बल, वज्रदेह आदि प्राप्त करना, (३) उदानका जय करके उत्क्रांति प्राप्त करनी, (४) समान जयसे तेज प्राप्त करना, इत्यादि अनेक प्रकार प्राणशक्तिके हैं। आजकल भी अखबारोंमें वर्णन आता है कि फलाने आदमीनें फलाने नाटकगृहमें प्राणायामकी शक्तिद्वारा ऐसा अद्भुत सामर्थ्य बताया!! परंतु विचार करके देखना चाहिये कि उसमें सचमुच प्राणायामकी शक्ति है वा नहीं, या यह अखबारी गप्पें ही हैं। ये लोग योगका प्राणायाम जानते हैं वा नहीं और यदि जानते हैं तो कितना जानते हैं, इसकी शास्त्रीय परीक्षा करना अत्यंत आवश्यक है। लोगभी समझते हैं कि ये प्रयोग प्राणायामकी शक्तिकेही हैं। इसलिये स्वदृष्टिसे विचार होना चाहिये कि शरीरमें बलकी वृद्धि कैसी होती है, और उसमें प्राणका कार्य कितना है। केवल व्यायाम करनेवाला मनुष्य शरीरके स्नायुओंको संचालित करता है और यही अभ्यास वह असाधारण पराकाष्ठातक बढाता है। इस से उसके श्वासप्रश्वासोंकी संख्या बढजाती है, रुधिराभिसरण जलदी होता है इससे पचन बढ जाता है, भूख बहुत लगती है, भोजन अधिक खाया जाता है और इससे स्नायु हृष्टपुष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार शक्ति बढ़ जानेसे लोग कहते हैं कि यह बडा बलिष्ठ है। इसमें जो मुख्य क्रिया होती है जिससे कि सच्ची शक्ती बढती

है उस की ओर किसीका ध्यानही नहीं होता, यही आश्चर्यकी बात है। व्यायामसे श्वासोच्छ्वाससोंकी संख्या बढती है, और जोरसे श्वास चलने लगते हैं, इससे फेंफडोंको अच्छा व्यायाम पहुंचता है। यदि पाठक यहां देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इसमें "योग साधनकी नाडीशुद्धिकारक भस्त्रिका" ही मुख्य है और अन्य बातें गौण हैं। भस्त्रा अथवा भस्त्रिका उसको कहते हैं कि जो (भस्त्रा) धौंकनीके समान (पूरक रेचक) श्वास उच्छ्वास किये जाते हैं । योगके प्रारंभमें नाडीशुद्धिके लिये यही भस्त्रा की जाती है, परंतु प्रत्येक प्रकृतिभेदके अनुकूल की जाती है, इसीसे नसनाडीके सब मल दूर होते हैं और आरोग्य बढता है। इस प्रकार नाडीशुद्धि करनेके पश्चात् प्राणायामका अभ्यास प्रारंभ होता है, इसमें "कुंभक" की प्रधानता होती है । इस कुंभक का अभ्यास जैसा जैसा बढता जाता है वैसी वैसी उसकी शक्ति बढती है। कुंभकके साथ शक्तिका संबंध है। यह कुंभक मनमाना नहीं करना चाहिये, परंतु गुरुके पास सीखकर योग्य विधिके साथ करना उचित है। आप देखते ही हैं कि कोई शक्तिका कार्य करनेके समय न समझते हुए कुंभक होता ही है । अथवा यौं समझिये कि कुंभक के विना कोई काम होता ही नहीं—विशेषतः जिसमें अधिक बल लगता है—उस कार्यके करनेमें स्वभावतः कुंभक होता ही है। आप कोई बोझदार चीज उठानेका यत्न कीजिये, आपही आप कुंभक करना पडेगा। इतना प्राणायामका बलके साथ संबंध है।

यद्यपि आजकलके अखाडेवाले पहिलवान जानते नहीं है, तथापि न जानते हुए वे " भस्त्रा और कुंभक " करतेही हैं। इसलिये शास्त्रीय दृष्टिसे ऐसा कहा जा सकता है कि (१) ये पहिलवानी व्यायाम करनेवाले लोग स्नायु संचालन को प्रधान मानते और प्राणगतिको गौण मानते हैं, परंतु (२) योग विधिमें प्राणायामको मुख्य और अन्य अंगविक्षेपोंको गौण माना जाता है। यद्यपि शरीरके अवयव और प्राण ये एककेही दो विभाग हैं, तथापि हमें देखना और विचार करना है कि उक्त दोनों पद्धतियोंमें कौनसी पद्धति अच्छी है।

इस विवरणसे इस बातकी सिद्धि हुई है कि संपूर्ण व्यायामोंका प्राणायामसे संबंध है। अब हमें विचार करके निश्चय करना है कि व्यायाम शास्त्रमें प्राणायामका कौनसा स्थान है तथा योग्य प्राणायामका उपयोग करनेसे अन्य व्यायाम भी किस प्रकार अधिक उपयोगी हो सकते हैं।

योग शास्त्रका कोई ग्रंथ आप पढिये, उसमें आप देखेंगे कि " प्राणायाम के लिये आसन की सिद्धि " होनी चाहिये, अर्थात् किसी एक आसन पर स्थिर रहना चाहिये। तात्पर्य प्राणायाम के पूर्व आसनोंका अभ्यास अत्यंत आवश्यक है, अपनी प्रकृतिके अनुसार किसी भी आसन पर बहुत देर तक स्थिर बैठनेका अभ्यास होनेके पश्चात् प्राणायामका प्रारंभ हो सकता है। योगका ध्येय आध्यात्मिक उन्नति है, इस लिये यद्यपि अन्य व्यायामोंका उल्लेख

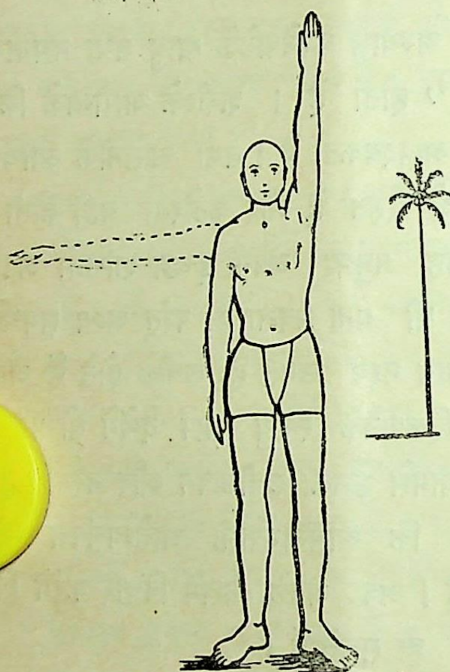
योग शास्त्रमें नहीं किया गया है, तथापि आसनोंके अभ्याससे बल-वर्धन सुगमता पूर्वक हो जाता है। इसके अतिरिक्त "आसनोंका उपयोग विविध रोग दूर करनेके कार्यमें बहुत होता है," यह बात अब अनुभवसेही सिद्ध है। इसका भी विचार इस लेख मालामें क्रमशः होगा।

आसनोंसे किस प्रकारका व्यायाम होता है, ऐसा प्रश्न कई पूछते हैं। पहिलवानोंके व्यायामोंमें स्नायु नसनाडी आदीको चालन दिया जाता है, और आसनोंमें स्नायु नसनाडी आदिको खींचना होता है। यह दो प्रकारके व्यायामोंमें भेद है। जोर दंड बैठक आदि व्यायामोंमें थोडेसे स्नायुओंमेंही बहुत घर्षण होता है, इस घर्षण और संचालनसे यद्यपि वे स्नायु पुष्ट होते हैं तथापि उनकी अपेक्षा अन्य स्नायु बहुतही निर्बल रहते हैं। शरीरका सच्चा आरोग्य प्राप्त करनेके लिये शरीरके संपूर्ण स्नायुओं और नस नाडियोंमें संचालन और खींचाव होनेकी आवश्यकता है। पहिलवानोंके व्यायाममें सब स्नायुओंका संचालन नहीं होता है और स्नायु प्रसारण तो बिलकुल नहीं होता है! इसका परिणाम यह होता है कि हजार दंड और बैठक करनेवाला आदमी पद्मासनमें बैठही नहीं सकता, किंवा अपने पांवके अंगुठे पकडकर घुटनेको नाक या सिर लगाना उसके लिये एक असंभव बात है। इतना ही नहीं परंतु कईयोंकी तो ऐसी अवस्था होती है कि उनकी कमर ऐसी सखत हो जाती है कि हाथसे पांवका अंगुठा पकडा ही नहीं जाता। जैसे युरोपीयन, खुर्सीपर बैठनेकी सदा आदत होनेसे वे, चौकी लगाकर जमीनपर

बैठ नहीं सकते, उसी प्रकार अवस्था दंड बैठकोंका अति व्यायाम करने वालोंकी होती है।

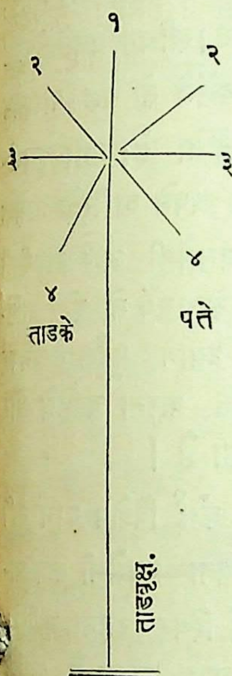
नियमपूर्वक आसनोंका अभ्यास करनेवालेके स्नायु तथा नसनाडी आदिमें "**लचीला पन**" होता है । शरीरके आरोग्यके लिये इस लचीलेपन की अत्यंत आवश्यकता है । तथा आसनोंके व्यायामसे स्नायुओं में मृदुस्पर्श रहता है और कठोरता नहीं होती । यह बात और है कि यह मनुष्य अपनी इच्छा शक्तिसे अपने स्नायुको समयपर सखत भी बना सकता है, परंतु अन्य समयमें उसके स्नायु मख्खनके समान नरम लगते हैं, लचीले होते हैं और पुष्टभी होते हैं । परंतु पहिलवानके स्नायु आप देखेंगे तो पत्थर जैसे होते हैं, अति व्यायामसे उनका लचीलापन और नरमाई दूर होती है। यही कारण है कि आसनाभ्यासी आरोग्यसंपन्न और दूसरा वैसा नहीं होता है । अब अगले लेखमें विचार करेंगे कि आसनोंसे कौनसे रोग दूर हो सकते हैं।

ताडासन ।



पाठकोंनें ताड्का वृक्ष देखाही होगा। नारियल, खजूर, सेंधी, ताड, ये वृक्ष करीब एक प्रकारके होते हैं। ये वृक्ष सीधे खडे होते हैं और उनके पत्ते सबसे ऊपर होते हैं। वृक्षके धडके स्थानमें अ-पना शरीर खडा रखना होता है, इसलिये ये वृक्ष जैसे सीधे खडे होते हैं, वैसा सीधा खडा होना इस आसनके लिये आवश्यक है। दीवारके साथ पीठ लगाकर सीधा खडा रह जाइये । ऐसा खडा रहनेसे सिरका पिछला भाग, पीठ, चूतर, पांवकी एंडी इनका स्पर्श दिवारके साथ होगा। दिवारका सहारा छोडकर यदि आप कमरेके बीचमें खडे रहेंगे तो उक्त अवयव समरेखामें आने चाहियें; गला, कमर आदि भी सीधे हों । तात्पर्य सैनिक विभागमें जैसे सैनिक सीधे खडे हो जाते हैं, वैसे आप प्रथम सीधे खडे हो जाइये। इस आसनके सिवायभी साधारण चलनेके समय आपको ऐसाही ताडवृक्षके समान सीधा रहकर चलना चाहिये। पृष्टवंशको

सीधा रखना योगसाधन केलिये अत्यंत आवश्यक है। आरोग्य केलिये भी पृष्ठवंशको सीधा रखनेकी बडीभारी आवश्यकता है।



उक्त प्रकार ठीक खडा रहनेके पश्चात् अपने हाथोंको ताडवृक्ष के स्थानपर समझकर एक एक हाथको एक एक स्थानपर धरनेका यत्न कीजिये। अपना एक हाथ ऊपर सीधा कीजिये, हाथ ऊपर बिलकुल सीधा कीजिये, जहांतक हो सके वहांतक उसको ऊपर खींचनेका यत्न कीजिये, जैसा कि आपके मनमें कमरेके छतको हाथ लगाना है। ऐसा खींचनेसे गुदा और शिस्नके पासकी नस नाडियाँभी ऊपर खींची जातीं हैं, तथा जो हाथ ऊपर खींचा जाता है, उस तर्फकी पेटकी नसनाडीयां भी ऊपर खींची जातीं हैं। इस आसनके करनेके समय इस आवश्यक बातको मनमें रखिये कि, गुदातककी नसनाडी परभी ऊपरकी ओरका खिचाव आना चाहिये तब आसनका परिणाम ठीक प्रकार होता है। जब अपने हाथको सीधा ऊपर " १ " के स्थानपर रखकर ऊपर खींचेंगे तब अधिक खिंचाव होगा; तत्पश्चात् " २ " के स्थानपर तथा क्रमशः " ३ और ४" के स्थानपर रखकर बाहिर की ओर खींच लीजिये। " ३ और ४ " के समय उतना खिंचाव नहीं आवेगा जितना कि " १ और २ " के समय आसकता है।

इसी प्रकार दूसरे हाथका भी कीजिये। तत्पश्चात् दोनों हाथोंका एक समय कीजिये। इसके अनंतर हाथको अपने सामने तथा अपने पीछे, जितना होसके उतना करके भी, खींचना चाहिये। खींचना मनसेही है न कि दूसरेकी सहायतासे। दूसरेकी सहायतासे करेंगे तो वह परिणाम नहीं होता है जैसा कि अपने मनसे करनेमें होता है; और दूसरी बात इसमें यह है कि अपने मनका स्वामित्व अपने शरीरके प्रत्येक नसनाडीपर स्थापित करना है, इसलिये मनसेही और अपनीही शक्तिसे खींचनेका यत्न होना चाहिये। इस आसनमें तो कोई कठिनता नहीं है। एक दो वारके अभ्याससे ध्यान पूर्वक देखनेपर स्वयं पता लगता है कि किस प्रकार खिंचाव करना चाहिये और किस नसनाडी और स्नायुतक खिंचाव पहुंचता है।

किसी एक अवस्थामें क्षणमात्र रहनेसे कोई विशेष लाभ नहीं होगा, परंतु कमसे कम दो तीन मिनिट, अथवा इससेभी कम चाहिये तो एक मिनिट तक एक अवस्थामें स्थिर रहना चाहिये तब कुछ परिणाम होगा। जिस स्नायुपर खिंचाव आता है, वहांके सब मल और दोष दूर होते हैं और वहा शुद्ध रक्तका संचार होने लगता है। पेटपरभी इस आसन का परिणाम अच्छा लाभदायक होता है।

इस आसनके करनेके समय श्वास और उच्छ्वास अत्यंत शांत, गंभीर, गहरा और दीर्घ लेना चाहिये तथा अपनी सब मानसिक शक्ति हाथमें ही रखनेका यत्न करना चाहिये। तथा जहां खिंचाव होता है वहांके पूर्ण आरोग्यका चिंतन करना उचित है। इससे पेट और पीठके सब स्नायुओंको लाभ पहुंचता है।

साहित्य दर्शन।

(१) **स्वामी रामतीर्थ**—(लेखक—म. गोविंद प्र० भावे, शेगांव, वऱ्हाड। मू. २) दो रु.॥ मिलनेका स्थान—म. त्र्यंबक प्र० भावे, कांदेवाडी, मुंबई ४) (मराठी पुस्तक।)

श्री. स्वामी रामतीर्थजीका नाम न केवल इस देशमें परंतु अमेरिका आदि देशोंमें भी सुप्रसिद्ध है। जिन लोगोंको उनके साथ रहने और वार्तालाप करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वे तो अनुभवसे जानते हैं कि, उनके अंदर सत्वगुण कैसा जीवित और जागृत था। ऐसे सत्पुरुषका जीवन चरित्र मराठी वाचकोंके सामने म. गोविंदरावजीनें प्रकाशित किया है। "**आत्मोद्धार माला**" यह प्रथम पुष्प है, इसका सुगंध इतना मधुर है कि हम इस मालाके अन्य पुष्पभी शीघ्रही प्रकाशित हुए देखनेकी इच्छा करते हैं। इस पुस्तकका अंतर्बाह्य अत्यंत सुंदर है, भाषा प्रौढ और रसयुक्त है, इसलिये यह पुस्तक महाराष्ट्रमें अत्यंत आदरको प्राप्त होगा, इसमें कुछभी संदेह नहीं है।

(२) **आर्यमार्तंड**—(संपादक—श्री. रा. सा. पं. मिट्ठनलाल भार्गव वकील) यह श्री. आर्य प्र. सभा राजस्थानका साप्ताहिक मुखपत्र अजमेरसे आर्यभाषामें प्रकाशित होता है। वार्षिक मूल्य २) रु. है। इस पत्रके एक प्रेमी लिखते हैं कि—"इस पत्रका उद्देश्य

वैदिक धर्मका प्रचार और आर्य जातिका उद्धार है, न कि वर्तमान शासनप्रणालीसे तकरार या हांजी हांजीका इकरार।" हमारी भी यही हार्दिक इच्छा है कि यही उद्देश्य इस पत्रद्वारा सफल हो।

(३) **महाराष्ट्र चरखा**—श्रीयुत ग. भा. काळे महोदयजीने किनई (जि. सातारा) में इस चरखेका कारखाना शुरू किया है। एक चरखेसे एक समय चार सूत्र और दूसरेसे छ सूत्र काते जाते हैं। क्रमशः मूल्य ४०) रु. और ७९) रु. है। पहिला हाथसे चलाया जाता है और दूसरा पांवसे चलाया जाता है। चार सूत्र वाले चरखेपर हमने देखा है कि सातवर्षका बालक भी उतनाही अच्छा सूत कातता है कि, जितना बडा आदमी कात सकता है। निःसंदेह इस खादीके युगमें स्वदेशीके प्रचारके लिये इस चरखेसे बहुतही लाभ होगा। एक समय अच्छी प्रकार कपास तैयार करके इसमें जमा दिया तो फिर चक्र घुमानेके सिवाय कुछभी करना नहीं पडता और एकसा सूत्र आता रहता है। श्री. काळे महोदयजीनें और भी इसी खादीके विषयके कई यंत्र तैयार किये हैं, वे शीघ्र ही जनताके सामने आजांयगे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस खादीके युगमें क्रांतिकारक सुधार करनेका श्रेय म. कालेजीको इस चरखेके कारण प्राप्त हुआ है। आशा है कि स्थान स्थानपर इस चरखेका प्रचार होकर इसके द्वारा सर्वत्र खादीका ही पोशाख होगा। [मिलनेका स्थान—**मे. पंत पाध्ये ऐंड कंपनी,** पोस्ट किनई (जि. सातारा)]

(४) **भारत मित्र**—संपादक म. नारायण भास्कर नाईक, शिवणगोवा, (मराठी मासिक पत्र) वार्षिक मूल्य. २॥) है। गोवासे यह मराठी मासिक पत्र उत्तम प्रकारकी वाङ्मय सेवाका कार्य कर रहा है।

(५) **इस्लाम-धर्म**—(मराठी त्रैमासिक पत्रिका) संपादक श्री. म. शिकंदर लाल आतार, इस्लाम साहित्यमंडल, भिलवडी, जि. सातारा। वार्षिक मूल्य ३) रु. है।

इस्लामी धर्म, इस्लामी संस्कृती तथा इस्लामी इतिहास का परिचय करानेके प्रशंसनीय उद्देश्यसे इस त्रैमासिक पत्रका प्रकाशन "इस्लाम साहित्य मंदिर" से हो रहा है। यह महाराष्ट्रीय मुसलमानोंका जातीय त्रैमासिक है। इसलिये हम इसका हार्दिक स्वागत करते हैं। क्यों कि इस्लामी धर्मके तत्वोंका प्रचार करनेवाला एकभी मासिक इतना अच्छा महाराष्ट्रमें नहीं है। संपादक महोदय अपने इस्लामी धर्मके साथ परिचय रखने वाले हैं और मराठी भाषाके अच्छे विद्वान् तथा उत्साही कार्य कर्ता हैं, इसलिये अपने उद्देश्यकी पूर्णता उनसे होगी, ऐसी हमें पूर्ण आशा है। परंतु प्रायः ऐसा देखा जाता है कि धर्म प्रचार या धर्म जागृतिका काम विकारवशतासे ही किया जाता है, इसलिये एकही तत्व जिस समय अपने ग्रंथमें दिखाई देता है उस समय उसका मंडन किया जाता है, और जिस समय वही तत्व दूसरोंके धर्म ग्रंथमें होता है, उससमय उसीका खंडन किया जाता है। हमारे ख्यालमें यह प्रवृत्ति सत्यधर्मके प्रचारमें घातक है। हमें कष्टसे

कहना पडता है कि इस प्रथम अंकमें ही यह प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है। अपनी भूमिकामें संपादक महोदय कहते हैं कि " इस मासिकका उद्देश्य यह है कि अपने धर्मके उत्तम तत्व हमारे हिंदु भाइयोंको बताकर उनके मनमें वसनेवाला हमारे विषयका हीन भाव दूर करना।" आजकलकी एकताके युगमें यह उद्देश्य निःसंदेह प्रशंसनीय है। परंतु इसी अंकके संपादकीय लेखमें हजरत महंमद साहेबकी योग्यता **ख्रिस्त, बुद्ध, चैतन्य, शंकर और कृष्ण** की अपेक्षा बहुत बडी है, ऐसा सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। इस लेखके विषयमें हों इस समय कुछभी कहना नहीं है, परंतु इस लेखसे मासिकका मुख्य उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता इतनाही यहां कहना है। श्रीशंकराचार्य जीके मतका खंडन करनेके प्रसंगमें इन्होने लिखा है कि " **वेदांती शंकराचार्य मनुष्यकोही ईश्वर कहते हैं।** " यह कथन बिलकुल असत्य है। श्रीशंकराचार्यजीके मतमें मनुष्य, जीव ईश्वर, ब्रह्म, आदिके अर्थ निश्चित हैं, जिन्होंने इनका मत समझनेका प्रयत्न किया है वे कभी ऐसा नहीं लिख सकते कि " शंकराचार्य मनुष्यको ही ईश्वर कहते हैं। " इस असत्य विधानके लिये हम इस समय उदासीन ही रहते हैं क्योंकि संपादकने श्री. शंकराचार्यजीका मत समझा नहीं है, इसलिये उनसे झगडा करना व्यर्थ है। तथापि आश्चर्यकी बात यह है कि अपने द्वितीय लेखमें ही लेखक कहते हैं कि " **मनुष्य केवल अस्थिमांसमय देहही नहीं है; देह एक कवच मात्रही है, उस देहमें स्वयं अल्लाहताआला निवास करता है। अनंत शक्ति....**

युक्त अल्लानें अपनेसेही उसको उत्पन्न किया और उसमें स्वयं प्रविष्ट हुआ है।....अल्लाहताआलानें मनुष्यमें अपने आत्माका फूत्कार रखा है । ” यदि मनुष्यके देहमें अल्लाही निवास करता है और दूसरा कोई नहीं है तो, श्रीशंकराचार्यजीका खंडन कैसा हुआ ? यह बात और है कि श्रीशंकराचार्य मनुष्यकोही ईश्वर नहीं मानते, परंतु क्षणमात्र मानलिया जाय तो वही मत इस मासिकके द्वितीय लेखमें स्वीकृत किया है । हम बता सकते हैं कि ऊपर लिखा वाक्य उपनिषद्‌काही भाषांतर है—

तत्सृष्ट्वा तदेवाऽनु प्राविशत्। तै. उप. २।६।१

“ उसको बनाकर उसीमें प्रविष्ट हुआ ” इस वाक्यका आशयही उक्त लेखकने कुराण शरीरफके वाक्यसे व्यक्त किया है, तथापि उसमें “ **अनु–प्रवेश** ” का स्वारस्य नहीं है । अस्तु । यहां उस लेखकी समालोचना करनेका हमारा आशय नहीं है, परंतु बताना यही था कि पहिले लेखमें जिस शांकर मतका खंडन किया है वही मत दूसरे लेखमें स्वीकृत किया है ! ! हमारे मतसे यही विचारवशता धर्म जागृतिके पवित्रकार्य में अच्छी नहीं है ।

इसी पुस्तकमें पांचवां लेख है “ **विद्याओंमें मुसल्मानोंकी प्रवीणता** ” । इस लेखके विषयमें हमें कोई विशेष वक्तव्य नहीं है। परंतु इस लेखमें यदि लेखकने यह ठीक प्रकार बताया होता कि इस शताब्दीमें इस विद्याका आविष्कार फलाने इस्लामधर्मावलंबी पंडितनें किया तो विचार करनेके लिये अच्छा होता । क्योंकि इस लेखके कई विधानोंके विषयमें शंका हो सकती है । गणित विषयके

संबंधमें लेखकने लिखा है कि यह गणित विद्या मुसलमान पंडितों द्वारा उत्पादित हुई है। इसमें एक मुख्य शंका ऐसी है कि मुसलमानोंकी लिपी सीधे हाथसे बांये हाथकी ओर चलती है, परंतु गणितकी संख्या बाये हाथसे सीधे हाथकी ओर लिखनेकी रीति है। इससे स्पष्ट है कि **गणितका अंक लेखन किसी ऐसी जातिसे मुसलमीनोंने लिया है कि जो जाति अपना लेखन बांये हाथसे सीधे हाथकी दिशामें करती थी।** गणित विद्याका मूल आर्य जातीमें कमसे कम यजुर्वेदसे है, यजुर्वेदमें गणितके अठारह स्थानोंका उपयोग गिनतीके लिये ही किया है। इससे अधिक प्राचीन उल्लेख जगत्‌में भी नहीं है। (Trigonometry) ट्रीग्नॉमेट्री यह शब्द "त्रि-कोण-मिति" शब्दका अपभ्रंश है और त्रिकोणमिति शब्द संस्कृत भाषाकाही है। यह भूमापन, त्रिकोणमिति आदि विद्यायें आर्योंके यज्ञके साथ संबंध रखतीं है, इस लिये आर्य यज्ञपद्धति जितनी प्राचीन है, उतने प्राचीन कालसे ये विद्यायें आर्योंको विदित थीं। इसका प्रमाण ऋग्वेदमेंभी मिलता है। अस्तु।

हमें इस समय इस बातका विवाद करनेकी इच्छा नहीं है कि फलानी विद्या आर्योंमें प्रथम उत्पन्न हुई या अरबोंमें उत्पन्न हुई। इस समयभी हम तैयार हैं कि यदि कोई नई विद्या किसी मुसलमीनके पास हो तो हम उसके शिष्य बनकर वह विद्या उससे ले लेंगे। परंतु यहां बताना यही है कि जो लेख इस मासिकमें प्रसिद्ध हुआ है, वह अधूरा है, क्योंकि किसीके प्रमाणमें शताब्दीका उल्लेख नहीं किया गया है। इसलिये इतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेकी

इच्छासे लेखक महोदयजीसे प्रार्थना करते है कि अरबोंकी विद्या कहनेके पूर्व उस विद्याकी उत्पत्ति फलानी शताब्दीमें हुई ऐसा प्रमाणके साथ लिखें क्योंकि पडताल देखनेके लिये उन विद्याओंका उल्लेख अपने ग्रंथोंमें भी हमें देखना है ।

विषय इस प्रकार विवादास्पद होनेपर भी यह मासिक अच्छा है और महाराष्ट्रीय मुसलमीनोंको तो इसका खरीदार अवश्य होना चाहिये, क्यों कि यह उनका जातीय मासिक है । परंतु हिंदूओंकोभी इस लिये खरीदार होना चाहिये कि अपने भाई अपने धर्मके विषयमें क्या लिखते हैं इसका पता लगे । क्यों कि हम समझते हैं कि दोनोंके प्रेमसेही इस राष्ट्रकी उन्नति होनी है, इसलिये हम प्रार्थी हैं कि इस्लामधर्मके उत्साही संपादक किसी लेखसे कोई विरुद्ध प्रयत्न करें ।

(६) भाषा वर्ण दीपिका—(लेखक-श्री. पं. लक्ष्मण दत्तजी संस्कृताध्यापक, आर्य स्कूल, नवां शहर ।। प्रकाशक—पं. ह. हंसराज शर्मा नवां शहर ।। मूल्य डेढ आना ।)

वर्णमालाके साथ धर्मामृत पान कराया जाये, इस लिये यह दीपिका जगाई है । इसमें प्रत्येक पाठमें धार्मिक वाक्य हैं जो बालकोंके मन पर धर्मका प्रभाव डाल सकते हैं । छपाई उत्तम है और पुस्तक संग्राह्य है ।।

तृतीय नेत्र और चिंतामणि ।

(७)

पिछले लेखमें विशिष्ट मांसपिंडोंका थोडासा वर्णन किया गया है । अब इस लेखमें तृतीय नेत्र और चिंतामणिका वर्णन करना है। इसका विचार ध्यानमें आनेके लिये शरीरके अंतर्गत मज्जातंतुओंकी दोनों संस्थाओंका परिज्ञान होना चाहिये । शरीरमें मज्जातंतुओंकी दो संस्थायें हैं । एक का स्थान मस्तिष्क और पृष्टवंशमें है, इसका नाम है " शिरो-ब्रह्म-मेरु-दंड-मज्जा-संस्था " है । इसके आधीन इच्छाशक्तिसे होनेवाले शरीरके कार्य हैं । शरीरमें ऐसेभी कार्य हैं कि जिनपर मनुष्यकी इच्छाशक्तिका साक्षात् और साधारणतया परिणाम नहीं होता, जैसा हृदयकी दधुक्, पचन, श्वासोछ्वास आदि क्रियाएं स्वाभाविक होतीं रहतीं हैं । जिस मज्जातंतु संस्थाके आधीन ये स्वाभाविक क्रियायें हैं उसका नाम " स्वाभाविक-कार्य कारिणी मज्जा संस्था " है एक समय था कि उक्त दोनों संस्थाएं मनुष्यके आधीन थीं, अथवा कई प्राणी ऐसे हैं कि जिनके आधीन कुछ भाग हैं । परंतु आजकलका मनुष्य जिस उत्क्रांतिकी सीढीपर विराजमान है, वहां एकही संस्था उसके आधीन रही है और दूसरी नहीं है। प्रयत्न करनेपर दोनों मज्जासंस्थाओंको योगी अपने आधीन कर सकता है । जिस समय उक्त संस्थायें अथवा उनका एक भाग मनके निग्रहमें आता है, तब उससे ऐसाभी कार्य लिया जा सकता है कि जो इस समय साधारण मनुष्य नहीं कर सकता ।

इस समय मनुष्य पांच ज्ञानेंद्रियां पांच विषयोंका ग्रहण करतीं हैं। परंतु बीचके कुछ थोडे भागका उनको ज्ञान होता है न आगेका और न पीछेका। देखिये नेत्र प्रकाशका ग्रहण कर सकता है, परंतु नेत्रसे दिखाई देनेवाले किरण थोडे हैं और न दिखाई देनेवाले किरण अनंत हैं। इसीप्रकार अन्य इंद्रियोंके विषयमें समझिये। परंतु कई प्राणी ऐसे हैं कि जो हमारी अपेक्षा बहुत दूरका देख सकते हैं, अंधेरेमें भी देखते हैं, तथा जहां हमारे अन्य इंद्रिय काम नहीं कर सकते वहां उनके इंद्रिय अच्छीप्रकार कार्य कर सकते हैं। इससे सिद्ध है कि नेत्रमें उतनी ही शक्ति नहीं है कि जितनी हम काममें लाते हैं। प्रत्येक इंद्रियमें इसी प्रकार "गुप्त शक्ति" अनंत है, उसको जागृत करना आवश्यक है। योगसाधनसे इस शक्तिकी जागृति करना शक्य है।

हमारीं इंद्रियां जितने स्थूल क्षेत्रमें कार्य कर रहीं हैं उससे अधिक सूक्ष्म अवकाशमें उनकी कार्य करनेकी शक्ति उत्तेजित करनेका नाम साधन है। इस साधनके अनुष्ठानसे सूक्ष्म चैतन्य की शक्ति उत्तेजित होती है और वह कार्य करने लग जाती है। जब इस सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम शक्तिका कार्य इंद्रियमें प्रारंभ हो जाता है, उस समय इंद्रियोंकी शक्ति इतनी बढ जाती है कि उतनी साधारण मनुष्यमें नहीं होती। इससे ही अद्भुत कार्य करनेकी संभावना होती है। इसीको **"अतीन्द्रियार्थ दर्शन"** कहते हैं, साधारण अवस्थामें जो कार्य इंद्रियोंसे नहीं होता, वह इस अवस्थामें आसानीसे हो सकता है। सूक्ष्मतत्वके साथ योग किंवा संयोग करनेकी शक्ति अपने अंदर जो बढावेंगे, वे उक्त

चमत्कार कर सकते हैं। इसीको "दिव्य दृष्टि" भी कहते हैं इसी अवस्थामें दिखाई न देनेवाले प्रकाश दिखाई देते हैं, जिनका श्रवण नहीं होता था वैसे सूक्ष्म मधुर शब्द सुनाई देते हैं, उत्तम सुगंध आने लग जाता है, इसी प्रकार अनेक शक्तियोंका विकास होजाता है। यह सब सूक्ष्म शक्तियोंको सचेतन करनेसे ही हो जाता है।

मनकी स्थिरता किसी एक स्थानपर आधा घंटातक करनेका अभ्यास हो जानेसे इस अभ्यासका प्रारंभ हो जाता है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, सहस्रार आदि कमलोंके स्थान अपने शरीरमें क्रमशः गुदा, नाभि, नाभिके पास, हृदय, कंठ, भ्रूमध्य, मस्तिष्कमें हैं। इनपर दीर्घकालतक संयम करनेका अभ्यास करनेसे कई विलक्षण अनुभव आ जाते हैं। इस लिये उक्त चक्रोंपर धारणा ध्यान करनेका अभ्यासही इस अनुष्ठानमें मुख्य साधन है।

इस अभ्यासमें एक विपरीत बात है वह यह है कि साधारणतः बहुत तार्किक नहीं परंतु अत्यंत विश्वास और अत्यंत श्रद्धा रखनेवाले, जिनके मनके अंदर बहुत गतियां नहीं हैं; ऐसे लोगोंसे यह साधन शीघ्र साध्य हो जाता है, अनुभव भी उनको शीघ्र होता है; परंतु जो अत्यंत तार्किक, हुशियार, चतुर, व्यवहारमें अत्यंत कुशल, बहुत पढ़े हुए जो रातदिन विचारका कार्य करते हैं, जिनके मनमें श्रद्धा भक्ति नहीं है, परंतु गतियां बहुत हैं, ऐसे लोगोंको उक्त सिद्धि होनेके लिये बडीही देरी लगती है। क्योंकि मनकी स्थिरतासेही यह सिद्धि प्राप्त होती है। इसलिये तार्किकोंको यदि अनुभव लेनेकी

इच्छा है तो साल छः महिने तर्कके काम दूर रखने चाहिये, दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

मनुष्यके शरीरमें जो अनेक शक्तियोंके केंद्र हैं, उन सबमें चिंतामणि और तृतीयनेत्र अधिक महत्वके हैं । इन दोनोंका स्थान मस्तिष्कके मध्यमें तालुके ऊपर है । स्तनके समान अथवा बडे फोडके समान इनका आकार है । तै० उपनिषद्में चिंतामणिका नाम इंद्रियोनि कहा है । क्योंकि आत्माकी शक्तिका यही स्थान है । प्रायः छोटे बालक, स्त्रियां, भगतलोग, श्रद्धालु लोग, इनमें यह चिंतामणि अधिक प्रभावशाली होता है और जो अत्यंत तार्किक होते हैं उनमें इसकी उतनी शक्ति नहीं होती । इसीलिये साधुसंत कहते आये हैं कि आत्मसाक्षात्कारके लिये " बालक बनना चाहिये । " जो लोग दुनयवी बातोंमें चतुर होते हैं वे अध्यात्मिक बातोंमें प्रगतिशील होंगे, ऐसा कहना कठिन है । परंतु प्रयत्न करनेपर उनकोभी यह मार्ग साध्य हो सकता है । इस चिंतामणिकी जागृतिसे अतीन्द्रियार्थ ज्ञानकी शक्ति प्राप्त होती है ।

तृतीय नेत्रका स्थानभी चिंतामणिके पासही है । इसमें स्वयं प्रकाश है और उसका प्रकाश किरण किसी भी पदार्थमेंसे परे जा सकता है । इसलिये इसकी जागृति करनेवाले ऐसे भी पदार्थोंको देख सकते हैं कि जो इस स्थूल नेत्रसे देखे नहीं जाते । इतनाही नहीं परंतु स्थूल नेत्र बंद रखकर भी इस तृतीय नेत्रसे देखा जाता है ।

जिस समय शांत गतिसे प्राणायाम किया जाता है जिसमें अतिदीर्घ परंतु मंद गतिसे श्वास और उच्छ्वासही होते हैं, उस समय गुदाके पासके मूलाधारचक्रसे लेकर पृष्ठवंशके ऊपरके भागतक संपूर्ण

ज्ञानतंतुओंको एक प्रकार की समतालयुक्त गति मिलती है। इस लिये प्राणायाम योग्य विधिसे करनेसे उक्त केंद्रोंमें स्फुरण होता है और वे जागृत हो जाते हैं। प्रत्येक केंद्रमें जो विलक्षण शक्ति रहती है उसको संचालन मिलनेसे पूर्वोक्त शक्तियोंका अनुभव हो जाता है। आजकलकी सभ्यता, कि जिसमें शांति कम और गति अथवा चंचलता विशेष होता है, मनकी स्थिरता कम होकर चिंता बहुत बढ जाती है, इन शक्तियोंके विकास केलिये प्रतिबंधकही है। इसलिये ही ऋषि मुनि, योगी आदि पहाडोंमें जाकर अपना अनुष्ठान करते और सिद्ध होनेके पश्चात् जगत्में आ जाते थे। प्राचीन कालके गुरुकुलोंमें यह व्यवस्था थी और पढाई भी इसके लिये साधक ही थी। परंतु आजकल विपरीत भावही बढ गया है। इस युगके मनुष्योंमें बालकपनमें भी " कुमार भाव " नहीं रहता, फिर तरुण और वृद्धोंमें कहां दिखाई देगा और कुमार भावके विना उक्त शक्तिका विकास कष्ट साध्यही है। जिनके अंदर उक्त शक्ति विकसित होती है उनमें पहिले कुमार भाव दिखाई देता है। इसीलिये तार्किकों की अपेक्षा अतार्किकोंको उक्त अवस्था निज विश्वासमय श्रद्धासे सुसाध्य होती है।

(इस तृतीय नेत्रका प्रकाश किरण इस स्थूल नेत्रसे बाहिर आकर भी विशेष कार्य कर सकता है और बाह्य पदार्थोंपरभी इसका परिणाम होता है। आजकल एक यंत्र बनाया गया है कि जिसपर नेत्रका किरण केंद्रित करनेसेही उसमें गति उत्पन्न हो जाती है। इसलिये अब उक्त शक्तिके विषयमें किसीको संदेह नहीं हो सकता।)

इंद्रियशक्तिकी स्वाधीनता।

(८)

शरीरके अंदर जितने शक्तिकेंद्र हैं उन सबके अथवा उनमेंसे किसी एकका कार्य अपनी इच्छानुसार करनेकी शक्ति प्राप्त करनेका नाम " इंद्रियशक्तिकी स्वाधीनता " है। प्रथम शक्तिका विकास करना और पीछेसे उसकी स्वाधीनता करना होता है। मज्जातंतु संस्थाओंके आधीन सब इंद्रियां हैं, इसलिये मज्जातंतु संस्थाओंको अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करनेका अभ्यास कराना उक्त स्वाधीनता प्राप्तिके लिये अत्यावश्यक होता है। इस समय बहुतसे ऐसे कार्य हमारे शरीरमें हो रहे हैं कि उनपर हमारा अधिकार नहीं है। उनपर अधिकार स्थापित करके फिर उनको स्वतंत्रता देनी है। पाचन शक्ति, हृदयकी क्रिया, फेंफडोंकी क्रिया आदि व्यापारोंपर हमारा बिलकुल अधिकार नहीं है। उनको हमारी इच्छानुसार कार्य करनेका सिखाना और पश्चात् उनको स्वतंत्र कार्य करनेकी आज्ञा देना इसमें इष्ट है। जो योगी हृदयके व्यापारको स्वाधीन करते हैं, इच्छा होनेपर हृदयको बंद रखते हैं, मंद चलाते हैं अथवा वेगसे चलाते हैं, वे सदाके लिये हृदयके चलानेमें अपना मन नहीं लगाते, परंतु एकवार उन स्नायुओंको अपने आधीन करके फिर उनको " प्रांतिक स्वातंत्र्य " देते हैं। इसी प्रकार अन्य इंद्रियोंके विषयमें समझना उचित है।

इस साधनके लिये साधारणतः तीन उपाय किये जाते हैं। (१) **उपवास**—भूखा रहकर शरीरके अवयवोंको पहिले निर्बल करते हैं और मानसिक शक्तिसे शरीरशक्ति कमजोर करनेके पश्चात् उसको मनके आधीन करनेका अभ्यास करते हैं। (२) दूसरा उपाय "**प्राणायाम**" है। प्राणायामसे मज्जातंतु और मन बलवान् करके उसकी शक्तिसे इष्ट अवस्था प्राप्त करते हैं। ये दोनों उपाय कष्टसाध्य हैं, तथा योग्य गुरुके पास रहकरही करनेके हैं। किसीकी सहायताके विना स्वयंही किये तो कदाचित् भय उत्पन्न होनेकी संभावना है। (३) तीसरा उपाय इष्ट शक्तिकेंद्रका स्थान निश्चित करके उसपर अपने मनका "**संयम**" करना और शनैः शनैः उसकी स्वाधीनता संपादन करना है। यह उपाय सबको साध्य हो सकता है, परंतु इसकी सिद्धिमें देरी लगती है।

वास्तविक देखा जाय तो हृदय आदि अनैच्छिक अवयवोंको अपने आधीन करनेसे कोई विशेष लाभ होता है, यह बात नहीं। योगका मुख्य उद्देश और ही है। परंतु मनुष्यको इच्छा रहती है कि अपनी शक्ति कहांतक चलाई जा सकती है इसका अनुभव चाहिये; यह अनुभव इस विधिसे प्राप्त होता है और निश्चय हो जाता है कि "**मैं इस देहका स्वामी और चालक हूं।**" जिसको यह अनुभव अन्य प्रकार प्राप्त है, उसको इस खटाटोपमें प्रयत्न करनेकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है। तथापि ऐच्छिक इंद्रियोंका संयम सिद्ध करना अत्यावश्यक है।

———

स्वाध्याय मंडलके पुस्तक।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।" मूल्य १) एक रु.।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। "एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥) आठ आने।

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=) दस आने।

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. =) दो आने।

(४) देवता विचार। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥) आठ आने।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।) सवा रुपया।

[४] ब्राह्मण-बोध-माला।

(१) शत-पथ बोधामृत। मू०।) चार आने।

[५] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. -) एक आना।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । मू. =) दो आने।
(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक । मू. ≡) तीन आने।

[६] स्वयं शिक्षक माला ।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । मू. १॥) डेढ रु.।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु.।

[७] आगम-निबंध-माला ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।-) पांच आने ।
(२) मानवी आयुष्य । मू. ।) चार आने ।
(३) वैदिक सभ्यता । मू. ≡) तीन आने ।
(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र । मू. ।) चार आने ।
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥) आठ आने।
(६) वैदिक सर्प-विद्या । मू. ॥) आठ आने ।
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय । मू. ॥) आठ आने ।
(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥) आठ आने ।
(९) शिव संकल्पका विजय । मू. ॥।) बारह आने ।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ॥) आठ आने।
(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥) आठ आने ।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र । मू. ≡) तीन आने ।
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. =) आने ।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल; औंध (जि. सातारा)

प्रकाशक—बापुलाल कु. पटेल, प्रभाशंकर चाळ, सान्ताक्रुझ (मुंबई.)
मुद्रक—चिंतामण सखाराम देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सर्व्हंट्स ऑफ इंडिया सोसायटीज बिल्डिंग, सँडहर्स्ट रोड, गिरगांव, मुंबई.

Registered No. B. 1463.

वर्ष ४ अंक ६ ॐ ज्येष्ठ संवत् १९८०.
क्रमांक ४२ जून सन १९२३.

वैदिक धर्म।

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-मासिक-पत्र।

देवस्य पश्य काव्यं, न ममार, न जीर्यति॥
अथर्व. १०।८।३२

ईश्वरका काव्य देखो, जो मरा नहीं, और
जो क्षीण भी नहीं हुआ है।

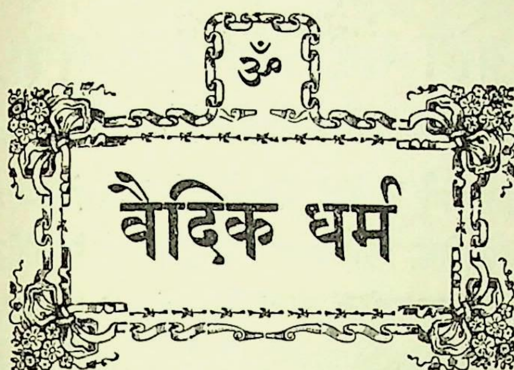
संपादक--श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

शांतिका स्रोत।

१ सब प्राणी मित्रदृष्टिसे मेरी ओर देखें।
२ मैं मित्रदृष्टिसे सब प्राणियोंकी ओर देखता हूं।
३ हम सब मित्रदृष्टिसे परस्परों को देखेंगे॥
यजु. ३६-१८.

...िक मूल्य ३॥) साडे तीन रु. । विदेशके लिये ४॥) साडे चार रु.

विषय सूची ।



वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र ।

वर्ष ४ अंक ६ { ज्येष्ठ १९८०; जून, सन १९२३. } क्रमांक ४२

कल्याण ।



विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ॥
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

यजु. ३०।३

" हे प्रेरक ईश्वर ! जो दुष्टता है हम सबसे दूर करो, और जो कल्याण है हमारे पास ले आओ । "

योग मंडलकी सभासदी।

“ वैदिक धर्म ” अंक ३७ में “ योगमंडल ” की स्थापनाका वृत्तांत प्रसिद्ध होनेके पश्चात् हमारे पास बीसियों चिठ्ठियां आगईं, जिसमें यह पूछा गया है कि “ **सभासदीका चंदा कितना है, हम चंदा देनेके लिये तैयार हैं, हमें सभासद बनाया जाय।** ” इ० । परंतु यहां योगमंडलके सभासदोंमें चंदा इकठ्ठा करनेका कोई ख्याल नहीं है, और इसलिये योगमंडलकी सभासदीके लिये कोई चंदा रखा नहीं गया है।

प्रायः सब लोगोंको इस बातका अभ्यास है कि, किसी सभाका सदस्य होनेके लिये मासिक अथवा वार्षिक चंदा अवश्य देना चाहिये। पत्रोंमें “ **स्वाध्याय–मंडल** ” के प्रेमी सहृदय सज्जन वारंवार लिखते हैं कि, स्वाध्याय मंडलकी सभासदीके लिये कोई चंदा रखा नहीं गया, यह अच्छा नहीं किया। क्योंकि सभासद होनेके पश्चात् चंदा देनेके हेतुसे उस सभाका हमें स्मरण होता है कि, जिसके हम सदस्य बने हैं। यहां पाठकोंसे हमारा निवेदन है कि, जो हेतु चंदा रखनेके लिये पाठकोंनें दिया है, उसी हेतुके कारण चंदा रखा नहीं है । चंदा देनेके समयही स्मरण होना अथवा चंदेकी मांग होनेसे ही स्मरण आना, यह कदापि अच्छा नहीं है, कमसे कम स्वाध्याय मंडल तथा योगमंडलके लिये तो

ऐसा होना सर्वथा अयोग्य है। चंदा देनेवालेही सभासद हो जांयगे, और चंदेके समयही सदस्योंको मूल संस्थाका स्मरण हो जायगा, यह बात हमें कदापि इष्ट नहीं है।

" स्वाध्याय–मंडल " की सभासदीके लिये जो चंदा रखा गया है वह " **वेदोंका प्रतिदिन स्वाध्याय करना** " ही है। " **वेदोंका पढना पढाना, सुनना सुनाना हरएक वैदिकधर्मी मनुष्यका परम धर्म है।** " निष्काम भावसे इस परम धर्मका पालन होना चाहिये। जो नियम पूर्वक प्रतिदिन इस परम धर्मका पालन करते हैं, वे केवल नाम लिखनेसेही स्वाध्याय मंडलके सदस्य हो सकते हैं। स्वाध्याय करते करते जो मंत्र अच्छा प्रतीत हो जाय उसके ऊपर कुछ अपने विचार लिख कर स्वाध्यायमंडल के पास भेजनेसे बडा लाभ हो सकता है। हम समझते हैं कि, ऐसा यदि सहृदय पाठक करते जाँयगे, तो सबकोही उतना लाभ होगा कि, जितना सहस्रों रु. चंदा देनेसे भी नहीं हो सकता। तथा जो कहना है कि, चंदेसे ही मूल संस्थाका स्मरण होता है, वह भी भ्रममूलक ही है। चंदेसे जितना स्मरण होना संभव है उससे शतगुणित स्मरण " **स्वाध्याय के व्रत** " से होना संभव है। वेदका स्वाध्याय करना यही " **महा-व्रत** " है, ऐसा समझिये, तो इसी व्रतके कारण आपको प्रतिदिन स्मरण होगा।

" **योग मंडल** " की सभासदी भी उसी प्रकार विना चंदेसे हो सकती है। " **वेदका पढना पढाना, सुनना सुनाना और तदनुसार**

अनुष्ठान करना और कराना प्रत्येक वैदिक धर्मीका परम कर्तव्य है।" प्रतिदिन स्वाध्याय करके मंत्रोंके शब्दार्थ विदित करनेसे ही केवल पूर्ण कार्यभाग नहीं होता है, **जबतक मंत्रोक्त अनुष्ठान करके उस उच्च अवस्थाका अनुभव नहीं लिया जायगा।** यही मंत्रज्ञानका अंतिम ध्येय है, इसलिये हरएकको इस बातके लिये अपने आपको योग्य बनाना चाहिये। अपने आपको योग्य बनानेका साधन एक मात्र "**योग-साधन**" है। यदि वैदिक धर्मी आर्योंका कोई "**गुप्त धन**" ऋषिकालसे चला आया है, तो यही एक है। परंतु इस मार्गके दर्शक इस समय सर्वत्र प्राप्त नहीं हो सकते। जो श्रेष्ठ दर्जेतक पहुंचे हुए योगीश्वर हैं, वे गिरिकंदरोंमें कहां बैठे हैं, किसीको पता नहीं; तथा यदि किसीका पता हुआ तो उनके पास पहुंचनेके लिये भी स्वयं गुहानिवासी होनेकी तैयारी करनी चाहिए। ऐसा करना सबके लिये प्रायः अशक्य है। इस लिये हरएक मनुष्य इस विद्यासे लाभ उठानेमें असमर्थ हुआ है।

साधारण अनुष्ठानी अवस्थामें जो योगसाधन करनेवाले मध्यम-दर्जेके सज्जन ग्रामों और नगरोंमें रहते हैं, वे अपना साधनमार्ग इतना गुप्त रखते हैं कि, खास परिचय होनेतक किसीको रहस्य की बातका पता देते नहीं; इतनाही नहीं, परंतु समय पर कुछ और ही संदिग्ध रीति बता देते हैं, इससे मनुष्य भ्रममें पडते हैं और कुछभी उन्नति कर नहीं सकते। इन कारणों से यह योगमार्ग सबके उपयोगी होने-पर भी अत्यंत गूढ और गुप्त तथा अज्ञेय सा रहा है।

ऋषिकालमें हम देखते हैं, तथा पांडवोंके समयतक इतिहासके अवलोकनसे पता लगता है कि, उस समयमें यह मार्ग इतना अज्ञेय नहीं था। कुछ बातें जो खास रहस्यकीं होती थीं गुरुके पासही रहती थीं; परंतु योगसाधनका जितना भाग सब जनताके उपयोगी, आरोग्य-प्राप्ति रोग निवारण आदि दृष्टिसे है, उतना सबको सुगमतया प्राप्त था। हमारी इच्छा है कि, उतना ही सब लोगोंको इस समय भी प्राप्त हो, और जो लोग अपनी इच्छा शक्ति द्वारा अपनी उन्नति करना चाहते हैं उनको अभ्यास करना सुगम हो जावे।

इस उद्देश्यसे आवश्यक और सुगम योगसाधनका उपदेश देनेकी व्यवस्था इस भरतखंडमें बहुत थोडे स्थानोंमें है, परंतु वह भी सब को कई कारणोंसे प्राप्त नहीं। तथा आधुनिक शास्त्रोंके मननसे अपने योगमार्गकी परीक्षा करके साधनोंकी सुगमता जिन्होंनें की है, ऐसे लोग बहुतही थोडे हैं। इस लिये योगसाधन मार्गका तत्व-ज्ञानकी दृष्टिसे निरीक्षण और परीक्षण करके तथा स्वयं अनुभव करकर अनुभूत प्रक्रियाका प्रकाशन, किसी प्रकारका बीचमें संदेह न रखते हुए, करनेके उद्देश्यसे इस योगमंडलकी स्थापना की गई है। कई पाठकोंका आग्रह है कि, योगमंडलके सदस्योंका नाम पता आदि प्रसिद्ध किया जाय। परंतु विशेष कारणके लिये इस समय वैसा करना असंभव है। इस समय इतनाही कहा जा सकता है कि, इस समय इस मंडलके १२ सदस्य हुए हैं, जिनमें कई ऐसे हैं कि, जो दस पांच वर्ष योगसाधन कर रहे हैं और दूसरे पांच चार वर्षोंके अभ्यासी हैं। पाठक इनका पता जानना चाहते हैं, इसलिये

जो पाठक विशेष इच्छुक हैं और जो बंबई प्रांतमें जिस समय आना चाहेंगे, उस समय उनको पत्रद्वारा पता दिया जा सकता है। इनमें से किसीकीभी इच्छा नहीं है कि अपने नामोंका प्रकाशन इस समय किया जावे।

जो सदस्य हुए हैं, उनमें से प्रत्येक एक एक बातका शास्त्र-दृष्टिसे अनुष्ठान करके अनुभव लेनेका यत्न कर रहा है, और सबके प्रयत्नसे कई विलक्षण अनुभव भी आचुके हैं। जिस बातका निर्णय जनताके सामने रखने योग्य संदेह-रहित रीतिसे हो जायगा, उस बातका प्रकाशन होता ही रहेगा। तबतक नामोंकी प्रसिद्धि करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जो पाठक योगमंडल की सभासदीके लिये पूछते हैं, उनके ध्यान में बात आचुकी होगी कि, इस मंडलकी सभासदी इस समय सब लोगों केलिये नहीं है। यह संस्था योगसाधनकी प्रक्रियाओंका निश्चय करनेके लिये ही है। सर्व साधारण लोग इसमें कार्य नहीं कर सकते। तथापि जो लोग योगके दोचार पुस्तकोंका अभ्यास कर चुके हैं और दोचार वर्ष योगसाधन करनेमें व्यतीत कर चुके हैं, चिकित्सक दृष्टिसे तथा तत्वनिर्णय की बुद्धिसे योगसाधन का अनुभव लेचुके हैं अथवा जो उक्त दृष्टिसे अनुष्ठान करना चाहते हैं और आगे बढना चाहते हैं, ऐसेही सदस्य हो सकते हैं। सिद्धि प्राप्त करनेकी अपेक्षा मार्गकी शुद्धता करनेकी इस समय आवश्यकता है। तथा योगसाधन का जो भाग हरएक मनुष्य के उपयोगी हो सकता

है, उसका किस सुगम रीतिसे हरएक के साथ परिचय किया जा सकता है, इसका विचार करनेका कार्य इस समय अत्यावश्यक है।

कोई व्यक्ति अपनी उन्नतिके लिये किसी गुरुके पास जाकर उनके साथ गुहामें रह कर अनुष्ठान द्वारा अपना साधन कर सकता है। कई सात्विक लोग ऐसा कर ही रहे हैं। परंतु इससे जनताके लिये कोई लाभ नहीं। "**वैदिक धर्म**" जनताके प्रत्येक दिनके आचरणमें आनेकी आवश्यकता है और इसलिये योगसाधनका व्यवहारोपयोगी भाग जनतामें सुगम रीतिसे प्रसिद्ध होनेकी इस समय अत्यावश्यकता है। इस समय जनतामें विविध बीमारियां फैली हैं, आयुष्य अल्प हो रहा है, विविध अस्वस्थताओंके कारण मन अशांत है; इस अवस्थामें जनताका सच्चा कल्याण करनेके लिये आवश्यक योगसाधनके साथ उनका परिचय होनेकी आवश्यकता है। यही कार्य इस समय करना है।

"**योगसाधन माला**" की पुस्तकें इसी उद्देश्यसे प्रसिद्ध हो रहीं हैं। जितनी बात निःसंदेह हो जाती है उतनी ही स्पष्ट शब्दोंमें लिखी जाती है तथा अन्य बातों का अनुभव न होनेके विषयमें स्पष्ट लिखा जाता है कि इस विषयमें अनुभव नहीं लिया है। इससे साधन करनेवालोंको बडाही लाभ पहुंच रहा है। इसलिये यही क्रम जहांतक चलसके वहांतक चलाना है, आशा है कि इसीसे पाठकोंको अधिक लाभ होगा।

ताडासन.

(इसका चित्र पूर्व अंकमें दिया है)

यह आसन पांव पास पास रखकर, अथवा पावोंमें अंतर रखकर, खडा होकर किया जासकता है। खडा होकर करनेका चित्रही पूर्व स्थानमें दिया है। यह आसन सब शरीरको सम रेषामें रखकर ही करना चाहिये, विशेषतः पृष्ठवंश—मेरुदंड—को सम रेखामें सीधा रखना अत्यंत आवश्यक है। इसमें एक हाथसे तथा दोनों हाथोंसे करनेका विधि पीछे दिया ही है। जब उक्त प्रकार ठीक होने लगेगा तब कमरसे निचले भागको स्थिर ही रखते हुए, कमरके ऊपरले भागको ही जहां तक हो सके वहांतक दांई और बांई ओर घुमाना चाहिये । इस घुमानेके समय आसनके हाथका स्थान वैसाही रखना होता है। सब का सब ऊपरला भाग जैसा का वैसा घुमाना है। ऐसा घुमानेसे पेटपर अच्छा परिणाम होता है। हाथ ऊपर करनेसे पेटके स्नायुओंमें ऊपरला खिंचाव होता ही है और ऐसा घुमानेसे दोनों ओर खिंचाव होकर पेट अच्छा रहनेमें बडी सहायता होती है । ऊपरला धड घुमानेके समय दांई और बांई ओर जितना अधिक घुमाया जाय उतना अधिक अच्छा है।

इस समय थोडीको कंठमूलमें, तथा दांये और बांये कंधेपर क्रमशः लगानेसे, तथा सिरका पिछला भाग कंठके पिछले मूल भागमें लगानेका केवल यत्न करनेसे, कंठके स्नायुओंमें नवजीवन आता है।

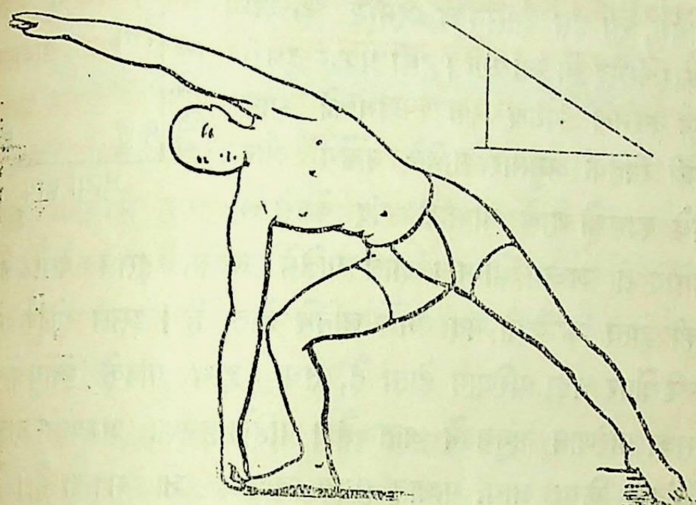
जिस समय आप इस आसनमें स्थिर रहेंगे, उस समय अपने फैलेहुए हाथोंके पंजोंको बहुतही सख्त मिटाकर फिर बहुतही फैलाइये। हाथका पंजा मिटना और फैलाना अपनी सब शक्तिके साथ जोरसे कीजिये। इससे खूनका प्रवाह होनेमें मदत होगी, हाथ के स्नायुओंको बडा व्यायाम होगा, उसमें पकडनेकी शक्ति आजायगी, और अपने बलका भी पता लग जायगा । यदि आप बिना थके हुए पांचसौ वार कर सकते हैं, तो आपकी शक्ति अच्छी समझी जायगी। साधारण मनुष्य दस वीस वारमेंही थक जाते हैं । परंतु ख्याल रखिये कि, स्पर्धामें आकर आप अपनी शक्तिसे अधिक वार न कीजिये, थोडा थोडा अभ्यास बढाते जाइये; अन्यथा आपके मज्जातंतुओंमें अधिक थकावट आजायगी। इसलिये सब अभ्यास अपनी शक्तिके अंदरही होना चाहिये । यह नियम सदाकेलिये स्मरण में रखिये।

पंजा मिटाना और फैलाना उसी समय करना चाहिये कि जिस समय हाथ फैले हों। हाथ ऊपर, नीचे, तिरछे और बाहूकी समरेखा में रखे जाते हैं, हरएक वार पंजा मिटाकर फैलानेका थोडा थोडा अभ्यास करना अच्छा है। जिस समय आप दफ्तरमें काम करते हैं घंटा दो घंटे काम करनेके पश्चात् यदि आप दो चार मिनिट ताडासन करेंगे तो आपके अंदर का उत्साह द्विगुणित हो जायगा। सुस्ती दूर होगी और फिर नये स्फुरणसे आप अपना काम कर सकेगें। परंतु स्मरण रहे कि यह ताडासन करनेके समय कपडे तंग न हों, कपडोंके सब बटन खोल कर तथा कमरबंध ढीला

करके आप कपडोंके समेतभी कर सकते हैं। मास्तिष्कके काम करनेवालोंको शीर्षासन अत्यंत उत्तम है, परंतु वह कपडोंके समेत नहीं हो सकता। इसलिये कपडोंके समेत होनेवाला यह ताडासन बहुत अच्छा है। हरएक स्थानपर यह हो सकता है। पाठ शालाओंमें विद्यार्थी, अध्यापक, कार्यालयोंके कर्म चारी आदि घंटा दो घंटेके पश्चात् चार पांच मिनिट इसको कर सकते हैं और इससे लाभ उठा सकते हैं। रेलमें प्रवास करते करते जिस समय बैठे बैठे मनुष्य थक जाता है, इस आसनसे पांच मिनिटमें थकावट दूर हो जाती है।

यदि सब शरीरको चालना नहीं देनी है तो खुर्सीपर या जमीन पर—बैठे बैठे ही हाथों द्वारा इस ताडासनको किया जा सकता है, इससे ऊपरले धडको अवश्य लाभ पहुंचता है। बिस्तरे पर लेटकर भी इसको किया जा सकता है, चार पाई पर सोना है तो ढीली चार पाई न हो, जो जमीन पर सोते हैं उनको तो कोई कठिणता ही नहीं है। सवेरे विस्तरे परसे उठनेके पर्व ओढनेके कंबल ऊपर रखते हुए ही आप अपने हाथोंको ऊपर, तिरछे और बाहुकी समरेखामें फैलाइये और पंजेको मिटा कर फैलाइये। जैसा आप खडा रहकर कर सकते हैं वैसाही ठीक बिस्तरे पर सोते सोते ताडासन कर सकते हैं। प्रतिदिन इस प्रकार दस पांच मिनिट करनेसे बडा लाभ होता है। जाग आते ही सुस्तीके कारण जो शीघ्र उठ नहीं सकते, वे इस आसनको बिस्तरेमें करेंगे, तो तत्काल उत्साहका अनुभव कर सकते हैं। शौच शुद्धिके लिये भी इससे बडा लाभ होता है।

कोनासन.



सबसे पहिले पांव फैलाकर खडे रहिये, और पीठ समरखामें रखकर पूर्वोक्त प्रकार ताडासन कीजिये। जब अच्छी प्रकार हो जाय तब एक पांवको सीधा रखकर दूसरे पांव को मोडकर अपने एक हाथसे मोडे हुए पांवके अंगुठेको स्पर्श कीजिये तथा दूसरा हाथ सीधे पांवकी समरेखामें सीधा रखिये । कुछ देर इसी प्रकार ठहरकर फिर सीधा खडा हो जाइये । तत्पश्चात् दूसरे पांवको मोडकर दूसरी तर्फ का आसन कीजिये । जब दाई और बाई ओर का ठीक होजाय, तब समझिये कि आपका अभ्यास ठीक हुआ है ।

पंजा
पंजा बाहु
बांया हाथ
दांया हाथ

इस आसन को करनेके पूर्व ही ताडासनमें अपने हाथोंको साथ बताये हुए रीतिसे समकोणमें रखेंगे, और उस प्रकार समकोणमें रखे हुए हाथोंके समेत ही आप

बांये हाथको नीचे बांये पांव तक शनैः शनैःऔर मंद वेगसे ले आयेंगे, तो इस आसनका अभीष्ट अच्छी प्रकार सिद्ध हो जायगा। इसी प्रकार दूसरी तर्फ करनेके समय आप हाथोंको साथ वाली रीतिके अनुसार पहिले रखेंगे और दांये हाथको दांये पांवतक मंद वेगसे ले आयेंगे तो अच्छा होगा। शीघ्र गतिसे लानेमें इससे वैसा लाम नहीं होता कि जैसा मंद वेगसे लानेसे होता है। इससे पेटके नस नाडियोंपर बडा परिणाम होता है, तथा हाथ पांवके स्नायुओंतक इसका परिणाम अनुमवमें आता है। पहिले इसका अभ्यास दोचार सेकंदही किया जाय, पश्चात् समय बढाया जा सकता है। जो मनुष्य इसको पहिले पहिले पूर्ण रीतिसे और अच्छीप्रकार कर नहीं सकते उनको बलसे करना नहीं चाहिये। थोडा थोडा अभ्यास बढाकर दस पंध्रह दिनोंमें ठीक हो जाता है, जो पहिले दिन ही अच्छी प्रकार करते हैं उनके लिये कोई विशेष बातही नहीं है।

बायां हाथ
पंजा
बाहु
पंजा
दायां हाथ

शांतिका अनुभव।

हरएक मनुष्यको अनुभव है कि, " अशांत रहनेसे कष्ट और शांति मिलनेसे सुख होता है । " यह शांति कैसी प्राप्त की जा सकती है, इसका विचार हरएक मनुष्यको अपनी परिस्थितिके अनुसार करना आवश्यक है, तथापि शांतिके सर्वमान्य तत्वोंका विचार यहां करता हूं ।

कई मनुष्योंका स्वभाव बड़ा चिडचिडा होता है । हर समय चिड़ाने, अशांत होने और मनमाने शब्द बोलने में ये मनुष्य बडे प्रसिद्ध होते हैं । इनको किसी प्रकारभी स्वास्थ्य, शांति और समाधान हो ही नहीं सकता। इस लिये यदि ऐसा दोष हुआ, तो उसको दूर करनेका यत्न हर एकको करना अत्यंत आवश्यक है; क्यों कि इस स्वभावके कारण उनकी आत्मिक उन्नति होनी असंभव है। ये मनुष्य प्रायः क्रोधी होते हैं। इस क्रोधको इसी लिये जीतना चाहिये कि, इससे खूनकी खराबी होती है । जिस समय क्रोध आता है, अपने ही खूनके जीवन अणुओंको मार देता है । क्रोधसे दूसरेकी हानि होगी या न होगी, इसका विचार स्वतंत्र है; परंतु क्रोधके कारण क्रोधी मनुष्यके जीवन युक्त कीटाणुओंका नाश होता है, यह बात सत्य है । इससे स्पष्ट है कि, जिसके ऊपर यह क्रोध करता है, उसका नाश होनेके पूर्व इसी क्रोधीका नाश होता है । इसी लिये

कहते हैं कि, क्रोधके कारण आयु घटती है। इतने भयानक शत्रुको अपने पास कौन करेगा ? इस कारण भगवद्गीतामें कहा है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ॥
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

भ. गी. ३

" यह रजोगुणसे उत्पन्न काम और क्रोध महा भोगी और पापी है, यह तेरा शत्रु है। जिस प्रकार धूमसे अग्नि, मलसे शीशा और चर्मसे गर्भ आवृत होता है, उसी प्रकार इस काम और क्रोधसे यह सब ढंका है। " अर्थात् काम और क्रोधके कारण सब कामी और क्रोधी अज्ञानसे युक्त होते हैं और उनको कर्तव्य अकर्तव्यका विचार नहीं होता। यह बात हरएक जान सकता है कि, क्रोधके वशमें होनेके कारण मनुष्य समय समयपर कितने अनर्थ करता है, और कैसा गिर जाता है। बाह्य अनर्थ इससे न भी हुए तोभी यह क्रोधके आवेशमें जब होता है। तब बडा अशांत होता है और शांतिसे दूर होता है। इस लिये क्रोधको छोडना चाहिये।

चिडचिडा अथवा क्रोधी मनुष्य अपना मनोरंजन करनेके लिये भी किसी स्थानपर गया, तो उसको वह शांति नहीं मिलती कि, जो दूसरे शांत और प्रेमी मनुष्यको प्राप्त होती है। इसलिये द्रव्यका व्यय करनेपर भी यह क्रोधी मनोरंजनसे दूरही रहता है। कई समझते

हैं कि, यह स्वभावगुण है, और दूर नहीं हो सकता। परंतु हमारा विचार है कि यह स्वभावधर्म होने परभी प्रयत्न करनेपर दूर होता है। हमने कई क्रोधी मनुष्य बडे शांत और प्रेमी बने हुए देखे हैं। इसलिये अपना चिडचिडा स्वभाव दूर करनेका यत्न हरएकको अवश्य करना चाहिये।

शांति प्राप्त करनेका आसन।

(१) शवासन, प्रेतासन, मृतासन।

भूमिपर दरी या कंबल बिछाकर उसपर दोनों हाथ और दोनों पांवोंको फैलाके आकाश या छत की ओर मुख करके पीठसमेत सब अंग जमीन को लगाकर सोनेका नाम शवासन है। इसको मृतासन तथा प्रेतासन भी कहते हैं। बहुत श्रम होनेकी अवस्थामें यह आसन करनेसे विश्रांति मिलती और श्रम दूर हो जाते हैं।

बहुत चलने, घूमने, दौडने अथवा अन्य प्रकार बहुत श्रम करनेपर यह आसन दस पंध्रह मिनिट करनेसे सब श्रम दूर होते हैं और शांति प्राप्त होती है।

(२) दंडासन।

शवासनमें हाथ और पांव फैले थे, वैसे न फैलाते हुए एक पांव दूसरे पांवके पास रखिये और एक हाथ दूसरे हाथके पास रखिये, और सब शरीर पांवसे लेकर हाथ के पंजेतक समरेखामें दंडवत् भूमिपर रखिये, इसका नाम दंडासन है। इसका फलभी श्रम परिहार ही है।

इन दोनों आसनोंको करनेके समय अपने सब स्नायु, अंग और अवयव बिलकुल ढीले रखने चाहिये। अपनी आत्मशक्ति शरीरसे हटाकर अपने आत्माके अंदर लानी चाहिये, और शरीर बिलकुल प्रेतके समान स्थिर करना चाहिये। सब स्नायु जितने ढीले करेंगे, उतना आराम अधिक प्राप्त होगा। दस पंध्रह मिनिट करके आप फिर अपनी शक्ति शरीरमें भेजिये। इस समय आपको नवीन उत्साह प्रतीत होगा, और प्रायः सब श्रमकी थकावट दूर होगी।

इस शवासन अथवा दंडासन करनेके समय श्वास उच्छ्वास बिलकुल शनैःशनैः और आवाज बिलकुल न करते हुए करने चाहिये। श्वास अंदर जानेके समय अथवा उच्छ्वास बाहेर छोडनेके समय थोडाभी आवाज न हो। परंतु पूर्णतासे श्वास अंदर जाय और पूर्णतासे बाहिर भी आजाय। श्वासोच्छ्वास के आवाजका भान अपने आपको भी न हो। इस प्रकार अत्यंत शांतिसे श्वासोच्छ्वास करनेसे शवासनमें बडा लाभ होता है। श्वास और उच्छ्वासका प्रमाण सम हो, जितना दीर्घ श्वास होगा, उतनाही दीर्घ उच्छ्वास होना चाहिये। यह लंबाई आप मनमें ही अंकों या मंत्रोंकी गिनतीसे कर सकते हैं।

कुछ देर ऐसा करनेके पश्चात् जब श्वास सम प्रमाणमें होने लगेगा तब आप श्वासकी ओर का ध्यान हटाइये और अपने मनके विचार बंद कीजिये। जहांतक संभव हो वहांतक मनमें एक भी विचार न रखिये। तात्पर्य इस शवासनमें शरीरके स्नानुओंको ढीला करके

तथा मनको भी निर्विकार करके जहांतक हो सके वहांतक शांत रहना चाहिये। आंख बंद रखिये और किसी अन्य इंद्रियका कोईभी व्यापार न कीजिये।

ऐसा शांत रहनेसे एक प्रकारकी अवर्णनीय शांति प्राप्त होती है और द्विगुणित उत्साह बढता है।

अन्य प्रकार बैठ या सोकर भी आप अपने स्नायुओंको ढीला करके कुछ आराम प्राप्त कर सकते हैं। स्नायुओंको ढीला करनेसे हमेशा शीघ्र विश्राम प्राप्त होता है। परंतु शवासनमें सबसे अधिक प्राप्त होता है।

आप काम करते करते जब थक जाते हैं, तब दस पंध्रह मिनिट उक्त प्रकार शांतश्वसन पूर्वक शवासन करके अपने स्नायु ढीले करेंगे, तो आपको पूर्ण विश्राम मिलेगा, और आपकी सब थकावट दूर होगी। न थकनेकी अवस्थामें भी दो तीन घंटे परिश्रम के पश्चात् बैठे बैठेही अपने स्नायु ढीले और मन बिलकुल शांत करेंगे, तो आपको थकावट ही नहीं आवेगी।

जिनको अभ्याससे स्नायुओंको ढीला और मन निर्विचार करनेकी कला अवगत हुई है; वे कभी थकेंगे नहीं अथवा थकनेके पूर्वही उक्त यौगिक क्रियासे फिर नूतन उत्साह युक्त बन जायंगे। अपने शरीरके इंद्रिय व्यापारोंमें भी परमात्मानें ऐसी युक्ति रखी है कि, थोडा कार्य करनेके बाद उस इंद्रियको स्वयंही विश्राम मिलता है। सबसे मुख्य बात यह है कि, संपूर्ण इंद्रियां एकही समय कार्य नहीं करतीं,

क्योंकि आत्माकी प्रेरणा ही समयान्तरके पश्चात् एक एक इंद्रियमें होती है। मन जिस समय आंखसे देखता है, ठीक उसी समय शब्दका श्रवण नहीं कर सकता। साधारणतः ऐसा होता है, इसलिये जिस-समय एक इंद्रियके व्यापार चलते हैं उस समय दूसरे इंद्रियोंको विश्राम मिलता है। इतनाही नहीं प्रत्युत एक इंद्रियके व्यापार चलनेके समयमें भी प्रतिक्षण थोडी थोडी विश्रांति मनको मिलती है। उदाहरणके लिये समझ लीजिये कि, आप बोलते हैं उस समय एक शब्द बोलनेके पश्चात् थोडी विश्रांति करके ही दूसरा शब्द बोला जाता है। हृदयका चलना भी एक आघात के पश्चात् विश्रांति लेकर दूसरा आघात होता है। श्वांस उच्छ्वास की गतिमें भी बीचमें थोडीसी विश्रांति मिलती है, इसी विश्रांतिको बढानेका नाम आंतरिक अथवा बाह्य कुंभक है। तात्पर्य मध्य समयमें विश्राम लेना निसर्ग स्वभावही है। इस विश्राममें आत्मा परमात्माका अभेद संबंधका अनुभव होता है, एक दूसरेमें मग्न होते हैं और जीवात्मामें बल आता है। दो दिनके बीच में जो निद्रा आती है, इस निद्रामें भी यही होता है।

इस स्वभाव धर्मका निरीक्षण करनेसे पता लगेगा कि, दो कार्योंके बीचमें विश्रांति लेनेसे थकावट दूर होती है, और नवीन उत्साह प्राप्त होता है। यह न केवल मनुष्योंमें, परंतु पशुओंमें, वृक्षवनस्पतियोंमें और धातु आदि जड पदार्थोंमें भी है। वृक्षभी थकते और विश्राम मिलनेसे उत्साह पूर्ण होते हैं। जो लोहेके जड यंत्र हैं, उनको भी थकावट आती है, और विश्राम न देते हुए दिनरात कार्य करनेसे शीघ्रही बिगड जाते हैं। इस लिये मनुष्यको शवासन द्वारा अथवा अन्य-

प्रकार कार्य समाप्तिके पश्चात् पूर्वोक्त रीतिसे नवजीवन प्राप्त करना चाहिये। हरएक मनुष्य थोडेसे प्रयत्नसे उक्त रीति में निपुण हो सकता है, क्योंकि सब अन्य आसनोंसे यह सुलभ आसन है; शांत-श्वसन तथा स्नायु शिथिलीकरण भी बडाही सुगम परंतु अत्यंत लाभदायक है।

आसनोंका अभ्यास करनेके समय अथवा अन्य व्यायाम करनेके समय बीचबीचमें यदि आप स्नायु शिथिल करना, शांत श्वसन और मन को निर्विचार करते जांयगे, तो आपको अनुभव होगा कि, ऐसा एकदो मिनिट करनेसे भी बडा लाभ होता है, और किसी प्रकार थकावट नहीं आती।

विशेष थक जानेपर इसका लाभ स्पष्ट प्रतीत होता है। अन्य कुछ भी न करते हुए, यदि मनको निर्विचार और स्तब्ध आप करेंगे, तो भी आश्चर्य जनक आराम मिल सकता है। जिस समय आपको घबराहट प्रतीत होती है, स्पर्धामें कार्य करना है कोई बडा अधिकारी आगया है, कुछ परीक्षा का समय है, अथवा कुछ अन्य कारण घबराहट हुई है, तो आप शांतिसे और अत्यंत मंद गतिसे दस बीस दीर्घ श्वास उच्छ्वास लीजिये, मन श्वासकी गतिमें रखिये और अन्य सोचना बंद कीजिये; चार पांच मिनिटों में ही आपकी सब घबराहट दूर होगी और मनको विशेष शांति मिलेगी। यह अनुभवकी बात है आपको भी ऐसाही अनुभव आ जायगा।

———

" सद्गुणोंकी धारणा । "

यम और नियमोंका अभ्यास करनेसे मनुष्यका जीवन अधिक पवित्र, अधिक श्रेष्ठ और अधिक आदर्शभूत होता है। परंतु यह अभ्यास केवल " **अभ्यास** " समझकर करना नहीं चाहिये, प्रत्युत उन गुणोंको अपने जीवन के अंदर ढालना चाहिये। ऐसा दीखना चाहिये कि, इसका जीवन यम नियम रूप ही बन गया है। तात्पर्य यह है कि, वैसा अपना निज " **स्व–भाव** " ही बनना चाहिये। श्रेष्ठ और उच्च गुणोंसे परिपूर्ण स्वभाव बनाना ही यहां मुख्य है, दिखावेसे अथवा प्रयत्नसेही केवल कार्य नहीं चल सकता। अब विचार करना है कि, यह स्वभाव किस प्रकार बनाया जा सकता है।

" **गुण** " अर्थात् जो सद्गुण हैं, उनका मनसे ध्यान करना, पहिला काम है, जब अपने मनसे उन गुणोंकी श्रेष्ठता निःसंदेह श्रेष्ठ सिद्ध हो जाय, तब उनके अनुकूल " **कर्म** " करना आवश्यक है। जैसे मनमें गुण धारण किये थे, और जिनकी श्रेष्ठता मनके द्वारा निश्चित हुई थी, उनको कर्म करनेके समय उपयोग में लाना चाहिये। इस प्रकार जब गुण और कर्म की, विचार और आचार की, मन और कर्मेंद्रियकी एकरूप वृत्ति बन जायगी, तब वह भावना " **स्वभाव** " में परिणत होती है। इसीप्रकार स्वभाव

बन जाता है, जैसा जिसका स्वभाव होता है, वैसाही वह होता है। इसलिये स्वभाव बनानेका महत्त्व है।

प्रयत्न करनेसे ही स्वभाव बनता है, बडे परिश्रमसे बननेवाला यह भाव है। बहुत निग्रह करनेपर भी परीक्षाका समय प्राप्त होनेपर ज्ञानेंद्रियां, कर्मेंद्रियां, मन तथा अन्य अवयव धोखा देते हैं; इसका कारण इतनाही है कि, जैसा बनना चाहिये था वैसा स्वभाव बना नहीं है। विश्वामित्रनें बडी तपस्या की, बहुत ही मनका संयम किया; परंतु परीक्षाका समय प्राप्त होनेपर पता लगा कि, भोगवासना शेष रही है, और ब्राह्मण्यका शम दम अभीतक स्वभावमें उतरा नहीं। योगसाधनमें इस " **स्व-भाव** " के बनानेका अत्यंत महत्व है। बाहिरके दिखावेका यहां काम नहीं है, परंतु सच्ची "**आत्म-परीक्षा**" का ही यहां संबंध है। यम नियमोंको स्वभावमें ढालने के विषयमें जो अनुभव की बातें हैं, उनकाही इस लेख में थोडासा विचार करना है। यदि आपको अपना स्वभाव बनाना है, तो आपको विशेष रीतिसेही प्रयत्न करना चाहिये। पहिली बात " **विचार जागृति** " की है। एक एक विचार मनमें सतत जागृत रहना चाहिये। विचार जागृति मनमें सतत होने के लिये एकही उपाय है, और वह यह है कि **इस विचार के शब्द मोटे अक्षरोंमें आपके सामने सदा रहें**। वेदके उत्तम मंत्र, उपनिषदोंके वाक्य, शास्त्रोंके आदेश, सत्पुरुषोंके बोध, सुभाषित आदि मोटे और सुंदर अक्षरोंमें लिख कर यदि आप अपने घरकी दिवारों पर लगायेंगे, तो वारंवार उन भावोंका स्मरण आपके मनमें होगा, और आपके अंदर सुवि-

चारोंकी योग्य जागृति हो जायगी। यह संभव नहीं कि, आपका मित्र वारंवार आपको जागृत करेगा, यह संभव नहीं कि आपकी मनःप्रवृत्तिके योग्य वाक्य छपे छपाये आपको बाजारोंमें मिलेंगे। यदि मिले, तो आप लेकर उनको लटकाइये। परंतु न मिले, तो आपको अपनी उन्नति करना अत्यावश्यक है, इसलिये आप स्वयं जितने हो सके उतने उत्तम वाक्य लिख कर अपने घरमें स्थान स्थानपर दिवारोंपर लटका दीजिये। यहां आपकी सुविधाके लिये थोडेसे वाक्य नीचे देता हूं—

(१) अहिंसा—**मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः॥** यजु. १२।३२॥

अपने शरीरसे किसीभी प्रजाको अथवा किसीभी प्राणीको दुःख न दो। शरीर, इंद्रिय, मन, बुद्धि, वाणी अथवा किसी प्रकारके इशारेसे किसी दुसरेको कष्ट न दो। यह अहिंसाकी भावना विचार में स्थिर रहे, यही भावना वाणीसे प्रकट हो, इसी भावनासे युक्त कर्म हों और इसी प्रकार अपना जीवन अहिंसा रूप बनो। जिसके मन, वाणी और कर्म में पूर्ण अहिंसा बनी है और जिसका स्वभावही अहिंसा मय बन गया है; उसके साथ रहनेवाले सब अन्य भी निर्वैर भावसे युक्त होते हैं।

(२) सत्य—**सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्॥** ऋ.९।७३।१

सत्यकी नौकायें सदाचारीको दुःखके पार लेजाती हैं। आग्रहसे सत्यका पालन करनेसे यश प्राप्त हो जाता है। सत्यसे देवत्व प्राप्त होता है। इसलिये असत्यको छोडकर सत्यका स्वीकार

दक्षतासे करना चाहिये । निश्चयसे अनृत छोडकर सत्यका पालन करना चाहिये । कितना भी प्रलोभन हो, असत्यसे कितना भी लाभ प्राप्त क्यों न होता हो, परंतु सत्य पर ही सदा स्थिर रहना चाहिये । सब जगत् सत्य नियमोंसे चल रहा है, सत्य परमेश्वरका उसको आधार है, सत्यके आश्रयसे सब साधुसंत श्रेष्ठ वंदनीय और यशस्वी बने हैं, सत्य पालन करनेसे मनुष्य निर्भय बन जाता है । इस प्रकार सत्यकी महिमा है ।

(३) **अस्तेय—न स्तेयमद्मि** ॥ अ. १४।१।५७

मैं चोरी करके अपने भोग नहीं करता हूं । चोरीके धनसे अपने भोग बढाना महापाप है । चौर्य अत्यंत हीन प्रवृत्ति है । चोरी करके कोई भी बडा नहीं हुआ है । सब लोक चोरका धिक्कार करते हैं । इस लिये चोरी करके मैं कभी अपने आपको नीच नहीं बनाऊंगा ।

(४) **ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।**
अ. ११।५।१९

ब्रह्मचर्य पालन करके ही मृत्युको दूर किया जा सकता है । जो दीर्घजीवी हुए हैं, उन सबोंनें ब्रह्मचर्यका पालन विशेष रीतिसे किया था । ब्रह्मचर्यका नाश होनेसे आयुष्य घट जाता है, मनुष्य निस्तेज होता है, उसकी स्मरणशक्ति और बुद्धि निकृष्ट होती है । पुरुषार्थ करनेका उत्साह ब्रह्मचर्य दृढ रखनेवालेके अंदरही होता है । वीर्यका नाश करनेवाला सुस्त और हीनसा दिखाई देता है । इस लिये प्रयत्न करके मैं ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करूंगा ।

(५) अपरिग्रह—मा गृधः ॥ य. ४०।१

मत् ललचाओ । विषय भोगोंका लोभ कम करो । भोगोंमें फंसनेसे योगका जीवन नहीं व्यतीत हो सकता । विषयोंके अति सेवनसे अर्थात् भोगसे रोगका भय होता है । विषयोंका परिग्रह न करनेसे जो निर्लोभ वृत्ति हो जाती है, उसीको अपरिग्रह वृत्ति कहते हैं। विषयोंसे आनंद नहीं मिलता, परंतु अपनी आत्मिक शक्तिसे आनंदका अनुभव होता है, यह आत्मविश्वास इस भावनासे होता है।

(६)स्वच्छता—शुद्धाः पूता भवत । ऋ. १०।१८।२

शुद्ध और पवित्र बन जाइये । अपनी शरीरकी शुद्धता, मनकी पवित्रता, इंद्रियोंकी निर्दोषता, बुद्धिकी शुद्धि, गृह की स्वच्छता, अपने स्थानकी शुद्धि, ग्रामकी निर्मलता, समाजकी पवित्रता इस प्रकार सर्वत्र स्वच्छता होनी अत्यावश्यक है । स्वच्छतासेही निर्दोष जीवन हो सकता है । आयु, आरोग्य, प्रसन्नता आदिका मूल स्वच्छता और पवित्रता में है । अपनी सब प्रकारसे पवित्रता करनी चाहिये ।

(७) संतोष—अकामो धीरो अमृतः। अ. १०।८।४४

संतोषवृत्तिवाला धैर्ययुक्त और अमर होता है । लोभी वृत्तिसे मनुष्य भयभीत और क्षीण बनता है । लोभ को दूर करके निष्काम संतोष वृत्तिसे आनंद और धैर्य प्राप्त होता है । चेहरेपर सहज आनंदवृत्ति रहनेक लिये मनमें संतोष चाहिये । वासनाओंका क्षोभ जहां होगा, वहां मानसिक समता नहीं होगी; और समताके अभावमें आनंदभी नहीं होगा ।

(८)तप--अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते । ऋ. ९।८३।१

जिसने तप नहीं किया, उसको वह आनंद नहीं प्राप्त होता है। तप करनेसे सुख मिलता है। धर्मकार्य करनेके समय जो कष्ट होते हैं, उनको आनंदसे सहन करनेका नाम तप है। जितने महात्मा हुए हैं, उन सबने तप किया था, इसीलिये उनका सर्वत्र आदर होता है। तपके जीवनके विना न इस जगत् क कार्य में सिद्धि प्राप्त होतीं है, और न आध्यात्मिक उन्नति मिल सकती है। जो तप करता है, उसकी सर्वत्र पूजा होती है। जो अपने सत्यसिद्धांत प्रतिपादन करनेके कारण कष्ट सहन करता है, उसीका विजय होता है। इसलिये दृढतासे तप का जीवन व्यतीत करना चाहिये।

(९) स्वाध्याय——स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

तै. उ. १।११।१

अपनी विद्याका अभ्यास तथा अपना ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। मैं कैसा था, कैसा हूं और ऐसाही चलता रहेगा तो आगे कैसी अवस्था होगी, इसका वारंवार विचार करना चाहिये। यह ज्ञान जैसा वैयक्तिक दृष्टिसे वैसाही सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टिसे प्राप्त करना चाहिये। ग्रंथ भी ऐसेही पढने चाहिये कि, जो उक्त ज्ञान देनेवाले हों।

(१०) ईश्वरभक्ति——इमे त इंद्र ते वयं। ऋ. १।५७।४

हे प्रभो! हम तेरे हैं। हे ईश्वर! हम सब आपकी भक्ति करनेवाले हैं। इस प्रकार परमेश्वरकी भक्तिके भाव व्यक्त करनेवाले वाक्य घरमें लटकाने चाहिये।

(११) शांति——शांतिरेव शांतिः, सा मा शांतिरेधि।

यजु० ३६।१७

जो सच्ची शांति है वही मुझे प्राप्त हो । जो सच्ची शाति है, उसकी स्थापना मैं करूंगा । व्यक्तिमें शाति रहे, समाज और राष्ट्रमें शांतता अबाधित रहे, संपूर्ण जगत् में सच्ची शांति रहे । इस प्रकारकी शांति स्थापन करनेमें मैं अपने आपका समर्पण करता हूं । सब श्रेष्ठ पुरुषोंनें शांति स्थापनमें ही अपने आपको समर्पित किया था । सब मनुष्योंका अंतिम ध्येय सच्ची शांति प्राप्त करना ही है।

इसी प्रकार शुभ गुणोंके विषयमें बडे अच्छे उत्तेजना के वाक्य चुनकर घरमें दिवारोंपर लटकाने चाहिये । न्याय, नम्रता, सरलता, निष्कपटभाव, संयम, दमन, स्थिरता, व्यवस्था उद्यमशीलता, धैर्य, मितव्यय, पराक्रम, यश, महत्व आदि शुभ गुणोंके विषयमें जागृति करनेवाले वाक्य चुनचुन कर लटकानेसे बडा लाभ होता है । जाते आनेके समय उन वाक्योंपर दृष्टि पडती है, और मनमें वही भाव खडा हो जाता है, इस प्रकार वारंवार होनेसे अंतःकरणमें संस्कार दृढ हो जाते हैं । यह साधारण घरका वायुमंडल बनानेके विषयमें हुआ ।

इसी प्रकार अपने इष्टमित्र चुननेके समयमें भी दक्षता रखनी चाहिये । जो उक्त वायु मंडलका परिपोष करेंगे, ऐसे ही सज्जनोंके साथ मित्रता रखनी चाहिये । जो उक्त वायुमंडल बिगाड देंगे, उनको दूर रखना योग्य है ।

इतना करनेपर भी अपने प्रयत्नकी आवश्यकता रहती ही है। यदि आप प्रयत्न करके उक्त शुभ गुण अपने अंतःकरणके अंदर स्थिर करनेका दृढ यत्न न करेंगे तो बाहेरकी परिस्थिति कोई इष्ट परिणाम

आपके ऊपर कर नहीं सकती। इसलिये आपको स्वयं अपने सुधार के लिये कटिबद्ध होना आवश्यक है। यह कैसा किया जा सकता है? इसकी युक्ति यह है। पूर्व स्थानमें थोडेसे गुण लिखे है, उतनेही पर्याप्त नहीं हैं; इस लिये आप कल्पना कीजिये कि, किन किन उत्तम गुणोंसे " उत्तम आदमी " बनता है। आप अपने मनके अंदर ऐसे आदमीकी मूर्ति खडी कीजिये। उसके अंदर कौनसे गुण हैं, और कौनसे आपके अंदर नहीं हैं, और उतना अच्छा बननेके लिये अपने अंदर कितने गुण किस प्रमाणमें बढाने चाहिये। यह बात आप अपने मनसे ही कागजपर लिखिये।

जब गुणोंकी संख्या आप निश्चित करेंगे, तो उन गुणों में जो गुण सबसे सुगमतया प्राप्त हो सकता है, उसको अपने अभ्यास के लिये प्रथम रखिये; और जो सबसे कठिन होगा उसको सबके पश्चात् लिख कर बीचमें क्रमपूर्वक इतर गुण लिखिये। अब जो गुण आपके मतसे सबसे सुगम है, उसकी प्राप्तिका यत्न करना आपका पहिला कर्तव्य होगा। बडे अक्षरोंमें एक कागजपर उस गुण का नाम लिख कर अपने कमरेमें लगाइये, और उस गुणका परिपोष करनेवाले मंत्र, वाक्य और सुभाषित चुनकर उसके साथ रखिये। एक महिना भर एक " गुण की धारणा " करनेका अभ्यास निश्चयके साथ कीजिये। और जहांतक हो सके वहांतक प्रयत्न करके उस मासमें अपने मनपर ऐसे संस्कार जमाइये कि जिससे वह गुण आपके मनमें स्थिर हो जाय, और आपका स्वभावही वैसा बन जाय। मान लीजिये कि " शुद्धता, स्वच्छता " आदिके ऊपर आपको धारणा करनी है। क्योंकि यह सबसे सुगम है।—

शुद्धता ! स्वच्छता ! ! पवित्रता ! ! !

(१) शरीरकी स्वच्छता, (२) इंद्रियोंकी पवित्रता,
(३) कपडोंकी शुद्धता, (४) मनकी शुद्धता,
(५) विचारों की पवित्रता, (६) आत्माकी स्वच्छता,
(७) कमरे की निर्मलता, (८) घरकी शुद्धता,
(९) उद्यान की पवित्रता, (१०) ग्रामकी स्वच्छता, इ.

इस प्रकार आप सूचनायें लिखिये, तथा जहांसे आप स्वच्छताका प्रारंभ कर सकते हैं, वहांसे अमल करना शुरू कीजिये । "**शुद्धता, पवित्रता और निर्मलता**" की धारणा आपने एक महिनेमें करनी है; इसलिये इसमें त्रुटि होनी उचित नहीं है । **आपनें वैदिक धर्म आचरणमें लाना है और जनता को बताना है कि, वैदिक धर्मका सच्चा प्रचार आचरण सेही होता है ।** इस लिये दिखानेके लिये प्रयत्न न कीजिये । यदि आप दिखावे के लिये करेंगे, तो उसका इष्ट परिणाम नहीं होगा; इसलिये आप अपना कर्तव्य समझकर अपने आचरण की पवित्रता करते जाइये। आप प्रयत्न करेंगे, तो एक महिनेके अंदर ही "**स्वच्छता**" के विषयमें आप आदर्श बन जांयगे, और लोग स्वयं कहने लगेंगे कि, "**देखो, यह कैसा था और अब कैसा बन गया है ।**" लोगोंके

ये शब्द सुनकर आप घमंड न कीजिये, परंतु अधिक दक्ष बनकर अपनी अधिक पवित्रता करते जाइये। इसका परिणाम और ही अधिक होगा। ध्यान रखिये कि, "**कर्तव्य करना आपका अधिकार है, परंतु फल का लोभ नहीं करना चाहिये।**" फलके लोभसे ही यदि कार्य करेंगे, तो गिरेंगे। इसलिये दूसरोंकी निंदा अथवा स्तुतिकी पर्वाह न करते हुए आप अपना कर्तव्य पालन उक्त प्रकार करते जाईये; अपने अंदर श्रेष्ठ गुणोंका धारण कीजिये, और वैदिक जीवन का अमल कीजिये। इसका परिणाम हमेशाही अच्छा होगा।

जिस गुणपर "**धारणा**" करनी है, उस गुण का वाचक शब्द, उस गुणका स्मरण देनेवाले मंत्र, उपदेश और वाक्य, उस गुणका विकास जिस विभूतिमें हुआ होगा, उसका चित्र अथवा नाम सामने दिवार पर लटका रहनेसे, मनके अंदर उन गुणोंकी जागृति हो जाती है; इसलिये ऐसा लिखकर रखनेसे धारणाकी सिद्धि प्राप्त होनेमें सहायता हो जाती है। देशभक्ति के लिये श्री शिवाजी छत्रपति और राणा प्रतापसिंह; धर्मभक्ति के लिये सिख गुरु; ब्रह्मचर्य के लिये भीष्मपितामह; सत्यके लिये राजा हरिश्चंद्र; ईश्वरभक्ति के लिये प्रल्हाद आदि अनेक पुरुष हैं कि, जो उक्त गुणोंकी सूचना दे रहे हैं। इनके साथ सूचक मंत्र, अच्छे वाक्य, बोधवचन, संतोंका उपदेश आदि रहनेसे मन के ऊपर अपूर्व परिणाम हो जाता है। आप इस प्रकार करके देखिये, आपको आठ दस दिनों के अंदर ही अनुभव आजायगा और इसकी उपयोगिता के विषयमें कोई शंका ही नहीं रहेगी।

उत्साह, महत्वाकांक्षा और जोश मनुष्यके अंदर विलक्षण कार्य करते हैं । उत्साह हीन मनुष्य की उन्नति होना असंभव है । इसलिये आप उत्साह से मनमें विश्वास रखिये कि, मैं इस गुणकी धारणा इस महिनेमें अवश्यही करूंगा, और विघ्नोंकी पर्वाह न करते हुए मैं अपना निश्चय स्थिर रखूंगा, और सिद्ध करके बताऊंगा। जिस गुणके ऊपर प्रथम धारणा करनी होगी, वह गुण सबसे सुगम चुन लीजिये, जिससे आपको यश सत्वर प्राप्त होगा, और आप द्विगुणित उत्साहसे आगेके गुणोंकी धारणा कर सकेंगे ।

कई मनुष्य धनके लिये अपने गुण बढाते हैं, कई दूसरोंका केवल अनुकरण करना चाहते हैं, कई स्पर्धासे आगे बढते रहते हैं, कई दूसरे लालचोंके लिये यत्न करते रहते हैं । धन प्राप्तिके लिये किसीने अपने अंदर सद्गुणोंकी वृद्धि की तो भी अच्छा है; सज्जनोंका अनुकरण करनेके लिये कोई मनुष्य अच्छा बना तोभी कोई बुरा नहीं है; उसी प्रकार स्पर्धाके कारण कोई उन्नत हुआ तोभी बहुत प्रशंसनीय है । तथापि यदि आप अपने अंदर "मनुष्यत्व" की वृद्धि करनेके लिये ही केवल श्रेष्ठ गुणोंकी धारणा करके उनकी अभिवृद्धि करेंगे, और इस प्रकार सद्गुणोंसे मंडित होकर जनताकी भलाई करनेके सार्वजनिक कार्यमें अपने आपको समर्पित करेंगे, तो आपका यश चिरकाल रहेगा । परंतु यदि कोई इस प्रकार निष्काम भावसे अपनी उन्नति नहीं कर सकता, तो वह पूर्वोक्त रीतिसे फलकी इच्छा धारण करके सकाम भावसे उन्नतिका कार्य करे । पहिले

सकाम भावना, अपनी उन्नति हो जानेपर, उच्च निष्काम भावनामें ही परिणत हो सकती है।

साधारण मनुष्योंको प्रारंभमें ऐसा करना उचित है कि, अपने आपको अपनी विभूतिके स्थानमें ही मानसिक भूमिकामें क्षणमात्र रखें। यदि आपको सत्यका आग्रहसे पालन करना है, तो हरिश्चंद्र के स्थानमें अपने आपको रखिये और समझ लीजिये कि इतने कठिन प्रसंग आनेपरभी आपने सत्य छोडा नहीं। अथवा आजकलकीं आपत्तियां आपपर आरहीं हैं तथापि आपने सत्य पकड रखा है और छोडा नहीं। ऐसी कल्पनामय दृढता अपने मनके अंदर ही अनुभव कीजिये। इससे यह होगा कि, कल्पनामें ही आप अपने आपको स्वयं कठिन प्रसंगोंमें रखेंगे और परीक्षाका समय आनेपर भी न गिरनेका अनुभव करेंगे। इससे थोडासा बल और उत्साह प्राप्त हो जाता है। यद्यपि इससे कठिन प्रसंगमें बहुत लाभ होनेकी आशा नहीं है, तथापि मनके लिये कुछ न कुछ सफलताकी आशा हो जाती है। और काल्पनिक प्रलोभन काल्पनिक आत्मिक बलसे दूर करनेमें भी कुछ बल मिल जाता है। मनका दृढ निश्चय करनेके लिये यह एक अत्यंत अल्पसा साधन है।

प्रत्येक चार दिनमें अथवा आठवे दिन आप अपनी परीक्षा कर सकते हैं कि, धारणाका गुण अपने अंदर किस प्रमाणसे वसने लगा है। यदि उक्त अवधिमें कोई परीक्षाका समय आया होगा, तो आप विचार कीजिये कि, आपका वर्ताव उस समय कैसा हुआ, और उस प्रकारका समय फिर आनेपर आपको किस बातमें अधिक साव-

धानता रखनी चाहिये । इस प्रकार आत्मपरीक्षा करने से आपको बडा ही लाभ होगा ।

अंतमें इतना ही कहना है कि, संपूर्ण बलोंमें **"निश्चय का बल"** सबसे अधिक है । इसलिये यदि आप अपने जीवनमें **"वैदिक धर्म"** को ढालना चाहते हैं, अथवा यौं कहिये कि, अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि सचमुच प्राप्त करना चाहते हैं, तो **आपको मन का पक्का निश्चय करना चाहिये** । यदि आप मनका पक्का निश्चय नहीं करेंगे, तो संपूर्ण जगत भी आपको सहायक हुआ, तथापि आपकी उन्नति नहीं होगी । परंतु संपूर्ण जगत् आपका विरोधी होनेपर भी यदि आपका दृढ निश्चय है, तो आपका ही विजय होगा। इसलिये सब कुछ आपकी उन्नति आपके दृढ निश्चयपर अवलंबित है, इस बातको आप न भूलिये ।

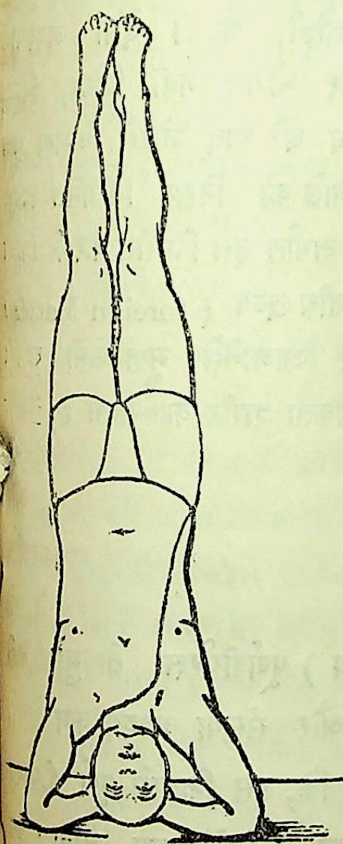
तात्पर्य दृढ निश्चयसे आप प्रयत्न करेंगे, तो पूर्वोक्त प्रकार एक एक सद्गुणको अपने अंदर धारण करके बढा सकते हैं । और साल दो सालमें ही आप ऐसे बन सकते हैं कि, जिसको अनुकरणीय समझा जा सकता है । यदि थोडेसे दृढ निश्चयसे ऐसा होता है, तो फिर आप क्यों नहीं प्रयत्न करते ? कृपया आजही प्रारंभ कीजिये और देखिये तो सही कि दो चार महिनोंमें क्या होता है ?

शीर्षासन के विषय में मेरा अनुभव ।

शीर्षासन से दस लाभ ।

(लेखक—श्री. पं. " अभय " देवशर्मा)

वैदिक धर्म के पिछले अंकों में शीर्षासन के संबंधके एक दो लेख प्रकाशित होचुके हैं । जिनमें कि इसकी क्रिया और लाभ आदिका वर्णन हुआ है । मैंनें भी दो ढाई वर्ष तक शीर्षासन का अभ्यास किया है । इस लिये यह समझ कर कि, मेरा अनुभव भी पाठकोंको रुचिकर और कुछ सेवाकारक हो सकेगा, इस विषयपर निम्न पंक्तियां लिखने लगा हूं ।



शीर्षासन.

(१) भूखपर—

शीर्षासन करनेसे भूख खूब बढी । अथवा यह कहना अधिक ठीक होगा कि, शीर्षसनसे शरीरमें किसी चीज की

ऐसी आवश्यकता अनुभव होती थी, जो कि हलके और स्निग्ध भोजन खालेनेसे पूरी होती मालूम होती थी। यह सत्य है कि, शीर्षासन करने वाले को घी दूध आदिका विशेष सेवन करना चाहिये, नहीं तो पेट अग्निसे जलने लगता है। कभी कभी ऐसा भी होता था कि, यह उपर्युक्त आवश्यकता तो शरीरमें जरूर अनुभव होती थी, किन्तु समयपर भूख नहीं प्रतीत होती थी। ऐसी अवस्थामें एक दो बार मैंने भूख न देख कर भोजन नहीं किया, किन्तु इसका फल यह हुआ कि, एक आध घंटे बाद जोरसे असह्य भूख लगी। मेरी समझमें शीर्षासन करनेवाले को नित्य नियमित रूपसे अवश्य भोजन करते रहना चाहिये, अर्थात् इस विपरीत करणी क्रिया के कारण स्थान भ्रष्ट हुए विजातीय द्रव्य (foreign Matter) का परदा कभी कभी आमाशय पर आजानेसे भूख कभी लुप्तसी हो जाये तो भी भोजन की आवश्यकता शरीर को रहती है, और भोजन करना चाहिये।

(२) वीर्यरक्षा पर—

शीर्षासन से यद्यपि (बिन्दुजय) पूर्णवीर्यरक्षा तो मुझे नहीं प्राप्त हुई, परंतु स्वप्नदोष की मात्रा और संख्या अवश्य कम होगई, और यह तो सर्वथा निश्चय होगया कि, इस क्रियासे पूर्ण वीर्यरक्षा कालान्तर में होजायेगी। ‘ वीर्य का शरीरमें खप जाना ’ इस बातका अनुभव शीर्षासन करने वालेको जरूर होने लगता है।

(३) नेत्रोंपर—

कुछ दिनों शीर्षासन करने से नेत्र खुलतेसे प्रतीत होते थे।

(४) निद्रापर—

शीर्षासन करनेके बाद ही शरीरमें ऐसा आराम और शान्ति अनुभव होती थी कि, अकसर मुझे इसके उपरान्त थोडीसी निद्रा आजाती थी। परंतु मेरी रात्रीकी निद्रापर इसका बहुत स्पष्ट प्रभाव प्रतीत नहीं हुआ। उखड़े हुये विजातीय द्रव्यों की (Foreign Matter) शरीरमें हलचल इसका कारण थी, जिससे कि गाढ़ निंद्रा बहुत बार नहीं आती थी।

(५) सिरदर्दपर—

मैं कुछ आग्रही स्वभाव का हूं, इसलिये चाहे कुछ ही क्यों न होजाये, मैं शीर्षासन दोनों समय करही डालता था। तीन चार बार ऐसा हुआ कि, सायंकालके समय मेरे शीर में दर्द हो रहा था, परंतु फिरभी मैंने शीर्षासन किया ही। हरेक वार इसका परिणाम यह हुआ कि, शीर्षासन से एकवार तो जोरसे सिरमें दर्द बढी और कुछ डकारें आईं और फिर एकदम दर्द बिलकुल अच्छा होगया, एकदम ऐसा गायब होगया कि, आश्चर्य होता था।

परंतु अभी मैं और लोगोंको यह सलाह देनेको तैयार नहीं हूं कि, जब आपके सिर में दर्द हो तब आप शीर्षासन करके खडे होजायें। बल्कि यह कह सकता हूं कि, शीर्षासनके अभ्यास से सिरदर्द पैदा होना ही बन्द हो जायेगा।

(६) आगन्तुक रोगोंपर—

मेरा तो यह निश्चित अनुभव हो गया था कि, जब कभी मुझे कुछ रोग होनेका भय होता था, तब वह मेरे शीर्षासनके समयके आनेके पहिले पहिले ही मुझे दबा सकता था, इसके बाद नहीं। कई बार जब चारों ओर बीमारी फैली हुई थी, मुझे भी कुछ ज्वर होनेकी आशंका हुई—कभी कभी ऐसा भी मालुम हुआ कि, शायद कुछ ज्वर होभी गया है;—परंतु शीर्षासन करनेके बाद शरीर बिलकुल ऐसा निर्व्याधि हो जाता था कि, कोई आशंका नहीं रह जाती थी। कई बार बीमारी की कई अलामतें भी पैदा होजाती थीं। परंतु शीर्षासनके बाद मैं आश्चर्यसे देखता था कि, वे सबकी सब हट जाती थीं। कुछ ज्वर या हरारत, कानमें दर्द, जुकाम, खांसी की ठसक आदि अलामतें पैदा होकर भी शीर्षासनके बाद स्वयमेव उड़ जाती थीं। कभी छातीमें सर्दी लग गई है ऐसा भय हो जाता था, परंतु शीर्षासन कर लेनेके बाद सारा शरीर एक समान उष्ण होकर सर्दीका नाम भी न रह जाता था। मेरा विचार है कि यदि किसीको निमोनिया होनेका भय हो (बल्कि प्रारंभिक अवस्थामें आभी गया हो) तो यदि उससे शीर्षासन कराया जासके तो वह रोगके आक्रमणसे मुक्त हो सकता है। राजयक्ष्म (तपेदिक) के बीमार को भी यदि शीर्षासनकी क्रियासे अद्भुत लाभ पहुंचे तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होगा। परंतु यह अभी परीक्षण करके देखने योग्य है।

(७) निर्बलता पर—

यहां मैं अपनी एक घटनाका वर्णन करूंगा। सन् १९२० की

बरसातमें मैं अपने कसबे से १½ मील की दूरी पर एक कुटीमें रहता था। ३१ जुलाईके दिन मैंने कसबेके आर्य भाईयोंसे अगले दिन रात्रीके समय कसबेमें आकर व्याख्यान देनेका वायदा कर लिया। परंतु अगले दिन प्रातःकालही मुझे ध्यान आया कि आज पहली अगस्त है, और महात्मा गांधीके असहयोगका प्रारंभ दिन है। आज देशमें बहोतसे लोग उपवास रखेंगे, मुझे भी उपवास रखना चाहिये। मैंने दिन भर उपवास रखा परंतु उस दिन न जाने क्यों उपवासके कारण बहुत अधिक कमजोरी अनुभव हुई। शामको कसबेमें जानेकी इच्छा न थी। परंतु प्रतिज्ञा कर चुका था, जी कड़ा करके चल पड़ा। मन में बहुत बल का ध्यान करता था, परंतु कमजोरी अनुभव हुए बिना न मानती थी। आधे रास्ते चलकर ही थकावट और कमजोरी से मुझे अधिक चलना भारी होगया। साथ में आपना घोडा था, चाचाजी के कहने से उस पर चढ गया कि कुछ आराम मिलेगा। परंतु घोडे पर चढ़ कर मैंने और भी अधिक श्रम अनुभव किया और घर पहुंचतेही सामने पड़ी हुई एक चारपाई पर बेजान सा हो कर पड़ गया। अपनी अवस्था देख कर मन में विचार होने लगा कि, शायद अब उपवास तोड़ना पडेगा और व्याख्यान तो मैं देही न सकूंगा। परंतु शीर्षासन का भी समय हो रहाथा, जिसे कि मैं छोड भी नहीं सकता था, और उसके करने की अपने में हिम्मत भी नहीं दीखती थी। आखिर दिल मजबूत करके उठा और धीरे धीरे कमरेके अन्दर गया, सिर के नीचे कपडा रखा और दीवार के सहारे से उल्टा खडा होगया। मन में सोचा था, कि यदि शीर्षासन न कर

सकूंगा, तो अवश्य ही जाकर भोजन करलूंगा। परंतु शीर्षासन का अब चमत्कार देखा। १० मिनट के बाद शरीर में जान सी आने लगी सारा शरीर सबल होगया। आनन्द से घन्टाभर शीर्षासन करके बाहर निकला। यह भी भूल गया कि आज मैंने भोजन नहीं कर रखा है। समाज में गया और अच्छी तरह से व्याख्यान दिया। भोजन अगले दिन दस बजे किया और तब तक भी सचेतन बना रहा।

(८) कब्जपर—

दो वर्ष हुए कि मैं वैदिक धर्म के पाठकोंको अपनी कोष्ट–बद्धता की कष्ट–कहानी सुना चुका हूं। उस समय तक भी मैं कोष्ट–बद्धतासे सर्वथा मुक्त नहीं था, क्यों कि कुम्भक के बलसे ही मलत्याग किया करता था। परंतु अब एक वर्ष से मुझे विना कुम्भक किये ही स्वयमेव नित्य शौच हो जाता है। इस उन्नति पानेमें अन्य आसनादिकके साथ शीर्षासन का भी प्रभाव है। शीर्षासनका विशेष लाभ मुझे यह अनुभव होता है कि (१) एक तो उससे पेट में वायु नहीं रह सकती वह सब जरुर निकल जाती है (२) और दूसरे शौच बंध कर होता है।

(९) सर्वाङ्ग पर—

शायद सबसे पहिला अनुभव शीर्षासन से यह होता है कि संपूर्ण शरीर हलका और फुर्तीला हो जाता है। सारे शरीर पर एक प्रकार की कान्ति आजाती है। संपूर्ण त्वचा पर बिना तैलादिक मर्दन

ही स्निग्धता बनी रहती है । यह अनुभव मुझे ३,४ मास अभ्यास करने पर ही प्रगट होगये थे ।

(१०) प्राण पर—

शीर्षासन से प्राण की गति स्थिर और शान्त होने लगती है। स्वयमेव प्राणायाम होता है। इस समय प्राणायाम करने की स्वयं चेष्टा कदापि न करनी चाहिये, इस से रेचक पूरक होने लगेंगे। परंतु शीर्षासन में " केवल कुम्भक " होता है। इसकी सर्वोत्तम विधि यह है कि (श्वास प्रश्वास पर बिलकुल ध्यान न ले जाकर) मन को कहीं एकाग्र करना चाहिये (जैसे संध्या करना, अपने तेज का ध्यान करना, कपाल, आज्ञाचन्द्र, या हृदय आदिमें ध्यान करना, या प्रणव जाप करना आदि) इससे स्वयमेव यह प्राणायाम होगा। शीर्षासन करनेके पश्चात् अवश्य स्वेच्छा पूर्वक प्राणायाम करना उचित है। मुझे इसका अनुभव इसप्रकार हुआ कि शीर्षासनके पश्चात् स्वयमेव श्वास रोकनेकी इच्छा होती थी, और रोकने पर विना कष्टके चिरकाल तक श्वास रुका रहता था। शीर्षासनके बाद प्राणायाम करनेसे उत्तमतया रक्तशुद्धि हो जाती है क्यों कि संपूर्ण शरीरका रुधिर मलों को लेकर फेफड़े में पहुंचता है।

मेरा विचार होता है कि केवल शीर्षासनसे तथा उसके साथ और बाद में होनेवाले प्राणायामसे भी अभ्यासी समाधी तक पहुंच सकता है। कई योगाभ्यासियोंके कथन सुनकर मैंने आपना यह मत बनाया है। उनका कहना है कि, प्रतिदिन तीन घन्टा कपाली

मुद्रा (शीर्षासन) के अभ्याससे षट्चक्रवेध आदि सब कुछ सिद्ध हो जाता है। इसका कारण यही है कि, शीर्षासनसे प्राण अन्दर खिंचने लगता है। योग मार्गमें शीर्षासनका सबसे बड़ा लाभ यही है। प्राणका आयाम होनेसे जैसे कि योगग्रंथोंमें लिखा है इस आसनसे आयुवृद्धि होती है और कालपर विजय पाई जाती है।

वस्तुतः शीर्षासन आसनों म शीर्षस्थानीय है।

अन्तमें मैं यह अवश्य कहना चाहता हूं कि, क्यों कि यह आसन बहुत उत्तम है इसी लिये सावधानीसे करना चाहिये। प्रारंभमें बहुत धीरे धीरे बढाना चाहिये। यदि कुछ हानि प्रतीत हो तो तत्काल इसे छोड कर विचार कर लेना चाहिये कि क्यों हानि हुई। कई वार सावधानीसे परीक्षण करना चाहिये। होसकता है कि किन्हीं कारणोंसे किसी व्यक्ति को यह आसन अनुकूल सिद्ध न हो। उन्हे इस पर आग्रह भी न करना चाहिये। उनके लिये योग्य गुरुजन अन्य साधन बतायेंगे, जो उनके अनुकूल हों।

———

सुगम अभ्यास ।

(९)

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ॥
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः॥ २६॥

तद्वा अथर्वणः शिरः देवकोशः समुब्जितः ॥
तत्प्राणो अभिरक्षति शिरो अन्नमथो मनः॥ २७ ॥

यो वैतां ब्रह्मणो वेदाऽमृतेना वृतां पुरम् ॥
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२९॥

न वै त चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ॥
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३० ॥

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ॥
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ ३१॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ॥
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥३२॥

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरिवृतां ॥
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा प्रविवेशापराजिताम् ॥ ३३ ॥

अथर्व. १०।२

" अथर्वा अर्थात् निश्चल योगी अपने सिर और हृदयको सी-कर, अपने प्राणको सिरके बीचमें परंतु मस्तिष्कके ऊपर प्रेरित करता है ॥ यह योगीका सिर निश्चयसे देवोंका सुरक्षित खजाना है, उसका रक्षण प्राण अन्न और मन करते हैं ॥ जो इस अमृत-मय ब्रह्मनगरीको जानता है, उसको ब्रम्ह और इतर देव चक्षु प्राण और प्रजा देते हैं ॥ जो इस ब्रम्हपुरीको जानता है उसको जीर्ण अवस्थाके पूर्व चक्षु और प्राण नहीं छोडते ॥ आठ चक्रों और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नगरी है, इसीमें तेजस्वी स्वर्ग-कोश है ॥ तीन आरोंसे युक्त तीन केंद्रोंमें स्थिर ऐसे इस तेजस्वी कोशमें आत्मवान् यक्ष है जिसको ब्रम्हज्ञानी जानते हैं ॥ तेजस्वी, दुःखहारक, यशसे युक्त, अपराजित प्रकाशमय ब्रह्मपुरीमें ब्रह्मका प्रवेश होता है ॥

इन मंत्रोंमें एक सुगम साधन का अभ्यास बताया है । इसका ज्ञान होनेके लिये अपने शरीरका ज्ञान होना चाहिये । इस शरीरमें आठ चक्र हैं, इनका स्थान और वर्णन पहिले आचुका है । इस प्रत्येक केंद्रमें विलक्षण शक्ति है और उसकी जागृति उसपर मनका संमय दीर्घकालतक करनेसे होती है ।

इस शरीरमें नौ द्वार हैं, दो आंख, दो कान, दो नसिकाछिद्र, एक मुख, एक मूत्रद्वार और एक गुदद्वार ये नौ द्वार हैं । इस प्रत्येक द्वारमें भी एक एक बडीभारी शक्ति है । इसकी जागृतिभी मनके संयमसे ही पूर्वोक्त प्रकार होती है । इसका विधि निम्न प्रकार है ।

(१)पहिले "अ-थर्वा" बननेका यत्न करना चाहिये। पद्मासन, सुखासन अथवा सिद्धासनमें निश्चल बैठनेका अभ्यास पहिले करना चाहिये। अ-थर्वा का अर्थही निश्चल है। शरीरके किसी अवयवमें बिलकुल चंचलता रखना उचित नहीं। जब यह अभ्यास कुछ देर तक साध्य होगा, तत्पश्चात् (२) श्वास और उच्छ्वास की गति मंद, शांत और सम करना योग्य है। कुंभक न करते हुए जितनी देरमें श्वास लिया जाय उतनीही देरीमें उच्छ्वास करना चाहिये। शरीरको बिलकुल न हिलाते हुए शांतिसे और मंदगतिसे श्वास और उच्छ्वासकी समता करनेका अभ्यास करना चाहिये। श्वासकी गतिको नियत करनेके लिये किसी मंत्रका जप अथवा ओंकारका जप करनेसे अच्छी सहायता हो जाती है। श्वासका आवाज भी न हो ऐसी मंद गतिसे श्वासोच्छ्वास करना इस-समय योग्य है और इस श्वासकी गतिपरही अपना मन स्थिर करना चाहिये और उसको इधर उधर जाने नहीं देना चाहिये। इस प्रकार शरीर और मनकी निश्चलता साध्य करनी चाहिये। श्वास और उच्छ्वास सम होनेसे वे एक दूसरे की शक्ति नहीं बिगाडते, इस कारण शक्ति स्थिर रहती है। गतिमंद होने से मन शांतिका अनुभव करने लगता है। जप करना हो तो वह भी शब्दका उच्चार न करते हुए अंदरही अंदर करना चाहिये। जहां यह अनुष्ठान करना हो वहां पूर्ण शांति चाहिये, इतनी शांति चाहिए कि वह तीव्र प्रकाशभी नहीं चाहिये। इसप्रकार परिपूर्ण निश्चलता सिद्ध करनेके पश्चात् आगे बढना होता है।

इसके पश्चात् जिस शक्तिमें आत्मिक बल विकसित करना है

उसका शांतिसे चिंतन करना चाहिये। इसमें मुख्य स्थान मस्तिष्क का है क्यों कि इसका सहस्त्रार कमल सब शक्तियोंका मूल स्थान है। अनुष्ठान करनेवाला अपने " **मस्तिष्कमें सब दिव्य शक्तियोंका केंद्र है** " इस भावनाको अपने मनमें दृढ करे और मस्तिष्कमेंही अपने मनका संयम करे। इसीप्रकार अन्य चक्रों, अंगों, अवयवों और इंद्रिय स्थानोंमें अपने मनद्वारा नवजीवन स्थिर किया जा सकता है।

अपने शरीरको हीन और अमंगल न समझते हुए, यही देवताओंकी नगरी है, इसमें नेत्रस्थानमें सूर्य, छातीमें वायु और इंद्र और इसी प्रकार अन्यान्य अवयवोंमें अन्यान्य देवताएं रहतीं हैं, ऐसा विश्वास करना आवश्यक है। इस " **देवसभा** " में हृदयाकाशमें " **आत्मवान् यक्ष** " है। इसी की शक्तिसे अन्य स्थानोंका कार्य चल रहा है, इस बातका दृढ भाव मनमें रहना चाहिये इसलिये इस विषयके ग्रंथोंका मनन और तर्कसे अनुमान आदिद्वारा इसका अनुभव प्राप्त करना चाहिये, अथवा कमसे कम निःसंदेह ज्ञान तो स्थिर करना आवश्यक ही है।

मस्तक और हृदयकी शक्तियोंको इकट्ठा करके एकही स्थानपर केंद्रित करनेका अभ्यास करनेसे बडा लाभ होता है।

इस प्रकार जो अनुष्ठान करता है, उसको निरंतरके अभ्याससे विशिष्ट इंद्रियमें मनः शक्ति द्वारा इष्ट कार्य करना सुगम होता है।

यह अभ्यास सब इतर अभ्यासोंकी अपेक्षा सुगम है और इसमें कोई विघ्न होनेकी संभावना नहीं है। थोडा अभ्यास हुआ तो थोडा अनुभव होगा, और दृढ अभ्यास बडी देरतक हुआ तो अधिक लाभ होगा।

इस विधिसे अभ्यास करके साठ वर्षसे अधिक आयुवालेनें अपनी ज्ञानेंद्रियोंकी शक्तियां पूर्वकी अपेक्षा अधिक तीव्र बनाई हैं और अधिक आरोग्य भी प्राप्त किया है। इसलिये अन्य लोग भी इस प्रकार अनुष्ठान करके कुछ न कुछ लाभ अवश्य प्राप्त कर सकेंगे इसमें कोई शंका नहीं है।

आशा है कि पाठक उक्त मंत्रोंका अधिक मनन करके उन मंत्रोंका योगमार्ग अपनायेंगे और अधिक अनुभव प्राप्त करेंगे।



मातृभूमिका स्वयंसेवक ।

मातृभूमि की सेवा करनेवाला स्वयंसेवक अपने मनके अंदर कौनसे भाव रखे, और अपने आपको कैसा बनावे, इस विषयमें वारंवार " वैदिक धर्म " की संमति पूछी जाती है। इस लिये उनके सन्मुख निम्न मंत्र रखा जाता है—

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ॥
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥

अथर्व. १२।१।५४.

" (अहं) मैं (भूम्यां) इस भूमिमें (सहमान) सहन शक्तिसे युक्त (उत् तरः) अधिक श्रेष्ठ हूं। तथा (अभीषाट्) चारों ओरसे शत्रुको जीतनेवाला, (विश्वाषाड्) सब शत्रुओंका पराभव करनेवाला, (आशां आशां) प्रत्येक दिशामें (विषासहिः) शत्रुका पराजय करके अपना विजय करनेवाला मैं हूं। "

इस मंत्रका तात्पर्य यह है कि, मातृभूमिकी सेवा करनेवालेको सबसे पहिले अपने अंदर कष्ट सहन करनेकी शक्ति बढानी आवश्यक है। तथा साथ साथ अपने सब शत्रुओंका पराभव करनेके लिये उनसे अधिक सामर्थ्यवान् बनना चाहिये। अधिक शक्तिके विना शत्रुका पराभव नहीं हो सकता। शक्तियां चार प्रकारकी

है "(१) ज्ञान, (२) शौर्य, (३) वाणिज्य और (४) कारीगरी इन चार शक्तियों द्वाराही शत्रुका पराभव होना है। इस लिये इन चार शक्तियोंमें शत्रुकी अपेक्षा अपना बल बढना चाहिये। जबतक इन चार शक्तियोंमें अपनी शक्ति बढी नहीं, तबतक किसीभी शत्रुका पराभव होना नहीं है। इस लिये स्वयंसेवकको उचित है कि वह अपनी शक्ति बढावे और उसको मातृभूमिके चरणोंमें समर्पित करे।

पचास वर्षकी आयुकी अवस्थामें शीर्षासनसे लाभ।

"शीर्षासन" के विषयमें जे आपने "वैदिक-धर्म" के अंकमें लेख लिखा है; तबसे मैं प्रतिदिन "शीर्षासन" करता हूं। पूर्वकी अपेक्षा अब मेरा शरीर बहोत फुर्तिला रहता है। शरीरकी सुडौलताकी साथ शक्तिभी दिन प्रतिदिन बढती जाती है। प्रतिदिनके अभ्याससे मुझमें इतना बल आया है कि मैं अब एक साधारण शक्तिके जवानके साथभी कुश्ती कर सकूंगा। ईश्वरकी कृपासे तीन वर्षसे मेरा अखंडित ब्रह्मचर्य रहा है। आपके लिखे आसन करनेसे मानसिक विकारकी व्याधि भी शनैः शनैः दूर हो रहा है। गत फर्वरी माससे पचासवां वर्ष मेरी आयुका शुरू हुआ है। परंतु नेत्ररोगके सिवाय किसी बीमारीनें मुझे दर्शन नहीं दिया

है। तीन वर्षके पूर्व मैं गृहस्थाश्रमके नियमानुसार ऋतुगामी रह-कर ब्रह्मचारी रहाथा। अब स्त्री गुजर जानेके पश्चात् मेरा ब्रह्म-चर्यका पालन अखंडित हो रहा है।

इस समय मेरे बाल सफेद हैं। मैं जानना चाहता हूं कि कितने दिन "**शीर्षासन**" करनेसे मेरे बाल फिर काले हो सकते है?

भवदीय

नंदलाल महीपत रामभट्ट, वीरमगाम.

[**संपादकीय**--(१) बहुत लोगोंपर अनुभव लेनेसे यह विदित हुआ है कि प्रतिदिन आधा घंटा नियमपूर्वक शीर्षासन करनेसे एक वर्षके बाद बाल काले होने लगते हैं। (२) थोड खानेपीनेका पथ्यभी आवश्यक है। गायका दूध, दही, घी आदि सेवन अधिक किया जावे, जिनमें अपनी पचनशक्तिके अनुकूल थोडे बादाम खाये जाये, और शुद्ध तेलका मर्दन बालोंपर किजाय। **आजकलके अखबारी बिज्ञापनी तैल बहुत बुरे हैं**, उनका उपयोग करना नहीं चाहिये। **संपादक–वै. धर्म**।]

स्वाध्याय मंडलके पुस्तक।

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध। "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन।" मूल्य १) एक रु.।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। सर्वमेध। "एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण। "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय।" मू. ॥) आठ आने। (द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥) आठ आने।

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=) दस आने।

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. =) दो आने।

(४) देवता विचार। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥) आठ आने।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।) सवा रुपया।

[४] ब्राह्मण-बोध-माला।

(१) शत-पथ बोधामृत। मू० ।) चार आने।

[५] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. -) एक आना।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । मू. =) दो आने।
(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक । मू.≡) तीन आने।

[६] स्वयं शिक्षक माला ।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । मू. १॥) डेढ रु. ;
(२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु.।

[७] आगम-निबंध-माला ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।-) पांच आने ।
(२) मानवी आयुष्य । मू. ।) चार आने ।
(३) वैदिक सभ्यता । मू.≡) तीन आने ।
(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र । मू. ।) चार आने ।
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥) आठ आने।
(६) वैदिक सर्प-विद्या । मू. ॥) आठ आने ।
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय । मू. ॥) आठ आने ।
(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥) आठ आने ।
(९) शिव संकल्पका विजय । मू. ॥।) बारह आने ।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ॥) आठ आने।
(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥) आठ आने ।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र । मू. ≡) तीन आने ।
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. =) आने ।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल; औंध (जि. सातारा)

प्रकाशक—बापुलाल कु. पटेल, प्रभाशंकर चाळ, सान्ताक्रुझ (मुंबई.)
मुद्रक—चिंतामण सखाराम देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सर्व्हंट्स ऑफ इंडिया सोसायटीज़ बिल्डिंग, सँडहर्स्ट रोड, गिरगांव, मुंबई.

ॐ

वैदिक धर्म

वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र ।

वर्ष ४
अंक ७ } आषाढ

...काव्यं, न ममार, न जीर्यति ॥

अथर्व. १०।८।३२

ईश्वरका काव्य देखो, जो मरा नहीं, और
जो क्षीण भी नहीं हुआ है ।

संपादक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

परस्परका घात ।

" परस्पर विघ्न करनेवाले मृत्युके पास पहुंचते हैं ॥ "

अथर्व. ६।३२।३

...मूल्य ३॥) साढे तीन रु. विदेशके लिए ४॥) साढे चार रु.

[५] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) **बालकोंकी धर्मशिक्षा** । प्रथमभाग । मू. -) एक आना।

(२) **बालकोंकी धर्मशिक्षा** । द्वितीयभाग । मू. =) दो आने।

(३) **वैदिक पाठ माला** । प्रथम पुस्तक । मू. ≡) तीन आने।

[६] स्वयं शिक्षक माला ।

(१) **वेदका स्वयं शिक्षक** । प्रथमभाग । मू. १॥) डेढ रु. ;

(२) **वेदका स्वयं शिक्षक** । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु.।

[७] आगम-निबंध-माला ।

(१) **वैदिक राज्य पद्धति** । मू. ।-) पांच आने ।

(२) **मानवी आयुष्य** । मू. ।) चार आने ।

(३) वैदिक [illegible] तीन आने ।

[illegible] चार आने ।

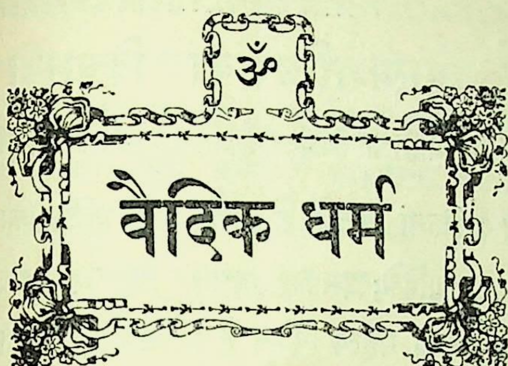
हमारे पास **सायन भाष्य सहित ऋग्वेद** प्रथम सातों मण्डल संपूर्ण तय्यार हैं । जिनका दाम केवल १५) रु. है । इस सु[illegible] अवसर का लाभ उठाइये । " **वैदिक धर्म** " के ग्राहकों औ[र] स्वाध्याय मंडलके सदस्योंको केवल १२) रु. में दिया जायगा । सब सेट चुक जानेपर हम आपकी कोई सेवा न कर सकेंगे । रुपये पेशगी मनी आर्डर द्वारा आने चाहिए ताकि रेल व्यय व्यर्थ न जाय ।

पुस्तकें मिलनेका पता—

जयदेव शर्मा विद्यालंकार,

९७ बारानसी घोस स्ट्रीट,

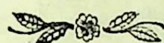
कलकत्ता ।



वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र ।

वर्ष ४ अंक ७	आषाढ १९८०; जोलाई सन १९२३.	क्रमांक ४३

" एकता "



सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतिर्नमामसि ॥
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः संनमयामसि ॥

अथर्व. ३।८।५

" (१) आपके मन, व्रत और कर्मोंको एक केंद्रमें इकट्ठे करते हैं। (२) तथा जो ये विरोधी आचरण करनेवाले हैं उनको नम्र करते हैं। "

आत्मशक्तियोंका विचार।

अपनी शक्तियां कितनीं हैं, और उन शक्तियोंका विकास किस रीतिसे करना चाहिये; इसका विचार मनुष्यही कर सकता है; इसीलिये मनुष्यका महत्व विशेष है। अर्थात् जो मनुष्य अपनी शक्तियोंके विकासका प्रयत्न नहीं करते, तथा प्रतिदिनके कार्यों से अपनी शक्तियां बढ रहीं हैं, या घट रहीं हैं; इसका कोई विचार नहीं करते, उनकी योग्यता विशेष नहीं हो सकती।

जो सौदागर अपने व्योपार व्यवहारका हिसाब नहीं देखता और निश्चय पूर्वक लाभ प्राप्त करनेके उपाय नहीं सोचता, उसका दिवाला निकलनेमें देरी नहीं लगती। जो राजा अपने प्राप्त राज्य का उत्तम शासन नहीं करता, और अपने चतुरंगबलको बढानेका यत्न नहीं करता, उसकी शक्ति क्षीण होती है। इसी प्रकार हरएक व्यक्तिके विषयमें भी है। इस लिये प्रत्येक मनुष्यको अपनी शक्तियोंका विचार करना चाहिये। शक्तियोंके विचारमें (१) अपनी शक्तियोंका निश्चित ज्ञान, (२) उनके विकास का मार्ग, (३) उनके पोषक नियमोंका ज्ञान और घातक कारणोंका विशेष ज्ञान, तथा (४) अपनी शक्तियोंकी स्वाधीनताका उपाय, इत्यादि विषयोंका संबंध आता है।

अपनी शक्तियोंका विचार करनेके पूर्व अपनी शक्तियोंका स्वरूप-विज्ञान होना अत्यावश्यक है। अपने अंदर दो प्रकार की शक्तियां हैं। (१) मुख्य शक्ति " **आत्मिक शक्ति** " नामसे प्रसिद्ध है, तथा (२) दूसरी शक्ति " **प्राकृतिक शक्ति** " है। जो प्राकृतिक शक्ति है, वह आत्मिक शक्तिके साथ रहनेसे सफल हो सकती है, अन्यथा नहीं। इनका ही वर्णन वैदिक सारस्वतमें इन शब्दों द्वारा होता है—

आत्मा	प्रकृति
ईश	अनीशा
अज	अजा
प्राण	रयी
सूर्य	चंद्र
पुरुष	प्रकृति
धन	ऋण.

इसमें मुख्य तत्व यह है कि, आत्माकी शक्ति प्रकृतिकी शक्तिके साथ मिलकर अपना प्रभाव बता रही है, इसलिये दोनों शक्तियां एक दूसरेकी साधक हैं और घातक नहीं हैं। शरीरमें देखिये कि, आत्माकी शक्ति प्रत्येक अवयव और इंद्रियमें जाकर कार्य कर रही है। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि, अपने अंदर कितनी शक्ति है? विचार करनेपर पता लग जायगा कि, यद्यपि अपनेमें शक्ति अत्यल्प है, तथापि विचार करनेपर उसके अपार

होनेका ज्ञान होता है। अनुभव के लिये गेहूंका एक दाना लीजिये और विचार कीजिये कि, उसमें कितनी शक्ति है? यदि एक गेहूंका दाना योग्य भूमिमें डाला जाय, और उत्तम और जल की योजना की जाय, तो एक वर्षमें एक दानेसे २ दाने हो जाते हैं, ये दोसौ दाने फिर भूमिमें डालनेसे प्रत्येक दो दो सौ हरएक वार हो जाते हैं। इस प्रकार करते करते आठ सालके अंदर ही एक परार्ध की संख्या हो जाती है। देखिये कि, एक दानेमें कितनी अपार शक्ति है। इसी प्रत्येक बीजमें है। एक बीजमें एक वृक्ष उत्पन्न करनेकी केवल शक्ति नहीं है, प्रत्युत उसके प्रत्येक बीजमें उतनी ही होनेसे, अपार शक्तिका अनुभव एक बीजमें आता है। इस प्रकार प्रत्येक बीजमें शक्ति की अपारता है। पता लग सकता कि, एक बीजमें कितनी शक्ति कूट कूट कर इस रीतिसे विचार करनेपर पता लग जायगा कि, जिसकी शक्तिसे ये बीज उत्पन्न हुए हैं, उसकी शक्ति कितनी होगी!!!

अब अपने बीजरूप वीर्यका विचार कीजिये। वीर्यके बिंदुसे मनुष्यका शरीर बन जाता है, इतनी शक्ति उस बिंदुमें होती है। इस प्रकारके बिंदु एक समयके वीर्यमें होते हैं। वे सब फलीभूत नहीं होते, इस लिये एक वार एक दो बालक उत्पन्न होते हैं। यदि सब वीर्यबिंदु फलीभूत तो एक समय सहस्रों बालक उत्पन्न हो सकते हैं। परंतु

लिये हम एक समयके वीर्य बिंदुसे एक बालक उत्पन्न होना संभव है, इतना ही स्वीकार करते हैं। जो स्थिर वीर्य हैं, और ऋतुगामी होते हैं, उनके स्त्री पुरुष संबंधसे संतान निश्चयसे उत्पन्न होता है। परंतु जो स्थिर वीर्य नहीं होते, तथा गृहस्थाश्रमके ऋतुगामिरूप ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करते, अथवा जो स्त्रैण होते तब उनका वीर्य व्यर्थ चला जाता है। प्रतिवारके वीर्यपातसे यदि अर्थात् मनुष्य की बीज शक्ति अपने शरीरसे न्यून होती होगी, तो प्रत्येक वार वीर्य पात होनेसे कितनी शक्तिका ह्रास होता होगा, इसकी कल्पना पाठक ही कर सकते हैं ! ! परंतु यह ह्रास इतना ही नहीं है, क्यों कि एकवारके वीर्य बिंदुसे केवल एक मनुष्यकी शक्तिका ही ह्रास नहीं होता, प्रत्युत उससे होनेवाले अनंत संतानोंका नाश होता है, क्योंकि वह सब शक्ति इसी एक वीर्य बिंदुमें सुप्त अवस्थामें रहती ही है।

तात्पर्य जिस प्रकार वृक्षके एक बीजमें अनंत बीजोंकी शक्ति होती है, उसी प्रकार मानवी वीर्यके एक बिंदुमें भावी अनंत मनुष्योंके बीज सुप्त रहते हैं। इतनी अपार शक्ति वीर्यके एक बिंदुमें होती है। यह शक्ति सुप्त होनेसे मनुष्यको पता नहीं लगता कि, अपनेमें इतनी शक्ति है, परंतु विचार की दृष्टिसे इस शक्तिका पता लगता है। ऋषि, मुनि, और योगियोंको इस शक्तिका ज्ञान हुआ था; इसी लिये उन्होंने ऋतुगामी होनेके उत्तम नियम शास्त्रोंमें लिखे हैं। तथा योगविद्यामें ऐसे प्रयोग सिद्ध किये हैं कि, जिन प्रयोगोंकी सिद्धि प्राप्त करनेपर मनुष्य स्त्रीपुरुष संबंधसे अपनी

शक्तिकी हानि न करता हुआ, उसी संबंधसे अपनी शक्तिको बढ़ा सकता है। अर्थात् जिस संबंधसे साधारण मनुष्यकी शक्ति क्षीण हो जाती है, उसी संबंधसे योगी अपनी शक्ति बढा सकता है। वीर्यके इंद्रियकी शक्तिकी स्वाधीनतासे इतनी शक्ति विकसित हो सकती है। तात्पर्य शक्तिका विकास करनेमें संयमका इतना महत्व है। कई लोग समझते हैं, कि शरीरकी शक्ति कम करना अर्थात् शरीरको दुर्बल बनाना, संयमके लिये अत्यावश्यक है; परंतु वास्तविक बात यह नहीं है। जिसका मन और इंद्रियगण कमजोर होता है, उसीको संयम सिद्ध नहीं हो सकता । परंतु जिसका **मन बलवान और इंद्रियगण भी बलवान होता है उसीको संयम सुसाध्य होता है।** योगिराज श्रीकृष्ण भगवान् का वर्णन देखिये, श्री शंकर का वर्णन देखिये, आपको पता लग जायगा कि इनके इंद्रिय बलवान थे, और मन भी बडा शक्ति शाली था, और इसी लिये अपनी इंद्रियशक्तियोंका संयम ये कर सकते थे। तात्पर्य यह कि; जिसका मन और इंद्रियगण रोगी है, उसका संयम साध्य नहीं हो सकता, और जिसका मन और इंद्रियगण नीरोग और बलवान है, वही संयमी हो सकता है।

इस विवरणसे पता लगा ही होगा कि, **मनुष्यके एक एक इंद्रियमें कितनी अमित शक्ति है और उस शक्तिकी स्वाधीनतासे किस प्रकार विकास होता है।** एक जननेंद्रियकी शक्ति जैसी अपार है, एक वीर्य बिंदुकी शक्ति जैसी महान है, उसी प्रकार प्रत्येक इंद्रियकी शक्ति भी अपार है। यद्यपि व्यापक

परमात्माकी अपेक्षा एक देशी मनुष्य अल्प शक्तिवाला है, तथापि इस **मनुष्यकी शक्तियोंका प्रमाण पूर्ण रीतिसे जानना** अशक्य है, इतनी शक्तिकी अपारता इस एक व्यक्तिमें है। इस लिये अगाध परमात्मशक्तिकी तुलनासे जीवात्मशक्तिकी अल्पता जाननेपर भी कोई मनुष्य अपने आपको शक्तिहीन न समझे। क्योंकि जब इसकी सुप्त शक्ति जागृत हो जाती है और विस्तृत होने लगती है; तब इसके विस्तारकी मर्यादा इस समयतक किसीने भी नहीं है। इस लिये शक्तियां सुप्त होनेसे जो अशक्तता भासमान होती है, वह सत्य नहीं है। तात्पर्य यह है कि, यदि मनुष्य **अपनी सुप्त शक्तियोंका विकास करनेका यत्न करने लगेगा, तो उसके विकासका क्षेत्र अमर्याद ही होगा।** यहां अमर्यादका भाव यही है कि, इस शक्तिकी इतनी ही मर्यादा है और इससे अधिक नहीं है, ऐसी परिधि किसीने भी निश्चित नहीं की है। केवल शरीरकी शक्ति भी भीमसेन जितनी हो सकती है और उससे भी अधिक बढ सकती है। भीमसेन की शक्ति भी कोई अंतिम मर्यादा नहीं बताती, इतनाही यहां बताना है। यह उन्नति नियमानुकूल व्यवहार करनेसे ही होती है, और अनियमसे हानि होती है। मनुष्य सुनियमोंको अपनानेमें शिथिल रहता है, इसीलिये उसके विकासमें बाधा है, यही यहां विशेषतया कहना है।

पंच ज्ञानेंद्रियों और पंच कर्मेंद्रियोंकी शक्तियां ही इतनी विलक्षण हैं कि, उनका वर्णन करते करते और उनका विचार करते

करते मनुष्य आश्चर्य चकित हो जाता है। जितना अधिक विचार किया जाय, उतना अधिक आश्चर्य प्रतीत होता है, इतनी शक्तिकी अद्भुतता इस देहमें है। इसी लिये गीतामें कहा है—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः॥ आश्चर्यवच्चैवमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ भ. गी. २। २९

" मानों कोई तो आश्चर्य समझकर इसकी ओर देखते हैं, कोई आश्चर्य सरीखा इसका वर्णन करता है, और कोई मानों आश्चर्य समझकर सुनता है। परंतु सुनकर भी कोई इसे नहीं जानता है।"

इतनी विलक्षण शक्ति इस मनुष्यके अंदर है। परंतु इसका विचार और उपयोग बहुत ही थोडे करते हैं। वीर्य शक्तिकी अपारताका विचार पहिले किया ही है। प्रत्येक इंद्रियमें इसी प्रकार भिन्न भिन्न शक्तियां विद्यमान हैं। मुखमें वक्तृत्व शक्ति है। यह वाक्शक्ति कितनी प्रबल है, इसका अनुभव हरएक स्थानोंमें आ सकता है। शब्दकी शक्ति इतनी है कि, वह एक दूसरेमें प्रेम उत्पन्न करके मित्रता भी करा सकता है, तथा मित्रोंमें द्वेषाग्नि फैलाकर उनमें झगड़ा भी उत्पन्न कर सकता है। आजकल दैनिक और साप्ताहिक अखबार, मासिक पत्र, इतर सामयिक ग्रंथ, वक्तृत्व आदि सब शब्दसृष्टिके ही आविष्कार हैं। मनुष्यकी शक्ति इन शब्दोंमें इकठी हो रही है, और वह कालांतरसे भी अपना प्रभाव प्रकट करती है। हरएक मनुष्य बोलता है, परंतु बहुत थोडे मनुष्य हैं कि, जो शब्दोंद्वारा बाहिर जानेवाली अपनी शक्तिको जानते हैं। प्राचीन कालमें जिन

लोगोंनें इस शक्तिका अनुभव किया, वे अपनी शक्तिको बचाने लगे, आर अंतमें मौन धारण करके " मुनि " बन गये। इससे यह चमत्कार हुआ कि, मुनि जो शब्द बोलते थे, वही सत्य हो जाता था। परंतु आजकल शब्दोंकी वृष्टि करनेपर भी वह प्रभाव नहीं होता है। इसका कारण इस शक्तिके संयम और असंयममें ही है।

कानमें श्रवण शक्ति है। इस शक्तिके कारण ही मनुष्य गुरुसे विद्याका ग्रहण कर सकता है। गुरुके मुखसे उच्चारित हुआ शब्द शिष्यके कानमें जाता है, और वहांसे हृदयतक पहुंच कर वहां अपना प्रभाव जमा देता है। इस प्रकार सुसंस्कार होनेपर मनुष्य योग्य और श्रेष्ठ बन जाता है, और कुसंस्कार होनेसे मनुष्य गिरने लगता है। इसका विचार करनेसे पता लग सकता है कि, कर्णेंद्रियमें कितनी आश्चर्य कारक शक्ति है।

इसी प्रकार नासिकामें प्राणशक्ति जीवन दे रही है, नेत्रकी दर्शन शक्ति सब सृष्टिका दर्शन करा रही है, तथा अन्यान्य इंद्रियोंकी शक्तियां अन्यान्य रीतिसे प्रकट हो रहीं हैं। यदि पाठक विचार करेंगे, तो अपने शरीरके रोमरोममें विलक्षण शक्तिका कार्य उनको दिखाई देगा। वेदका उपदेश है कि, मनुष्यकी यह शक्ति विकसित हो, देखिये—

मनस्त आप्यायतां, वाक्त आप्यायतां, प्राणस्त आप्यायतां, चक्षुस्त आप्यायतां, श्रोत्रं त आप्यायताम्॥

यजु. ६।१५

(१) तेरी मानस शक्ति की वृद्धि हो, (२) तेरी वक्तृत्व शक्ति विकसित हो, (३) तेरी प्राणशक्ति बढ जाय, (४)

तेरी दृष्टि की शक्ति उन्नत हो, (९) तेरी श्रवणशक्ति प्रभावशाली हो, " और इसी प्रकार तेरी संपूर्ण शक्तियां विकसित हो जांय। यह वेद की सूचना है। इस मंत्रद्वारा वेद कह रहा है कि, हे मनुष्य! तूं अपनी हरएक शक्तिका विचार कर और उस शक्तिके विकासके लिये उद्योग कर। वेद स्थान स्थानपर निश्चयसे कह रहा है, कि इस प्रकारके उत्कृष्ट योगसे मानवी शक्तिका उत्कर्ष अवश्य हो जायगा।

इसलिये मनुष्यको यह इच्छा अपने अंदर धारण करनी चाहिये कि, मैं अपनी अनेक शक्तियोंका विकास करूंगा। अथवा कमसे कम इस आयुमें किसी एक शक्तिका तो ऐसा विकास करूंगा, कि जिसको " **परम विकास** " कहा जा सकता है। इस प्रकार इस एक शक्तिके विकाससे सबसे श्रेष्ठ बननेका प्रयत्न हरएकको करना चाहिये। **हरएक मनुष्यका यही धार्मिक कर्तव्य है कि, वह धर्मानुकूल आचरण करता हुआ, अपनी शक्तिका विकास करनेका प्रयत्न करे। दत्तचित्त होकर प्रयत्न करनेसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है,** इसमें कोई शंका नहीं है।

इस कारण प्रत्येक वैदिक धर्मी मनुष्य अपनी शक्तिका विचार करे, उसके विकासके नियम जान कर उनका अनुष्ठान करके वह अपने प्रयत्नसे ही अपनी उन्नति सिद्ध करे, यही उक्त मंत्रका हेतु है। आशा है कि वैदिक धर्मी मनुष्य उक्त मंत्रका उद्देश्य ध्यानमें रखेंगे और अपने उदयके मार्गका पता लगायेंगे।

विवेक, भावना और अंतःप्रवृत्ति ।

मनुष्यका मनुष्वत्व बाह्य इंद्रियोंकी शक्तियोंकी अपेक्षा अंतः-करणकी वृत्तियोंपर अधिक अवलंबित है । मन की विवेक शक्ति, चित्तकी भावना और बुद्धिकी अंतःप्रवृत्ति जिस प्रकार होगी, उस प्रकारका मनुष्यत्व भनुष्यमें होगा । इस लिये वेदने कहा है कि-

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः
सह चित्तमेषाम् ॥ समानं मंत्रमभिमंत्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ॥
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ ॥

ऋ. १०।१९१।

" आपका (मंत्र) विचार, मन, चित्त, हृदय और (आकूतिः) संकल्प समान हो । " अर्थात् आपके विचार, मन, चित्त, हृदय और संकल्पसे विषमता दूर हो, और उसमें समानता आजाय । विषमतासे अधोगति और समतासे उन्नति होती है । विषमता सर्वत्र हानिकारक होती है । शरीरके सप्त धातुओंमें विषमता होनेसे विविध प्रकारकी बीमारियां होतीं हैं, समाजमें जातियोंकी विषमता होनेसे सामाजिक अस्वस्थता बढ जाती है, राज्यशासनकी

विषमता होनेसे राजंक्रांति हो जाती है, जलवायुकी विषमता हो जानेसे सब प्रकारका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, तात्पर्य सर्वत्र विषमतासे हानी और समतासे लाभ होते हैं ।

मनुष्यकी विवेक शक्ति, चित्तकी भावना और बुद्धिकी अंतःप्रवृत्ति यदि समानतासे युक्त न हुई, और इसमें विषमता रही, तो मनुष्य यशस्वी नहीं हो सकता; इस लिये इस बातका थोडासा विचार करना चाहिये। मनकी विवेकशक्तिसे मनुष्य सारासार विचार कर लेता है, कौनसा अच्छा है और कौनसा बुरा है, इसका निश्चय विवेक शक्तिसे होता है। मनुष्यके चित्तमें भावनाकी प्रधानता होती है, किसीसमय यह विवेक करता नहीं परंतु कहता है कि मुझे यह अछा लगता है, इस चित्तकी भावना पर भी मनुष्यका मनुष्यत्व बहुतसा अवलंबित है, इससे भी बढकर बुद्धिका अंतर्ज्ञान है, जो स्वभावतः मनुष्यको प्राप्त होता है; तर्कनाके विनाही यह मनुष्यके अंदर विद्यमान रहता है, इस लिये इसको " सहज-प्रवृत्ति " भी कहते हैं। इन तीनोंसे मिलकर मनुष्यका मनुष्यत्व सिद्ध होता है । इस लिये हरएक मनुष्यको इन तीनोंकी परीक्षा करनी चाहिये और अपनेमें इनकी उन्नतिका विचार करना चाहिये ।

मनकी तर्कना अथवा विवेक शक्ति मनुष्यमें है, इसीलिये इसको " **मनुष्य** " (मननात् मनुष्यः) कहते हैं । विवेक कर सकता है इस लिये ही यह मनुष्य कहलाता है । अर्थात् विवेक हीन होनेपर मनुष्यको मनुष्य कहा नहीं जायगा । इसलिये विवेक

शक्तिको बढाना मनुष्यके लिये अत्यंत आवश्यक है। यह विवेक शक्ति "**न्यायशास्त्र**" के अभ्याससे बढ सकती है, इसी न्याय शास्त्रको "तर्क" भी कहते हैं। इस विषयमें गौतम का न्याय दर्शन सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है। इसके अध्ययनसे मनुष्य उत्तम और निर्दोष रीतिसे विवेक कर सकता है। इसी उन्नतिके लिये "वैशेषिक दर्शन" भी अच्छा है।

परंतु सदा सर्वदा मनुष्य इस तर्कशास्त्रके अनुकूल शुष्क तर्कना करता हुआ ही व्यवहार नहीं करता। विचार करके देखा जाय, तो पता लगेगा कि, मनुष्यके बहुतसे व्यवहार चित्तकी भावनासे ही होते रहते हैं। जैसा चित्तका भाव होता है, वैसा मनुष्य व्यवहार करता जाता है। इस चित्तको स्वाधीन करनेके लिये ही "योग शास्त्र" है। भगवान् पतंजलि महामुनिका योगदर्शन इस चित्तवृत्तियोंकी स्वाधीनताके लिये अत्युत्तम ग्रंथ है। इसके अध्ययनसे चित्तकी भावनाओंकी स्वाधीनता प्राप्त करनेकी रीति ज्ञात हो सकती है। मनुष्य भावनाओंके कारण बडे बडे परोपकारके कृत्य करता है, भावनाओंके कारण बडे बडे दान और धार्मिक कृत्य करता है, राजकीय और सामाजिक हलचलें भी भावनाओंके परिवर्तनके कारण होतीं हैं। भावनाओंके परिवर्तनके कारण धनी लोग भी सब लालच छोडकर फकीर बन जाते हैं, और कई दूसरे लोग बडे बडे व्यवसाय करके यशस्वी भी होते हैं। जहां भावना का स्थित्यंतर हुआ वहां तर्क कार्य नहीं करता, और सब कार्य भावनासे ही होते रहते हैं। भावना—प्रधान मनुष्यमें अत्यंत जोरकी

बडी फूर्ति रहती है, यह मनुष्य थोडे समयमें जितना कार्य कर सकता है, उतना तार्किक मनुष्य बहुत समयमें भी नहीं कर सकता। इसलिये भावनाको भी स्वाधीन करनेका यत्न करना चाहिये। " सांख्य दर्शन " का इस बातकी उन्नतिके लिये बडा उपयोग हैं।

विवेक और भावनासे भी और एक शक्ति मनुष्यमें जन्मसे प्राप्त होती है, वह बुद्धिकी अंतःप्रवृत्ति है। यह मनुष्यमें " **सह-ज** " अर्थात् जन्मके साथ ही आती है। कई मनुष्य ऐसे होते हैं कि, उनके साथ आप बडी दलीलें कीजिये, बडी युक्तियां दीजिये अथवा उनकी भावनाओंको बडी चेतावनी दीजिये; परंतु वे सुनेंगे नहीं। क्यों कि उनकी बुद्धिकी साक्षी आपके तर्कके साथ मिलती नहीं है। इसलिये मनुष्यके यशके साथ इसका भी संबंध है। कई मनुष्योंमें यह आंतरिक ज्ञान शक्ति अच्छी दशामें होती है और कईयोंमें बहुत मंद होती है। इस शक्तिके संवर्धनका उपाय " **ध्यान-योग** " है।

विवेक शक्ति, भावना शक्ति और आंतरिक प्रवृत्ति मिलकर मनुष्य है। मनुष्यका पुरुषार्थ अथवा उसका यश इनके प्रमाणसे ही होता है। कईयोंमें यह तर्कशक्ति बहुत बढी हुई होती है, यहा तक उनका तर्क चलता है कि, अंतमें वे नास्तिक ही बन जाते हैं!! दूसरे कई लोक ऐसे होते हैं, कि, जिनमें तर्क शक्ति कम परंतु भावना शक्ति प्रबल होती है, यहां तक भावना प्रधान ये

मनुष्य होते हैं कि, अंतमें अंधविश्वासमें इनका परिणाम होता है!! तीसरे पुरुष ऐसे होते हैं कि, जिनमें न तो तर्कना रहती है और न भावना रहती है, परंतु " अंतः प्रवृत्ति " ही इतनी जबर दस्त होती है कि, वे किसीका सुनते नहीं और बडे दुराग्रहसे अपनी अंतःप्रवृत्तिके अनुसार ही कार्य करते जाते हैं। ये तीन ही प्रकारके पुरुष यदि दैववशात् यशस्वी हुए तो हुए, निश्चयसे पुरुषार्थके साथ होंगे ऐसा संभव नहीं। इसलिये **न्यायशास्त्र, योगशास्त्र और ध्यानयोग की सहायतासे उक्त तीनों शक्तियोंका ऐसा समविकास करना चाहिये कि, तीनों शक्तियां स्वाधीन रहें और निश्चयके साथ पुरुषार्थ करके मनुष्य यशको प्राप्त कर सके।**

साधारणतः विवेक शक्ति मस्तिष्कमें, भावना शक्ति हृदयमें और अंतःप्रवृत्ति पृष्ठ वंशके मूलाधार चक्रमें रहती है। आसनोंमें शीर्षासन, कपालासन, विपरीत करणी मुद्रा आदि करनेसे पूर्वोक्त शक्तियोंकी वृद्धि होने योग्य मज्जातंतुओंकी सबलता हो जाती है। इसके साथसाथ पूर्वोक्त शास्त्रोंका उत्तम अध्ययन करनेसे अपूर्व लाभ हो जाता है। अध्ययनके साथ अनुष्ठानकी भी अत्यंत आवश्यकता है इसमें कोई संदेह नहीं है।

कई लोग ऐसे उतावले होते हैं, कि ठीक प्रकार सोचते ही नहीं। सब प्रमाणोंका यथायोग्य विचार करके करने योग्य कर्तव्य उत्तम रीतिसे करने चाहिये, तभी सिद्धि प्राप्त हो सकती है,

अन्यथा कैसी होगी ? योग्य प्रमाणोंकी सहाय्यतासे जो विवेक होगा, वह ठीक विवेक हो सकता है, परंतु दोष युक्त प्रमाण लेकर ही यदि कुछ न कुछ अनुमान अथवा सिद्धांत निश्चित किया जाय, तो उसके गलत होनेमें कोई भी शंका नहीं है। इस लिये अपने प्रमाणोंकी निर्दोषताका भी विचार अवश्य करना चाहिये। कई लोग ऐसे पक्षपाती और पूर्व–ग्रहसे दूषित होते हैं कि, वे विवेक करके सत्यासत्य निर्णय करनेके लिये सर्वथा अयोग्य ही होते हैं। पूर्वग्रहोंसे उनका मस्तिष्क इतना बिगडा होता है कि, वे विवेक करनेमें असमर्थ हो जाते हैं। प्रायः मनुष्य अपनी जातिको अधिक पवित्र तथा अपने आपको अधिक समझदार समझता है। इसी प्रकार कई अन्य पूर्वग्रह होते हैं कि, जो मनुष्यको विवेक करनेके लिये अयोग्य बना देते हैं। इस लिये मनुष्यको उचित है कि, वह इन पूर्व दुराग्रहोंसे अपने आपको दूर रखे। यह सबसे कठिन बात है, परंतु इसके विना यथार्थ विचार होना असंभव है, और यथार्थ विचार करनेके विना अभ्युदय होना सर्वथा असंभव है। जो महात्मा लोग होते हैं, वे पूर्वग्रहोंको दूर फेंक देते हैं, इसी लिये वस्तुस्थितिको ठीक प्रकार देख सकते और उन्नतिका मार्ग ढूंढ सकते हैं। और अज्ञ जन पूर्वग्रह दूषित होते हैं, इसी लिये महात्माओंको प्रारंभमें अत्यंत कष्ट होते हैं; परंतु अंतमें उनकी ही सर्वत्र पूजा होती है इस लिये प्रमाण, प्रमेय, वस्तुस्थिति आदिका यथायोग्य विचार करके निश्चित और निर्दोष अनुमान करनेका अभ्यास बढाना अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि निर्दोष अनुमान

पर ही मनुष्यकी उन्नति अवलंबित है। तात्पर्य यह कि न्याय शास्त्रके अनुकूल अपने विवेकको सुसंस्कृत कीजिये।

इसके पश्चात् चित्तकी भावनाकी शुद्धिका काम है। मनुष्यके अंदर भावनाकी शक्ति अतर्क्य है। यद्यपि भावनाके स्वरूपका निश्चय करना अत्यंत कठिन कार्य है, तथापि उसकी शक्ति अत्यंत विलक्षण है, इसमें मतभेद नहीं हो सकता। भावनाका यहां तक संबंध है कि, अच्छी भावना चित्तमें स्थिर रहनेसे शरीरकी नीरोगता, मनकी उल्हास वृत्ति और इंद्रियोंकी कार्यक्षमता सिद्ध होती है, और बुरी भावनासे इसके विपरीत परिणाम दिखाई देता है। यह अपनी भावनाकी शक्ति आप अपने अंदर तथा अपने मित्रोंके अंदर देखिये और अपनी भावनाको शुद्ध करनेकी तैयारी कीजिये। जिस समय अपनी भावनाके उत्तम होनेके विषयमें आपको संदेह हो, उस समय आप अपने आपको उसी परिस्थितिमें कल्पनासे ही रखिये कि, जो आपकी भावना फलीभूत होनेसे बनने वाली है। ऐसा करनेसे आपको ही पता लगेगा कि, अपनी भावना शुद्ध है वा नहीं। भावनाको शुद्ध करनेके लिये उसको अल्पसे अल्प शब्दोंमें व्यक्त करनेका यत्न कीजिये, और देखिये कि आपके तर्कसे वह अवस्था अच्छी है वा नहीं। क्या आप अपनी भावनाको सहस्त्रों लोगोंके सामने खुलंखुला कह सकते हैं? यदि कह सकते हैं, तो समझिये कि वह शुद्ध भावना है। अपने धार्मिक भावसे अपनी भावनाकी शुद्धता कीजिये। इस प्रकार जो परिशुद्ध भावना होगी,

उसको आचरणमें लानेमें कोई दोष नहीं। योग शास्त्रका जो आचार व्यवहार है, उसके अनुसार अपना आचरण करनेसे भावनाकी शुद्धि होती है। इस लिये इस रीतिसे इसकी पवित्रता संपादन करनी चाहिये।

अब रही अंतः प्रवृत्ति जो जन्मके साथ प्राप्त होती है। यह दूर होनी यद्यपि कठिन है, तथापि ध्यान योगके अभ्याससे इसकी पवित्रता हो जाती है। अपनी प्रवृत्तिको शुद्ध, पवित्र और मंगल बनानेका कार्य हरएकको करना चाहिये। यह बीज शक्ति इतनी प्रबल होती है कि, इसीसे सब लोग कार्य कर रहे हैं। कईयोंकी प्रवृत्ति घातपातकी ओर है और कईयोंकी परोपकारमें है। इस लिये एककी निंदा और दूसरोंकी प्रशंसा हो जाती है। यदि मनुष्य विचार करेगा, तो उसको पता लग सकता है कि, अपनी प्रवृत्तिमें कौनसा दोष है। दोषका पता लगनेके पश्चात् उसके दूर करना आवश्यक है। पहिले इसका विचार करना चाहिये कि, प्रवृत्ति आलस्यकी है, वा उद्यमकी है। ध्यान रखिये कि आलस्य ही बडाभारी रोग है, और उद्यमी जीवन स्वस्थावस्था है। इसलिये पहिले अपने आपको उद्यमी बनाइये। जब प्रवृत्ति उद्यमी हो जायगी, तब उसकी और शुद्धता कीजिये। इसकी रीति यह है कि, अच्छेसे अच्छे उद्यममें अपने आपको सदा रखिये। निरंतर दृढ निश्चय पूर्वक अपनेआपको मंगल पुरुषार्थमें लगानेसे प्रवृत्तिकी परिशुद्धता हो जाती है।

" सुशिक्षण " से उन्नति और दोषयुक्त शिक्षणसे अवनति होती है। आपका आंख देख सकता है और कान सुन सकता है, यह सच है परंतु आपका अशिक्षित आंख चित्रकारके आंखसे कितना नीचे है, और आपका कान गवईय्याके कानसे कितना पीछे है, यह विचारसे देखिये इसी प्रकार अन्य इंद्रियोंके विषयमें है। इसलिये अपने आपको मन और हृदयकी सुशिक्षासे योग्य बनाइये। केवल मन शक्तिवाला हुआ तौ भी ठीक नहीं और केवल हृदय ही अछा रहा तो भी ठीक नहीं है। इस विषयमें वेदका कथन स्पष्ट है, देखिये—

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ॥

अ. १०।२।२६

"मस्तक और दयको एक धागेसे सीना चाहिये।" सुशिक्षाका एक धागा है, उससे मस्तक और हृदयको सी दीजिये। मनकी विवेक शक्ति और हृदयकी भक्ति इस प्रकार एक मार्गसे चलने दें। इन दोनोंका समविकास करके अपनी परिस्थिति देखिये और उसको अच्छी प्रकार सुधार कर अपने आपको ऐसा उन्नत कीजिये कि लोग आपको आदर्श समझने लग जांय।

अपनी उन्नति करना आपका अधिकार ही है। जन्मही इस प्रकारके अभ्युदयके लिये है। पुरुषार्थ करनेसे ही जन्मका साफल्य होता है इस लिये उठिये, और अपने साथियोंको जगाइये। आपके साथी विवेक, भावना और अंतःस्फुरण ये ही

हैं । इनको अपने योग्य बनाकर आगे बढिये और विजय प्राप्त कीजिये । युद्धमें स्थिर रह कर आगे बढेंगे, तोही विजय प्राप्त हो सकता है । आपको पता है कि, युधि-ष्ठिर का भाई ही विजय है अर्थात् जो (युधि) युद्धमें (ष्ठिर-स्थिर) स्थिर रहता है, पीछे नहीं हटता, उसीके पास (विजय) जय आता है । अपने यशकी यही कूंजी है । यह बात ठीक प्रकार ध्यानमें रखिये । तो विजय आपसे दूर नहीं होगा और आपको शीघ्रही यश मिलेगा ।

विपरीत करणी तथा शीर्षासन ।

(लेखक-श्री० पं० ठाकुरदत्तशर्मा वैद्य, अमृतधारा, लाहौर)

" वैदिक धर्म " के जनवरीके अंकमें जब मैनें " शीर्षासन " का वर्णन पढा, उस समय मेरा विचार हुआ कि, आसनोंपर एक विस्तृत लेख लिखूं, क्योंकि मैने भी आसनोंपर कुछ न कुछ विचार किया है । और अनुभव भी किया है, परंतु आज कल करते करते इतने महिने व्यतीत हुए, परंतु लेख लिखनेके लिये समय नहीं मिला, कि लेखको लिख सकता; इस वास्ते अब यह विचार किया है कि, आसनोंपर बडा लेख किसी दूसरे समयके वास्ते रख कर जनवरीके लेख पढनेसे जो विचार उत्पन्न हुए हैं उन्हीं को प्रकट करूं । इस लेखके लिखनेसे मेरा अभिप्राय केवल " शीर्षासन के भेद " ही लिखनेका है, आशा है कि वैदिक धर्मके पाठक लाभ उठावेंगे । प्रथम तो मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि " विपरीत करणी " और " कपाली आसन " को जिन जिन पुस्तकोंमें एक ही लिखा है, वह हमारे गुरुजीके मतानुसार, जो कि योगके पूर्ण ज्ञाता हैं, ठीक नहीं है; उनका भेद अभी आपको मालूम होता है ।

(१) **कपाली आसन, शीर्षासन, या वृक्षासन**—किसी किसीने एक टांगपर खडे होनेको वृक्षासन कहा है, परंतु वास्तवमें

वही है जैसा कि, चित्र सं० १ में दिखलाया गया है; इसमें एक कंबल पर दोनों हाथ मिलाकर रख कर, शिर उन पर रख कर, पांव आकाशकी ओर सीधे कर देने चाहिएं। इस तरह हुए हुए अब इसकी शकलें और भी करली जाती हैं। जैसे—एक टांग नीचे करली (चित्र सं. २) तो उसका नाम " **एक पाद वृक्षासन** " हुआ, दोनों टांगें नीचे करलीं (चित्र सं. ३) इसका नाम " **अर्ध वृक्षासन** " हुवा; दोनों पांव आमने सामने मिला लिये (चित्र सं. ४) उसका नाम " **ऊर्ध्व संयुक्त पादासन** " हुवा; अब टांगोंसे पद्मासन लगाया (चित्र सं. ५) तो " **ऊर्ध्व पद्मासन** " हुवा।

(२) इस आसनमें अधिक अभ्यास होनेसे ऐसा संभव हो जाता है कि, हाथ छोड दिये जावें और केवल सिरके बल जमीन पर खडे रहें (चित्र सं. ६), इसका नाम "**मुक्त हस्त वृक्षासन**" है। यह बहुत कठिन है, गर्दन पर सब बोझ पडता है। कई कहते हैं कि मुक्त हस्तासन इतनाही है, कि हाथ शिरके नीचे नहीं रहें (चित्र सं. ७), यह सुगम है। इस प्रकार आसन लगा कर भी टांगोंकी वह संपूर्ण शक्लें बदली जा सकती हैं, जो कि चित्र सं. २ से सं. ५ तक दिखाई गई हैं।

(३) इसका एक तीसरा सिलसिला भी है, इसमें हाथोंके सहारे खडा हो जाना है, गर्दन पर जोर नहीं पडता, बाहु पर पडता है। इसका नाम " **हस्त वृक्षासन** " है, जैसा कि चित्र

सं. २ में दिखाया गया है। इसके साथ ही वही सब शक्लें बदली जा सकती हैं जो चित्र सं. २ से सं. ९ तक ऊपर वर्णन हुई, इसका अभ्यास भी देरीमें होता है। देर तक दीवारका सहारा लेना पडता है।

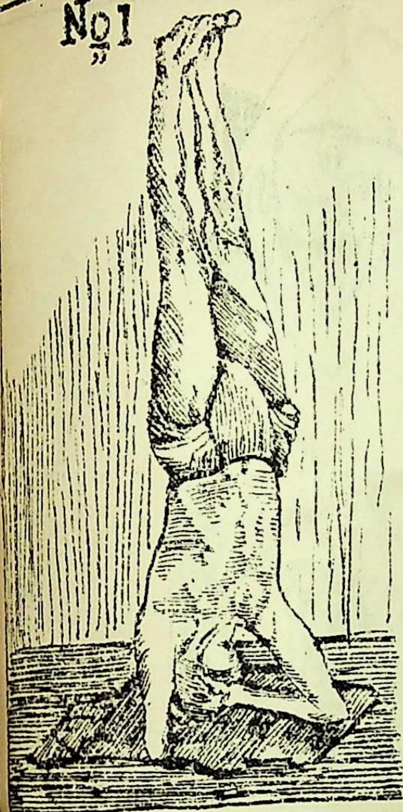
(४) **विपरीत करणी मुद्रा**—मुद्राको आसनोंके साथ मिलाया नहीं जा सकता। प्रत्येक मुद्रामें कुंभक आवश्यक होता है। मुद्राका विशेष प्रयोजन भीतरी शक्तियोंको जगानेका होता है। चित्र सं. ९ व सं. १० में विपरीत करणी मुद्रा दिखाई है, उसको " **सर्वांगासन** " भी कहते हैं। कुंभक साथ न हो तो यह आसन हो जाता है, अगर कुंभक साथ हो तो वह विपरीत करणी मुद्रा होगी। प्रथम सं. ९ की तरह हाथका सहारा देना पडता है, परंतु वास्तवमें हाथका सहारा न देना चाहिये। गर्दन तथा कंधोंपर सब बोझ डालकर सीधा खडा होना चाहिये। किसी किसीका मत है कि टांगें सिरके ऊपरसे भूमिको आ लगें, तब " **सर्वांगासन** " होता है। " **विपरीत करणी मुद्रा** " यही है। इसके वास्ते प्रमाण पुस्तकोंसे नहीं दिया जा सकता है। जो मुद्राका प्रयोजन है वह इससे ठीक सिद्ध होता है। इस वास्ते यही विपरीत करणी मुद्रा है। मेरा विचार है कि इस प्रकारसे आसन किया जावे तो वृक्षासनके लगभग सब लाभ पहुंचते हैं। पाचनशक्ति इससे तेज होती है। जठराग्नि बहुत ही बढ जाती है और कुंडलीका उत्थान शीघ्र :करती है। उत्तम यह

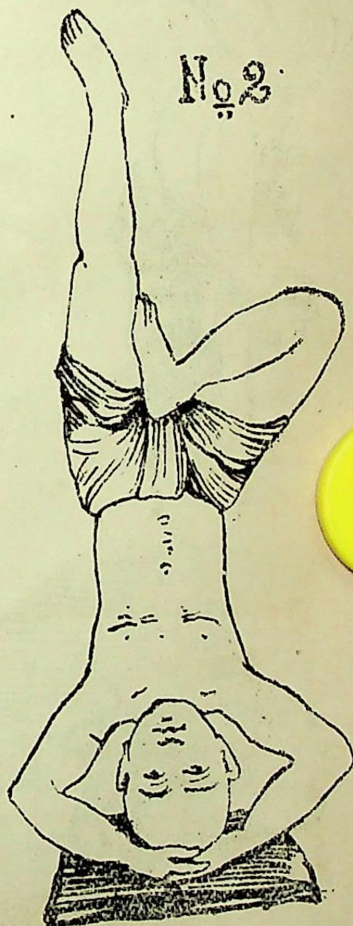
है कि दोनों वृक्षासन और सर्वांगासन किये जावें इससे बडा लाभ होगा।

इन आसनोंके गुणोंके संबंधमें मुझे कुछ नहीं कहना है, मेरा विश्वास है कि जनवरीके " वैदिक धर्म " के अंकमें जो कुछ लिखा गया है वह सब उचित है।

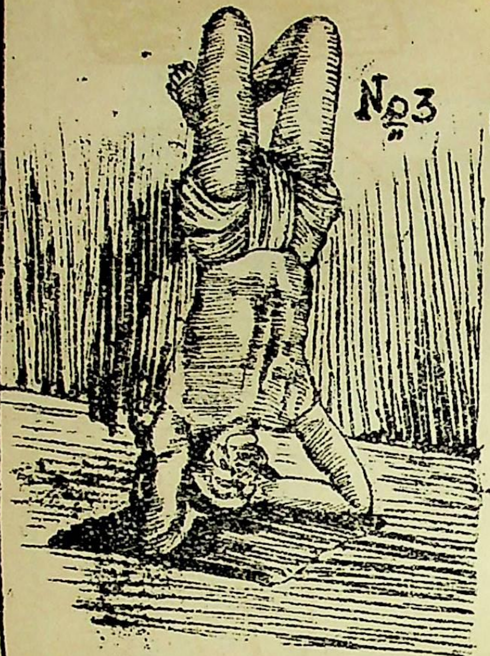
[**संपादकीय टिप्पणी**-श्री. पं. ठाकुरदत्तशर्मा वैद्यजीका अत्यंत धन्यवाद है, क्योंकि आपने अपने लेखके साथ चित्र भी मुद्रित करके भेज दिये हैं। जो इस लेखके साथ दिये गये हैं।]

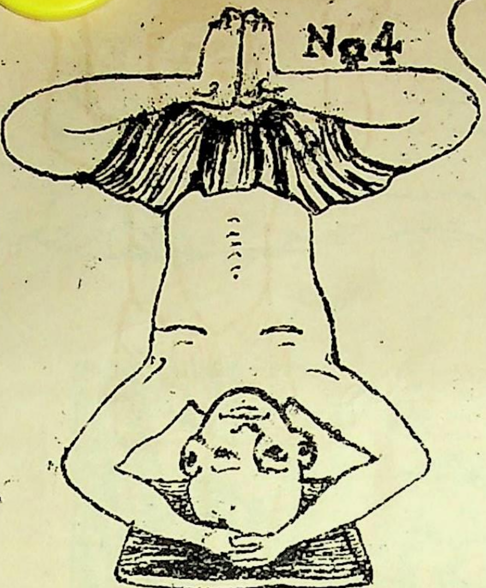
संपादक-वै. धर्म।

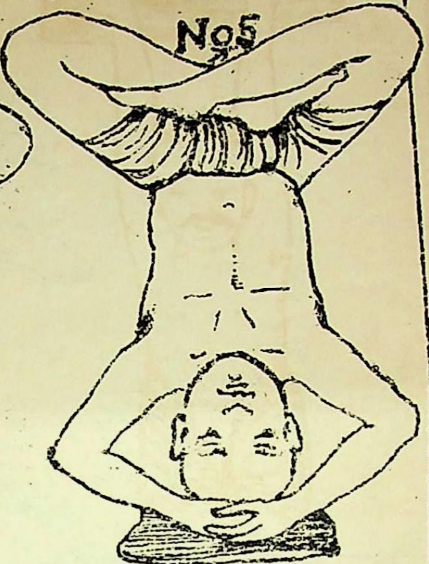


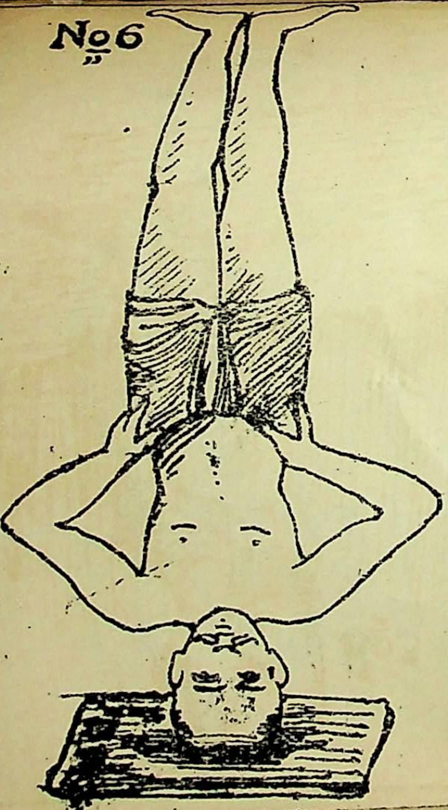


امرت پریس لاہور

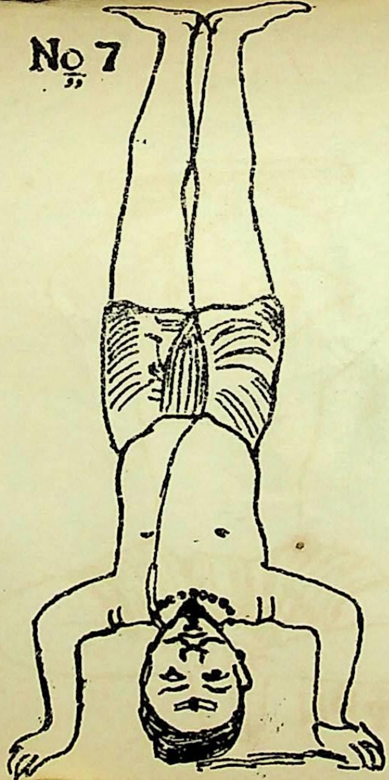

No 3


No 4

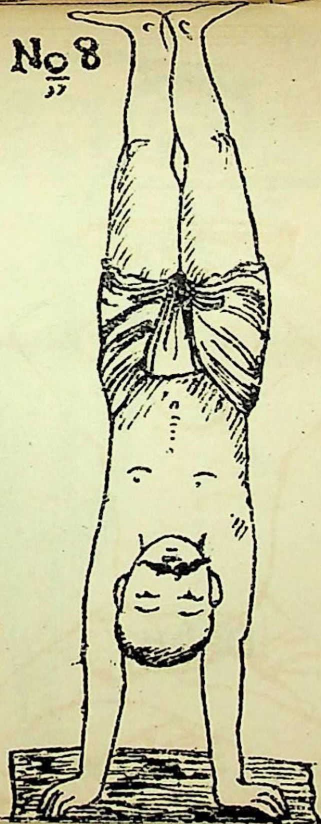

No 5



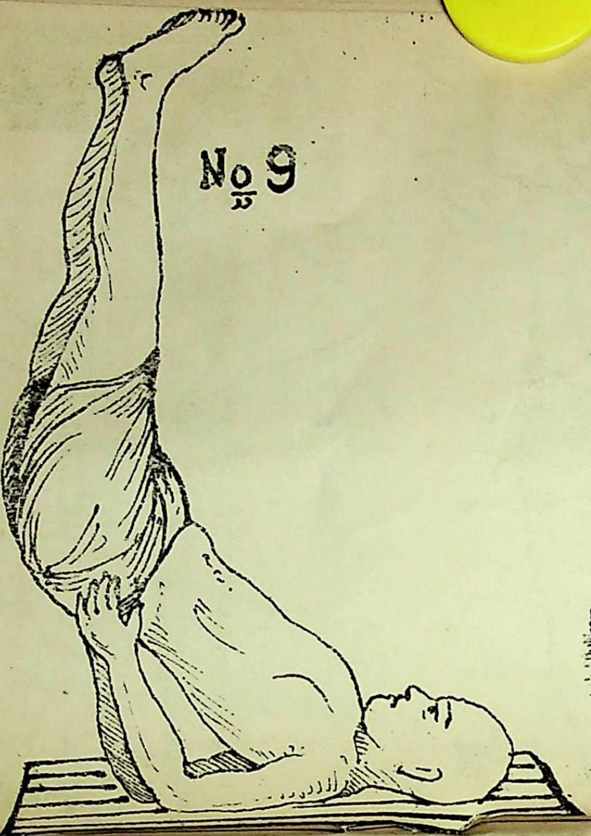
No 6

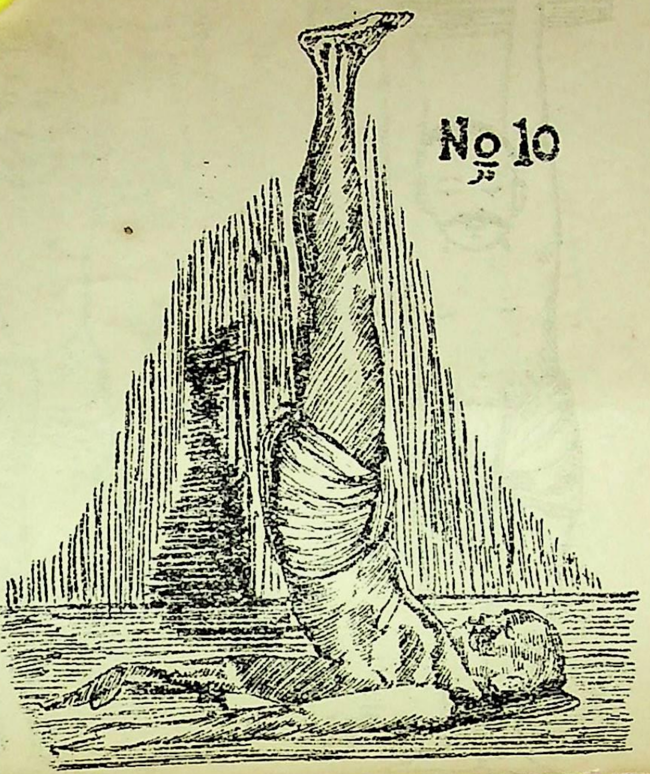


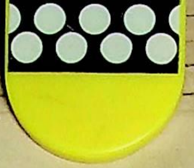
No 7



No 8


No 9


No 10

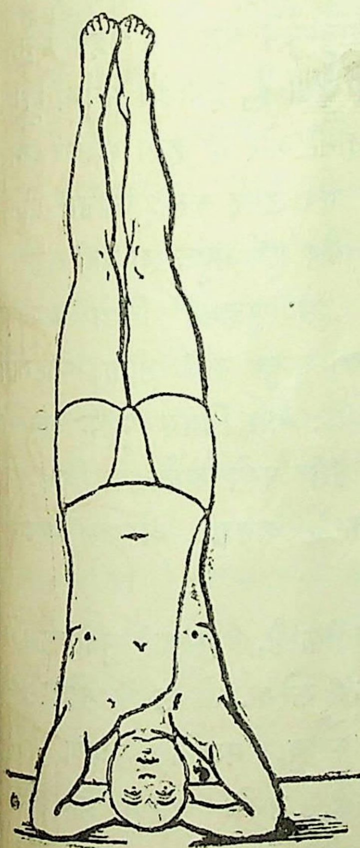


" विपरीत करणी मुद्रा । "

Equilibrium by opposite exaggeration.

(लेखक-श्री. नागेश वासुदेव गुणाजी. B. A. L. L. B. चीफ ऑफिसर सिटी म्युनिसिपालिटी, बेळगांव शहर.)

" वैदिक-धर्म " क्रमांक ३७ और ३८ में " शीर्षासन "



के विषयपर सुंदर सचित्र लेख प्रसिद्ध हुए हैं। वे अनुभवसिद्ध होनेके कारण ठीकही हैं। परंतु आज इस लेखमें मैं शीर्षासनके एक विशेष तत्वका विचार करना चाहता हूं, इसलिये इस लेखका शीर्षक मैंने " **विपरीत करणी मुद्रा** " रखा है। योग ग्रंथोंमें आसनोंकी अपेक्षा " **मुद्रा** " का श्रेष्ठत्व सुप्रसिद्ध है। मुद्राएं अनेक हैं, उनमें एक "**विपरीत करणी**" भी है। आसनोंमें केवल शरीरकी नसनाडियोंका संबंध आता है, परंतु मुद्राओंमें शरीरके साथ प्राण और मनका भी विशेष संबंध होता है। इसी कारण आसनोंसे मुद्राओंका महत्व विशेष

है। " **विपरीत करणी** " इस शब्दसे ही उलटा खडा होनेका भाव स्पष्ट हो जाता है। निद्राके समयको छोडकर हम बैठते, खडे होते और चलते हैं, इस समय हमारा " **मस्तक ऊपर और पांव नीचे** " होते हैं। इसके विपरीत स्थिति अर्थात् " **मस्तक नीचे और पांव ऊपर** " करने का नाम " **विपरीत करणी** " है। योग ग्रंथोंमें इस मुद्राका वर्णन निम्न प्रकार किया है—

" नाभिस्थानमें सूर्य है और तालुमूलमें चंद्र है। चंद्रसे अमृतका स्राव होता है, इस अमृतको सूर्य पीता है, इसलिये मनुष्य मृत्युके वश होता है। इसलिये भूमिपर दोनों ओर दो हाथ रखकर उनके बीचमें अपना मस्तक रखना और पांव ऊपर करके खडा होनेसे सूर्य ऊपर और चंद्र नीचे होता है और सूर्य अमृत खा नहीं सकता। यही विपरीत करणी मुद्रा है। इस मुद्राका नित्य अभ्यास करनेसे जीर्ण अवस्था और अकाल मृत्यु नहीं होता, जठराग्नि प्रज्वलित होता है, भूख बढती है। छः मास नियम पूर्वक करनेसे श्वेत बाल काले हो जाते हैं और शरीर परसे वार्धक्यके चिन्ह हट जाते हैं। पहिले थोडी देर करके क्रमशः अभ्यास बढाना चाहिये। " इ०

यह योगग्रंथोंका वर्णन आलंकारिक है, इसका सुबोधभाषामें रूपांतर यदि कोई योगी करनेकी कृपा करेगा, तो उसके बडे उपकार हो सकते हैं। हमारे शरीरमें स्नायु, मज्जातंतु, प्राण और मनके जो दिनरात व्यापार चलरहे हैं, उनके कारण प्राणशक्ति और आयु का क्षय हो रहा है। इसी क्षयसे अपना बचाव करना

योगसाधनके विविध क्रियाओंका मूल उद्देश्य है। उक्त " विपरीत करणी मुद्रा " से जो अनेक लाभ होते हैं, उसकी उपपत्तिका विचार आधुनिक शास्त्रकी दृष्टिसे भी होना संभव है। इस विषयका विचार अब करता हूं—

हमारे शरीरके प्रत्येक व्यापारमें स्नायुओंका आकुंचन और प्रसारण होता है। इस गतिके कारण शरीरके कई अणु मरते हैं, और उससे शरीरमें विषमय द्रव्य उत्पन्न होता है। यह विष शरीरके " लिंफ " नामक रसमें मिलता है। बडे परिश्रमके व्यवहार करनेवालोंके शरीरोंमें तो यह विष द्रव्य उत्पन्न होता ही है, परंतु साधारण हलचल करनेवालेके शरीरमें भी होता है। शरीरके स्वास्थ्यके लिये अत्यंत आवश्यक है कि उक्त विष शरीरसे शीघ्र ही बाहिर चला जाय और शुद्ध रक्त शरीरमें संचारित हो। जिस प्रकार चूलेमें अग्नि जलनेसे राख उत्पन्न होती है, और राख बहुत अधिक होनेसे चूलेमें आग ठीक प्रकार जल नहीं सकती; ठीक इस प्रकार शरीरमें यह स्नायुकी राख (Muscular ash) स्थानस्थानमें जमा होती है, और यदि यह बाहिर न गई तो वहां का कार्य ठीक प्रकार चल नहीं सकता। इसीका नाम बीमारी है। हमारे शरीरमें फेंफडोंके व्यापार, हृदय तथा धमनियां आदिके जो कार्य हो रहे हैं, उनका मुख्य उद्देश्य इतनाही है कि शरीरके दोष दूर हों और शुद्ध रक्त सब शरीरको मिल जाय।

अब प्रश्न यह है कि हमारे शरीरमें कैसा व्यवहार चल रहा है ? जो अतिपरिश्रम करनेवाले आदमी हैं उनका विचार छोड दें, परंतु जो खडे रहते अथवा चलते हैं, क्या उनको भी व्यायाम होता है ? विचार करनेपर पता लग जायगा कि केवल खडा रहनेमें भी पांवसे लेकर मस्तिष्क तक अनेक स्नायुओंपर जोर पडता है। छोटे छोटे बालक जिस समय खडा रहनेका यत्न करते हैं उस समय उनको कितने क्लेश होते हैं, इसका विचार करनेसे निश्चय हो सकता है कि केवल खडा रहनेसे भी शरीरके स्नायुओंमें व्यय होता रहता है। बहुत खडा रहनेसे अथवा बहुत चलनेसे पांवमें सूजन आती है उसका यही कारण है कि, श्रमके कारण उत्पन्न हुए दोष शीघ्र बाहिर नहीं जाते और वहां ही रहकर दोष उत्पन्न करते हैं। गुरुत्वाकर्षणके नियमानुसार शरीरमें उत्पन्न हुए दोष वारंवार शरीरमें रक्तके साथ घूमते हैं, इसी कारण बडी थकावट उत्पन्न होती है और स्थान स्थानमें दोष पैदा होते हैं। परंतु जिस समय हम अपना सिर नीचे और पांव ऊपर करते हैं तब गुरुत्वाकर्षणका कार्य विरुद्ध दिशासे होता है, और जो दोष सदा खडे होनेके कारण उत्पन्न होते थे, उनके विपरीत आचरण होनेसे परिणाम भी लाभदायक होता है। रक्त और लिंफसे दूषित पदार्थ वापस होते हैं और बाहिर निकलनेके मार्गमें लग जाते हैं। दूषित द्रव्य फेंफडोंमें पहुंचते हैं वहां उच्छ्वासके द्वारा बाहिर जाते हैं, अथवा अन्यप्रकार पसीनेके द्वारा बाहिर जाते हैं। इसी कारण " **विपरीत करणी मुद्रा** " करनेसे थकावट दूर होती है और

स्नायुओंमें बल प्राप्त होनेका अनुभव होता है । अमेरिकन लोग बहुत भ्रमण करनेके बाद बैठे ही अपने पांव सिर तक ऊपर उठाते हैं इसमें भी अल्प अंशसे उक्त तत्व ही कार्य करता है, ऐसा डा. ब्रंटनका मत है। अपनी योगपद्धतिकी " **विपरीत करणी मुद्रा** " से इष्ट लाभ पूर्णताके साथ और विना आयास होते हैं, इससेही सिद्ध हो सकता है कि योगियोंको शारीर शास्त्रका ज्ञान कितना परिपूर्ण था, और शरीरकी नसनाडीके व्यापारके साथ उनका कितना परिचय था।

जब हम एक ही अंगपर बडी देर सोते अथवा बैठते हैं, तब वहांसे उठनेके समय हम स्वभावतः विरुद्ध दिशासे शरीरको खींचते हैं। पशुओंमें भी यह रीति स्वभावसे रहती है। बिना सीखे पशु यही करते हैं। एक ही अंगपर बडी देर सोने अथवा बैठनेसे जो खून वहां जमा होता है उसको अन्यत्र आकर्षिक करनेके लिये उक्त प्रकार विरुद्ध दिशाके खिंचाव की आवश्यकता रहती है। अन्यथा पूर्ण सम अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिये पशुओंमें स्वभावतः ही विरुद्ध खिंचाव करनेकी बुद्धि परमात्माने रखी है और मनुष्योंमें भी है। तात्पर्य इस विरुद्ध खिंचावसे शरीरमें " समता " आती है और " समत्व प्राप्त करना ही योग है। "

" **समत्वं योग उच्यते।** " (गीता. २।४८)

विरुद्ध दिशासे विरुद्ध व्यवसाय करके शरीरकी समता प्रस्थापित करनेका विषय (Equilibrium by opposite exaggeration) म. माइल्स महोदयनें उत्तम रीतिसे प्रतिपादन किया है, यह बात

" **विपरीत करणी मुद्रा** " से उत्तम प्रकार सिद्ध होती है, इसी लिये इस मुद्राका इतना वर्णन योगशास्त्रमें हुआ है। प्रायः देखा जाय तो हमारे व्यवसाय सिर ऊपर और पांव नीचे रहकर ही होते हैं, इस कारण विषद्रव्य शरीरमें रहते हैं और शनैः शनैः सब शरीरमें फैलते हैं। अंतमें हृदय, फेंफडे और मस्तिष्कमें विष-द्रव्योंका संचय अधिक बढ जानेसे अकाल मृत्युतक अवस्था पहुंचती है। इस लिये जो विपरीत करणी मुद्राका प्रतिदिन नियमपूर्वक अभ्यास करेगा, उनको अनुभव हो जायगा कि नीचेका सब रक्त फेंफडोंमें आकर शुद्ध हो रहा है और नवजीवन प्राप्त हो है। सब रक्त शरीरके ऊपरके भागमें अधिक प्रमाणमें आनेसे ऊपरके शरीरके भाग, अवयव, चक्र, स्नायु, मज्जातंतु आदिका अधिक आरोग्य होता है और इनका अधिक आरोग्य होनेसे आयुष्यकी वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। विपरीत करणी करनेके पश्चात् फिर खडा होनेसे शुद्ध रक्त पुनः सब शरीरमें भ्रमण करता है। इस प्रकार इससे सब शरीरका आरोग्य सिद्ध होजाता है।

जिस समय मनमें बडे विचार आते हैं और उनके कारण निद्रा भी नहीं आती है, उस समय " विपरीत करणी मुद्रा " करनेसे निःसंदेह मस्तक शांत होता है और आरामसे निद्रा प्राप्त होती है। इसका कारण यही है कि उक्त मुद्रा करनेसे बहुत रक्त मस्तकमें जाता है और वहां जो दुषित द्रव्य होगा उसको बाहिर लाता है। इस प्रकार मस्तक निर्दोष होनेसे शांतिसे निद्रा प्राप्त होती है इस प्रकार यह विपरीत करणी मुद्रा शरीरका स्वास्थ्य बढानेवाली है।

मैं यह मुद्रा बचपनसे ही करता था, लडकपनमें खेलते कदते अपने सिरपर खडा रहनेका अभ्यास मुझे बालकपनसे ही था। परंतु इसका तत्व मुझे उस समय विदित नहीं था। इसका तत्वज्ञान अब हुआ है। जो लोग इसका अभ्यास करना चाहते हैं उनको उचित है कि वे प्रथम किसी मित्रकी सहायतासे करें तथा दिवारके साथ नरम बिस्तरे पर अभ्यास करनेका यत्न करें; इससे गिरनेका भय न होगा, और गिरने पर भी कोई कष्ट नहीं होगा। पहिले दिन थोडा और पीछे शनैः शनैः अधिक देर तक अभ्यास करनेसे बडा ही लाभ होता है। यह शीर्षासन सब आसनोंमें श्रेष्ठ है और सब व्यायाम होनेके पश्चात् इसको अवश्य करना चाहिये। हमारी व्यायाम पद्धतिमें प्रतिदिनके व्यायामके पश्चात् इसको अवश्य किया जाता है।

कोई व्यायाम करनेके समय और विशेषतः आसनों और मुद्राओंके अभ्यासके समय विशेष उच्च और पवित्र भावना मनमें धारण करनेसे अधिक लाभ होता है। शीर्षासन अथवा विपरीत करणी का अभ्यास करनेके समय निम्न लिखित भावना मनके अंदर धारण करनी योग्य है। हम सब—

(१) जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी।

(२) वंदे मातरम्।

अर्थात् " माता और मातृभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ है। उस माताको नमन करते हैं। " तथा—

(३) माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।

अ. १२।१।१२.

" मेरी माता भूमि है और मैं मातृभूमिका पुत्र हूं। " इस प्रकारकी कल्पनायें हमारे अंदर प्रचलित हैं । परंतु हमारा आचरण देखा जाय तो हम मातृभूमिके शरीरपर सदा अपने पांव ही रखते हैं । क्या यही हमारी मातृभक्ति है ? इस लिये सच्चा मातृभूमिकी भक्तिका भाव मनमें धारण करके यदि उस मातृभूमिके पदपर (पृष्ट भागपर) हम अपना मस्तक रखेंगे तो उसको शरण जानेका पुण्य हमें प्राप्त होगा । हम उसके पुत्र हैं और वह हमारी माता है, इसलिये पुत्रको उचित है कि वह अपनी माताके चरणोंपर अपना मस्तक रखे । ऐसा करना शीर्षासनमें होता है, जिसको विपरीत करणी भी कहते हैं । उक्त प्रकार माताके चरणोंपर मस्तक रखनेसे माता हमारे दोषोंको दूर करेगी और हमारा आरोग्य बढायेगी । आशा है कि पाठक वृंद उक्त भावके साथ उक्त मुद्रा करके शरीरमें समता, आरोग्य और प्रसन्नता प्राप्त करेंगे ॥

साध्यका निश्चय ।

(१) साधक योग्य साधनोंसे साध्यकी प्राप्ति करता है ।
(२) योजक योग्य योजनाओंसे नियोजित फल प्राप्त करता है ।
(३) कर्ता योग्य उपकरणोंसे कार्य सफल करता है ।
(४) योगी योग्य युक्तियोंसे योग सिद्ध करता है ।
(५) ज्ञाता योग्य ज्ञापकोंसे ज्ञान प्राप्त करता है ।

इसी प्रकार सर्वत्र समझिये । " **साधक–साधन–साध्य** " इस प्रकारकी त्रयी सर्वत्र है, इसको " त्रि–पुटी " कहते हैं । यही त्रयी–विद्या है । **सद्विचार, सत्कर्म, सदुपासना यह त्रयी-विद्याका स्वरूप** है । सद्विचारका सूक्तमय ऋग्वेद, सत्कर्मका क्रतुमय यजुर्वेद और सदुपासनाका शांतिमय सामवेद प्रसिद्ध है । साधक सद्विचारों (सु–उक्तियों–सूक्तों) से प्रेरित होकर योग्य साधनोंसे सत्कर्मका अनुष्ठान करता है और साध्यकी प्राप्ति करता है। संपूर्ण छोटे मोटे पुरुषार्थोंमें यही क्रम है । अर्थात् सबको सिद्धि इसी प्रकार प्राप्त होती है, सिद्धिका कोई दूसरा मार्ग नहीं है ।

कोई सिद्धि प्राप्त होनेके लिये अपने साध्यका निश्चय होना अत्यंत आवश्यक है । कोई भी मनुष्य साध्यका निश्चय होनेके विना सिद्धिको प्राप्त नहीं कर सकता । मनुष्यमें चलनेकी शक्ति

है, परंतु किसी ग्रामको पहुंचनेका निश्चय न हुआ, तो वह उस ग्रामको पहुंच नहीं सकता। चलनेका कार्य प्रारंभ करनेके पूर्व उसका निश्चय होना चाहिये कि, फलाने नगरको अवश्य पहुंचना है। योग्य साधन बर्तनेसे वह शीघ्र पहुंचेगा और अयोग्य साधनों का उपयोग करनेसे उसको वहां पहुंचनेके लिये देरी लगेगी, यह बात और है; परंतु पहुंचनेके स्थानका निश्चय न हुआ, तो वह संपूर्ण साधनोंको पास रखता हुआ भी चलनेका पुरुषार्थ नहीं कर सकता। इस लिये पुरुषार्थकी सिद्धता करनेके लिये प्राप्तव्य अवस्थाकी निश्चित कल्पना पहिले होनी चाहिये।

योग सिद्ध करनेके लिये, जिस अंतिम अवस्थाकी प्राप्ति करनी होगी, उसका ज्ञान प्रथम होना आवश्यक है। एक योग साधनमें यद्यपि चित्त वृत्तियोंका निरोध करके समाधि सिद्ध करना अंतिम ध्येय है, तथापि बीचमें अनेक ध्येयें हैं। जिनका प्रथम पता न होनेसे साधारण मनुष्य किस की प्राप्तिके लिये यत्न करना है, इस विषयमें कर्तव्यता—मूढसा हो जाता है। इस लिये अंतिम प्राप्तव्य का निश्चय जैसा होना चाहिये, उसी **प्रकार** मध्यम स्थितिमें जो प्राप्तव्य है और प्रथमारंभमें जो साध्य है, उन सबका निश्चित ज्ञान प्रथम होना चाहिये। जैसा योगमें अंतिम ध्येय "**समाधि**" है, मध्यम ध्येय "**ऋद्धि सिद्धि**" है और प्रारंभिक ध्येय आसन प्राणायाम द्वारा "**आरोग्यप्राप्ति**" है। इसी प्रकार हरएक विषयमें है। इस लिये वैदिक धर्मी शास्त्रकार प्रायः प्रारंभमें ही अंतिम साध्य कह देते हैं। जैसा—

योगशास्त्र—चित्तवृत्तिका निरोध करना, समाधि सिद्धि ।

सांख्य शास्त्र—अध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक अर्थात् वैयक्तिक, सामाजिक और जागतिक कष्टोंको दूर करना ।

न्यायशास्त्र—दुःख दूर करके अपवर्ग प्राप्त करना ।

इस प्रकार सब शास्त्रकार शास्त्रके प्रारंभमें ही अंतिम साध्यका निश्चित ज्ञान देते हैं, इस लिये कि " **साध्यका निश्चय** " होते ही साधक योग्य साधनोंको इकठ्ठा करके साध्यकी प्राप्ति करनेके अनुष्ठानमें लग जाय ।

यदि किसीको प्राप्तव्यका निश्चय नहीं हुआ, तो उसकी वही गति होगी कि, जो किसी स्थानको पहुंचनेका निश्चय न करते हुए ही चलने वालेकी गति हो सकती है । वह कितना भी चलता रहा, तथापि उसके चलनेका फल उसको प्राप्त ही नहीं होगा, क्यों कि प्राप्तव्यका उसको निश्चय ही नहीं है । समुद्रमें एक नौका बडी तेज वायुकी गतिसे चल रही है, वायुको ज्ञान नहीं है कि, इस नौकाको किस मुकामपर ले जाना है, उस नौकाके कर्ण-धारको पता नहीं है कि, किस मार्गसे चलकर कहां पहुंचना है, और जहाजमें बैठे हुए भी प्राप्तव्य स्थानके विषयमें अज्ञानी हैं, इतना होते हुए ही वह नौका वायुके योगसे बडी गतिके साथ चल रही है ! ! ! पाठक विचार कर सकते हैं कि, उस नौकाका आगे क्या होगा ? जो अवस्था इस नौकाकी होगी वही अवस्था उस मनुष्यकी होगी कि, जो साध्यका निश्चय किये विना ही अनुष्ठान करने लग जाता है, उसको पता नहीं कि जाना कहां

है, उसको विदित नहीं कि मार्ग कौनसा है, उसको ज्ञान नहीं है कि साधन कौनसे हैं। ऐसी अवस्थामें यदि वह वेगसे चलने लगेगा, तो उसके समान वही मूर्ख हो सकता है। इस लिये अपने उद्देश्यका निश्चय करना उचित है।

जो कोई कार्य आप करते होंगे, प्रथम निश्चित ज्ञान प्राप्त कीजिये कि इसका अंतिम फल क्या है ? किस लिये यह कार्य करना चाहिये ? एक आपके जीवनका अंतिम उद्देश्य होना चाहिये, जो अपने संपूर्ण जीवन भरके यत्नसे आपको सिद्ध करना है। यह आदर्श आप अपनी स्थिति और महत्वाकांक्षाके अनुसार निश्चित कर सकते हैं। कोई समाधिसिद्धि करनेका ध्येय रखेंगे, दूसरे किसी अन्य सिद्धिके पीछे भागनेका निश्चय करेंगे, और तीसरे कई व्यवहारमें धन आदि कमानेका उद्देश्य रखेंगे। कोई श्रेष्ठ उद्देश्य आप रखिये, परंतु आपका लक्ष्य निश्चित कीजिये। गोली चलानेवाला चांदके बिंदुपर अपना सब ध्यान जमा लेता है, और गोली चलाता है, तब जाकर गोली लग जाती है। यदि सामने चांद न हो, गोली चलाने वालेका लक्ष्य चांदके बिंदूपर न हो और ऐसी अवस्थामें किसी दिशामें बंदूक पकडकर कैसी भी गोली चलायी जायगी, तो उसको चांदमारीमें यश कदापि नहीं आवेगा। इस लिये पाठक यह समझें कि, अपने आपको चांद मारीके लिये ही सिद्ध होना है। वास्तविक रीतिसे देखा जाय, तो सब मनुष्य युद्धभूमिपर खडे हैं, और विश्व व्यापक

युद्धमें युद्ध कर रहे ही हैं। उनको पता हो वा न हो, वे युद्ध कर रहे हैं। जो इस युद्धमें अपना लक्ष्य ठीक देखता है और वहां ही बाण चलाता है उसका विजय होता है; तथा जो मनुष्य विना ख्याल करते हुए इधर: उधर बाण चलाते हैं, उनको पराजय होता है। इसी लिये कहा है कि—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

मुंडक उप. २।२।४

“ प्रणव धनुष्य है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य बिंदु है, तन्मय होकर भूल न करते हुए वेध करना चाहिये। ” यह अंतिम ब्रह्म प्राप्तिके ध्येय का वर्णन “ चांदमारी ” के दृष्टांतसे किया है; क्योंकि चांदमारीसे लेकर अंतिम समाधि सिद्धितक सब सिद्धियोंके लिये तन्मयता होनेकी आवश्यकता एक जैसी ही है। कोई सिद्धि, चाहे दुनयवी हो चाहे आत्मिक हो, तन्मयताके विना नहीं हो सकती। तन्मयता होनेके लिये लक्ष्य बिंदुका निश्चय आवश्यक है, नहीं तो वह तन्मय कहां होगा? इस लिये अपना लक्ष्य बिंदु निश्चित करके हरएकको उसीमें तन्मय होना आवश्यक है। **साधक अपने साध्यके साथ जितना एक रूप होगा, उतनी शीघ्र उसको सिद्धि मिल सकती है।**

कई मनुष्य निश्चित उद्देश्यके विना ही कुछ न कुछ करते रहते हैं। यदि आप उनसे पूछेंगे, तो कहते हैं “ यौं ही कर रहे हैं। ”

इससे और अधिक आश्चर्य कोई नहीं है !!! उद्देश्यके विना प्रवृत्ति ठीक मार्गसे नहीं हो सकती, इस लिये उद्देश्यका निश्चय होना अत्यंत आवश्यक है। मनुष्य का एक जीवनोद्देश्य होना चाहिये, जो उसके संपूर्ण जीवनका मुख्य उद्देश हो। वैदिक धर्ममें ये उद्देश " **धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष** " नामसे प्रसिद्ध हैं। **कर्तव्य करना, धन कमाना, स्त्री पुरुष मिलकर गृहस्थी होकर सुखसे रहना और सब प्रतिबंधोंको दूर करके बंधनोंसे मुक्त होना, यह ध्येय वैदिक धर्मने मनुष्य मात्रके सामने रखा है।** आपके सब अन्य ध्येय इसके अंदर आ सकते हैं, परंतु आप अपनी सुविधाके लिये चाहे अपने ध्येयोंके नाम अन्य भी रख सकते हैं। उसमें कोई हर्ज नहीं है। यदि आप का उद्देश्य " धन कमाना " ही केवल है, तो वह भी ठीक है; परंतु आपको वैदिक धर्म कहेगा कि, **धर्मानुकूल योग्य सत्य मार्गोंसे धन कमाइये।** इसी प्रकार अन्य ध्येयोंके विषयमें समझिये।

अपनी महत्वाकांक्षाके अनुसार आप अपना जीवनोद्देश्य निश्चित कीजिये और उसकी सिद्धताके लिये अपने सब व्यवहार अनुकूल कर लीजिये। उद्देश्यका निश्चय होनेके पश्चात् सब योग्य साधन इकठ्ठे करके योग्य मार्गसे जाना आपका अवश्य कर्तव्य ही होगा। इस अंतिम ध्येयके सिवाय आपको अपने अपने कार्यक्षेत्रके अनुसार अपने अपने बीचके ध्येय निश्चित करने चाहिये। समझलीजिए कि हरएक का अंतिम ध्येय मोक्ष अर्थात् बंधनों और प्रतिबंधोंको दूर करना है, तथापि वह जिस समाजका एक भाग है, उस समाज

की उन्नतिका कार्य करना उसको आवश्यक है, इस लिये उस कार्यके क्षेत्रमें इसका ध्येय निश्चित होना चाहिये। कुटुंबके विषयमें, अपनी व्यक्तिके विषयमें छोटे मोटे अनेक ध्येय उसके सामने रहते ही हैं, और उनको न करना अवनति कारक होता है। उचित रीतिसे सब ध्येयोंके विषयमें अपना कर्तव्य अवश्यमेव करना चाहिये।

जिस प्रकार कार्य क्षेत्रके संबंधसे ध्येय बदलते हैं, उसी प्रकार समयके अनुसार भी बदलते हैं। बाल तरुण वृद्ध अवस्थाओंके कारण ध्येयोंमें परिवर्तन होता है; ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदिके कारण ध्येय बदलते हैं; ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र आदि वर्णभेदके कारण ध्येयमें भेद होते हैं; राजकीय परिस्थिति बदल जानेके कारण ध्येय बदलते हैं, राजाका अनियंत्रित शासन होनेकी अवस्थामें जो प्रजाजनोंका ध्येय होता है, वही प्रजाशासनमें नहीं होता है; इसीप्रकार राज्यक्रांतिके समय जो होगा वह शांतिक समय नहीं होगा। इसी रीतिसे देश, काल, परिस्थिति, अवस्था, योग्यता आदिके कारण ध्येय और उद्देश्य में परिवर्तन और भेद होता है। भेद बेशक होता रहे, परंतु **कार्य करनेके पूर्व ध्येयका निश्चय होना चाहिये,** इस नियममें कोई परिवर्तन नहीं है। इसलिये हरएकको अपने ध्येयोंका निरीक्षण करना और परिशुद्ध ध्येय अपने सन्मुख रखना आवश्यक है।

पहिलवान मल्लविद्यामें अच्छा निपुण होना चाहता है, स्त्री रसोई पकानेमें कुशल होना चाहती है, विद्यार्थी परीक्षामें उत्तीर्ण होना चाहता

है, राजनीतिज्ञ पुरुष राजकीय स्वतंत्रताकी हलचल चलाता है, वीर पुरुष युद्ध करना चाहता है और योगी समाधि सिद्ध करना चाहता है। यद्यपि ये सब साध्य भिन्न हैं, तथापि उद्योगके पूर्व साध्यका निश्चय होनेपर साधन मार्गमें तन्मयता और सब सिद्धिके लिये पूर्ण विश्वाससे दृढ प्रयत्न करनेकी अत्यंत आवश्यकता सर्वत्र है। तात्पर्य यह कि इन मनोवृत्तियोंकी सर्वत्र समता है।

इस नियमको देखिये और अपने दैनिक जीवनक्रममें अपने जीवनोद्देश्यकी पूर्तिके कार्यमें उसका उपयोग कीजिये। अपने कर्तव्य कौनसे हैं, अपना संबंध किन किन कर्तव्योंसे है, और उनमें अपने ध्येय, साध्य, उद्देश्य अथवा कार्य क्या हैं, इन सबका विचार करके अपने उद्देश्योंका निश्चय कीजिये और तन्मयताके साथ अपने उद्देश्यकी पूर्णता कीजिये। "तन्मय" होनेकी शक्ति अपूर्व है, क्योंकि सब सिद्धि तन्मयतासे ही प्राप्त होती है। तन्मय होनेके विना कोई सिद्धि कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। तन्मयता ही "**ध्यान**" है; और केवल ज्ञानसे तन्मयतारूप ध्यानका जो महत्व है, वह इसीलिये है, देखिये.—

ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ॥ भ. गीता. १२।१२

"ज्ञानसे ध्यानकी विशेषता है।" केवल ज्ञान होनेसे कार्य-भाग नहीं होता है। "आत्मा सबसे शक्तिमान है" यह शाब्दिक ज्ञान किसी एकको हुआ, "वेदमें श्रेष्ठ मानवी धर्म है" यह दूसरेको शाब्दिक ज्ञान हुआ, तो इतनेसे क्या होगा। जबतक वह

तन्मय होकर ध्यान योग द्वारा वहांकी सिद्धि प्राप्त नहीं करेंगे, तबतक केवल शाब्दिक ज्ञानसे कुछ भी नहीं होगा। इसलिये तन्मय होकर प्रयत्न करनेकी अत्यंत आवश्यकता है। इसीसे उद्देशकी प्राप्ति होनी है। कहा है कि—

एतद्ध ब्रह्म दीप्यते यन्मनसा ध्यायति । कौशी. उप. २।१२

" मनसे तन्मय होकर, दत्तचित्त होकर उद्देश्यका ध्यान करनेसे ब्रह्म शक्तिका तेज प्रकाशित होता है।" मनमें इतनी शक्ति है। इसीसे हरएक साध्यकी प्राप्ति होती है। इसलिये उद्देश्यका निश्चय होनेके पश्चात् अपनी मानसिक शक्तिकी एकाग्रता करके तन्मयतासे ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये कि, अपनी सिद्धि शीघ्रही प्राप्त हो जाय। आशा है कि पाठक अपने पुरुषार्थ सिद्ध करनेमें इस सिद्धांतका उपयोग करेंगे और व्यर्थ वाग्जालमें अपना समय खोंगेये नहीं। **वाग्जालसे दूसरोंका पराभव करनेकी अपेक्षा, पुरुषार्थसे अपनी उन्नति करनेका महत्त्व सहस्रों गुणा अधिक है,** परंतु शास्त्रार्थमें प्रवृत्त होनेवालोंके ध्यानमें यह बात नहीं आती। वे समझते हैं कि, हमारा विजय शब्दों द्वारा होनेसे ही सब उन्नति प्राप्त होगी। परंतु यही सबसे बडा भ्रम है। गिरनेका सबसे बडा हेतु यही है। इसलिये प्रियपाठको! ऐसे भ्रममें न फंस जाइये, आप स्वयं अपनी शुद्धता करनेके लिये कटिबद्ध हो जाइये, तभी कुछ बनेगा; नहीं तो नरदेह प्राप्त होकर मिला हुआ योग्य अवसर खोया जायगा, और ऐसे समय पस्ताना होगा कि, जिस समयके बाद पुरुषार्थका अवसर ही नहीं होगा। इसलिये इसका वारंवार विचार कीजिये।

देव का काव्य।

(लेखक—श्री० पं० सूर्यदेव शर्मा विशारद, दयानंद कालेज, कानपुर)

(१)

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥ यजु० ३०।३

(छप्पय छन्द)

हे प्रकाशमय देव, दिव्यगुणदाता प्रभुवर ।
प्राणिमात्रके पिता नियन्ता, नित्य निभाकर ॥
दूर शीघ्र सब करो, प्रभो ! कुविचार हमारे ।
दुर्गुण दुख दुर्व्यसन, दैन्यदल दुर्नय सारे ॥
प्रभु यत्किंचित्कल्याणमय, सुखमय मंगल मूल हो ।
वह सब प्रदान कीजे पिता, जो सुतके अनुकूल हो ॥१॥

(२)

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः
पतिरेक आसीत् ॥
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
य. २५।१०

लोक–प्रकाशक तेजपुंज सबका स्वामी था।
विश्वसृजनसे पूर्व, वही पति था, नामी था॥
उसने ही पश्चात्, किया धारण भूमंडल।
अंतरिक्ष दिवधाम, धरा बनकर आखंडल॥

उस देव प्रजापति पूज्यके, चरणोंमें हम क्या धरें?
शुभश्रद्धा प्रांजलि पुष्पसे, प्रेम पूर्ण पूजा करें॥२॥

(३)

ॐ य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं
यस्य देवाः॥
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
य. २५।१३

स्वामी बलका आत्म प्राण जीवन दाता है।
जिसका शासन श्रेय, देव–गणको त्राता है॥
जिसका छाया अमृत, रूप होकर आता है।
जिसका हा वैमुख्य, मृत्यु बन डस जाता है॥

उस देव प्रजापति पूज्यके, चरणोंमें हम क्या धरें?
शुभ श्रद्धा प्रांजलिपुष्पसे, प्रेमपूर्ण पूजा करें॥३॥

(४)

ॐ यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो
बभूव ॥
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

जो जड जंगम जगत, आदिका सञ्चालक है।
महिमासे परिपूर्ण, एक राजा पालक है ॥
मनुष्यादि सब प्राणि, वर्ग जिसका आसन है।
प्रचलित जिसका सृष्टि, मध्य नियमित शासन है ॥

उस देव प्रजापति पूज्यके; चरणोंमें हम क्या धरें
शुभ श्रद्धा प्रांजलि पुष्पसे, प्रेम पूर्ण पूजा करें ॥४॥

(५)

ॐयेन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तभितं येन नाकः॥
यो अंतरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय० ॥ य. ३२।६

जिसने उच्च द्युलोक, भूमि दृढ निर्मित की है।
जिसने जीवन साध्य, मुक्ति भी समुदित की है ॥
अंतरिक्षके मध्य, स्वयं जो राज रहा है।
हो कर नाना रूप, जगत्में भ्राज रहा है ॥

उस देव प्रजापति पूज्यके चरणोंमें हम क्या धरें।
शुभ श्रद्धा प्रांजलि पुष्पसे, प्रेमपूर्ण पूजा करें ॥५॥

(६)

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥
यजु. २३।६॥

प्रजापते जगदीश ! तुझीसे जगत जन्य है ।
तुझसे ही सब व्याप्त, न तुझसा श्रेष्ठ अन्य है ॥
जब जब जहँ हम लोग, कामना जिसकी करते ।
वह सब हमको मिले, देवगण जिससे तरते ॥
बस यही प्रार्थना है पिता, जगति अभ्युदय दीजिये
सब राज्यादिक धनधान्यका, हमको स्वामी कीजिये॥६॥

(७)

ओ३म् स नो बंधुर्जनिता स विधाता धामानि वेद
भुवनानि विश्वा ॥
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयंत ॥
य. ३२।१०

वही हमारा पिता, जन्मदाता माता है ।
सकल विश्वका वही, पूर्णतासे ज्ञाता है ॥
रक्षक पालक बंधु, विधाता अरु भ्राता है ।
सदा सहायक प्रेमपूर्ण सबका त्राता है ॥
उस लोक तीसरेमें सदा, परब्रह्मकी गोदमें ।
हैं अमृत भोगते देवजन, मुक्त जीव आमोदमें॥७॥

(८)

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव
वयुनानि विद्वान् ॥
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥
य. ४०।१६

हे नायक धन हेतु सुपथसे हमें चलाओ ।
कटुता कंटक कुटिल पापसे सदा बचाओ ॥
हे प्रकाशमय देव ! सकल आचरण हमारे ।
जो कुछ भी गुणकर्म विदित वे तुम पर सारे ॥
अब बहु प्रकारसे आपकी भक्ति हृत्पटल पै धरें !
अति प्रेम पूर्ण प्रभु अन्तमें पुनः नमस्ते हम करें ॥८॥

(९)

ओं अंति संतं न जहाति अंति संतं न पश्यति ॥
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥
अथर्व. १०।८।३२

जब उस प्रभुकी गोद, पुत्र प्यारा जाता है ।
पाता है सुख मोद, प्रेमसे हर्षाता है ॥
नहीं छोडता पिता, उसे फिर मुदमय हो कर ।
किन्तु जीव निकटस्थ पिताको देखे क्यों कर ?

उस "सूर्य देव"* भगवान्‌का वेदकाव्य कमनीय है।
नित मृत्यु जीर्णता रहित जो, रश्मिरूप रमणीय है ९

* " सूर्य " नाम परमात्मा। × वेद मंत्ररूप रश्मियां।



सामाजिक उन्नतिके साधन।

(लेखक—श्री. पं. धर्मदेव, सिद्धान्तालंकार)

(ऋग्वेद १०।१९१)

(१) भक्तोंकी प्रार्थना—

(१)

सं समिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ॥
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ १ ॥

हे प्रभो तुम शक्ति शाली हो बनाते सृष्टिको ।
वेदें सब गाते तुझें हैं कीजिये धन वृष्टिको ॥

(२)

(२) परमेश्वरका उत्तर—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ॥
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २ ॥

प्रेमसे मिल कर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजोंकी भांति तुम कर्तव्यके मानी बनो ॥

(३)

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः
सह चित्तमेषाम् ॥ समानं मंत्रमभि मंत्रये
वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूं बराबर भोग्य पा सब नेक हों॥

(४)

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ॥
समामनस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति ॥ ४ ॥

हों सभीके दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेमसे जिससे बढे सुख संपदा॥

---

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय ।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या । नरमेध । "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन ।" मूल्य १) एक रु. ।

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या । सर्वमेध । "एक ईश्वरकी उपासना ।" मू. ॥) आठ आने । (द्वितीयवार मुद्रित)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या । शांतिकरण । "सच्ची शांतिका सच्चा उपाय ।" मू. ॥) आठ आने । (द्वितीयवार मुद्रित)

[२] देवता-परिचय-ग्रंथ-माला ।

(१) रुद्र देवताका परिचय । मू. ॥) आठ आने ।

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता । मू. ॥=) दस आने ।

(३) ३३ देवताओंका विचार । मू. =) दो आने ।

(४) देवता विचार । मू. ≡) तीन आने ।

[३] योग-साधन-माला ।

(१) संध्योपासना । योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है । मू. १॥) (द्वितीयवार मुद्रित)

(२) संध्याका अनुष्ठान । मू. ॥) आठ आने ।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या । (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) ब्रह्मचर्य । मू. १।) सवा रुपया ।

(५) योग-साधन की तैयारी । मू. १) एक रु. ।

[४] ब्राह्मण-बोध-माला ।

(१) शत-पथ बोधामृत । मू० ।) चार आने ।

प्रकाशक—बापुलाल कु. पटेल, प्रभाशंकर चाळ, सान्ताक्रुझ (मुंबई.)

मुद्रक—चिंतामण सखाराम देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सर्व्हंट्स् ऑफ इंडिया सोसायटीज् बिल्डिंग, सँडहर्स्ट रोड, गिरगांव, मुंबई.

वर्ष ४ अंक ८ श्रावण सं. १९८०
क्रमांक ४४ अगस्त स. १९२३.

ॐ

वैदिक धर्म।

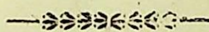
वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-मासिक-पत्र।



देवस्य पश्य काव्यं, न ममार न जीर्यति ॥

अथर्व १९ । ८ । ३२

ईश्वरका काव्य देखो, जो मरा नहीं, और
जो क्षीण भी नहीं हुआ है।



संपादकः—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)



वार्षिक मूल्य ३॥) साढे तीन रु.। विदेशके लिये ४॥) साढे चार रु.।

विषय सूची ।

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र।

वर्ष ४ अंक ८ | श्रावण १९८०; अगस्त १९२३ | क्रमांक ४४.

बुद्धिका विकास।

मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ॥
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ॥
अथर्व. ६ । ४१ । १

"मन, अंतःकरण, बुद्धि, विचार-शक्ति, ज्ञानशक्ति, मति, श्रवणशक्ति और दृष्टि की उन्नतिके लिये हम सब यज्ञ करते हैं"

तात्पर्य इन शक्तियोंका विकास करना चाहिये ॥

वैदिक धर्मका कार्यालय।

स्थान-परिवर्तन।

—:*:—

(१) इस मास से "वैदिक-धर्म" का कार्यालय औंध में लाया है, इस लिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि, वे इस के पश्चात् सब प्रकारका पत्र व्यवहार "मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध" के पतेसे ही करें।

(२) इस समय तक "वैदिक-धर्म" का सब प्रकारका प्रबंध श्री. स. बापुलाल कुबेरदासजी पटेल, शांताकुस, मुंबई के आधीन था। स० बापुलालजी को उत्तम प्रबंध रखने में जो कष्ट हुए हैं, उनकी प्रतिकृति केवल शब्दोंसे नहीं हो सकती। यदि "वैदिक धर्म" का प्रबंध उनके निरीक्षण में न होता तो इस मासिक की इतनी उन्नति होनी अशक्य थी। इस लिये इतने अतुल परिश्रम के लिये सब "स्वाध्याय मंडल" ही स. बापुलालजी का हार्दिक धन्यवाद करता है।

(३) स्थान परिवर्तन के कारण तथा अन्य प्रबंध समय के अंदर न होने के हेतुसे यह अंक ठीक प्रकार तैय्यार न हो सका। इस लिये हम पाठकोंसे क्षमाकी प्रार्थना करते हैं। अगले मास से यथोचित प्रबंध होगा और ठीक समयपर अंक प्रकाशित हो जायगा।

(४) इस मासिक के आकार में तथा अन्य विषयों में जो उन्नति करनी है, उसकी रूप रेखा अगले अंक में पाठकोंके सन्मुख रखेंगे।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

उमा महेश्वर।

"वैदिक-मेगजिन" के "क्रु-टीक" के लेख का उत्तर।

——:-०-:-❀-:-०-:——

वैदिक–मेगजिन के आषाढके अंकमें "क्रु–टीक" के केनोपनिषद संबंधी विचार प्रकट हुए हैं। इस लेखके अंतमें उत्तर के लिये आव्हान करनेके कारण अतिसंक्षेपसे उनकी शंकाओंका उत्तर देता हूं:—

(१) "क्रु–टीक" अपनी टीका करते हुए प्रारंभमें ही लिखते हैं कि, "वैदिक–धर्म" के संपादकनें जो प्रतिटीका की है, उसमें वैदिक मेगजिन का नामनिर्देश न करते हुए ही लेख लिखा है। यह ठीक है। नामनिर्देश इस लिये नहीं किया था कि, किसी व्यक्तिका खंडन मंडन करनेकी इच्छा नहीं थी, परंतु लेख में मुख्य तत्त्वका विचार ही करना था। इस लिये नाम न लिखते हुए उत्तर दिया था। वैयक्तिक ईर्षाद्वेषसे लेख लिखनेकी अपेक्षा केवल तत्वज्ञानकी दृष्टिसेही लेख लिखनेका व्रत, जहांतक होसके वहांतक, पालन करनेकी इच्छा है।

(२) "क्रु–टीक" टीकाके अंतमें लिखते हैं कि "अपनी टीका के प्रभावसे यदि उस (वै. धर्म के संपादक)को उच सत्यका अंश प्राप्त हुआ तो उसको उचित है कि, वह उस

सत्यका ग्रहण करे, और उसके अनुसार अपने विचारोंमें परिवर्तन करे !!! " इसके उत्तरमें निवेदन है कि " कु-टीक " के लेखसे कुछ सत्य प्राप्त होगा, ऐसी आशा मन में रखकर उनका लेख मननपूर्वक चार वार पढलिया, परंतु सत्यकी अपेक्षा उसमें " अ-सत्य " ही सर्वत्र दिखाई दिया । इसलिये इस समय तो कम से कम केनोपनिषद के विषयमें मतपरिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं रही । तथापि यदि किसी समय अधिक सत्य प्राप्त हुआ और किसी मतका परिवर्तन करनेकी आवश्यकता हुई, तो उसी समय सत्यकाही अवलंबन करनेंके लिये इस लेख का लेखक सिद्ध है, इतनाही यहां स्पष्ट कह देता हूं । " कु-टीक " के लेख की सब शंकाओंका उत्तर इस लेखमें देना है, उसको पढकर पाठक भी स्वतंत्रता पूर्वक विचार करें कि, सत्य किस ओर है ।

(३) " कु-टीक " का कहना है " योग और वाङ्मय भिन्न है । " यह कहना आजकलके लेखों और ग्रंथोंके विषयमें ठीक है, परंतु वैदिकसारस्वत के विषयमें बिलकुल असत्य है क्योंकि वैदिक वाङ्मयके जो कथन हैं, वे योगसेही प्रत्यक्ष अनुभव होने हैं । इस विषयमें सबका एक मत होनेसे अधिक लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं है । वेद और उपनिषद में जो अध्यात्मविद्या है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव यदि किसी रीतिसे होना है, तो योगसे ही होगा । केवल शब्द शास्त्रसे किंवा केवल तर्कसे जो ज्ञान होता है वह " अ-प्रत्यक्ष " है, और प्रत्यक्ष ज्ञान योगसे ही होना है ।

(४) इसके पश्चात् "कृ-टीक" कुछ शंकायें पूछते हैं, उनका उत्तर देनेसे सब विषय स्पष्ट होनेवाला है, इस लिये उनका ही विचार यहां करता हूं। —

"कृ-टीक" की शंकायें।

[क] अग्नि वाचाका सूचक होनेमें प्रमाण क्या है ? क्या वाणी जलाती है ?

[ख] वायु प्राणका सूचक होने में प्रमाण क्या है ?

[ग] चक्षु का सूचक विश्वव्यापक देव कौन है ?

[घ] श्रोत्र का सूचक विश्वव्यापक देव कौन है ?

[ङ] मन इंद्रियपति होनेमें क्या प्रमाण है ?

ये प्रश्न पूछे गये हैं, उनका उत्तर ठीक प्रकार मिला तो सब आक्षेपोंका समाधान ही होगा, इसलिये इनका ही सबसे प्रथम विचार करता हूं। शरीरमें जो इंद्रियां हैं, उनका बाह्य देवताओंसे निश्चित संबंध है, यह संबंध निम्न वाक्योंसे स्पष्ट हो सकता है—

ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन्, सुकृतं, बतेति, पुरुषो वाव सुकृतम् ॥ ता अब्र-वीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति ॥ ३ ॥ अग्नि र्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्, आदित्यश्चक्षु र्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्, दिशः श्रोत्रं भूत्वा

कर्णौ प्राविशन्, ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्, चंद्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्, मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशन्, आपो रेतो भूत्वा शिस्नं प्राविशन् ॥ ४ ॥ ऐ. उ. २

" उन देवता ओंके पास पुरुष का शरीर लाया गया, तब उन्होंनें कहा कि यह ठीक है, पुरुष अर्थात् मनुष्य शरीर ठीक बना है। पश्चात् देवताओंने कहा कि, अपने अपने स्थान पर बैठ जाओ ॥ अग्नि वाणी का रूप धारण करके मुखमें प्रविष्ट हुआ, वायु प्राण बन कर नासिका में घुस गया, आदित्य चक्षु बनकर आंखोंमें आबसा, दिशायें श्रोत्र बन कर कानोंमें प्रविष्ट हुई, ओषधि वनस्पतियां बाल बनकर चमडीमें रहने लगी, चंद्र मन बनकर हृदयमें रहा, मृत्यु अपान बनकर नाभिमें घुस गया, जल रेत बनकर शिस्नमें रहा ॥ "

इस ऐतरेय उपनिषदके वचन में हमारी इंद्रियशक्तियोंका बाह्य शक्तियोंके साथ संबंध उत्तम रीतिसे वर्णन किया है। यह देवताओंके अंशावतार का वर्णन है। इस मानवी शरीर की कर्मभूमिमें पुरुषार्थ करने केलिये सब देवोंने अपने अपने अंश भेज दिये हैं और उपनिषदोंकी अध्यात्म विद्याका यह एक मुख्य सिद्धांत है इसी बातके विकासका वर्णन उसी उपनिषद् में देखिये—

तस्य मुखं निरभिद्यत, मुखाद्वाक्, वाचोऽग्निः। नासिके निरभिद्येतां, नासिकाभ्यां प्राणः, प्राणाद्वायुः

आक्षिणी निरभिद्येतां, अक्षिभ्यां चक्षुः, चक्षुष आदित्यः।
कर्णौ निरभिद्येतां, कर्णाभ्यां श्रोत्रं, श्रोत्राद्दिशः।
त्वङ् निरभिद्यत, त्वचो लोमानि, लोमभ्य ओषधि-
वनस्पतयः।
हृदयं निरभिद्यत, हृदयान्मनो, मनसश्चंद्रमाः।
नाभिर्निरभिद्यत, नाभ्या अपानो, अपानान्मृत्युः।
शिस्नं निरभिद्यत, शिस्नाद्रेतो, रेतस आपः॥ ४॥
ऐतरेय उ. १

" उसका मुख बना, मुखसे वाणी और वाणीसे अग्नि हुआ है; नासिका बनी, नासिकासे प्राण और प्राणसे वायु हुआ है; आंख बनें आंखसे चक्षु और चक्षुसे सूर्य बना है; कान बने, कानसे श्रोत्र और श्रोत्रसे दिशायें हुई हैं; त्वचा हुई, त्वचासे बाल और बालोंसे ओषधियां और वनस्पतियां बनीं हैं; हृदय बना, हृदयसे मन और मनसे चंद्रमा हुआ है; नाभि बन गई, नाभीसे अपान और अपानसे मृत्यु हुआ है; शिस्न बना, शिस्नसे रेत और रेत से जल बना है॥ "

उत्क्रमण और अपक्रमण ये दो दृष्टियां होतीं हैं। इन दोनों दृष्टियोंसे इस उपनिषद्नें शरीर स्थानीय इंद्रियोंसे विश्वस्थानीय देवताओंका संबंध स्पष्ट शब्दोंमें वर्णन किया है। इसका विचार किया जाय तो "**क्रु-टीक**" के सब प्रश्नोंका उत्तर स्वयं आता है। "**क्रु-टीक**" लिखते हैं कि, " अग्निका संबंध चक्षुसे होना चाहिये था।" परंतु उपनिषद् का कथन है कि," अग्निका वाणीसे

संबंध है । " अब " कु-टीक " का मानें या उपनिषद् का मानें? " कु-टीक " लिखते हैं कि शरीर स्थानीय इंद्रियें का विश्वस्थानीय देवताओंसे संबंध वर्णन करके मंत्रोंका स्पष्टीकरण करनेका " नया मार्ग " मैनें चलाया है !!! इस कथन का जितना आश्चर्य किया जाय उतना थोडा है, क्यों कि यह मार्ग नया नहीं है। यह मार्ग ब्राह्मणों और उपनिषदोंमें ऋषिमुनियोंनें सेंकडों स्थानोंपर बताया है, उसीको देखकर मैनें उसीको सुगम शब्दोंमें अपनी पुस्तकोंमें बताया है। उक्त ऐतरेय उपनिषद् के वचनसे निम्न संबंध स्पष्ट हो जाता है—

व्यक्तीमें इंद्रिय शक्ति	विश्वमें देवताकी शक्ति
वाक्	अग्नि
प्राण	वायु
चक्षु	सूर्य
श्रोत्र	दिशा
लोम	औषधि
मन	चंद्रमा
अपान	मृत्यु
रेत	आप

यही संबंध मैनें अपने केन उपनिषद् में बताया है। " कु-टीक " पूछते हैं कि, " जैसा अग्नि जलाता है उस प्रकार वाणी

कहां जलाती है ? " " कृ—टीक " को चाहिये कि यह प्रश्न मुझे न पूछते हुए उपनिषद् ग्रंथोंके लेखकोंसे पूछें। ऋषिमुनी ही इसका उत्तर देंगे। परंतु उनके ग्रंथ पढनेका कष्ट उठाना आवश्यक है। अन्यथा उनका उत्तर भी सुनना किसने है ?

यहां " कृ—टीक " के सब प्रश्नोंका उत्तर उक्त उपनिषद् के वचनसे दिया गया है। तथा यही बात सब उपनिषदोंमें है, उदाहरण के लिये एक दो स्थानके वचन देता हूं। वाणी के विषयमें अन्य उपनिषदोंके वचन देखिये—

(१) सा वाक् सो अग्निः ॥ छां. ३।१३।३

(२) वाचि तृप्यंत्यां अग्निस्तृप्यति ॥ छां. ५।२१।२

(३) तेजो मयी वाक् ॥छां० ६।५।४

(४) अग्नि वागप्येति ॥ बृ० ३।२।१३

(५) सोऽग्निः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति, वाचीति॥ बृ. ३।९।२४

" (१) वही वाणी वही अग्नि है, (२) वाणीकी तृप्ति होनेसे अग्नि तृप्त होता है, (३) तेजोमय वाणी है, (४) अग्नि को वाणी पहुचती है, (५) वह अग्नि किसमें प्रतिष्ठित होता है? वाणीमें। "

ये उपनिषद् के वचन स्पष्ट बता रहे हैं कि, वाणीका अग्निके साथ संबंध है। अब " कृ—टीक " जो पूछते हैं कि " अग्निके समान वाणी कहां जलाती है ? " इस प्रश्न के लिए स्थान कहां

है ? " कृ–टीक " स्वयं मानते हैं कि " अग्नि का रूप चक्षु मानना योग्य है ? " "कृ–टीक " की स्वीकृति क्षणमात्र मान भी ली जाय तो फिर भी वही प्रश्न हो सकता है कि, " यदि अग्नि-का रूप चक्षु माना जाय, तो क्या चक्षु अग्नि के समान जलाता है ?" पाठक यहां विचार करें कि, सब पदार्थों में अग्नि है, परंतु वह अपने प्रमाणसे अधिक होने तक जलाता नहीं, इसी प्रकार वाणीके मूल स्थान में विशेष प्रकारकी अग्नि शक्ति होगी, यह कोई आवश्यकता नहीं है कि, वह प्रत्यक्ष जलानेका कार्य करे। यदि जलानेका अर्थ आलंकारिक माना जाय, तो " कृ–टीक "के शब्द सत्य अर्थ को किस प्रकार जला रहे हैं, इसको प्रत्यक्षतया पाठक देख सकते हैं! बुरे भावसे प्रयुक्त किये हुए शब्दोंसे जो द्वेषाग्नि इस जगत् में फैल रहा है, वह कितने अंतःकरणोंको जला रहा है, यह देखने योग्य है। शब्द आग्नेयी शक्ति होनेसे ही उस का संयम करके ज्ञानी लोग " मुनि " बने थे। ये सब लाक्षणिक बातें छोड कर संस्कृत सारस्वतमें " वि–दग्ध " शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है, (१) जला हुआ, और [२] ज्ञानी। " वि-दग्ध " शब्दका धात्वर्थ " विशेष रीतिसे जला हुआ [विशेषण दग्धः] है। इस अर्थ का यह " शब्द " ज्ञानी, विशेष शिक्षित, आलिम और फाजिल " के लिये वर्ता जाता है! इस से भी वाणीकी दाहकताकी अल्पसी सूचना मिल सकती है। तथापि ये सब बातें छोड भी दीं जाय, तो उपनिषदोंके वचन इस विषयमें स्पष्ट हैं।

तात्पर्य वैयक्तिक वाणीका विश्वव्यापक रूप अग्नि है, यह बात यहां स्पष्ट हो गई है । अब प्राण के विषयमें देखिये—

[१] वातः प्राणः ॥बृ. १।१।१

[२] योऽ यं प्राणः स वायुः ॥बृ. ३ । १ । ५

[३] वातं प्राणः अप्येति ॥ बृ. ३।२।१३

[४] प्राणो वै वायुः ॥ मैत्री. उ. ६।३३

[५] वायुः प्राणः ॥ मुंड. उ. २।१।८

[६] प्राणो वायुः प्रकीर्तितः ॥ अमृत. उ. ३६

[१] वायु प्राण है, [२] जो प्राण है वही वायु है, [३] वायुको प्राण पहुंचता है, [४] प्राण निश्चयसे वायु है, (५) वायु ही प्राण है , (६) प्राण वायुको कहते हैं ।

इत्यादि उपनिषद्वचन स्पष्टतासे कह रहे हैं कि जो शरीरमें प्राण है वह बाह्य जगत् में वायु है । तात्पर्य यह है कि, जो "कृ–टीक" का कहना था कि यह "नया मार्ग" मैनें निकाला है, सो सोलह आने गलत है; वास्तविक बात यह है कि, यही ऋषि मुनियोंका मार्ग था, जो मैनें सुगम शब्दोंसे अपनी पुस्तकोंमें बताया है। अधिक अथवा नवीन मैनें कुछ भी किया नहीं है, तथापि " कृ-टीक " जैसे विद्वान सज्जन इसी प्राचीन व्यवस्थाको नवीन क्यों समझते हैं, यह बात मेरी समझमें नहीं आती !!! वाणी और अग्निके संबंधके विषयमें शतपथमें भी देखिये क्या कहा है—

[१] वाग्वा अस्य [अग्नेः] स्वो महिमा ॥ श० ब्रा. २।२।४।४

[२] वागेव अग्निः ॥श. ब्रा. ३।२।२।१३

[३] वागेवाग्निः स नरः ॥श. ब्रा. ९।३।१।४

[४] वागेवेयं योऽयमग्निश्चितः ॥ श. ब्रा. १०।१।१।९

[५] कमग्निं वेत्थेति? वाचमिति ।

यस्तमग्निं वेद, किं स भवतीति? वाग्मी भवतीति॥ श. ब्रा. ११।३।३।१

[६] या वै सा वागग्निरेव सः ॥ श. ब्रा. १०।३।३।७

(१) वाणी इस (अग्नि) का अपना ही महिमा है, (२) वाणी ही अग्नि है, (३) वाणी अग्नि है और वह नर है, (४) यह वाणी ही प्रदीप्त अग्नि है, (५) किस अग्निको आप जानते हैं? वाणीको । जो इसको जानता है वह कैसा होता है ? वक्ता होता है । (६) जो वाणी है वह अग्नि ही है ।

क्या शतपथ के इन वचनोंसे वाणीका अग्निसे संबंध निश्चित नहीं हुआ है, यदि नहीं हुआ हैं तो निम्न वाक्य और देखिये-

अग्नि वै होताऽधि दैवतं वागध्यात्मम् ॥ श. ब्रा. १२।१।१।४

"जो आधिदैवत में अग्नि है वही अध्यात्म में वाचा है ।" क्या यह वाक्य स्पष्ट नहीं करता कि, जो मैंनें केनोपनिषद् में लिखा है ? इन सब वाक्यों का विचार करके ही अग्नि वायु के क्रमशः संबंध वाणी और प्राण से मैंनें लिखे हैं, तथापि इसको " कृ—टीक "

नया मार्ग कहते हैं ॥ अस्तु ॥ इन प्रमाणोंसे स्पष्ट हुआ है कि, " कु-टीक " के आक्षेप प्रमाण रहित हैं। इस लिये उनके विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। अब इन प्रमाणोंकी एकत्र संगति लगाकर केनोपनिषद्‌के दोनों खंडोंकी संगति से देवताओंका अध्यात्मशक्तियों के साथ संबंध निम्न प्रकार निश्चित होताहै-

केन उपनिषद।

प्रथम खंडके पूर्वार्धमें इंद्रियगण	प्रथम खंडके उत्तरार्ध में इंद्रियगण	तृतीय खंडपूर्वार्ध में देवता गण
१ मन	२ मन	३ इंद्र, विद्युत्
२ प्राण	५ प्राण	२ वायु
३ वाणी	१ वाणी	१ अग्नि
४ चक्षु	३ चक्षु	(सूर्य)
५ श्रोत्र	४ श्रोत्र	(दिशायें)
(कुंडलिनी)		उमा
(आत्मा)		यक्ष
(ब्रह्म)		ब्रह्म

केनोपनिषद् में जो देवतायें अनुक्त हैं उनको इस कोष्ठक में ( ) इस कंस में रखा है।

प्रथम खंडके पूर्वार्ध और उत्तरार्धमें देवताओंके क्रममें भेद हैं,

उसकी सूचना करनेके लिये मैंनें उसी क्रमसे क्रमांक इस कोष्टकमें रखे हैं । पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में अध्यात्मके इंद्रियगण पांचही कहे हैं । " कु-- टीक " कहते हैं कि, अधिदैवत में केवल तीन ही देवतायें क्यों कहीं हैं? चक्षु श्रोत्रके सूचक अधिदैवत में कौनसे देव दैं ? चक्षु और श्रोत्र के सूचक अधिदैवत में देव सूर्य और दिक् है, इस विषयमें ऐतरेय उपानिषद् का प्रमाण इससे पूर्व दियाही है, तथापि शंकाकी पूर्ण निवृत्ति होने के लिये अन्य उपनिषदोंके भी प्रमाण नीचे देता हूं—

[१] चक्षुषि तृप्यंत्यामादित्यस्तृप्याति ॥ छां.उ. ५।१९।१

[२] सूर्यश्चक्षुः ॥ बृ. उ. १।१।१

[३] चक्षुः सोऽसावादित्यः ॥ बृ. ३।१।४

[४] चक्षुरादित्यं [अप्येति] ॥ बृ. ३।२।१३

[१] चक्षु तृप्त होनेपर आदित्य तृप्त होता है, [२] सूर्य चक्षु है,[३] जो चक्षु है, वह आदित्य है, [४] चक्षु आदित्य में पंहुचता है॥ अब श्रोत्र के विषयमें देखिये---

[१] दिशः श्रोत्रं [अप्येति] ॥ बृ. उ. ३।२।१३

[२] दिशो वै श्रोत्रं ॥ बृ.४।१।५

[३] दिशः श्रोत्रे ॥ मुंड. २।१।४

इन में श्रोत्र का संबंध दिशाओंसे पूर्ववत् ही वर्णन किया है। इसका विचार करनेसे स्पष्ट होजाता है कि, केनोपनिषद्के तृतीय

खंडमें " सूर्य और दिक् " इन दो देवता ओंके नाम आ जाते, तो " क्रु--टीक " को कोई भ्रम न होता। ये दो नाम आ जाते तो "अग्नि, वायु, इंद्र " के स्थानमें " दिक्, सूर्य, अग्नि, वायु, इंद्र" ये देव यक्षके सन्मुख उपस्थित हुए, परंतु इंद्र के सिवाय अन्य किसी देवताको यक्षका ज्ञान नहीं हुआ, अकेला इंद्र ही उमा देवी के पास पहुंचनेके बाद ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त कर सका। इत्यादि वर्णन हो जाता। इतना वर्णन बढ जाता तो भी कोई हानि नहीं थी, और न होने परभी कोई घात नहीं हुआ है। क्यों कि शारीरिक इंद्रिय शक्तियोंका देवताओं के साथ संबंध वैदिक वाङ्मयमें निश्चित है, इसलिये किसी स्थानपर वह कहा या न कहा, तो उमसे कोई हानि लाभ नहीं होता। ऋषियोंके वचन सूचनारूप होते हैं, और जितना आवश्यक है, उतनाही कहा जाता है। इसालिये " अग्नि-वायु--इंद्र " अर्थात् " वाक्--प्राण--मन " के विषयमें ही विशेष कर कहा है। चक्षु और श्रोत्र ये इंद्रिय साधन--समयमें पहिले ही छूट जाते हैं, इसलिये उनका वर्णन तृतीय खंड में करनेकी आवश्यकता ही वास्तव में रही नहीं थी। देखिये---

(१) उपासना करनेके लिये पहिले आंख बंद करके ही बैठते हैं, इस लिये आंख और सूर्य का कार्य बंद होजाता है। (२) कान कुच देर तक शब्द सुनता है, परंतु वाणीसे जप चलते चलते एकाग्रता होनेपर श्रवण शक्ति भी लीन होती है। (३) इस प्रकार चक्षु और श्रोत्रेके कार्य पहिले ही बंद पडते हैं, इसलिये उनका वर्णन केनोपनिषदके तृतीय खंड में करनेकी

आवश्यकता ही नहीं है। अपनी उपासनाके समय यदि "कृ-टीक" अनुभव लेंगे, तो उनको भी यही अनुभव होगा। इसी कारण इनके वर्णन की कोई आवश्यकता ही नहीं है, और विशेषतः आत्माकी खोज करनेके लिये जिस समय अंतर्मुख होना होता है, उस समय इनका कोई कार्य ही नहीं है।

(४) उक्त प्रकार चक्षु और श्रोत्र बंद होनेपर; वाणीसे मंद जप होता है, परंतु वह भी एकाग्रताकी तीव्रता होनेपर बंद होता है, (५) परंतु प्राण चलता रहता है। पश्चात् जैसी मनकी स्तब्धता बढती है वैसी केवल कुंभक की सिद्धि होकर प्राण भी स्तब्ध होता है, (६) इसके पश्चात् केवल मनके जो आंतरिक अनुभव होंगे, होते हैं।

इसी अनुभव का वर्णन बाह्य सृष्टिके देवताओंके मिषसे केन उपनिषद के तृतीय खंडमें (अग्नि) वाचा (वायु) प्राण, (इंद्र) मन के मिषसे हुआ है। अब यह बात पाठकोंको स्पष्ट हुई होगी की, केनोपनिषद् के प्रथम खंड का तृतीय खंडसे कैसा संबंध है और उसका अनुभव अपने अंदर किस रीतिसे होना है।

अध्यात्म, अधिभूत, और आधिदैवत का परस्पर निकट संबंध है। यदि " कृ–टीक " इस संबंधका विचार करेंगे, तो मुझे पूर्ण आशा है कि उनकी लेखनीसे ऐसे लेख कभी प्रसिध्द नहीं होंगे। अब एक बात रही है वह यह है कि इंद्र देवता का संबंधी शरीर में आत्मा है वा मन है। इस विषयमें जो विवाद हो सकता है, मैनें केन उपनिषद् में किया है। इंद्र शब्द के अनेक अर्थ हैं–पर-

मात्मा, जीवात्मा, राजा, मालिक, विद्युत् आदि अनंत अर्थ प्रसिद्ध हैं। ये सब अर्थ यहां केनोपनिषद् में अभीष्ट नहीं हैं। प्रकरण-वशात् आत्मा अथवा मन ये दोही अर्थ यहां होना संभव है। परंतु यदि केनोपनिषद् में प्रथम खंडका तृतीय खंडके साथ संबंध निश्चित है, और प्रथम खंडमें अध्यात्म शक्तियोंका वर्णन है, तो इंद्रका संबंध मनसे, कमसे कम इस उपनिषद् में तो, निःसंदेहही है। देखिये——

(तृतीयखंड) अधिदैवत	अध्यात्म (प्रथम खंड)
इंद्र	मन
वायु	प्राण
अग्नि	वाक्

दोनों खंडोंका संबंध पूर्व स्थलमें निश्चित किया है, इस लिये प्रथम खंडोक्त मन का विशाल प्रतिनिधि देवताओंमें इंद्र ही है। क्यों कि प्रथम खंडमें मनके प्रेरक आत्माकी पृच्छा की है। (इंद्र) मनके प्रेरक आत्माको जाननेके लिये ही यह उपनिषद् है, (इंद्र) मनके द्वारा ही उसके अंतर्यामी प्रेरक को जाना जा सकता है। परंतु जागृतिका और सुषुप्तिका मन जातिकी दृष्टिसे एक होनेपर भी, योग्यता की दृष्टिसे भिन्न हैं; यह बात केनोपनिषद् में यक्ष के व्यक्तरूपका दर्शन करनेवाला इंद्र और पश्चात् यक्षके अव्यक्त स्वरूपके दर्शन का अभिलाषी इंद्र, इन दोनोंके वर्णनसे बतादी है। केनोपनिषद् के तृतीय खंडमें—

अधिदैवतमें	अध्यात्ममें
विद्युत्	मन

विद्युत् और मनका संबंध स्पष्ट कहा है। इंद्र विद्युत् होनेमें किसी को शंका ही नहीं है, और मनके वैद्युत् होनेमें भी किसीको शंका नहीं है। यदि इंद्र विद्युत् है और वैद्युत मन है तो इंद्र के मन होनेमें कोई शंका ही नहीं हो सकती। इस प्रकार केनोपनिषद् में ही मन और इंद्रका संबंध बताया है, इसलिये इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। अन्यत्र मनका संबंध चंद्रमा के साथ जोडा है, जिसको मैंनें केनोपनिषद् की भूमिकामें लिखा किया है, और बताया है कि इसीसे मनके दो विभागोंकी कल्पना सिद्ध होती है। इंद्र मन होनेके विषयमें शतपथमें भी कहा है—

मन एव इंद्रः ॥ श. ब्रा. १२।९।१।१३

"मन ही इंद्र है।" इंद्रके मन होनेके विषयमें अब क्या शंका हो सकती है? चंद्रमा और विद्युत् मध्यस्थानीय देवतायें हैं और उनका शरीर में स्थान हृदय है। मानवी मनमें चंद्र और विद्युत दोनोंके अंश हैं एक चंद्रमा का अंश जागृतिमें कार्य करता है और वैद्युत् मन सुषुप्ति अथवा समाधिमें जागता है। यद्यादि इस विषय में मुझे अबतक निश्चित ज्ञान नहीं है, तथापि उपनिषदोंकी और वेदमंत्रोंकी संगति देखनेसे उक्त बातका पता लगता है, यह बात इसी प्रकार मैंनें भूमिकामें लिखी है। इसके विषयमें निश्चित ज्ञान वाले पुरुष अधिक स्पष्ट लिखेंगे तो, संशोधकों पर उनके

बडे उपकार हो सकते हैं।

इसके पश्चात् " क्रु–टकि " का कहना है कि इंद्र आत्माही है और मन नहीं हैं। इंद्र के मन होनेके विषय में केनोपनिषद् का और शतपथ का वचन उपर दियाही है, इसलिये अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। इसके अनंतर " क्रु–टीक " लिखते हैं कि, मन इंद्रियोंका राजा होनेके विषयमें कोई प्रमाण ही नहीं है। मनके आधीन संपूर्ण इंद्रियां हैं। इसीलिये मनका संयम करनेसे सब इंद्रियां स्वाधीन हो जातीं है। इसीलिये अन्य इंद्रियोंसें मनको पृथक् गिनते हैं। देखिये—

इंद्रियेभ्यः परं मनः ॥ कठ. उ. ६।७

गीता. ३।४२

इंद्रियोंसे मन श्रेष्ठ है। इस मनमें सब इंद्रियोंकी शक्तियां इकठ्ठीं होती हैं। तथा—

तत्सर्वं परे देवे मनसि एकी भवति ॥ प्र. उ. ४।२

मनो ह वाव यजमानः ॥ प्र. उ. ४।४

" श्रेष्ठ देव अर्थात् मनमें सब इकठ्ठा होता है। (इस यज्ञमें) मनही यजमान है।" उपनिषदोंके वचन और अपना अनुभव भी कहता है कि, सब इंद्रियोंका राजा मन ही है। आत्मा सबका सम्राट् हाने में किसीको शंकाही नहीं है, परंतु उसके नीचे मनके इंद्रियाधिपति होनेमें भी कोई संदेह नहीं है। इसलिये यह शंका भी व्यर्थहै।

अब " कू-टीक " की एक शंका ऐसी है कि , श्रीमच्छंकराचार्य जीके भाष्य में जो " हिमवान् की पुत्री उमा " होनेका वर्णन है उसका वह अर्थ नहीं है कि , जो मैंनें अपने उपनिषद्विवरण में लिखा है । श्रीशंकराचार्य जी का आशय वही है कि , जो उस पुराणकी कथा का आशय है। मूल प्रश्न यह है कि, "उमामहेश्वर" की पौराणिक कथाका आध्यात्मिक भाव क्या है ? और यदि अग्नि वायु इंद्र के प्रतिनिधि वाणी प्राण और मन शरीमें हैं , तो उमा देवीका प्रतिनिधि शरीरमें कौन है , तथा यक्ष और ब्रह्म के प्रतिनिधिं कौन हैं ? परमात्मा का अमृत पुत्र जवात्मा है , वही संबंध ब्रह्म अथवा यक्ष के साथ जीवात्मा का है। अब एक ही उमा देवी रहती है, जिसका शरीरमें अंशावतार देखना है ।

उमा महेश्वर , उमा शंकर अदि शब्दोंमें शंकर शब्द आत्मवाचक होनेमें किसीको शंका नहीं है । " प्रकृति पुरुष " श ःदके समानही उक्त शब्द का भाव है । यदि शंकर शब्द आत्म शक्तीका बोधक है, तो उमा शद्ब निःसंदेह प्राकृतिक शक्तिका बोधक होगा । शरीरमें मूल आधार शक्ति कुंडालिनी ही है, इस विषयमें सबका एकमत है, इस लिये वही शक्ति उमा शब्दसे व्यक्त होती है । " कू-टीक" कीं शंका यहां ऐसी है कि, प्रकाती की शक्ति उपदेश वैसी कर सकती है? क्यों कि उसमें ज्ञान नहीं है । इस लिये वह कहते हैं कि, उमा " विद्या किंवा बुद्धि " है । परंतु बुद्धि भी क्या है? " मन बुद्धि चित्त अहकंार" यह अंतःकरण चतुष्टय आत्माके साथ रहता है, वह सब प्राकृतिक ही है । याद " कू-टीक " के मतसे

प्राकृतिक बुद्धि आत्माको उपदेश कर सकती है, तो प्राकृतिक मायाशक्ति इंद्र को क्यों नहीं समझा सकती? मन प्राकृतिक होते हुए भी ज्ञान लेता और देता है। प्राकृतिक होने के कारण यदि ज्ञानोपदेश अशक्य है, तो मन और बुद्धिमें भी वही कठिनता है। इसलिये यह कोई ठीक युक्ति नहीं है। इस लेख में भी कुंडलिनी को "कु—टीक" एक नसनाडी ही कहते हैं!!! यह उनकी धन्यताका ही द्योतक है!

यदि "कुटीक" श्री.आपटे अथव मोनियर वुइलियम के कोशोंमें भी देखने की कृपा करेंगे, तो "कुंडलिनी" शब्दका अर्थ "दुर्गा और शक्ति" उनको दिखाई देगा। दुर्गा और शक्ति वही है कि जो उमा और पार्वती नामसे प्रसिद्ध है। "दुर्गा, शक्ति, उमा पार्वती, हैमवती, ईश्वरी" ये शब्द परस्पर पर्याय हैं और यदि "कुंडलिनी" शब्द दुर्गा और शक्ति का वाचक कोशोंमें भी है, तो वही शब्द उमा पार्वती और हैमवती का वाचक होनेमें कोई शंका नहीं हो सकती। आग्रह से कोई माने या न माने, यह बात दूसरी है, परंतु प्रमाण होने पर भी न मानना यह बात कौनसी है?

उमामहेश्वर, पार्वतीशंकर आदि शब्दोंसे जो कथाएं बनी हैं, वह जिस आध्यात्मिक घटनाकी द्योतक हैं, उनका इस प्रकार स्पष्टीकरण हो सकता है। अब प्रश्न है कि, "पर्वत" शब्दसे शरीरके पृष्ठ वंशका ही ग्रहण होता है वा नहीं।

पर्ववान् पर्वतः॥ निरु. १।२०

" जिसमें पर्व होते हैं उसको पर्वत कहते हैं। " पृष्ठवंशमें अनेक पर्व हैं इसी लिये उसको पर्वत कहते हैं। सब पर्वतोंमें यह पर्वत इस लिये श्रेष्ठ है कि, इसके ही शिखरपर—कैलासपर—उमामहेश्वर को जाकर निवास करना है। उमा प्रारंभमें इस पर्वत के मूलमें तप करती रहती है, जिस समय शिवजी उसका पाणिग्रहण करते हैं, तत्पश्चात् दोनों इस पर्वतपर चढने लगते हैं, और अंतमें इस पृष्ठवंशके परमोच्च शिखर पर चढ कर विराजमान होते हैं। यह वर्णन केवल काल्पनिक नहीं है। कथामें वर्णन होनेसे उसका मूल रूप भी बदला नहीं है। यही पर्वत है, और गंगा यमुना सरस्वती आदि नदियां भी इसीके पाससे चलतीं हैं। योगमें इनहीका नाम इडा पिंगला और सुषुम्ना है। श्री० स्वामिजी कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें ग्रंथ प्रामाण्यप्रकरणमें "गंगा यमुना" का विषय स्पष्ट हुआ है, उसको यदि " क्रु—टीक " देखेंगे, तो उनको पता लगेगा कि, गंगा यमुना इस शरीरमें इडा पिंगला सुषुम्ना ही हैं। यदि गंगा नदी शरीरमें है, तो "हिमालय पर्वत" भी होना ही चाहिये, क्यों कि हिमालयसे ही गंगा नदी का उगम है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकाके मननसे ही ज्ञात हो सकता है कि गंगा नदीका सहचारी पर्वतराज हिमालय शरीरमें पृष्ठवंश ही है। इतने प्रमाणोंसे " पर्वत " का " पृष्ठवंश " होना अथवा हिमवान् पर्वत का पृष्ठवंश होना सिद्ध हो सकता है। पृच्छक के प्रश्न के लिये अत्यंत स्पष्ट बात को भी इसप्रकार दूर दूरके प्रमाण देकर लिखना

पडा है ! नहीं तो यह बात इतनी स्पष्ट है कि, इसकी सिद्धता कर-नेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। परंतु " कृ-टीक " की शंकायें प्रकट होनेके कारण स्पष्ट बात को ही दुहराना पडा !!!

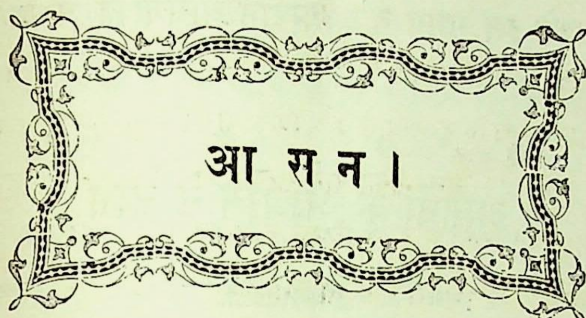
तात्पर्य यह है कि, " कृ—टीक " के लेख में एक भी कथन ऐसा नहीं है कि, जो सत्य सिद्ध हो सकता है। मुझे वारंवार आश्चर्य होता है कि, ऐसे विद्वान लेखककी लेखनीसे ऐसा लेख, कि जो सब प्रकारके प्रमाणोंसे दूषित है, कैसा प्रसिद्ध हुआ !!

"कृ-टीक ' की अंग्रेजी विद्वत्ताके विषयमें मेरे हृदयमें बडा आदर रहता हुआ भी उनके इस लेखके साथ सहानुभूति प्रकट करना मेरे लिये अशक्य है, क्यों कि उनका लेख उपनिषद्विद्याके तत्वोंका घातक है। यदि उपनिषद्विद्याका खंडन उनकी लेखनीसे न होता तो मैं उनके लेखका प्रतिवाद कदापि न करता। मैं अपने ऊपर टीकाओंके शतशः आघात सहनेको तैय्यार हुं, परंतु जिस टीकासे वेद विद्याका ही खंडन होता है, ऐसी टीकायें " वैदिक मेगजिन "में ही छपने लगीं, तो फिर मंडन की आशा किससे करनी है ? "कृ—टीक " कहते हैं कि, टीकासे चिडना नहीं चाहिये। यह उपदेश ठीक है, परंतु इसमें कहना इतना ही है की जिस धर्मका समर्थन करना है, उसका ही खंडन करनेपर चुप भी कैसा रहा जा सकता है ? इस लेखमें बताया ही है कि, " कृ—टीक " का एक एक कथन उपनिषदोंसेही कैसा खंडित होता है। इस लिये ऐसे प्रमाण हीन लेखोंका आदर करना कठिन है। " कृ—टीक" का अंतिम कथन है कि, टीका प्रतिटीकाओंसे सत्यनिर्

हो सकता है, परंतु यह " कु-टीक " की भूल है। जिन टीका ओंसे सत्यानिर्णय हो सकता है, वैसी " कु-टीक की टीका नहीं है। देखिये कि उपनिषद् कहते हैं कि " सूर्यका चक्षुसे संबंध है" परंतु अब पाठक ही कह सकते हैं कि, ऐसी टीकासे किस सत्य का निर्णय होना है? जिन टीकाओंसे सत्यका निर्णय होनेमें सहायता होती है, उस प्रकारकी टीकायें लिखनेके लिये पहिले धार्मिक ग्रंथों का श्रवण मनन निदिध्यासन होना चाहिये। इस प्रकारके अध्ययन के पूर्वही जो टीकायें लिखीं जातीं हैं, उनका मूल्य कुछ भी नहीं हो सकता। ऐसी टीकायें यदि कुछ कर सकतीं हैं, तो इतनाही कर सकतीं हैं कि अज्ञ जनताके मन को विरुद्ध दिशासे बहकाना! वही किया जा रहा है, और देखते नहीं कि, जिस 'वैदिक धर्म' की-ध्वजा जगत्में खडी करनी है, उसीके मंतव्य टीकाके जोशमें कैसे काटे जा रहे हैं!! अंदाधुंदीसे चलनेवाले शास्त्रार्थ विषयक जोशका यही परिमाण होना है। सर्व साधारण जनता अज्ञान है और " कु-टीक " टीका करनेके जोशसे ही केवल परिपूर्ण भरे हुए है, ऐसी अवस्थामें सत्य वैदिक धर्मका विस्तार होनेके स्थानपर प्रतिदिन संकोचही होता रहा, तो कोई आश्चर्य नहीं है। इस विषयमें " कु-टीक " आत्मपरीक्षणसेही अपना अनुभव देखें और पश्चात् टीका करनेका कार्य करें।

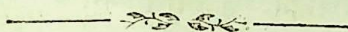
(इस अंकका क्रोडपत्र।)

ॐ


आ स न।



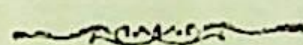
आरोग्य वर्धक "योग की व्यायाम पद्धति"।



" संध्योपासना " आदि सब धर्मकृत्योंमें सबसे प्रथम "आसन" लगानेकी आवश्यकता है। आसन लगानेके विना कोईभी धर्मकृत्य नहीं होता। इतना धर्मकृत्यके साथ आसनोंका दृढ संबंध है।

× × × ×

आसनोंका महत्व।



आसनोंका महत्व उतनाही है कि, जितना आरोग्यका महत्व है। आरोग्यके साथ आसनोंके व्यायामोंका घनिष्ट संबध है। शरीरके सब आंतारिक अवयवों और अंगों तथा नसनाडियोंका

ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् प्राचीन काल के ऋषि मुनि और योगियोंने इस आसन पद्धतिकी सिद्धता की है। ऋषिकालसे इस समय तक जिन्होंने आसनोंका अभ्यास किया है, उनको—

*　　*　　*　　*

आसनों के अभ्यास से लाभ



अर्थात् आसनोंसे आरोग्य प्राप्तिका अनुभव हुआ है। यह बात केवल श्रद्धा अथवा अंध–विश्वाससे ही माननेकी नहीं है। इस समयमें भी सहस्रोंकी संख्यामें अनेक लोगोंने इस आसन पद्धतिके व्यायामसे अपूर्व लाभ उठाया है! आप भी केवल तर्क न कीजिये। परंतु—

÷　　÷　　÷　　÷

स्वयं अनुभव लीजिये।



जहां स्वयं एक दो मासके अंदर ही अनुभव आ सकता है वहां तर्कका और दलीलोंका काम ही क्या है? अनेक असाध्य बीमारियां इस पद्धतिके आसनोंके व्यायामसे दूर हो गई हैं। औषधिके सेवन की आवश्यकता नहीं है, इसमें व्यय कुछ भी नहीं है। केवल प्रातिदिन १५ अथवा २० मिनिट कुछ आसन

आप करते जाइये, आपको आठ दस दिनों के अंदरही इससे आरोग्यका अनुभव निः संदेह हो जायगा। अनुभव होनेके पश्चात् शंका करनेके लिये स्थान ही नहीं होता है। इस लिये आपसे प्रार्थना है कि आप स्वयं अनुभव लीजिये।

\+ \+ \+ \+

इसमें कोई कठिनता नहीं है।



कई लोग ख्याल करते हैं कि आसन करनेमें बडी कठिनता होती है। परंतु यह वास्तविक नहीं है। आसनोंका अभ्यास बडा सुगम है। आप जितना सुगम चाहते हैं उससेभी सुगम है। इसीलिये इस अभ्याससे इस समयभी ७० और ७५ वर्षके वृद्ध पुरुष लाभ उठा रहे हैं।

जो आसन ७५ वर्षके वृद्ध कर सकते हैं वे आसन उससे कम आयुवाले निःसंदेह कर सकते हैं। छः वर्षोंसे लेकर ७५ वर्षतक के आयुवाले इस पद्धतिसे इस समय लाभ उठा रहे हैं। बाल, तरुण, वृद्ध, निर्बल, बलवान्, रोगी, नीरोग, आदि सबोंको इस पद्धतिसे लाभ हुए हैं। इस लिये यह प्रत्यक्ष अनुभव होनेके कारण ही हम कह सकते हैं कि, इस से सबको निःसंदेह लाभ होगा।

स्त्रियों के लिये लाभ।

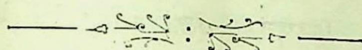
स्त्रियोंको प्रसूतिके बहुत कष्ट होते हैं। चारों ओर आज कल ये कष्ट बढ रहे हैं। इसका एक मात्र उपाय आसनोंका अभ्यास ही है। अनेक स्त्रियोंने इसका अनुभव लिया है, जिससे यह निश्चय पूर्वक और बलपूर्वक कहा जाता है कि, जो स्त्रियां नियम पूर्वक आसनोंका व्यायाम करेंगी और विशेषतः गर्भवती होनेपर करने योग्य आसन करती जायगीं, तो उनको प्रसूतिके कष्ट कदापि नहीं होंगे।

स्त्री और पुरुषोंके लिये लाभकारी।

इस प्रकार यह आसनोंका व्यायाम स्त्रियों और पुरुषोंके लिये लाभ कारी है।

[भा. मु. मुद्रित।]

आसनोंसे लाभ का अनुभव।



जबसे आपने "वैदिक-धर्म" में आसन संबंधी लेख लिखने प्रारंभ किये हैं, तबसे मेरी रुचि और भी अधिक बढ गई है। मुझे जहां भी इस विषयकी कोई पुस्तक मिली मैंने उसे पढनेकी कोशिश की है। .... अब मैंने पर्याप्त आसनोंका अभ्यास कर लिया है। मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि मैं इस योगासनोंके अभ्यासको अपने भाइयों में फैलाऊं, इसके अनुसार मैंने आसन के चित्रोंको बडे आकार में करके, चित्र बनाकर, सबके सामने उपस्थित किये। खेल और व्यायाम के समय उन चित्रोंको टांग देता हूं और साथही स्वयं भी करता हूं। जिससे बहुतसे ब्रह्मचारियों की इस ओर अभिरुचि हुई है। और वे आसनों का अभ्यास भी करने लगे हैं।

इन आसनोंसे जहां मैंने शरीरलाभ अनुभव किया है, वहां शरीरको अधिक नहीं, पर थोडा न थोडा अपने आधीन अवश्य जानता हूं। वे मास जिनमें मुझे ज्वरादिका भय रहताथा, किसी प्रकारका कष्ट दिये बिना गुजर गये। वो आमाशय जो रोगाशय बना रहता था, अब सर्वथा रोगमुक्त रहता है।

एकवार मेरे पेट में बडे वेगसे दर्द उठी, परंतु मैं तनिक भी घबराया, क्यों कि, एक मैं आयुर्वेद पढता था, और साथ ही इसके इलाजको भी जानता था। मैं एकान्त में गया और वहां जाकर **" शीर्षासन " किया, जिससे पेटकी दर्द दूर हो गई।** पेट ठीक रहनेसे यद्यपि इसीसमय सिरपीडा कम न हुई, तथापि आराम हलका हुआ। और वारंवार शीर्षासन करके ही इस सिरदर्द को भगाया। तथा अब इन आसनों के अभ्यास से मैं नौलि क्रिया सफल हो सका हूं, जिससे अब मुझे कब्जीकी कभी शिकायत करने मौका नहीं है। पहिलेकी अपेक्षा मैं अपने आपको अधिक प्रसन्न हूं। आसनोंसे लाभ होनेका यह मेरा स्वानुभव है।

श्रेणी १४ गुरुकुल कांगडी
ता० २८।५।२३

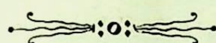
भवदीय
(ब्र०) **रामचंद्र**

× × × ×

(**संपादकीय विचार**---ब्रह्मचारी जीका यह स्वानुभव है। प्रकार के पत्र चारों ओरसे आरहे हैं। ब्रह्मचारी जी का इस वाद करता हूं कि उन्होंनें आसनोंके बडे चित्र बनाकर सहाध्यायियोंकी रुची इस योगाभ्यासकी ओर आकर्षित की इसका परिणाम निःसंदेह अच्छाही होगा। स्थान स्थानके अपने परिचित मित्रोंमें यदि इस प्रकार प्रचार करेंगे, तो इस अभ्याससे चारों और स्वास्थ्यका अनुभव आ जायगा। आशा पाठक इस प्रकार करेंगे।)

दारिद्र्य भगानेका वैदिक गीत।

(लेखक—श्री. पं. गणेशदत्त शर्मा गौड " इन्द्र) "



" ॐ अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे।
शिरिंबिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि।"

ऋग्वेद १० । १५५ । १

अर्थः—हे (अ-रायि) धनहीन (काणे) विरूप (विकटे) कुरूप और (सदा—न्वे) सदा आक्रोश करानेवाली दरिद्रते ! (गिरिं गच्छ) निर्जन पर्वतपर जाओ ! नहीं तो (शिरिंबिठस्य) वज्रके तुल्य दृढ अंतःकरणवाले मनुष्य के (तेभिः सत्वभिः) उन प्रसिद्ध वीर्य पराक्रमों द्वारा (त्वा चातयामसि) हम तेरा नाश करेंगे। "

[भुजंग प्रयात]

चली जा अलक्ष्मी कुरूपे विरूपे !
बसो पर्वतों पै हटो दूर जाओ !
नहीं तो तुह्मारा बुरा हाल होगा
महावीर्यशाली तुझे मार देंगे ॥ १० ॥

कल्याण कारक वैदिक--गीत।



ॐ भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम्।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुधा जीवतो मनः॥

ऋ - १०।१६४।२

अर्थ---[वैवस्वते] तेजस्वी मन ! तू जो [वै वरं--वृणते] निश्चय से श्रेष्ठ विचार पसन्द करता है वह [भद्रं] कल्याण प्राप्त करता है। जो [दक्षिणं-युंजान्ति] दक्षताके साथ योजना करता है वह [भद्रं] कल्याण प्राप्त करता है ! अपने [चक्षुः] आंख को [भद्रं] कल्याण कारक बनाओ। [जीवितः मनः बहुधा] जीवित मनुष्य का मन बहुत समर्थ है।

[इन्द्रवंशावृत्त]

हे तेजधारी ! मन तू जिसे सदा
है श्रेष्ठ माने अथवा पसन्द जो।
होता वही है सुखदा सुशान्तिदा
जो दक्षतासे करता सुकार्य को॥
कल्याणकारी युगनेत्र भी बनें
संसार सारा सुखशांति में सने।
सामर्थ्य से युक्त बना हुआ सदा
मनुष्यका जीवित चित्त मान लो॥ ११॥

सूर्य-भेदन-व्यायाम।

—:(१):—

सूर्य देवता का तैजस अंश अपने शरीरमें अनेक केंद्रोंमें रहता है। इन केंद्रोंका महत्व शरीर स्वास्थ्य की दृष्टिसे बहुत ही है। इन केंद्रोंके मध्यमें "**सूर्य–चक्र**" है, जो नाभिस्थान में है।पेट, पाचक अवयव, यकृत्, प्लीहा, आंतों के भाग आदि सब इस चक्रके आधीन हैं। जो मनुष्य इस चक्रकी शक्तिका विकास करते हैं, उनका शारीरिक आरोग्य उत्तम रहता है। योग शास्त्रमें "**सूर्य--भेदन--प्राणायाम**" इस कार्य के लिये विशेष रूपसे प्रसिद्ध है। परंतु सब लोक प्राणायाम की सिद्धी प्राप्त नहीं कर सकते, क्यों कि प्राणायाम की सिद्धि प्राप्त करने के लिये खान पान के पथ्य, तथा ब्रम्हचर्य का पालन होना आवश्यक है। इस लिये विशेष नियम के अनुसार चलने वाले लोगही प्राणायाम के द्वारा सूर्य भेदन कर सकते हैं, परंतु जो इस मार्गसे जा नहीं सकते, उनके लिये सूर्य भेदी प्राणायाम के स्थानपर "**सूर्य भेदी व्यायाम**" बडा लाभ कारी हो सकता है। इसका स्वरूप और इसकी करनेकी रीति निम्न प्रकार है। इस में, शीघ्रतासे कई आसन क्रम पूर्वक करने होते हैं, इसका क्रम निम्न प्रकार है—

(१) नमस्कारासन।



खडा रहकर हाथ और पांव जोड़ कर, जिस प्रकार दूसरेको प्रणाम करते हैं, उस प्रकार खडा होनेका नाम " नमस्कारासन " है। इसमें सीधा खडा होना मुख्य है। सम सूत्रमें खडा रहनेका महत्व योगमें विशेष है, इसका महत्व इससे पूर्व कई वार बताया गया है। इसके पश्चात्—

(२) हस्तपादासन।

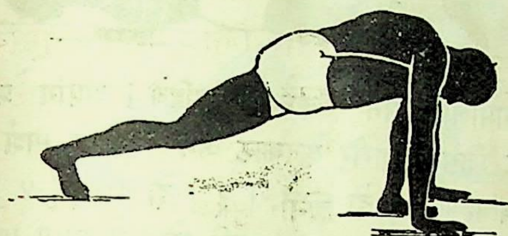


हस्तपादासन करना चाहिये। पांव घुटनों में तेढे न करते हुए, उनको समसूत्र ही रख कर हाथ भूमिपर सीधे रखने चाहिये। साथ साथ अपना सिर या नाक घुटनेको लगाना, अथवा घुटनों के बीचमें करना चाहिये।

प्रारंभमें यह आसन होना कठिन होता है, और कईयों के घुटने तेढे होने के विना हाथ भूमिको लगते ही नहीं। ऐसी अवस्थामें घुटने सीधे रखनेका प्रयत्न करना और जैसे हो सके वैसे अपने हाथ भूमिपर रखने, और जितना हो सके उतना करनेका यत्न करना चाहिये। एक दो मास में सब ठीक होने लगता है।

जिस समय हाथ भूमिपर रखनेका यत्न होता है, उस समय पेट को अंदर आकर्षित करना चाहिये । इसके नंतर—

(३) एकपाद प्रसरणासन ।



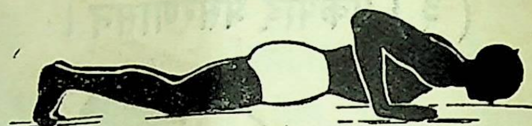
" एकपाद प्रसरणासन " करना चाहिये । एक पांव जितना पीछे जा सके उतना ले जाना और पहिले जहां हाथ थे वहां ही रखने चाहिये । केवल एक पांव ही पीछे सीधा फैलाना चाहिये । इसके करनेके बाद—

(४) द्विपाद प्रसरणासन ।



" द्विपाद–प्रसरणासन " करना होता है । एकपाद प्रसरणासन करनेके पश्चात् दूसरा पांव उसके साथ पीछे सीधा रख देनेसे यह आसन होता है । इस में भूमिपर पांवके साथ पांव और हाथ के पास हाथ रखना होता है । इस आसन के होनेके नंतर—

(५) अष्टांगप्रणिपातासन ।



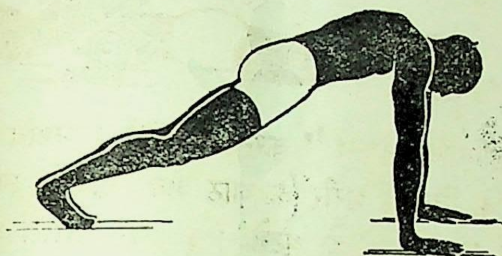
" अष्टांगप्रणिपातासन " करना चाहिये । अष्टांग प्रणिपात वह होता है कि जिस में शरीर के आठ अंग भूमिको स्पर्श करते हैं। [१] दो पांव, [२] दो घुटने, [३] दो हाथ, [४] छाति, और [५] सिरका भाग ये आठ अंग भूमि को इस समय स्पर्श करते हैं। इस समय पेटका स्पर्श भूमि को नहीं होना चाहिये । इसके पश्चात्-

(६) सर्पासन ।

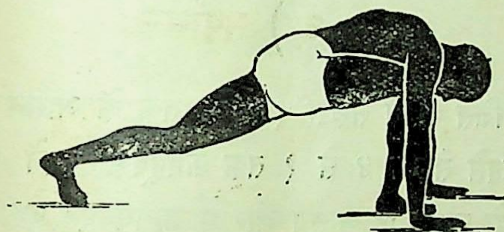


" सर्पासन " करना चाहिये । जिस प्रकार सांप अपनी फणा खोल कर फूत्कार करता है उस प्रकार करनेका नाम सर्पासन है। इसमें केवल हाथ और पांव ही भूमि को स्पर्श करते हैं, शेष शरीर भूमिसे कुछ अंतर पर रहता है। सिर जितना पीछे जा सके उतना ले जाना चाहिये, और छाति जितनी आगे बढेगी उतनी बढानी आवश्यक है। इस सर्पासन के करनेके नंतर पुनः पूर्ववत् निम्न आसन करने चाहिये-

[७] द्विपाद प्रसरणासन।



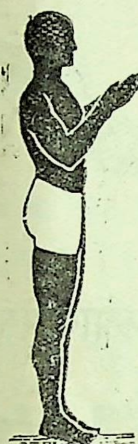
[८] एकपाद प्रसरणासन।



[९] हस्तपादासन।



[१०] नमस्कारासन।



अर्थात् जिस क्रमसे संख्या १ से ४ तक के आसन किये थे, उस के उलटे क्रमसे संख्या ४ से १ तक क्रमपूर्वक करने चाहिये। इस प्रकार दो दो वार चार आसन और दो आसन एक एक वार मिलाकर दस आसन करनेसे “ **सूर्यभेदन व्यायाम** ” एक वार होता है।

ये १० आसन करने के लिये समय छः सेकंद पर्याप्त है। एक आसन एक सेकंदसे भी कम समय में करने से छः सेकंदों में दसों आसन बनकर “ **सूर्यभेदन व्यायाम** ” एक वार बनता है। इस प्रकार एक मिनिट में दसवार सूर्य भेदन व्यायाम हो सकता है, और १५ मिनिटोंमें १५० वार हो सकता है। तथा दो घंटोंमें १२०० वार किया जाता है। हमने घडी लगाकर यह प्रमाण देखा है, इतनी शीघ्रतासे ही यह व्यायाम करने से सूर्यचक्रपर परिणाम होता है।

और उस का उद्दीपन होता है। यह व्यायाम आयुके अनुसार न्यूनाधिक संख्या में करना चाहिये। इसका प्रमाण निम्न प्रकार है—

आयु वर्ष	निर्बल मनुष्य	साधारण मनुष्य	बलवान मनुष्य
८	१२	२५	५०
१२	२५	५०	१००
१६	५०	१००	५००
२५	१००	३००	१२००
४०	१००	३००	१०००
५०	५०	३००	६००
६०	५०	२००	४००
७०	४०	१००	३००

यह संख्या साधारण प्रमाण की है, इसमें अपनी शक्ति के अनुसार न्यूनाधिक किया जा सकता है। इतनाही नहीं, परंतु अपनी शक्तिके अनुसार न्यूनाधिक करना आवश्यक है।

इसमें श्वासोछ्वास की गति अपनी शक्ति के अनुसार सम रखनी चाहिये। सर्वदा नासिकासे ही श्वास लेना चाहिये, और मुख बंद ही रखना चाहिये। निर्बल मनुष्योंको उचित है कि, वे जहां आवश्यकता हो, वहां श्वास लें, और जहां चाहिये वहां छोड दें। तथा एक मिनिटमें सूर्यभेदन व्यायाम दस करने के स्थानपर शांतिके साथ दो, चार, या पांच ही करें। अशक्तों को अपनी शक्ति के अनुसार ही करना चाहिये।

साधारण शक्तिवाले लोग प्रारंभमें नमस्कारासन के समय श्वास लेवें, और सर्पासनके समय उछ्वास छोड दें, पश्चात् पुनः श्वास ले कर खडे होते ही छोड दें। इस प्रकार एक सूर्यभेदन व्यायाम में दोवार श्वास और उछ्वास होता है। थोडे अभ्यास के पश्चात् यह बराबर ताल से ही चलता रहता है, और क्रमशः आसन और श्वास प्रश्वास चलते रहते हैं। आवश्यकता प्रतीत होने पर साधारण शक्ति वाले लोग भी मिनिटमें सूर्य भेदन व्यायामकी संख्यां न्यूनाधिक कर सकते हैं।

जो बलवान मनुष्य हैं, तथा जिनको प्राणायाम का अभ्यास है,वे मिनिट में दस वार ही व्यायाम करनेका यत्न करें और प्रत्येक सूर्य-भेदन व्यायाम में एक वार श्वास लेकर एक वार छोड दें, अर्थात् प्रारंभ में लें और अंतमें छोड दें। परंतु जो बलवान मनुष्य १०० से अधिक संख्यामें यह व्यायाम करना चाहते हैं, उनको एक व्यायाम में दो वार श्वास और दो वार उश्वासें अवश्य करना चाहिये। अन्यथा अधिक व्यायाम होना अशक्य होता है। प्रारंभ में श्वास लेकर मध्य में छोडना, पुनः लेकर अंतमें छोडना। इस प्रकार तालसे होना चाहिये। थोडे अभ्यास से सब ठीक होने लगता है। और इसमें कोई कठिनता भी नहीं है।

सूर्यभेदन व्यायाम का फल।

उक्त रीतिसे सूर्य भेदन व्यायाम नियम पूर्वक करनेसे दो चार दिनसें भी भूख बढने का अनुभव होता है। एक मासमें भूख बहुत

बढती है। भूख के अनुसार गायका दूध, घी, मक्खन, रोटी आदि पौष्टिक पदार्थ योग्य प्रमाण में सेवन करने चाहियें। गायका दूध न मिलनेपर भैंस का दूध तथा अन्य पौष्टिक पदार्थ लेना योग्य है। इनके अभावमें जो कुछ योग्य भोजन अपनी अवस्था में मिल सकता है, योग्य प्रमाण में लेना आवश्यक है। अन्नकी न्यूनता होने पर शरीर की पुष्टि नहीं हो सकती।

इसके अतिरिक्त इस व्यायामसे सब ही अपचन के दोष, आंतोंके व्याधि, यकृत् और प्लीहा के विकार, कब्जी, अथवा अतिसार, शौच के संबंधसे उत्पन्न होने वाले विविध रोग, मुखकी अरुची और व्याधि, दांतोंके रोग, फेंफडों की निर्बलता, मुखमें छाले पडने, गले के रोग, सिरदर्द, चक्कर आने, अग्निमांद्य, जीर्णज्वर, प्रारंभावस्थामें क्षय, श्वास कास, आदि सबही प्रकार के रोग दूर होनेका अनुभव दो तीन मास में ही आ जाता है।

एक मासमें ही शरीर की कांति बढने लगती है, बाहु तथा छाति की पुष्टि दूसरे माससे स्पष्ट दिखाई देती है। छः मास में छाती, पीठ, जंघा और पिंडरियां पुष्ट हो जातीं हैं और शरीर सुडौल होता है। योग्य आहार विहार के साथ इस व्यायाम को करनेसे बुढापेमें भी जवानीका अनुभव होता है। यह बात अनुभव की है, इसलिये इसमें यत्किंचित् भी अत्युक्ति नहीं है। सैंकडों मनुष्यों पर इसका अनुभव देखा है। इस लिये हरएक पाठकसे निवेदन है कि इस सूर्योपासना के अनुष्ठानसे अपना आरोग्य प्राप्त करें।

इस व्यायाम को करनेका समय प्रातः काल है। सूर्योदय के समय प्रारंभ कर के आठ बजे तक १२०० सूर्यभेदी व्यायाम हो सकते हैं। इस समय इस के करनेवाले यहां सहस्रों हैं, और हरएक को इस से लाभ हुआ है।

स्त्री और पुरुषको येह व्यायाम करने योग्य हैं। इसके लिये उत्तम शुद्ध और रमणीय स्थान प्रशस्त है, वहां प्रातःकालके सूर्य किरण आते हों, तो वह स्थान सर्वोत्तम है। प्रातःकाल के सूर्य किरणोंमें यह व्यायाम करनेसे बहुतही लाभ होता है। कमरेमें करना हो, तो उस कमरेका वायु शुद्ध हो और उसमें उपासनाके लिये योग्य पदार्थ हों, और अन्य पदार्थों की खेंचाखेंच न हो।

हरएक अवस्थामें यह व्यायाम लाभ दायी होता है, परंतु प्रारंभमें अभ्यास थोडा थोडा शुरू करके थोडा थोडा अपनी शक्तिके अनुसार बढाना चाहिये प्रत्येक व्यायाम अपनी शक्तिके अनुसार ही करना चाहिये, कदापि अधिक करना योग्य नहीं है।

आशा है कि पाठक वृंद इससे लाभ उठावेंगे।



स्त्री जाती और योग विद्या

(लेखिका-श्री.कुमारी सत्यवती शास्त्रिणी बंन्धु)



हर्ष की बात है कि भारतीय स्त्रियों में दिन प्रतिदिन जागृति पैदा हो रही है। देशके समझदार तथा विद्वान पुरुषोंने इस बात को भली प्रकार समझ लिया है, कि जब तक स्त्रीजाती अज्ञानान्धकार में फँसी हुई है, तब तक भारत वर्ष का उद्धार होना असम्भव है। मनुजी के इस विचारको कि **"जिस देशमें स्त्रियोंका अपमान होता है वह देश शीघ्र ही नष्ट हो जाता है"** भारत वर्षने भली प्रकार आजमा लिया है। स्त्रियोंको गुलाम तथा अविद्यक रखनेका फल भारत वर्ष चिर काल से भोग रहा है और तबतक भोगता ही रहेगा, जब-तक कि वह स्त्रीजातीके सत्कार तथा स्त्रीविद्याको फिरसे प्रचलित कर के प्रायश्चित्त नहीं कर लेता। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि स्त्री सुधार सम्बंधी रुपये में आनाभर भी काम नहीं हुआ और आगे के लिये भी ऐसी शीघ्रतासे कार्य्य होता हुआ दिखाई नहीं देता, जो कि भारतवर्ष को अधोगति से निकालने के लिये होना चाहिए था। आज इस बात के भी कहने की विशेष आवश्यकता नहीं कि स्त्री-सुधार सम्बधी कार्य्य जबतक १६आने पूरा नहीं हो लेता, तबतक देशोद्धार के सभी साधन निष्फल हैं। और भारतवर्षीय भाइयोंका इस

ओर पूर्णरूपसे ध्यान न देना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है । कि भारत वर्षका " **सुनहरी दिवस** " भी बहुत दूर है ।

स्त्रीजातिका सन्मान तथा स्त्री विद्या केवल दूसरों के यत्नोंसे प्रचलित नहीं हो सकती, प्रत्युत इसके लिए स्त्रियों को स्वयंही यत्न करनेकी आवश्यकता है । यद्यपि परोपकारी और देशहितैषी भाई इस कार्यमें बहुत सहायता कर रहे हैं, परन्तु स्त्रीजातिको अपने अच्छे दिनोंकी तबतक आशा नहीं रखनी चाहिए जबतक कि वह अपनी पांवपर आपही न खडी हो जावे और मनुष्योंको अपनी ओर से निश्चित कर देशके शेष आवश्यकीय कार्योंमें आसक्त न हो जाने दे ।

इस कार्यमें सफलता प्राप्त करने के लिए—जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्य होता है—स्त्रीजातिको अपने तन मन और आत्मा की शक्तियोंको जगाना आवश्यक है । हमारा जीवन क्या है ? केवल तन मन और आत्मा का मिलाप है । जिस व्यक्तिमें इन तीनोंमें कोई निर्बल तथा कमजोर है उसका जीवन संपूर्णतया दुखमय होता है । इन तीनों शक्तियोंको जमाकर एक उच्च दरजेपर ले जानेसेही सच्चा और सुखमय जीवन प्राप्त हो सकता है । स्त्रीजाति की तीनों ही शक्तियां असंपूर्ण और शोचनीय दशामें हैं ।

भारतकी स्त्रियोंको अपने स्वास्थ्य तक को ठीक रखनेकी चिन्ता नहीं भासती, वह अपने तन की निर्बलता का ठेकेदार समझती हैं । " **रोगी तन में रोगी मन** " यह प्रसिद्ध कहावत है,

तो इस दशामें स्त्रियों को मानसिक शक्तियों की आशा ही क्या हो सकती है। आत्मिक शक्तियों का तो वर्णन करनाही पंजाबीकी इस कहावत अनुसार है कि—

" सोणां रूडियां पर ते सुपने शीशा महिलां दे।"

वर्तमानकाल में स्त्रीविद्या ने भी सुशिक्षित स्त्रियोंको अभीतक इस ओर उतना नहीं झुकाया, जितना कि कमसे कम उन के लिए आवश्यक था। हां कई ऐसी विदुषी स्त्रियां अवश्य विद्यमान हैं, जिनको कि तन और मन की शक्तियोंपर अधिकार पानेका स्वाभाविक ही समय मिल गया है और वह जान बूझ कर या अचेतावस्था में उन्नति कर रही हैं। परन्तु इतने पर ही संतोष नहीं किया जा सकता।

सबसे दुःखकी बात तो यह है और ऐसी स्त्रियां बहुत ही कम हैं जो अपनी दृष्टि को बहुत ही उच्च आदर्श तक ले जाती हों। उनके मनकी गिरावट उनको कभी भी उच्चावस्था तक नहीं पहुंचने देती। इसी प्रकार उनका अपना मन ही उनके अधोगातीका कारण हो रहा है। परम सन्त कबीरजीने भी कहा है कि—

" मन के हारे हार है, मनके जीते जी।"

आवश्यकता तो इस बात की है कि शृगाल को मारनेके लिए सिंहकी सामग्री एकत्रित की जावे, परन्तु स्त्रीजातिमें सिंहको मारनेके लिए शृगालके मारनेकी सामग्री एकत्रित करने का स्वभाव हो चुका है। मनकी यह गिरावट चिरकाल से स्त्रीजातिमें परवरिश पा रही है और अब उनको दूर करनेके लिए बडे भारी यत्नों की आवश्यकता है।

अपनी शक्तियों को जगानेके लिए हमें आरम्भ से ही आत्मा का आदर्श रख लेना चाहिए, तभी हम तन और मन की शक्तियों पर अधिकार पा सकेंगी। तन और मनकी शक्ति जागृत होकर भी शीघ्र नष्ट हो जाया करती है, यदि उनके अन्दर आत्मिक शक्तिका प्रवाह जारी न रहे। इस लिए केवल तन और मनकी शक्तियों पर ही संतोष नहीं कर लेना चाहिये, प्रत्युत ऊंचा उठ कर आत्मिक शक्तिके भण्डार पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करके पूर्ण लाभ उठाना चाहिये।

तनकी शक्तियोंको जगाने के लिए शारीरीक व्यायाम की आवश्यकता है। मनकी बाह्य शक्तियों को प्राप्त करनेके लिए विद्या और आभ्यन्तरिक शक्तियों की प्राप्तिके लिए ऐसे साधनों की आवश्यकता है कि जिनका सम्बन्ध मनके आभ्यन्तरिक पटल से हो। आत्मिक शक्तियों को प्राप्त करने के लिए उनसे भी गहन और असाधारण साधनों की आवश्यकता है। भारत वर्षकी स्त्रियों में शारीरिक व्यायाम का रिवाज बहुत ही कम है, प्रत्युत ऐसा करना असभ्यता और निर्लज्जता समझी जाती है। इस से उच्च शक्तियों के साधन तो मनुष्यों में भी कम पाए जाते हैं, स्त्रियों का तो कहना ही क्या है।

जितने विघ्न स्त्रीजाति को इस मार्ग में आते और आसकते हैं, मैं उन को भली भांति समझती हूं, परन्तु उनके विस्तार में न पड़कर मैं एक ऐसा साधन तजवीज करती हूं कि जिससे उनकी शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक शक्तिएं जागृत हों। और उनको विशेष कष्टों का सामना न करना पड़े।

मैंने बहुत थोडे समय से ही उस साधन को आरम्भ किया है, परन्तु इन दो वर्षों में मैंने अपनी शारीरिक और मानसिक दशाओंमें बहुत अन्तर पाया है। और इस साधन सम्बन्धी विशेष अन्वेषण करने से ऐसे बहुत से प्रमाण मिल सकते हैं, जिनसे कि इस साधन का अद्वितीय और अमूल्य होना सिद्ध होता है।

यह साधन हमारे भारत वर्ष में प्राचीन कालसे चला आ रहा है और श्री वेद भगवान में स्वयं ईश्वरने इसका उपदेश किया है। परन्तु भारत वर्ष की अधोगति से जहां हमारी सुख सम्पत्ति और ऐश्वर्य हमसे पृथक् हो चुके हैं, वहां हमारे अमूल्य आत्मिक साधन भी हमारे हाथसे निकल चुके हैं। जिस साधनका मैं वर्णन कर रही हूं, भारत की मन्द भाग्यता से वह तो बहुत ही घृणित हो चुका है। प्रथम तो भारतीय लोग इसके नाम तक को भी भूल चुके हैं, यदि कोई जानता भी है,तो उसकी शिक्षासे बहुत ही दूर रह कर उसको कपोल कल्पित और एक भयानक साधन समझ चुका है।

अभीतक उस साधन का नाम नहीं बताया गया, आप उस साधन को जानने के लिए बहुत उत्कण्ठित होंगे। सुनिए उस अद्वितीय साधन का नाम हमारे वेद और शास्त्रों में "योग" कहा है। जिसके विषय में भगवान् मनुजी ने यह फरमाया है—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

[मनु. अ. ६ श्लोक ७१]

जिस प्रकार अग्नि में तपाई हुई धातुओंके मैल जल जाते हैं, उसी प्रकार प्राणों के रोकनेसे प्राणायाम करनेसे इंद्रियोंके दोष नष्ट हो जाते हैं।

अत्रि संहितामें भी है—

योगात् सम्प्राप्यते ज्ञानं योगो धर्मस्य लक्षणम्।
योगः परं तपो ज्ञेयस्तस्माद् योगं समभ्यसेत् ॥ १ ॥
न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्यया।
गतिं गन्तुं द्विजाः शक्ता योगात् सम्प्राप्नुवंति याम् २॥

भावार्थः—योग से ज्ञान प्राप्त होता है, योग ही धर्मका लक्षण है, और योगही परम तप है, इस लिय योगका अभ्यास करना चाहिए ॥ १ ॥

बडी तीव्र तपस्यासे, शास्त्रों के अध्ययन से तथा यज्ञों से जो सद्गति नहीं मिल सकती वह द्विजों को योगाभ्यास से मिल सकती है ॥ २ ॥

गरुड पुराण में कहा है—

भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम् ॥

भावार्थः—संसारके तापसे तपेहुए मनुष्यों के लिए योगही बड़ी औषधि है।

स्कन्दपुराण में कहा है—

आत्मज्ञानेन मुक्तिःस्यात्तच्च योगादृते न हि।
स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिध्यति ॥

भावार्थः—आत्मज्ञान से मुक्ति होती है, परन्तु वह आत्मज्ञान योगके विना नहीं हो सकता, वह योग चिरकाल तक अभ्यास करनेसे सिद्ध होता है।

कूर्म पुराण में लिखा है।

योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं ज्ञानान्निर्वाणमृच्छति ॥

भावार्थः—योगरूप अग्नि सम्पूर्ण पापके पिञ्जरको शीघ्रही जला देता है, उससे ज्ञान आप ही प्रकाशित होता है, और उस ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है।

योग बीजमें शिवजी महाराजने पार्वती प्रति कहा है—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा धर्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः।
विना योगेन देवोऽपि न मोक्षं लभते प्रिये ॥ १ ॥
ब्रह्मादयोऽपि त्रिदशाः पवनाभ्यासतत्पराः।
अभूवन्नंतक भयात् तस्मात् पवनमभ्यसेत् ॥ २ ॥

भावार्थः—हे पार्वती। मनुष्य बडाही ज्ञानी क्यों न हो, विरक्त क्यों न हो, धर्म्मात्मा क्यों न हों, अथवा जितेंद्रिय क्यों न हो विना योगाभ्यास के मोक्ष को नहीं पा सकता जब कि देवताओं को भी विना योग के मोक्ष नहीं मिल सकता ॥ १ ॥

ऐसाही समझ कर ब्रम्हा आदि देवता भी योगाभ्यास में तत्पर हुए। इस लिये मनुष्यको भी यमराजके भयको मिटाने के लिए योगाभ्यासही करना चाहिए ॥ २ ॥

भगवद्गीता में भगवान कृष्णजीने भी कहा है—

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टं।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्॥

भावार्थः—योगी इस योग मार्ग को जानकर " वेदाभ्यास करने से, यज्ञ और तपस्या करनेसे, और दान करने से, पुण्य का फल प्राप्त होना लिखा है, उन सब को उलांघकर " इस श्रेष्ठ सर्वोत्तम (मोक्ष) स्थान को प्राप्त होता है।

तथा शिवसंहिता में कहा है कि—

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
एकमेव सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम् ॥

अर्थात् सम्पूर्ण शास्त्रों को मथ के और बारबार विचार करके यह एक ही मक्खन निकला है, कि एक योग शास्त्रही उत्तम और मानने योग्य है।

हठ योग प्रदीपिका में भी कहा है—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीशूद्राणां च पावनम्।
शान्तये कर्मणामन्यद् योगान्नास्ति विमुक्तये ॥ १ ॥
युवा बृद्धो ऽतिवृद्धो वा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा।
अभ्यासात् सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतन्द्रितः ॥ २ ॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्रों को पवित्र करने-वाला, इनके प्रारब्ध कर्मों को मिटानेवाला, तथा मुक्ति को देनेवाला योगके बिना और कोई नहीं है ॥ १ ॥

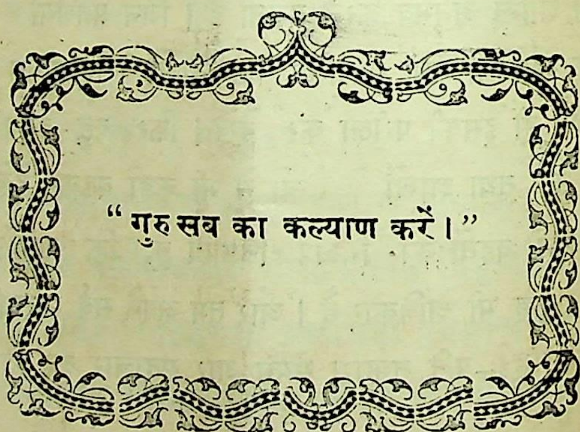
जवान, बूढा, बहुत बूढा, रोगी, अथवा दुर्बल क्यों न हो, उसको भी सम्पूर्ण योग शास्त्रके विषयोंमें ध्यान रख कर अभ्यास करने से सिद्धि प्राप्त हो सकती है ॥ २ ॥

इसी प्रकार घेरंड संहिता, महाभारत, योग वासिष्ट, याज्ञवल्क्य संहिता आदि सर्व ही प्राचीन ग्रंथो में योगकी महिमा की गई है। केवल योग का साधन ही साधक की शारीरिक, मानसिक, और आध्या-त्मिक शक्तियों को जागृत करने के लिए पूर्ण रूप से काम दे सकती है। लोक और पर लोक दोनों का रक्षक यह अकेलाही साधन है। इसके थोडे अभ्यास से ही साधक को अपने तन और मन को निरख परख का बल प्राप्त हो जाता है। और वह इन में बल तथा शान्ति अनुभव करने लगता है। जिन प्राणियों को सर्वदा शारीरिक व्याधियों तथा मानसिक भटकनाओंकी शिकायत रहती है, वह अवश्य ही इसकी परीक्षा कर देखें। फिर वह इसकी महिमा मेरे इस लेख तथा शास्त्रों ... लेखों से भी कहीं बढकर देखेंगे।

मैं अपनी बहनों को निश्चय दिलाती हूं, कि शास्त्रों में योग साधनका तुम्हे भी अधिकार है। और तुम अपने सर्व सांसारिक कार्यों को निभाति हुई—यदि तुम्हारा संयम और सदाचार दृढ हो तो—इस-

को कर सकती हो। लोगों में जोअनेक वहम और भ्रम इस साधन सम्बन्धी फैल रहे हैं, वह सर्वथा अज्ञानता के कारण हैं। प्यारी बहिनो! आपने अपने अधिकारों को संसार पर मनुष्योंके तुल्य साबित करनाँ है और मनुष्य श्रेणी में उच्च से उच्च पद प्राप्त करना तथा सन्मानित होना है। फिर कोई कारण नहीं कि, आप आत्मिक साधनोंसे विमुख रहें। जो कि वास्तविक उन्नतिका साधन और जरीहा है। यदि मनुष्यों को जगत् पर आत्मिक गुरु होने का अधिकार हैं, तो तुम्हें भी अवश्य है। पर उसके लिए आत्मिक साधनों की अधिक आवश्यकता है। जो स्त्रीसमाज में अभीतक बहुत कम दिखाई देते हैं।

मुझे आशा है कि मेरी बहनें मेरे इस लेखपर भली भांती विचार करेंगी। और यदि इसे पसन्त करें, तो मैं आगेको योग साधन पर और भी विस्तार पूर्वक लिखनेका यत्न करूंगी ॥



(स्वाध्याय के ग्रंथ)।

—:*:—

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। **नरमेध**। " **मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन**। " मूल्य १।)

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। **सर्वमेध**। " **एक ईश्वरकी उपासना**। " मू. ॥) आठ आने।

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। **शांतिकरण**। " **सच्ची शांतिका सच्चा उपाय**। " मू. ॥) आठ आने।

[२] देवता- परिचय- ग्रंथ- माला।

(१) **रुद्र देवताका परिचय**। मू. ॥) आठ आने

(२) **ऋग्वेदमें रुद्र देवता**। मू. ॥=) दस आने।

(३) **३३ देवताओंका विचार**। मू. =) दो आने।

(४) **देवताविचार**। मू. ≈) तीन आने।

[३] योग- साधन- माला।

(१) **संध्योपासना**। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥)

(२) **संध्याका अनुष्ठान**। मू. ॥) आठ आने।

(३) **वैदिक--प्राण--विद्या**। (प्राणायाम--पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) **ब्रह्मचर्य**। मू. १।) सवा रुपया।

(५) **योग-साधन की तैयारी**। मू. १) एक रु.

(६) **योग के आसन**। मू. २) दो रु.

[४] धर्म– शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग। मू. -) एक आना।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग। मू. =) दो आने।
(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक। मू. ≡) तीन आने।

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। मू. १॥) डेढ रु.।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग। मू. १॥) डेढ रु.।

[६] आगम– निबंध– माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।-) पांच आने।
(२) मानवी आयुष्य। मू. ।) चार आने।
(३) वैदिक सभ्यता। मू. ≡) तीन आने।
(४) वैदिक चिकित्सा– शास्त्र। मू. ।) चार आने।
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥) आठ आने।
(६) वैदिक सर्प– विद्या। मू. ॥) आठ आने।
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥) आठ आने।
(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥) आठ आने।
(९) शिव संकल्पका विजय। मू. ॥।) बारह आने।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता। मू. ॥) आठ आने।
(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥) आठ आने।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र। मू. ≡) तीन आने।
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न! मू. =) दो आने।

मंत्री— स्वाध्याय– मंडल; औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशकः--श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि.सातारा)

Registered No. B. 1463.

वर्ष ४ अंक ९
क्रमांक ४९

भाद्रपद सं. १९८०
सितंबर स. १९२३

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-मासिक-पत्र।

संपादकः—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

वार्षिक मूल्य ३॥) साढे तीन रु.। विदेशके लिये ४॥) साढे चार रु.।

विषय सूची।

वैदिक धर्म के नियम।

[१] "वैदिक धर्म" प्रतिमास पहिली तारीख के दिन प्रकाशित होगा।

[२] सबके अंक देख भालकर एकही दिन डाक खानेमें दिये जाते हैं। तथापि किसी कारण किसीको किसी मासका अंक न मिला, तो उसी मासके अंतमें निम्न लिखित पतेपर विदित करनेसे पुनः भेजा जायगा। परंतु एक दो मासके पश्चात् पिछले अंक मिल नहीं सकेंगे, क्यों कि पिछले अंक शीघ्रही समाप्त हो जाते हैं।

[३] ग्राहक अपने पत्रोंपर अपनी "चिट संख्या" अवश्य लिखें, नहीं तो उनके पत्रोंका योग्य उत्तर मिलना कठिन होगा।

[४] **उर्दू पढनेवाला यहां कोई नहीं है, इसलिये कोईभी महाशय उर्दूमें पत्र न लिखें। उर्दूमें लिखे पत्रोंका उत्तर देना हमारे लिये अशक्य है।**

[५] "वैदिक धर्म" का वार्षिक मूल्य ३॥) साडे तीन रु. है। विदेशके लिये ४॥) रु. है। **मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजनेमें ग्राहकों का लाभ है।**

[६] मूल्य भेजने तथा प्रबंधके संबंधका सब पत्र व्यवहार "मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध (जि.) सातारा" के नामसे करना चाहिये।

लेखकों के लिये सूचना।



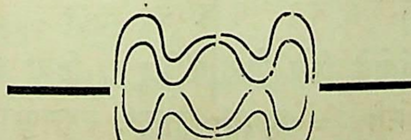
[७] "**वैदिक धर्म**" में प्रकाशनार्थ लेख, कविता आदि, तथा "वैदिक धर्म" के परिवर्तनार्थ पुस्तकें, और मासिक पत्र आदि "संपादक — वैदिक धर्म, औंध (जि. सातारा)" के नाम आने चाहिये।

(८) लेखक अपने लेख कागज की एक ओर ही लिखें, और जहां तक हो सके वहांतक यत्न करके सुवाच्य लिखनेकी कृपा करें। जिससे लेख के मुद्रणमें कोई अशुद्धि होने का संभव नहीं होगा।

[९] लेख जहांतक हो सके वहांतक छोटे हों। उसमें झगडों के शास्त्रार्थ और ईर्ष्या द्वेष के भाव नहीं। **लेख में कुछ विशेष विचारकी तथा पाठकोंके हितकी नवीन बात अवश्य हो!**

[१०] "**वैदिक धर्म**" में केवल अनुवाद के लेख छापे नहीं जांयगे।

मंत्री — स्वाध्याय मंडल. औंध [जि. सातारा]



ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र।

वर्ष ४ अंक ९ | भाद्रपद १९८०; सितंबर १९२३. | क्रमांक ४५.

अपनेमें ईश्वरकी धारणा।

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिल्लोका अधिश्रिताः॥
य ईशे महतो महांस्तेन गृह्णामि त्वामहं॥
मयि गृह्णामि त्वामहम्॥ वा. य. २०। ३२

जो सब भूतोंका अधिपति है, सब लोक जिस में आश्रित हैं, और जो महान से महान सब का स्वामी है, उसके साथ मैं तेरा (आत्माका) ग्रहण करता हूं। हे ईश! मैं तुझे अपने अंदर लेता हूं।"

वैदिक धर्म मासिक पत्र ।

(१) "वैदिक धर्म" मासिक पत्र के आकार में परिवर्तन करनेका निश्चय किया है। इस से दुगणा आकार किया जायगा। इस समय क्रौन १६ पेजी आकार है, वह क्रौन ८ पेजी आकार होगा। आकार बढ जानेके पश्चात् विषयों और चित्रोंकी संख्या भी अवश्य बढेगी, और इस मासिक को सर्वांग सुंदर बनानेका यत्न किया जायगा।

(२) "वैदिक धर्म" का चतुर्थ वर्ष समाप्त होने के लिये और तीन अंक प्रसिद्ध होने हैं। ये तीन अंक इसी आकारमें प्रसिद्ध होंगे। पंचम वर्षके प्रारंभके अंकसे ही आकारमें परिवर्तन किया जायगा और नूतन आकारमें "वैदिक धर्म" प्रसिद्ध हो जायगा।

(३) यद्यपि आकार बढाने और चित्र संख्या बढाने के लिये जो अधिक व्यय होना है, वह भुगताने योग्य ग्राहक संख्या इस समय नहीं है, तथापि हम उत्साहसे कार्य करने कि इच्छा करते हैं, और हमें पूर्ण आशा है कि पाठक भी इस पवित्र कार्य में अवश्य ही सहायता देंगे। क्यों कि उनकी सहायता के विना यह महान कार्य निभ ही नहीं सकता।

[४] "वैदिक धर्म" मासिक की सब जिम्मेवारी ग्राहकोंके ऊपर ही है। इस लिये इसके आकार बढानेका जो प्रयत्न होना है, उसके व्ययको निभानेके लिये पाठकोंसे निवेदन है कि, वे इसकी ग्राहक संख्या बढानेका यत्न करें। यदि हर एक ग्राहक इन तीन महिनोंमें प्रतिमास एक एक ग्राहक बढानेका यत्न करेंगे, तो पंचम वर्षके प्रारंभतक योग्य ग्राहक संख्या हो जायगी और हम इस मासिकमें अधिकसे अधिक सुधारणा करनेका यत्न करेंगे।

(५) "वैदिक-धर्म का विशेष अंक" -- वैदिक-धर्म का क्रमांक ५० वा विशेष अंक होगा। इसमें चित्रोंकी संख्या और पृष्ठोंकी संख्या विशेष होगी। इसमें वैदिक तत्वज्ञान के संबंधी ही सब लेख होंगे। ग्राहकों को इसी मूल्यमें यह अंक मिलेगा, परंतु जो ग्राहक न होंगे, उनके लिये योग्य मूल्यसे यह अंक मिल सकेगा।

इस लिये पाठकों से प्रार्थना है कि वे इस महिनेसे ही ग्राहक बढानेकी सहायता करें।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध [जि. सातारा.]

उसकी स्तुती करो।

(लेखक—श्री. पं. गणेशदत्त शर्मा गौड "इन्द्र)"

ॐ दोषो गाय बृहद् गाय द्युमद्धेही ।
आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम् ॥

अथर्व ६।१।१

अर्थ —[आथर्वण] हे निश्चल ब्रह्मके ज्ञाता महर्षे ! [देवम्] प्रकाश स्वरूप [सवितारम्] सबके प्रेरक परमात्मा को [दोषा] रात्रिमें भी [गाय] जानवर [बृहत्] विशाल रूप से [गाय] जानकर [द्युमत्] स्पष्ट रीति से [धेहि] धारण कर और [स्तुहि] प्रशंसाकर।

[शक्तीवृत्त]

अचल ब्रह्मज्ञाता महर्षे, सदा
भजो देव देवेश को ही मुदा ॥
करो गान रात्रिन्दिवा नाथ का।
धरो ध्यान मन में जगन्नाथ का ॥ १२ ॥

धर्मका प्रेरणा लक्षण।

पूर्व मीमांसामें भगवान् जैमिनी मुनिनें धर्मका लक्षण निम्न प्रकार किया है:—

चोदना लक्षणो धर्मः ॥ पू० मी० १ । २

" धर्मका लक्षण प्रेरणा है। " अर्थात् अपनी अवस्था उन्नतर करनेके लिये जो आंतरिक स्फूर्ति होती है, वह प्रेरणा है। जब यह प्रेरणा मनमें उत्पन्न हो जाति है, तब मनुष्य कर्म के लिये प्रवृत्त होता है; पश्चात् कर्म करता है और अपनी उन्नतिकी सिद्धि प्राप्त करता है। यह सब जिस प्रेरणासे होता है, वह धर्मकी प्रेरणा है। अपनी स्थिति सुधारनेका पुरुषार्थ करनेकी ओर प्रबल प्रवृत्ति होना ही धार्मिक प्रवृत्तिका लक्षण है।

धार्मिक वाङ्मयमें "स्वर्ग और नरक" इन दो कल्पनाओंसे मनुष्यकी दो अवस्थाएं बतायीं हैं। साधारण लोग समझते हैं कि, स्वर्ग उपर है, नरक नीचे और हम बीच में हैं। अर्थात् तीन मंजिल का यह मकान है, बीच की मंजिल पर भूलोक है, ऊपरका मंजिल स्वर्गलोक है और निचला मंजिल नरक है; परंतु यह वास्तविक कल्पना नहीं है। स्वर्ग और नरक की वास्तविक कल्पना होने से ही धर्मकी वास्तविक बात जानी जा सकती है।

* *

"नर" शब्द मनुष्य वाचक है, और उसको अल्पार्थक "क" प्रत्यय लग कर "नर-क" शब्द हुआ है, इसका मूल अर्थ "अल्प मनुष्य, छोटा आदमी, नीच मानव" है। इसके पर्याय शब्द ये हैं—

नारकस्तु नरको निरयो दुर्गतिः ॥ अमर. १।९।१

नारक, नरक, निरय, दुर्गति ये चार शब्द नरक वाचक हैं। इन शब्दों में "दुर्गति" शब्द दुष्ट अवस्थाका वाचक स्पष्ट है। "निरय" शब्द भी नीच अवस्थाका द्योतक है। "नरक" शब्दका अर्थ "नीच मनुष्य" ऊपर दियाही है। इसी प्रकार "नार-क" शब्दका अर्थ "नीच मनुष्य समाज" है, क्यों कि (नराणां समूहो नारं) मनुष्य संघका ही नाम "नार" है। नरक वाचक ये शब्द मनुष्यकी पतित अवस्थाही बता रहे हैं। मनुष्यकी दुर्गति, हीन अवस्था, पतित अवस्था, नीच स्थिति, सामाजिक अधोगति, राष्ट्रीय कष्टमय अवस्था आदि भाव "नरक" शब्दमें है। तात्पर्य पृथ्वीकी निचली मंजिल का नाम नरक नहीं है और भूमिके नीचे कोई मंजिल है भी नहीं, परंतु मनुष्योंकी पतित अवस्थाका नाम ही नरक है; जिस अवस्थामें रहनेसे मनुष्य हीन समझा जाता है, वह अवस्था नरक शब्द बता रहा है। धर्मका प्रेरणा लक्षण होनेसे धर्म मनुष्यको ऐसी उच्च प्रेरणा करता है कि मनुष्यका पतन न हो और मनुष्य नरक की दुर्गतिमें न गिरे। धर्मका यही कार्य है कि, वह मनुष्यके सामने उच्च आदर्श सदा रखे और कभी उसको गिरने न दे!

उक्त प्रकार नरक की ठीक कल्पना हो गई, तो स्वर्गकी कल्पना होनेमें देरी नहीं लगेगी। ब्राह्मणग्रंथोंमें इसका निर्वचन निम्न प्रकार आता है—–

स्वः, स्वर्, सु-वर्, सुवर्ग। (ब्राह्मण निर्वचन)

अर्थात् (सु–वर्ग) उत्तम वर्ग ही स्वर्ग लोक है। वर्ग शब्द समाजवाचक किंवा संघवाचक है। उत्तम झुंड, उत्तम संघ, श्रेष्ठ जमाव, उच्च समाज आदि भाव " सु-वर्ग " शब्द बता रहा है। "**सु-वर**" शब्द " उत्तम उच्च अवस्था " का आशय व्यक्त करता है। "**स्व-र्**" शब्द " अपना प्रकाश " अथवा अपना प्रभाव बता रहा है, और वही भाव अर्थात् वही आत्मत्वका भाव " **स्वः** " शब्दमें है। इसका तात्पर्य यह है कि, ' अपने उच्च प्रभावका अनुभव" स्वर्गमें है, " और " अपनी हीन अवस्थाकी दुर्गति " "नरक" अवस्थामें है। एक अवस्था मानवी श्रेष्ठता की है और दूसरी अधोगतिकी है। अर्थात् ये दो नाम दो अवस्थाओंके हैं, न कि अन्य स्थानांतर के। " **नाक** " शब्द स्वर्ग वाची है, उसका अर्थ (न+ अ+ क) नहीं है दुःख जिस अवस्थामें, वह अवस्था स्वर्ग है। दुःख हीन अवस्था किंवा सुखमय अवस्थाका नाम स्वर्ग है। सच्चा सुख अपनी उच्च अवस्थामें ही होता है। अस्तु; इस प्रकार स्वर्गकी मूल कल्पना है।

धर्म प्रेरणा करके मनुष्यमें ऐसा पुरुषार्थ करनेकी इच्छा उत्पन्न करता है कि, जिससे वह मनुष्य उच्च और श्रेष्ठ बनता चला जाता है और पतित नहीं होता। इसमें दो बातें होतीं हैं- (१) जीवनका

मुख्य उद्देश्य सफल करना, (५) और उत्तम नियमोंका पालन करके श्रेष्ठ पुरुषार्थ करने द्वारा अपने जीवनमें ही अपनी श्रेष्ठतम अवस्था बनाना।

कई पाठक यहां पूछेंगे कि, यह सब बातें " प्रवृत्ति मार्ग " की हैं। और हमें तो " निवृत्ति मार्ग " से जाना है। इस विषयमें इतनाही कहना है कि, प्रवृत्ति ठीक सिद्ध होनेके पश्चात् निवृत्तिका विचार होता है, और उससे पूर्व नहीं। चार वर्णोंके मुख्य प्रवृत्तिधर्म " **ज्ञानप्राप्ति, शौर्यसे राष्ट्र संरक्षण, व्योपार व्यवहारसे धनोपार्जन, और कारीगरीसे पदार्थनिष्पत्ति** " स्पष्ट हैं। ये चार धर्म उत्तम प्रकार से पालन करना चातुर्वर्ण्य के सब लोगों का श्रेष्ठधर्म है। इसको न करते हुए प्रारंभमें ही निवृत्तिकी ओर जाना एक प्रकारका "**राष्ट्रीय अधर्म**" ही है। ज्ञान प्राप्त करनेके पूर्व उसका ज्ञानदान अशक्य है; अर्थात् पहिले प्रवृत्तिरूप धर्मका उत्तम पालन करने के पूर्व ही हम निवृत्ति मार्ग के पथसे चलेंगे; तो ऐसा करना राष्ट्रीय अधर्म करना है। इस समयतक अपने इस राष्ट्रमें इस राष्ट्रीय अधर्म का अतिरेक होचुका है, और इसी अधर्म के कारण यह अवस्था इस समय आगई है। जिस समय जो धर्म पालन करना योग्य होता है, वह उसी समय पालन करना आवश्यकही है, अन्यथा दोष होता है। इसका उदाहरण देखिये।

मनुष्य सवेरे उठता है और कर्म में प्रवृत्त होता है, दिनभर वह प्रवृत्तिरूप धर्म पालन करता है; विद्याध्ययन, बलसंवर्धन, धनो

र्जन, कारीगरीका कार्य आदि करता है; शामतक इस प्रकार कार्य करके बडा परिश्रम करता है, और थक जाता है; इतने में रात्री होती है। रात्री होते ही वह अपने कर्मोंसे निवृत्त होता है, यहां उसके दैनिक निवृत्तिरूप धर्मका पालन शुरू होता है। बाहरका कार्य समाप्त करके घर में आता है, और थोडी देर घरमें जागृत रहकर पूर्ण निवृत्त होता है, अर्थात् सो जाता है। मनुष्य में किस समय प्रवृत्तिरूप धर्म और किस समय निवृत्तिरूप धर्म होने चाहिये, इसकी कल्पना इस उदाहरण के मनन से स्पष्ट होती है। जो नियम एक मनुष्य के लिये है, वही मनुष्य समाज के लिये भी है। तात्पर्य यह है कि, परम पुरुषार्थ करने के पूर्वही निवृत्तिका अवलंबन करना नहीं चाहिये। यदी आपने सचमुच श्रेष्ठ पुरुषार्थ किये होंगे, तोही आपको निवृत्तिके मार्गसे विश्रास लेनेका अधिकार होगा, अन्यथा नहीं। जो पुरुषार्थ के विनाही विश्राम लेता है, और रातदिन विश्राम ही विश्रास लेनेमें मस्त है, उसको आलसी कहना चाहिये और आलस्य एक बडा भारी पाप है, जिसके साथ रहनेसे निःसंदेह अवनति होती है। तात्पर्य निवृत्ति और आलस्यमें जो भेद है, उसको विचार की आंखसे देखना चाहिये। निवृत्ति शब्दमें निवृत्त होनेका भाव है, और इसी लिये इसके पूर्व प्रवृत्ति की आवश्यता निःसंदेह है। अस्तु।

जो प्रेरणारूप धर्म लक्षण इस लेखमें बताना है, वह प्रवृत्तिरूप धर्मका ही है। अपनी अवस्था उच्च करनेकी प्रेरणा इसमें

* * *

प्रधान है । जिस मनुष्यमें अपनी अवस्थाका सुधार करनेकी धुंद न होगी, वह इस मार्ग में प्रगाति नहीं कर सकता । इसालिये सब से प्रधान बात इसमें " **आत्मसुधार** " की है । आत्मसुधारका तात्पर्य यह है कि अपनी सब शक्तियोंका सुधार । आत्मा, बुद्धि, मन, इंद्रियां, शरीर, समाज, राष्ट्र, आदि स्थूल सूक्ष्म परिध आत्म शक्तिके हैं । बीच में आत्माकी शक्ति है और उसके बाहिर एक एक परिघ है और उस परिघ में आत्माकी शक्ति प्रभावित हो रही है । जितने बडे परिघपर जितनी अधिक आत्मशक्ति प्रभावित की जायगी, उतना सुधारका क्षेत्र विस्तृत होगा और उतना प्रवृत्तिरूप धर्मका पालन अधिक होगा; इस लिये अपनी शक्तियों की स्वाधीनता करना आवश्यक है । सबसे पहिले अपनी बुद्धि और मनन शक्ति सुसंस्कारोंसे संपन्न करनी चाहिये ।

विद्याध्ययन, सज्जन संगति, सद्ग्रंथ पठन आदिसे तथा अपनी परिस्थितिके मननसे मनके ऊपर सुसंस्कार किये जाते हैं । पाठविधि ऐसी होनी चाहिये कि, जिसमें से गुजर जानेसे मन उक्त प्रकार शुभ संस्कारोंसे संपन्न हो जाय । यह प्रथम आयुका कार्य है । इस प्रारंभिक अवस्थामें अर्थात् मनुष्यकी अज्ञानावस्थामें दंड के भयसे मनुष्यका अच्छा सुधार होता है । नरक आदिकी भयानक कल्पित कल्पनायें भी मनुष्यको इस प्राथमिक अवस्थामें पतनसे बचा सकतीं हैं। परंतु जब मनुष्य उससे श्रेष्ठ दर्जे पर चढता है, तब उसपर दंडका भय कार्य नहीं कर सकता। इस अवस्थामें उसको साध्यकी निश्चित कल्पना सामने रखनी

चाहिये अर्थात् मुझे यह अवस्था प्राप्त करनी है, और इस मार्गसे वहां पहुंचना है। जिसको आत्मसुधार और संघसुधारकी निश्चित कल्पना हो जाती है, वही अपना कर्तव्य करने योग्य बनता है, दूसरा नहीं।

प्राप्तव्य अवस्थाका निश्चय, वहां पहुंचनेके निश्चित मार्ग का निश्चय और बीचके साधनोंका निश्चय उसको इस समय पूर्ण रीतिसे होना चाहिये। और साथ साथ उसका निश्चय भी चाहिये कि मैं इस रीतिसे जाकर वहां अवश्य पहूंचूंगा।

स्वर्गकामो यजेत।

यह ब्राह्मण वाक्य है! स्वर्गकी इछा करनेवाला यज्ञ करे, यह इसका तात्पर्य है। इस वाक्यमें स्वर्ग और यज्ञकी निश्चित कल्पना क्या है, इसका जिनको पता नहीं, वे इस वाक्यको समझही नहीं सकते। "अपनी (सु– वर्ग) श्रेष्ठ वर्गमें स्थिति करनेके लिये (यज्ञ) परम पुरुषार्थ करो," यह श्रेष्ठ प्रेरणा उक्त वाक्यमें है। जो परम पुरुषार्थ करता है, उसकी अवस्था सुधर जाती है; इसलिये इस प्रकारके वाक्य मनुष्यको श्रेष्ठताकी ओर भागनेकी प्रेरणा करते हैं; यही कारण है कि इनको धर्म कहते हैं। वैदिक धर्मके प्रेरक वाक्योंके उदाहरण देखिये—

[१] य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति।
इन्द्रः पंच क्षितीनाम्॥ ९॥
इंद्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः॥
अस्माकमस्तु केवलः॥ १०॥ ऋ १। ७

[२] तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये॥
ऋ० १।१०।६

[३] अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं ॥ ऋ० १।३२।२

(१) एक ही इंद्र सब मनुष्यों, सब धनों और पंच मानवोंपर राज्य करता है। चारों ओरके मनुष्योंमेंसे हम इंद्रको बुलाते हैं। वह केवल हमारे लिये ही हो (२) मित्रता, धन, और उत्तम शौर्यके लिये हम उसको प्राप्त करते हैं ॥ (३) पर्वतका आश्रय करनेवाले शत्रुका इस इंद्रने नाश किया ॥

इस प्रकारके सहस्रों वाक्य वेदमंत्रोंमें आते हैं। अब इनसे जो सूचना अथवा प्रेरणा मिलती है वह निम्न शब्दोंमें बताई जाती है - " (१) मनुष्यों और धनोंका प्रभुत्व जैसा इद्रं कर रहा है, वैसा हम करेंगे। (२) जिस प्रकार इंद्र धन और वीर्य देता है, उसी प्रकार मैं धनवान और शूर बनकर इतरोंको धन और वीर्य प्रदान करूंगा। (३) जिस प्रकार इंद्र अपने शत्रुका पराजय करता है, उस प्रकार मैं भी अपने वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय शत्रुको दूर करूंगा और विजयी बनूंगा " धर्मके ग्रंथसे यह प्रेरणा मिलती है। इस प्रकारके प्रेरक वाक्य वेदमें अनेक हैं, प्रायः सभी वाक्य इस प्रकारके प्रेरक वाक्य हैं, जो पढतेही पढनेवालेके मनको श्रेष्ठ प्रेरणा- करके उसको उन्नत होनेकी स्फूर्ति देते हैं।

यह स्फूर्ति ही धर्म करने की ओर मनुष्यको प्रवृत्त करती है और इस प्रवृत्तिसे मनुष्य धर्म करता हुआ, अर्थ काम और मोक्ष और सुख प्राप्त करता है। जो प्रेरक वाक्य ऊपर दिये हैं, उस प्रकारके

प्रेरक वाक्य मनुष्यके मनपर संस्कार करते हैं, और उसको, मानो, पुरुषार्थकी दीक्षाही देते हैं। इससे मनुष्यकी इच्छा सुसंस्कृत और उद्दीपित होती है और उसमें एक प्रकारका निश्चय जागृत होता है, जो उस मनुष्यको हीन मार्गमें जानेसे रोकता है। "**निश्चय पूर्ण विश्वास**" ही यहां उसका मार्ग दर्शक होता है, वह निश्चयसे मानता है कि, मुझे इस विवक्षित मार्गसे जानेसे इस प्रकारकी सिद्धि अवश्यही मिलेगी, यह विश्वास उसका सच्चा मार्ग दर्शक होता है। इस विश्वाससे परिपूर्ण जिसका मन होता है, वही मनुष्य कदापि अपने व्रतसे च्युत नहीं होता, कितनेभी विघ्न आजांय वह अपना कर्तव्य पालन करता है, और अंतमें अपने ध्येयको प्राप्त करही लेता है। इस लिये धर्म पुस्तक पर, धर्म मार्गपर तथा यमनियमोंपर पक्का विश्वास रखना बडा लाभदायक होता है। इस प्रकारका विश्वासी मनुष्य अपने निश्चयके बलसे शीघ्रही अपने विजयस्थानको प्राप्त कर लेता है। तथा अविश्वासी मनुष्य संशय सागरमें डूबने लगता है।

धर्म मार्गसे चलनेपर जिन महात्माओंने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की है, उन महात्मा ज्ञानी वीरोंके उदाहरण अपने आंखके सन्मुख रखिये। उनके जीवन चरित्रोंका मनन कीजिये, और उनके दृढनिश्चयके बलसे अपना मन बलवान कीजिये। ऐसा करनेसे आपके मनमेंभी वैसी अपनी प्रगति करनेके लिये सदिच्छा–युक्त महत्वाकांक्षा उत्पन्न होगी, और आपका उत्साह द्विगुणित हो जायगा महत्वाकांक्षा अर्थात् बडा बननेकी इच्छा मनुष्यके मनमें अवश्य

* * * *

चाहिये । इसके विना मनुष्यका मनुष्यत्व विकसित नहीं हो सकता । इसलिये जिन श्रेष्ठ पुरुषोंनें महत्व प्राप्त किया है, उनके जीवनोंसे बोध प्राप्त करना साधकके लिये अत्यावश्यक है ।

प्रयत्नके विना विजय मिलना अशक्य है, और मिला तो निश्चय समझ लीजिये की, वह आपके लिये कदापि लाभदायक नहीं होगा । **विजयका मूल्य प्रयत्न ही है** । परिश्रमका मूल्य देकर करीदा हुआ विजयही हितकारी होता है । उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम ये छे **गुण जिसके पास होंगे, उसको** इस **जगत्में कुछभी अशक्य नहीं है** । इस लिये इतने गुणोंके साथ प्रबल पुरुषार्थ करना हरएक धार्मिक मनुष्यके लिये अत्यावश्यक है।

विजयासिद्धि मेरी है, और मैं उसको अवश्य प्राप्त करूंगा । मैं विघ्नोंसे डरनेवाला नहीं हूं । विघ्न क्षुद्र हैं । मेरी शक्ति विघ्नोंसे बहुत बडी है, इस प्रकारके दृढ विश्वाससे प्रयत्न होना चाहिये । वेदके मंत्र यही विश्वास मनुष्यमें उत्पन्न कर रहे हैं, देखिये--

[१] **अहं धनामि संजयामि शश्वतः ॥ १॥**
[२] **अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमाददे ॥ २॥**
[३] **अहमिंद्रो न पराजिग्ये ॥ ५॥**
[४] **अभीदमेकमेको आस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करान्ति ॥ खले न पर्षान् प्रति हान्मि भूरि किं मा निंदान्ति शत्रवोऽ निंद्राः ॥ ७॥**

ऋ. १०।४८

(१) मैं धनोंको जीतता हूं अर्थात् विजयसे धन प्राप्त करता हूं। (२) मैं शत्रुओंसे अधिक बल प्राप्त करता हूं। (३) मैं समर्थ हूं, मेरा पराजय नहीं होगा। (४) मैं अकेला समर्थ हूं। दो और तीन मिलकर भी मेरा क्या करेंगे? (अन्-इंद्राः) ये नास्तिक शत्रु मेरी निंदा कर रहे हैं! उनको पकडकर मैं उनका नाश करूंगा।"

यह ऐंद्री शक्ति अपने अंदर–अपने आत्माके अंदर– अनुभव करने की शिक्षा वेद दे रहा है। इसका मनन करनेसे आत्मविश्वास बढता है, और पश्चात् विघ्नोंका डर रहता नहीं। विघ्न आनेपर पुनः प्रयत्न करना चाहिये। सिध्दि मिलने तक उद्यम छोडना नहीं चाहिये, यही "**कर्मयोग**" का रहस्य है। उत्साह, उत्सुकता, तदाकार वृत्ति, कार्य तत्परता, विलक्षण मानासिक बल, इत्यादि सद्गुणोंका वायुमंडलही आपको अपने चारों ओर बढाना चाहिये; जो आपको सिद्धिके मार्ग में अवश्य सहायता देगा। विघ्नोंसे वारंवार प्रतिघात होनेपर भी जो अपना प्रयत्न नहीं छोडते वेही उत्कृष्ट लोग जन में पूज्य बनते हैं; और उनको ही यश और कीर्ती मिलती है और वेही आदर्श पुरुष होते हैं।

यश, ज्ञान, उच्चावस्था, शक्तिका उत्कर्ष, आरोग्य, आयु--दीर्घायु, ऐश्वर्य, धन संपत्ति, मानमान्यता, मानसिक शांति, ऐहिक सुख, गृह सुख, सामाजिक उन्नति, राष्ट्रीय उत्कर्ष, अन्योंका प्रेम संबंध, तथा अन्य बातोमें सिद्धि यदि आपको प्राप्त करनी है, तो उक्त प्रकारही प्राप्त हो सकती है। यह समझ लीजिये कि--

[१] अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः ॥ छां. उ. ३।१४।१

[२] ओं क्रतो स्मर, कृतं स्मर, क्रतो स्मर ।

बृ. उ. ५।१५।१

[३] अहं क्रतुरहं यज्ञः ॥ भ. गी. ९।१६

(१) सचमुच मनुष्य कर्मरूप ही है । (२) हे [क्रतो] कर्मरूपी मनुष्य! तूं ओंकारवाच्य ईश्वरका स्मरण कर, हे पुरुषार्थी मनुष्य ! अपने किये हुए कर्मोंका स्मरण कर ।[३] मैं ही क्रतु हूं, मैं ही यज्ञ हूं ॥

मनुष्य ही कर्मरूप है । " **मैं कर्मरूप हूं** । " अर्थात् जैसा कर्म करूंगा वैसा ही बनूंगा अर्थात् मेरी उच्चता और नीचता मेरे पुरुषार्थ पर अवलंबित है । यह बात मनके अंदर धारण करनी चाहिये । इससे मनकी शक्ति द्विगुणित हो जाती है ।

इस प्रकार अपनी उत्साह शक्ति द्विगुणित नहीं परंतु शतगुणित करके, अपने आपको कर्मरूप समझकर, अपनी कर्मशक्ति अर्थात पुरुषार्थ शक्ति को पराकाष्ठा तक बढाते हुए, अपने शत्रुकी विघ्न करनेकी शक्तिकी अपेक्षा अपनी विजय शक्तिको अधिक शक्ति शाली करके वेद मंत्रोंके प्रेरणा रूप धर्मसे अपने मन और चित्त को स्फूर्तियुक्त बनाकर, यदि आप अपना कर्तव्य पालन करके आगे बढेंगे तो निः संदेह आप यशस्वी और तेजस्वी हो सकते हैं ।



सूर्य भेदन व्यायाम।

-(संख्या २)-

चतुरंग प्राणिपातासन।

सूर्यभेदन व्यायामकी एक पद्धति गत लेखमें लिखी है। वह सबसे सुगम होनेके कारण दुर्बल मनुष्यभी उससे लाभ उठा सकते हैं। जो दुर्बल मनुष्य हैं, वे इस सूर्यभेदन व्यायाम को थोडा थोडा अपनी शक्तिके अनुसार करते जांयगे, तो एक वर्षके अंदरही उनकी दुर्बलता निःसंदेह दूर हो जायगी। ऋषि मुनियोंका यह "बलवर्धक व्यायाम" है। और इनका अनुभव सहस्रों मनुष्योंपर लिया है, तथा हरएक अवस्थाके मनुष्यपर इससे उत्तम परिमाण हो गया है। इतनाही इसमें ध्यान रखना होता है कि, अति निर्बलताके समय यह व्यायाम शनैःशनैः और अल्प प्रमाणमें करना चाहिए। और जैसा जैसा बल बढता जायगा, वैसा वैसा यथेच्छ करनेमें कोई दोष नहीं है। अस्तु। इस व्यायामकी उपयोगितामें कोई शंकाही नहीं है, इसलिये हरएक पाठक इसका अवश्य अनुभव

* * * * *

लेलें, तथा अपने मित्रोंमेंभी इसका खूब प्रचार करें। इस सूर्य भेदन व्यायामके लिये किसी भी साधन सामग्री की आवश्यकता नहीं है। इस लिये निर्धनसे निर्धन मनुष्यभी इससे लाभ उठा सकते हैं।

गत लेखमें जिस सूर्यभेदी व्यायामका वर्णन किया है, उसको अधिक संख्यामें करना चाहिये। आज इसी सूर्यभेदी व्यायामकी दूसरी रीतिका वर्णन करना है, जो थोडी संख्यामें करनेसे भी पर्याप्त होता है। इसकी पद्धति यह है। इसमें क्रमपूर्वक निम्न आसन करने होते हैं—

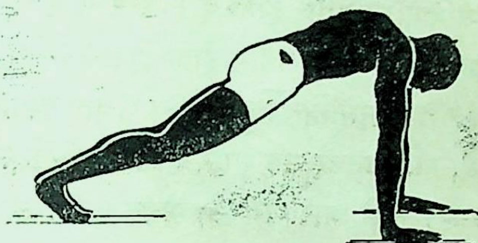
(१) नमस्कारासन।



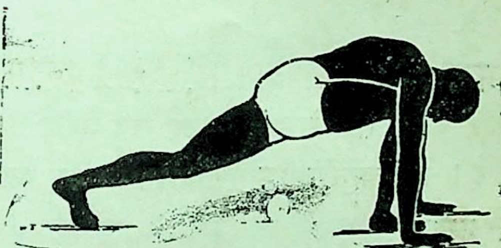
(२) हस्तपादासन।



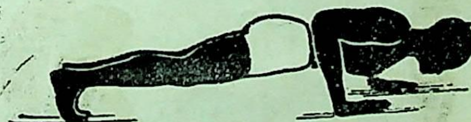
(३) एकपादप्रसरणासन।



(४) द्विपादप्रसरणासन।



(५) चतुरंगप्रणिपातासन।



पहिले लेखमें इस स्थानपर अष्टांग प्रणिपातासन करना लिखा है। उस स्थानपर चतुरंगप्राणिपातासन इस पद्धतिमें करना चाहिये। इस आसनमें दो पांव और दो हाथ के तलवे ही भूमिको स्पर्श करते हैं। दो हाथ और दो पांव ऐसे चार अंग भूमिको स्पर्श

करते हैं, इस लिये इस आसनको चतुरंगप्राणिपातासन बोलते हैं। अष्टांगप्राणिपात की अपेक्षा चतुरंगप्राणिपात थोडासा कठिन है, और इसमें थोडा अधिक व्यायाम होता है। इसी लिये इस पद्धतिका सूर्यभेदी व्यायाम थोडा भी पर्याप्त होता है।

चतुरंग प्राणिपातासनमें दो पांव और दो हाथ ही भूमिको स्पर्श करते हैं, और उनपर सब शरीर दंडवत् भूमिके साथ समांतर रेषामें रहता है। भूमि और शरीरके अंदर करीब छः अंगुलोंका अंतर रखना चाहिये, जैसा—

एडी......घुटने......पेट......पीठ......सिर

पांव हाथ

..............................भूमि..............................

इस प्रकार भूमिके साथ सम अंतर पर सब शरीर सीधा रखना आवश्यक है। इस चतुरंग प्राणिपातासनमें एक आध सेकंद ठहरकर फिर—

(६) सर्पासन।



सर्पासन करके तत्पश्चात् पूर्ववत् निम्न आसन कीजिये—

(७) द्विपादप्रसरणासन।

(८) एकपादप्रसरणासन।

(९) हस्तपादासन।

(१०) नमस्कारासन।

इस प्रकार नमस्कारासन अंतमें करनेसे इस पद्धतिका सूर्यभेदी व्यायाम होता है।

इसमें भी दस आसन करने होते हैं, और वे इसी क्रमसे अति शीघ्र करने चाहियें। इस रीतिका सूर्यभेदी व्यायाम–अर्थात् पूर्वोक्त क्रमानुसार दस आसन–एक मिनिटमें छः वार अवश्य करने चाहियें। यदि आठ या दस वार हो सके, तो अधिक अच्छा है। तथापि न हो सके तो, प्रारंभमें शनैः शनैः करके जितनी वार किये जा सकते हैं, उतनेही कीजिये और जैसा जैसा अभ्यास बढेगा, उस प्रकार बढाते जाइये।

अशक्त मनुष्य आवश्यकतानुसार जहां चाहिये वहां श्वास और उच्छ्वास करें। सबल मनुष्य एक कुंभकमें दसों आसन करसकें तो अच्छा है, नहीं तो पूर्ववत् सर्पासनके समय पहिला श्वास छोडकर दूसरा लें। अथवा यह भी न हो सके, तो आवश्यकतानुसार श्वास और प्रवास करें।

* * * * * *

आयुके अनुसार यह सूर्यभेदी व्यायाम पूर्ववत् न्यूनाधिक करना चाहिये। यदि यह व्यायाम ठीक प्रकारसे किया जाय, तो पहिले चारोंके बराबर यह एक है। इस लिये प्रथम लिखे सूर्यभेदी व्यायामकी संख्या १०० के स्थानपर इसकी २५ पर्याप्त है। इस नियमके अनुसारही हरएक मनुष्य अपनी आयु और शक्तिके अनुसारही अपने लिये इस सूर्यभेदी व्यायामकी संख्या निश्चित कर सकते हैं। तथापि अपनी अवस्थाके अनुसार न्यूनाधिक करनेसे भी कोई हानि नहीं है।

जिस प्रकार गायनवादनमें ताल होता है, उसी प्रकार इस सूर्यभेदी व्यायाममेंभी तालसे सब आसन और श्वास तथा उच्छवास करने अत्यावश्यक हैं। थोडा अभ्यास करनेपर यह सब तालसेही होने लगता है और तालसे अभ्यास करनेकी आदतही शरीरको होती है, जो हरएक कार्यमें लाभकारी है!

सब कार्य तालसे होने में लाभ और बेतालसे होने में हानि है। इस सूर्यभेदन व्यायामके साथ शरीर स्वास्थका विशेष संबंध है, और शरीर की सुस्थिति तालकी समता से ही रहती है। इस लिये तालकी समता से ही हरएक कार्य करनेका अभ्यास करना अत्यावश्यक है। व्यायाम में तो इसकी बहुत ही आवश्यकता है।

जो मनुष्य बहोत निर्बल हैं, वे पहिली पद्धतिके अनुसार ही सूर्यभेदी व्यायाम करें। साधारण शक्तिवाले इसको थोडा थोडा प्रारंभमें करें और यथासमय बढाते जांय!

स्त्री और पुरुषोंके लिये यह व्यायाम बडाही उपयोगी है। इसका अभ्यास सवेरे ही होना चाहिये। सवेरके सूर्य प्रकाश में करने से बडे लाभ होते हैं। वास्तविक रीतिसे यह सूर्य प्रकाश में ही सवेरे करना चाहिये। कमरे में करना हो; तो वह कमरा अति स्वच्छ, निर्मल, शुद्ध वायुसे युक्त और जिसमें सूर्य प्रकाश आता है, ऐसा रमणीय होना चाहिये।

कब्जी वाले लोग एक कटोरीभर कोसा जल पीकर सूर्यभेदी व्यायाम करेंगे, तो उनकी कब्जी एक मास में ही हटजायगी। परंतु जल पीनेके बाद १५।२० मिनिट के पश्चात यह व्यायाम करना चाहिये।

पत्रोंके संपादक, अध्यापक, लेखक, कार्यालयोंमें काम करने वाले बाबू, सेठ, साहुकार, दुकानदार आदि बहुत प्रकारके लोग हैं कि, जो बैठकर ही रहते हैं, और अपना कार्य शरीर को स्थिर रख कर ही करते हैं। यदि उक्त प्रकारके लोग प्रातःकालमें १५।२० मिनिट अथवा अधिक इस सूर्य भेदी व्यायाम को करते जांयगे, तो उनको बडा आरोग्य प्राप्त हो सकता है। यह व्यायाम विशेषतः इन लोगोंके लिये बडा ही उपकारक है। बाबू लोगोंके पींछे जो अनेक व्याधियां लगीं रहतीं हैं, उसका कारण उनका बैठके कार्य करनेका पेशा ही है। इस लिये उनको इस सूर्योपासना की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।



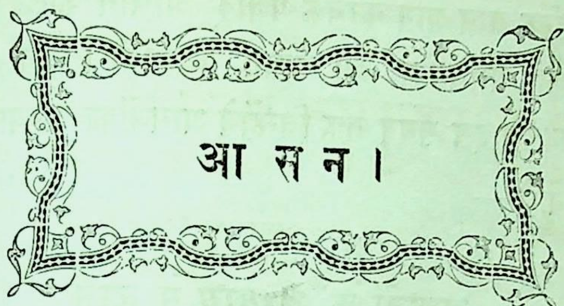
अनुभूत योग ।

[लेखक— " प्राण-पुरी "]

वैदिक धर्ममें कुछ समय से योग विषय में, जिन महानुभावोंने कुछ अभ्यास किया है, अपने अनुभवके आधार पर लेख निकल रहे हैं; मुझे भी कई सज्जनोंने इस ओर प्रेरा और वैदिक धर्मके कई अंकोंको मैंने स्वयं भी पढा । मैं कोई योगी नहीं हूं, तौभी योगाभ्यासीयों का श्रद्धालू अवश्य हूं, और उन महानुभावोंके सत् संगसे इस में कुछ वर्ष पूर्व अभ्यास भी किया था, उस समयका जो अनुभव है, और जिस रितिसे मैंनें अभ्यास किया था, और शरीरकी प्रथम तथा पश्चात अवस्था का वर्णन ही इस लेखमें होगा ।

मुझे कई वर्षोंसे यह इच्छा थी कि, कोई योगाभ्यासी मिले, तो उसकी शरणमें रह कर उसकी आज्ञानुसार इसमें अभ्यास करूं । इसी इच्छाके वशवर्ती होकर अनेक स्थानोंमें गया, जहां किसीका नाम सुना उसीके दर्शनार्थ यात्रारंभ की, कोई स्थानोंमें तो मुझे निराशताहि हुई, और कई स्थानोंमें आशा पूर्ण होने पर भी अन्य साधन उपलब्ध

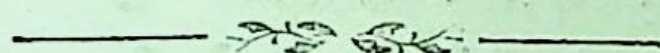
ॐ



आ स न।



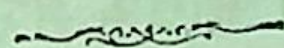
आरोग्य वर्धक "योग की व्यायाम पद्धति"।



" संध्योपासना " आदि सब धर्मकृत्योंमें सबसे प्रथम "आसन " लगानेकी आवश्यकता है। आसन लगानेके विना कोईभी धर्मकृत्य नहीं होता। इतना धर्मकृत्यके साथ आसनोंका दृढ संबंध है।

× × × ×

आसनोंका महत्व।

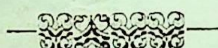


आसनोंका महत्व उतनाही है कि, जितना आरोग्यका महत्व है। आरोग्यके साथ आसनोंके व्यायामोंका घनिष्ट संबंध है। शरीरके सब आंतारिक अवयवों और अंगों तथा नसनाडियोंका

ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् प्राचीन काल के ऋषि मुनि और योगियोंने इस आसन पद्धतिकी सिद्धता की है। ऋषिकालसे इस समय तक जिन्होंने आसनोंका अभ्यास किया है, उनको—

* * * *

आसनों के अभ्यास से लाभ



अर्थात् आसनोंसे आरोग्य प्राप्तिका अनुभव हुआ है। यह बात केवल श्रद्धा अथवा अंध–विश्वाससे ही माननेकी नहीं है। इस समयमें भी सहस्रोंकी संख्यामें अनेक लोगोंने इस आसन पद्धतिके व्यायामसे अपूर्व लाभ उठाया है! आप भी केवल तर्क न कीजिये। परंतु—

÷ ÷ ÷ ÷

स्वयं अनुभव लीजिये।



जहां स्वयं एक दो मासके अंदर ही अनुभव आ सकता है, वहां तर्कका और दलीलोंका काम ही क्या है? अनेक असाध्य बीमारियां इस पद्धतिके आसनोंके व्यायामसे दूर हो गई हैं। औषधिके सेवन की आवश्यकता नहीं है, इसमें व्यय कुछ भी नहीं है। केवल प्रतिदिन १५ अथवा २० मिनिट कुछ आसन

आप करते जाइये, आपको आठ दस दिनों के अंदरही इससे आरोग्यका अनुभव निः संदेह हो जायगा। अनुभव होनेके पश्चात् शंका करनेके लिये स्थान ही नहीं होता है। इस लिये आपसे प्रार्थना है कि आप स्वयं अनुभव लीजिये।

\+ \+ \+ \+

इसमें कोई कठिनता नहीं है।



कई लोग ख्याल करते हैं कि आसन करनेमें बडी कठिनता होती है। परंतु यह वास्तविक नहीं है। आसनोंका अभ्यास बडा सुगम है। आप जितना सुगम चाहते हैं उससेभी सुगम है। इसीलिये इस अभ्याससे इस समयभी ७० और ७५ वर्षके वृद्ध पुरुष लाभ उठा रहे हैं।

जो आसन ७५ वर्षके वृद्ध कर सकते हैं वे आसन उससे कम आयुवाले निःसंदेह कर सकते हैं। छः वर्षोंसे लेकर ७५ वर्षतक के आयुवाले इस पद्धतिसे इस समय लाभ उठा रहे हैं। बाल, तरुण, वृद्ध, निर्बल, बलवान्, रोगी, नीरोग, आदि सबोंको इस पद्धतिसे लाभ हुए हैं। इस लिये यह प्रत्यक्ष अनुभव होनेके कारण ही हम कह सकते हैं कि, इस से सबको निःसंदेह लाभ होगा।

स्त्रियों के लिये लाभ।

स्त्रियोंको प्रसूतिके बहुत कष्ट होते हैं। चारों ओर आज कल ये कष्ट बढ रहे हैं। इसका एक मात्र उपाय आसनोंका अभ्यास ही है। अनेक स्त्रियोंने इसका अनुभव लिया है, जिससे यह निश्चय पूर्वक और बलपूर्वक कहा जाता है कि, जो स्त्रियां नियम पूर्वक आसनोंका व्यायाम करेंगी और विशेषतः गर्भवती होनेपर करने योग्य आसन करती जायगीं, तो उनको प्रसूतिके कष्ट कदापि नहीं होंगे।

स्त्री और पुरुषोंके लिये लाभकारी।

इस प्रकार यह आसनोंका व्यायाम स्त्रियों और पुरुषोंके लिये लाभ कारी है।

[भा. मु. मुद्रित।]

न होनेसे लौटना पडा। अन्तमें इसी भांति भ्रमण करते करते एक ग्राम में सर्व प्रबन्ध ठीक होगया, और उसी स्थानपर मैनें एक वर्ष ठहरकर अभ्यास किया। इस लेखमें उसी एक सालका अनुभव वर्णन करूंगा।

[१] शारीरिक अवस्था।

जिस समय मैंने अभ्यास आरंभ किया था, उसी समय गुरुजीने आज्ञा की, प्रथम शरीरको तोल लो, ताकि आगे को शरीरके लघु होनेका ठीक ठीक निश्चय हो सके। उसकी आज्ञानुसार मैनें वजन किया, उस समय मेरे शरीरका बोझ लगभग दो मण २८ सेर था। सबसे प्रथम मुझे धौती करनेको कहा गया। इसमें यह स्मरण रहे, पुस्तकमें धौतीका आकार ४ अंगुल चौडाई और १५ हाथ लंबाईमें लिखा है; परंतु जो धौती मुझे दी गई वह अर्ध हाथ चौडी और ९ हाथ लंबी थी। इसके न्यूनाधीक के विषयमें गुरुजीकी सम्मति इस प्रकार है। जो धौती ४ अंगुल चौडी होती है, उसमें गांठ पड जाने का संदेह बना रहता है, और जो चौडी अधिक होती है, उसमें गांठका कोई संदेह नहीं होता। इस लिये धौती चौडी अधिक रखके लंबाईमें न्यून करलेना चाहिये। दो चार दिन तक तो धौती हलक से आगे उतरने का नाम न लेती थी; किंतु उसके पश्चात उसनें यह दुराग्रह तो छोड दिया, परंतु हलकके आगे जाकर लौट आने में ही प्रयत्न करती रही। शनैः शनैः हलकसे नीचे जानेकी मात्रा अधिक होने लगी, और लगभग दो सप्ताहमें धौती ठीक होने लग गई।

इसी अन्तरमें गुरुजीनें आज्ञा दी थी कि, इसके साथ साथ नेती भी करनी चाहिये। अतः नेती भी आरंभ की गई और इसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं पडी। यह जलदी ही ठीक हो गई इसमें यह स्मरण रहे प्रथम तो केवल डोर ही थी और पीछे उसके अंतिम भाग में कच्चे सूत्र के धागे यथा संभव मात्रा से डाल लीये गए थे, ताकि नाक का छिद्र अछी तरह में साफ हो जाय।

इसके साथ साथ नौली कर्म का भी अभ्यास करता था। जिस समय धौती, नेती, ठीक ठीक हो गई, उस समय वस्ती कर्म भी किया था परंतु बस्ती कर्म प्राचीन रीतिको छोड कर अर्वाचीन रीति अर्थात यंत्र द्वारा ही किया था। इनके साथ साथ कपालभाति भी करता था। इसमें इतना स्मरण रखना चाहिये, हिम ऋतु में अर्थात् जब शीत अधिक हो उस समय धौती के स्थान पर ब्रह्म दातन की जाती है। जिसका लाभ धौती के सम है, और करने का ढंग सहल है और उसमें शीत का भी कोई भय नहीं है! क्योंकि अभ्यास के समय अधिक शीत से शरीर को बचाना आवश्यक है।

[२] आसन।

इन कर्मों के अतिरिक्त आसन भी किया करता था। क्योंकि आसन योग का एक विशेष अंग है! जो जो आसन किया करता था उनके नाम यह हैं।

(१) **सिद्धासन** --- इसका वर्णन वैदिक धर्म में हो चुका है, इसका अभ्यास घण्टोंका होना चाहिये, क्योंकी प्रायः प्राणायाम इस आसनसे किया जाता है।

(२) **पद्मासन**—इसका अभ्यास भी पर्याप्त होना चाहिये, जिसने भास्त्रिका प्राणायाम करना हो, उसे तो अत्यावश्यक है।

(३) **कपाली आसन**—जिसे वैदिक धर्म में शीर्षकासन लिखा है।

(४) **विपरीत करणी** --- यह आसन भूमि पर पीठ के बल लेट कर बग ऊपर उठाकर कमर के नीचे हाथों का सहारा देकर किया जाता है, इसका फल कपाली से मिलता जुलता है!

(५) **मयूरासन** -- पेट के रोगों के लिये और आमाशय की अग्नि को ज्वलन करने के लिये है।

(६) **पश्चिमतानासन**—जिसे वैदिक धर्म में जानुशीर्षकासन नाम दिया है, इसे में कोई आध घंटा तक कर सकता था।

इनके अतिरिक्त कुछ आसन और भी थे, परंतु उनकी यहां कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। इन आसनों के करने से अनेक रोग दूर होते हैं, और जो अभ्यास करता हो, उसके लिये तो आसन अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि न करें, तो प्राणायामादि भी भली भांति नहीं कर सकता है, और प्राणायामादि से जो शरीर

में थकावट आजाती है, उसे भी इन्हीं आसनों से दूर करना पडता है । और अधिक थकावट होने पर " **शवासन** " करना चाहिये । यह आसन केवल थकावट को दूर करने और शरीर को आराम देने के लिये ही किया जाता है ।

आसन करते समय और उपरोक्त कर्मों के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि, यह यदि पहले न हो सकें तो उस दिन छोड़ कर दूसरे दिन फिर करें । इसी भांति धीरे धीरे करना चाहिये, इसमें शीघ्रता सर्वथा न की जाय, यदि कोई शीघ्रता के लोभ से बल से करेगा, तो सुख के स्थान में दुःख पावेगा और पश्चाताप करना पडेगा ।

---

[३] भोजन ।

धौती के समय से ही भोजन मध्यान्ह के समय ही किया करता था, और रात के समय आध सेर दुग्ध पीया करता था । धौती के साथ यह नियम रखना चाहिये कि, रात के समय कोई नमकवाली वस्तु न खाई जाय । क्योंकि प्रातःकाल धोती के साथ उसका कुछ अंश लगने से गले को कष्ट होता है । और धौती में अधिक श्वेत कफ आता है, और अग्र भाग में पित्त प्रधान व्यक्ति के तो पित्त निकलता है, और वात प्रधान के वात ही निकलता है । और पंद्रह बीस दिन के पीछे रोटी छोड कर प्रातः काल मूंग चावल की

खिचडी ही खाया करता था । जब अभ्यास करते लगभग दो मास व्यतीत हो गए, तो खिचडी भी छोड दी थी । उस समय भोजनार्थ प्रातःकाल एक छटांक घृत और आधशेर दूध पिया करता था, और सायंकाल को तीन पाव दूध ही पिया करता था । यही ८ प्रहर का आहार था और कुछ नहीं खाया करता था ।

[४] प्राणायाम ।



जिस दिन धौती कर्म का कार्य आरंभ किया था, उसी दिन से प्राणायाम भी करने लग गया था। प्रथम दिन २, दुसरे दिन १०, तीसरे दिन १५, इसी क्रम से प्राणायाम वढता जाता है, और प्रातः, मध्यान्ह तथा सायंकाल को किया करता था । उपरोक्त संख्या से वढाते वढाते ८० प्रातःकाल, ८० मध्यान्ह, और उतने ही सायंकाल को किया करता था और आहार प्रथम मध्यान्ह के प्राणायाम के पश्चात और रात को भी प्राणायाम के पीछे किया करता था ।

[५] बंध।



प्राणायाम करते समय बंध भी साथ ही किया करता था । अर्थात् जिस समय पूरक किया करता था तो मूल बंध करता था, और कुंभक के समय जालंदर, और रेचक के साथ उड्डीयान बंध करता था। यह बंध और इनकी रीति वैदिक धर्म में पहले लिखी जा चुकी

है; इस लिये इस समय लिखने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। जिस समय यह प्राणायाम करता था; उस समय सिद्धासन से ही बैठता था। और शरीर को सीधा रखने के लिये जो पग ऊपर हो उसी के पासवाला हाथ पग पर रख कर स्थूणा लगाया करता था, ताकि शरीर किसी ओर को झुक न जाय।

चार मास संशोधक प्राणायाम करके, पीछे इस के साथ साथ भस्त्रिका प्राणायाम भी किया करता था, और इस प्राणायाम में सिद्धासन के स्थान पर पद्मासन लगाना चाहिये। क्योंकि इसके लिये ऐसी ही विधी है, और यदि किसी दिन गरमी अधिक प्रतीत होती थी, तो उस समय उसे शीतली अथवा सीत्कारी प्राणायाम से शांत कर लिया करता था। और संशोधक प्राणायाम को छोड कर शेष तीन प्राणायाम ही किये थे, और कोई नहीं किया, इस लिये मैं इन्हीं से ही परिचित हूं अन्य से नहीं।

[६] फल।

उस समय जो फल हुआ, उसका वर्णन करता हूं। क्योंकि पूर्व केवल साधन ही साधन लिखे हैं, उनसे क्या लाभ हुआ यह प्रत्येक पाठक की अभिलाषा होगी। अतः फल का वर्णन करना आवश्यक है।

मैं पूर्व भी लिख चुका हूं, जिस समय मैंने अभ्यास आरंभ किया था, उस समय मेरा शरीर लगभग २ मण २८ शेर भारी था।

धीरे धीरे शरीर घट कर अंतमें मेरा शरीर लगभग १मण २३ सेर रह गया था। अर्थात् १ मण ५सेर बोझ न्यून हो गया; इतना बोझ कम होने पर भी आश्चर्य यह था, मुझे चलने, फिरने, पढने, लिखने, बैठने ,उठने में कोई कठिनाई प्रतीत न होती थी। बल्कि यह सारे काम पूर्व से भी अछे होते थे। हां, एक अंतर था, जिस का वर्णन करना आवश्यक है, मैं वह काम जो बल से किया जाता है अच्छी रीति से नहीं कर सकता था और शिघ्र ही थकावट हो जाती थी इस लिये जिन सज्जनों के शरीर अति भारी हैं, जिनें चलने फिरने में भी कष्ट हो जाता है, उन्हें यह क्रियाएं नियम पूर्वक करने से महान लाभ होगा।

जिस समय अभ्यास करते करते पांच मास व्यतीत हो गये, उस समय नाद स्फुट हुआ, कई पुस्तकों में नाद स्फुट का समय तीन मास लिखा है किंतु मुझे सफलता ३ मास में न हो कर पांच मास में हुई थी। संभव है, किसी का शरीर लघु होने से इतना समय न लगे, क्योंकि शरीर की अति स्थूलता भी एक प्रतिबंधक है।

यह एक भांति का शब्द है, जो श्रोत्र में उत्पन्न होता है और इसका अक्षरों में लिखना मेरे लिये असंभव है। और इसके प्रकट होने पर सावधान होकर मन को इसी में लगाना पडता है, और उस समय मन इस शब्द की ओर इतना लगता है जो आश्चर्य प्रतित होता

है । किसी किसी समय तो अधिक समय व्यतीत होने पर भी यही पता लगता है कि, अभी ध्यानार्थ बैठा हूं परंतु घड़ी देखने से पता लगता है कि, अभी कई घंटे वीत गए हैं । यह सर्व ही स्वसंवेद्य है, अतः अधिक लिखना उचित नहीं है । इस समय एक अति विचित्र बात हुई थी, जिसका कई दिन तो मुझे भी पता न लगा कि, क्या बात है । अंत में बार बार के साक्षात्कार और गुरुजी के कहने से निश्चय हुआ । वह घटना इस प्रकार है । जब कि मैं प्राणायाम और उपर वार्णित क्रियाएं किया करता था, कई मास के पश्चात् यह अवस्था हो गई । मैं जिस समय ध्यानार्थ बैठता था, अथवा वैसे आराम के लिये लेटता था, तो एक प्रकार की मीठी मीठी गंध आया करती थी, और किसी समय वह नहीं आती थी ! मुझे आश्चर्य था कि, जिस कमरे में मैं रहता हूं, उसमें कोई सुगंधित वस्तु नहीं, और पास एक वाटिका थी, परंतु उसमें भी कोई सुगंधित पुष्प उस समय नहीं दीखते थे । और जब बन्द होती थी; तो भी वह सर्व पूर्ववत होते थे, अतः कोई पता न लगता था कि, गंध क्यों बन्द होगई । अंत में एक दिन अचानक एक संदेह हो गया, और कुछ दिन पीछे वही निश्चय में परिणत हो गया । वह इस प्रकार हुआ, एक दिन मध्यान्होत्तर समय में ध्यान से उठा तो गंध प्रतीत होती थी, अनेक यत्न करने पर भी कारण का बोध न होता था, कुछ समय उसी गंध का आनन्द लेकर स्नान के लिये उठा, स्मरण

रहे मैं उस समय स्नान कई दिवस पीछे किया करता था, प्रति दिवस नहीं करता था। कूप पर गया जल निकाला और स्नान करके अपनी कोठडी में आकर फिर बैठ गया, और उसी समय पता लगा कि, इस समय गंध नहीं। इसका कारण क्या है, किंतु कुछ पता न लगा, कोई आध घंटा पश्चात् प्राणायाम का समय था, वह आया, तो मैं अपने कृत्य में लगगया। गरमी की ऋतु थी, उस कृत्य से पसीना आ गया, और उस स्वेद को यथाविधि हाथों से मल शरीरपर सुखा दिया, और ध्यान में बैठ गया, और जब ध्यान से चित्त हटाया तो पता लगा कि इस समय गंध आरही है। फिर संकल्प विकल्प की धारा चलने लगी। उन्हीं में एक संकल्प यह भी हुआ कि; कहीं पसीना ही तो कारण नहीं है! परंतु निश्चय होना कठीन था। वह गंध लगातार अती रही, और जिस समय स्नान किया, उसी समय फिर दूर हुई। तब से निश्चय होगया कि, यह गंध स्वेद का ही है, अन्य कोई कारण नहीं है। साधारण रीतिपर पसीने मे दुर्गंध होती है, न कि सुगंध, इसी लिये मैंने गुरुजी से भी पछा उन्होंने भी यही उत्तर दिया, जो आपने सोचा है वही ठीक हे। उसके पश्चात कई वार देखा जिससे सर्वथा निश्चय होगया कि, अभ्यास में एक समय स्वेद में भी अतिमधुर सुगंधि होती है। संभव है कई सज्जन इस पर विश्वास न करें, परंतु मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है। और मेरे लिये यह इतना ही सत्य है, जितना वन्हि में उष्णता का होना सत्य है।

इसके अतिरिक्त किसी किसी दिन मन इतना चंचल हो जाता-था, अथवा ऐसे संकल्प होते थे, जिन्हे मैं सर्वथा न चाहता था। उनका पता भी उन्हीं दिनों में लग गया, और लोगों के स्वयंपाकी होनेका भी मैं उस समय से पक्षपाती हो गया। मैं उस समय भोजन तो खाता न था, केवल घृत और दुग्ध पर रहता था, दुग्ध आश्रम में गौएं थीं, उनसे मिलता था, और घृत ग्राम से मोल लेया होता था। जिस गृह में घृत बनाने वाले जिस स्वभाव के होते थे, उनके घृत खाने से मेरे मनमें भी संकल्प उन मनुष्यों के प्रभाव से शून्य न थे। साधारण अवस्था में इस बात का कोई पता नहीं चलता, किंतु, अभ्यास के समय में यह बातें अति प्रगट होती हैं। इस लिये जिसने अभ्यास अधिक करना हो, उसके लिये आवश्यक हो जाता है, वह स्वयंपाकी हो अथवा उसके सेवक साथी भी वैसे ही उच्च विचार वाले हों।

अंत में एक बात और लिख कर मैं अपने विषय को समाप्त कर दूंगा, एकांत में बैठे हुए कई वार अचानक कोई संकल्प उठता था, उस संकल्प के लिये कई वार तो भ्रम हो जाता था, कि स्वप्न में यह संकल्प हुआ है, अथवा जाग्रतावस्था में; परंतु वह कुछ ही दिनों पींछे सच्चे हो जाते थे। यह बात अनेकवार हुई, और मुझे जहांतक स्मरण है, मैं कह सकता हूं, यदि अधिक नहीं, तो प्रति शतक ८० उस अवस्थाके उस भांति के संकल्प ठीक हो जाते थे। जिनका कि प्रथम कोई ख्याल भी न होता था।

अब एक बात और लिखनी शेष रही, मेरे साथी एक और साधु थे, जो अभ्यास किया करते थे, अभ्यास से पूर्व भी उनका शरीर बडा दुर्बल था, और वह नित्य प्रति वैद्यों और डाक्टरों को देखा करते थे। उनकी चिकित्सा हकीमोंनें की और उन्होंने वैद्योंकी औषधियों का सेवन किया, तथा डाक्टरों की सम्मतीसे लाभ उठाया, तो भी उस शूर वीर रोगी को कुछ लाभ न हुआ। कोई सिल (राजयक्ष्मा) कहता था, और कोई कोई इसी भांति का और भयानक नाम बता देता था। यदि वह किसी दिन लोभ-वश १ पावभर दूध पीलें तो उनकी वह गति होती कि वह फिर दूध के दर्शन से ही घबरा उठते। उन्हें भी सलाह दी गई, जब रोगसे मरना है, तो अभ्यास करने में क्या हानि है ? उन्होंने इसे मान लिया, और पूर्व वर्णित विधि से ही अभ्यास आरंभ किया। और जिस समय अभ्यास करते छः मास व्यतीत हो गये, उस समय उनका शरीर तो पूर्ववत् ही कृश था, परंतु उनके चलने फिरने की शक्ति इतनी बढ गई, जो किसी किसी दिन वह २५ मील चक्कर काट कर थकनेका शब्द जिह्वापर न लाते थे!! और पूर्व जो दूध को विष समझते थे, इस समय दो सेर दूध पी जाते थे, और कोई विकार न होता था। अर्थात् पूर्व जिन्हे जुकाम, खांसी, निर्बलता, अक्षुधा, दुर्बलता आदि ने आकर चारों ओर से घेर रखा था, अब उनके पास इनमें से कोई भी न फरकती थी। उनका रोग जिसे वैद्य और डाक्टर असाध्य कहते थे, इसी योगा-भ्यास से दूर हो गया था।

एक बात मैं अपने विषय में भूल गया था, वह यह है, अभ्यास से पूर्व मैं पढते समय ऐनक लगाता था, जब ७ मास अभ्यास करते होगये, तो ये ४ से हट कर मेरा शीशा नं. २ पर आगया, और वर्ष के अंत में नं. १ के शीशे से पढता था और कई बार विना ऐनक भी समाचार पत्र पढ लेता था। जहां प्रथम अक्षरों का पता ही न चलता था, अब अभ्यास छोड दिया है, तो भी मेरी दृष्टि पहले से कहीं अच्छी है।

लेख अधिक लंबा होने से घबराकर मैं उप संहार में इतना ही लिखना पर्याप्त समझता, मेरा यह अनुभूत विषय है, और इस से अनेक लाभ होते हैं, यदि आगे आवश्यकता हुई, तो मैं इन्हीं बातों को विस्तार से लिख दूंगा।

मनुष्य पुरुषार्थ प्रयत्नसे निःसंदेह
अपनी उन्नति कर सकता है।

शीर्षासन से अंतर्गल की बीमारी दूर हो गई।

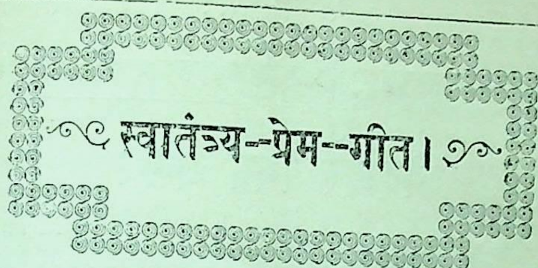
मुझे बडे दिनोंसे [illegible] शिकायत थी। एक समय ऊपरकी मंजिल से नीचे उतर रहा था, पांच छे पैडियां उतर आनेपर अंड कोशके ऊपर और नाभीके नीचे इतना सख्त दर्द शुरू हुआ कि दो चार निमेषोंमें वह दर्द असह्य हुआ, और बढता ही गया। यह दर्द इतना फैला कि नाभीसे लेकर अंडकोशतक फैलता गया। जिससे चलना फिरनाभी अशक्य हुआ। और प्रतिक्षण दर्द बढने लगा। इतनेमें "**शीर्षासन**" करके देखनेका विचार मनमें आगया। परंतु शीर्षासन होगा या नहीं इस विषयमें शंका थी। तथापि दर्द के स्थान को हाथसे पकडकर मैं अपने कमरे में चला गया, और दीवारके आधारसे "**शीर्षासन**" करनेका यत्न किया। **जिस समय मेरा सिर नीचे और पांव ऊपर होगये, उसी निमेषसे दर्द बिलकुल हट गया।** मुझे इतना आनंद और आराम हुआ कि उसका वर्णन होना अशक्य है। इसके बाद आधा घंटा मैं शीर्षासन करता रहा, पश्चात आसन खोल कर खडा हुआ। परंतु कोई दर्द न था, परंतु अंडकोशके उपर

एक गोलासा था और वहां जलन रहती थी। शीर्षासन करनेतक यह गोला चले जाता था, और पुनः खडा होनेपर आजाता था और जलन करता था।

मैं दिन में दो तीन वार शीर्षासन करने लगा, इससे चार दिन में यह सब बीमारी हट गयी। पीछे डाक्टरोंसे यह सब अवस्था निवेदन की, उन्होंनें सब अवयवों की परीक्षा करके कहा कि यह अंतर्गल की बीमारी है, (आपरेशन) काटने से ही यह दूर होती है अथवा कमानका पट्टा बांधने से। परंतु अब शीर्षासन से ऐसा आराम हुआ है कि अब इस समय कुच्छ करने की आवश्यकता नहीं है। इसके बाद भी मैं नियमपूर्वक शीर्षासन करता रहा, अब उस प्रकार की कोई पीडा नहीं रही। " **वैदिकधर्म** " के आसन विषयक लेखोंसे मुझे यह लाभ हुआ है। और मुझे आशा है कि अन्य पाठकों को भी इसी प्रकार अनेक लाभ होंगे। " **वैदिक धर्म** " में जो योग विषयक लेख आते हैं बडेही उपयोगी हैं। इस विषयमें कई अनुभव मैंने लिये हैं जिनका वर्णन फिर किसी समय करुं गा।

रत्नागिरी
३१।५।५३

भवदीय
शि. ना. पंडित.



स्वातंत्र्य-प्रेम-गीत।

(लेखक—श्री. पं. गणेशदत्त शर्मा गौड " इन्द्र) "

ॐ योऽस्मांश्चक्षुषा मनसा चित्याकूत्या च यो अधायु
रभिदासात्। त्वं तानग्ने मेन्याऽमेनीन् कृणु॥

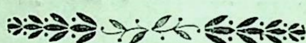
अथर्व ५।६।१०

अर्थः—आँख, मन, चित्त, कर्म आदिके द्वारा जो [अध—आयु] पापी हम सबको सब प्रकार से दास बनानेका यत्न करेगा; हे तेजस्वी प्रभो ! तू उसको अपती शक्तिसे निर्बल कर।

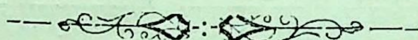
[गीतिका वृत्त]

आंख से चित्तसे मन अरु कर्म द्वारा जो हमें।
दास करना चाहता हो यत्न से पापी हमें॥
हे प्रभो ! उस नीच को निज शक्तिसे नीच करो।
निर्बल करो; यह पार्थना है दुःख यह जल्दी हरो
॥ १३ ॥

वेदोंपर प्रथम दृष्टि।



(लेखक—श्री. पं. अभय देवशर्मा विद्यालंकार)



वेद विषय में मेरा स्वाध्याय अतीव स्वल्प है। अतः इस विषय पर मुझे अपनी सम्मति देनेका वास्तव में अभी अधिकार नहीं है। तथापि जब सम्मति देनेको कहा जाता है, तो जो कुछ इस स्वल्प काल में मेरा अनुभव हुआ है, वही कह सकता हूं; वह चाहे सत्य हो, अथवा सम्भव हो सकता है कि, कालान्तरमें मुझेही उसकी असत्यता का ज्ञान हो। अस्तु। वेद देखनेसे चार बातों पर मेरा ध्यान आकर्षित हुआ है। मैं समझता हूं कि वेदों पर पहली दृष्टि पडने पर सभी को ये बातें अनुभव होती होंगी।

वे बातें यह हैं:

[१] वेदोंमें बहुधा जड वस्तुओं का भी जीवित जागृत सा वर्णन है।

[२] वेदों के विचारने पर सब तरफ देवताही देवता दृष्टि-गोचर होते हैं।

[३] वेदों में सब जगह व्यक्ति का संपूर्ण ब्रह्माण्ड के साथ सम्बन्ध दिखाया गया है, इसे कहीं भी भूलने नहीं दिया गया।

[४] वेदों में युद्ध का वर्णन बहुत है।

इन सूत्रों पर क्रमशः एक एक करके मैं अपनी टीका करता हूं।

(१) वेद में प्रायः सभी वस्तुयें जीवित जागृत रूप से वर्णित हैं। …तु इसका यह मतलब नहीं कि, वेद के अनुसार सब वस्तुयें चेतन …ी हैं। 'चेतन अचेतन,' 'जंगम स्थावर,' आदि भेद तो बहुत …टतया वेद में जगह जगह दिखाये हैं। परंतु फिर भी हम देखते हैं …, वेद में औषधियां वैद्य से बातचीत करती हैं। वेद में भूमीमाता … साथ भाषण हो रहे हैं। वेद में शाला के 'सुमना' रहने की …छा प्रकट की जाती है, मानो मकान भी कोई मनवाली वस्तु है। … जल, वायु' सूर्य आदि के साथ चेतनवत् व्यवहार किया जाता …। इसका क्या कारण है। इसका कारण है, वेदानुमत चेतनकी प्र…नता और वेद की कवितामयी भाषा। अब भी जगत् के अध्यात्म …ी पुरुष जो आत्मा का अनुभव करते हैं हर एक जड वस्तु में भी …ी चेतन शक्ति को देखते हैं। जो स्वयं जैसा होता है, वैसा ही …को देखता है। अपने आपको चेतन देखने वाला बाहर भी …नताका ही प्रकाश देखता है। बहुत से पौर्वात्य और पाश्चात्य भी …मा हुए हैं, जो जड समझीजाने वाली वस्तुओं से चेतनवत्

बरतते थे । वे बनावट नहीं करते थे, सचमुच ऐसाही अनुभव करते थे । आपमें से कई होंगे, जो अपने गाय, बैल आदि पशुओं से बातचीत कर सकते हैं; थोडासा आगे बढें तो पाक्षियों वृक्षोंसे भी बातचीत की जा सकता है, और मैं कहता हूं कि, यदि हम अपनेमें और अधिक चेतनता बढावें, तो एक रास्ते में पडी हुई कंकरी को उठाकर उससे भी वार्तालाप किया जा सकता है । वह हमें बतायेगी कि किस किस अवस्था और किस किस संगत में रही है । यदि एक वैद्य का औष-धियों से इतना भी धानिष्ट सम्बन्ध नहीं कि, वह औषधियों के साथ बोल सके, तो वह कुछ वैद्य नहीं है । मैं समझता हूं कि, आप यह समझ सकतें हैं कि, एक शूर वीर अपनी तलवार या धनुष्य के साथ कैसे बात कर सकता है ! एक ' मातृमान् अपनी मातृभूमी की पुकार - सचमुच पुकार - कान से कैसे सुन सकता है ! एक अपने घर से प्यार करने वाला अपने जड मकान को भी कभी "सुमना" और कभी "दुर्मना" अनुभव कर सकता है । बात यह है कि, वस्तु से हमारा जितना धानिष्ट सम्वन्ध होगा और अपने में चेतनता का जितना अधिक विकास होगा उतना ही मनुष्य दुसरी वस्तुओंसे चेतनवत् व्यवहार करेगा । आप में से सब जानते और मानते हैं कि मनुष्य चेतन हैं' आप चेतन हैं, परंतु क्या दुनिया में आपने ऐसे लोग नहीं देखे, जो आपसे ऐसा व्यवहार करते हैं, जानो आप में जान ही नही है । मनुष्यों पर पाशविक अत्याचार यही जान कर हो सकते हैं । कहते हैं कि, योरोप में एक समय था; जब वहां स्त्रियों मे जीव नहीं है, ऐसा माना जाता था, । अस्तु । वेद में इस से वि-

विपरीत बात है, वहां चेतनता का राज्य है !! इस विषय में वेद की कविता पर भी मेरा ध्यान जाता है, जिस के कारण कि वेद में ऐसे सजीव वर्णन हैं। परंतु कविता का अर्थ गप्प नहीं है। कविता का यही अर्थ है कि, वस्तुका हृदयग्राही रूप से यथार्थ वर्णन किया जाय। इसी लिये मैंने कविता विषय पर अधिक न कह चेतनता की बात पर ही विशेष कहा है।

[२] दूसरी बात है, देवों का दर्शन, जो कि वेदाध्ययन से प्राप्त होता है। यह जलनेवाली अग्नि, "देव" है। यह विलक्षण वस्तु जल "देव" है। यह प्राणसाधन वस्तु 'वायु' देव है। यह विस्तृत पृथिवी "देव" है। यह प्रकाशमय "सूर्य" "देव" है। अपने अन्दर इन्द्रियां प्राण, मन आदि **दिव्य देव** हैं ! अन्दर देव हैं, बाहर देव हैं। प्रतिक्षण हमारा देवों से ही वास्ता है! मैं तो कम से कम जब से वेद पढने लगा हूं' तब से बहुतवार ऐसा ही अनुभव करता हूं कि,मैं देवों की वस्ती के बीच में बस रहा हूं !! सब तरफ देव ही देव हैं !!! मैं भी देव हूं ! सब मनुष्य देव हैं ! सदा देवों का ही साथ है !! मैं कल्पना करने लगता हूं कि, वैदिक समय में जब सब लोग अपने को देवों के मध्य में स्थित अनुभव करते होंगे, तब यही संसार कैसा स्वर्ण, आनन्दमय, देव समान होता होगा ! मैं कहता हूं की, हम क्षणभर यह अनुभव करें,तो हमारा जविन बदल जाय। हम अपने आप को देवों से घिराहुआ देखें, संसार की एक एक घटना में देवों की क्रिया देखें, तो हमारा बहुतसा जगत्व्यवहार बदल जाय। पर शायद आप

पूछें, यह ' देव ' क्या है? मैं यहां इसका ठीक ठीक दार्शनिक लक्षण शायद न कर सकूं। पर यह तो साफ है कि, देव परमात्मा की भिन्न भिन्न शक्तियां हैं। **स देवाना नामध एक एव।** जब उसकी शक्तियों को पृथक् पृथक् रूप में देखते हैं-[और मनुष्य उसकी शक्तियों को ही देख सकते हैं] बस ये ही देव हैं। देवों में यही दृष्टि रखनी चाहिये। वैसे ' देव ' शब्दपर विचार करें, तो ' अकृत्रिम आत्मनियमानुसार चलने वाली, अद्भुत शक्ति या गुणवाली वस्तु' यह त्रिविध भाव 'देव' में मालुम होता है। यदि हम अन्दर बाहर सब तरफ इन्हीं दिव्य वस्तुओं को देखें, इन्हीं में विचरें, इन्हीं के साथ सोवें और जागें। इन्हीं दिव्य वस्तुओं के साथ अपना एक एक कार्य करें, तो क्या हमारा जीवन दिव्य नहीं हो जायेगा ? निः संदेह; जब हमारा जीवन सम्भवतः पवित्र हो जायेगा, पापाचरण हमारे लिये कठिन हो जायेगा, तब हमारे प्रत्येक कार्य देवों द्वारा सिद्ध किये जायेंगे, जैसा कि हमारे सब प्राचीन साहित्य में वर्णन आता है।

[३] वेद के अनुसार व्यक्ति विश्व-ब्रम्हाण्ड से जुडा हुआ है। छोटेसे व्यक्ति का इस विशाल ब्रम्हाण्डसे घनिष्ट सम्बन्ध है। व्यक्ति इसका छोटासा अवयव है। इस बात को वेदमें कहीं भी भूलने नहीं दिया गया है।

तभी हम देखते हैं कि चाहे जो कोई भी प्रकरण क्यों न हो, वहां ' द्यावापृथिवी ' आ पहुंचती हैं।

द्यावापृथिवी

पृथिवी

रोदसी उभे

इदं विश्वं

विश्वा भुवनानि

भूमिरन्तरिक्षमथो द्यौः

आदि शब्दोंसे वेद भरा पडा है। वेद मन्त्रों द्वारा स्तुति करने वाला स्तोता 'द्यावापृथिवी' से नीचे तो उतरता ही नहीं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही उसे पाप से मुक्त करता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही उसकी प्रार्थना कामना को पूरा करता है। उसकी कोई भी इच्छा हो, वह सब भुवनोंका—विश्व—का स्मरण करता है। उसकी छोटी सी छोटी बात का सम्बन्ध तीनों लोकों (अर्थात ब्रह्माण्ड के) साथ है। यह कैसी उच्चतादायक स्थिती है। जो ऐसी विशाल दृष्टि रखेगा, वह क्यों न विशाल होता जायेगा। वह विशालहृदय होगा। तब मनुष्य उदार होजाता है, विस्तृत होजाता है, स्वार्थ को भूल जाता है, हलका होजाता है, इसी लिये वैदिक समय के लोग न केवल विशाल हृदय होते थे, किन्तु विशाल डोलडौल के होते थे, दीर्घजीवी होते थे, और वे दीर्घजीवन की इच्छा करते थे हम अपने ५, ५।। फीट के

शरीर में अपने को कैद समझने वाले, और सब दुनियां से अपने को विच्छिन्न करा हुआ समझने वाले, हमारे लिये तो यह संसार सचमुच दुःखमय है, इसी लिये हमें ६०, ५०, वर्ष का जीवन ही भारी मालूम पड़ता है,२०० वर्ष की आयु की इच्छा तो दूर रही!! सचमुच यही बात है की, वेद में जगह जगह आई हुई दीर्घ आयु की प्रार्थनायें हमें समझ ही नहीं आतीं। यह तो उन्हें समझ में आवे, जिनका द्यौ पिता और भूमी माता हो। उन्हें समझ में आवे जिनको कि अपने शरीर में तिनों लोक हैं, और इन विशाल गम्भीर लोकों में [विश्व में] जो अपना स्वत्व देखते हों। वेद में जो दान की इतनी महिमा है, हविः[त्याग] का इतना महत्व है, तप की चर्चा है, इसे यदि हम समझना चाहते हों, तो उसी प्रकरण में इन्हे सहज में समझ सकते हैं।

[४] वेद में युद्ध की चर्चा बहुत है। शत्रुओं के नाश और प्राभव की स्थान स्थान पर प्रार्थनायें हैं। क्या वेद वाले शत्रुओं से ज्यादा सताये हुऐ थे? मालूम तो ऐसा नहीं होता। मित्रता और शान्ती के उपदेश भी वेद में बहुत जोरदार हैं। इस बात को वे लोग समझ सकते हैं, जिन्होंने **'जीवन'** पर विचार किया है। आपको यह बतलाने की जरूरत नहीं कि, आरामतलबी में जीवन नहीं है; **जीवन है तप में। जीवन संग्राम मय है।** कशमकश ही जीवन है, ऐसा कहाजाय, तो कुछ अत्युक्ति नहीं। इस जीवन संग्राम का वर्णन यदि वेद में न हो, तो और कहां हो। वेद में जिस

प्रकार के संग्राम का वर्णन है, जरा उसे भी देख लीजिये। मैं इसके लिये कुछ वैदिक शब्दों को ही परीक्षण नलिका में डालूंगा। इन्द्र और वृत्र की लडाई वेदों में खूब कही है यह तो आप जानते होंगे कि 'वृत्र' नाम है पाप का। अर्थात् इन्द्र और पाप की लडाई। निघन्टु में जहां संग्रामवाचक शब्द पढे गये हैं, वहां 'वृत्रतूर्य' शब्द भी है। इसका अर्थ है वृत्र का हनन। 'वृत्रहंता' शब्द भी वेद में एकमात्र संग्राम अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। अर्थात वेद के अनुसार जितने भी संग्राम होते हैं, उनमें पाप का ही हनन होता है, तभी संग्राम का नाम ही "पाप-हनन" है। और वेद में शत्रु कौन है? 'अराति' 'अभिमाति' अर्थात् दान न करना, अभिमान करना आदि। एक और बात देखिये। यह नैरुक्त सिद्धान्त है कि, जितने यज्ञवाचक शब्द हैं, वे सब संग्रामवाचक भी हैं। क्या इसका यही मतलब नहीं कि, वेदोक्त संग्राम से वही तात्पर्य है, जो 'यज्ञ' का तात्पर्य है। अस्तु। इन्द्र का अर्थ स्पष्ट है=आत्मा। आत्मा और अनात्मा का हमेशाका संग्राम है। इसेही देवासुर संग्राम कहते हैं। इसी संग्राम के कारण यह दुनिया है। इसी युद्ध को लडने के लिये मनुष्य संसार में आता है, और यावज्जविन इसे ही लडता है। अब आप समझते होंगे कि, ईश्वरीय ज्ञान में इस युद्ध की चर्चा कितनी जरूरी है। अतएव वेद में 'इन्द्र' का बहुत वीरोत्तेजक वर्णन है। मेरी मती में मुख्यतया वेद में इसी संग्राम का वर्णन है। यद्यपि और प्रकार के संग्राम भी वेद में जरूर बताये गये हैं, परंतु मुख्यतः यही वर्णित है।

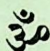
अन्त में मैं एक शब्द की तरफ और निर्देश करना चाहता हूं वेद में जहां कहीं शत्रुओं का जिक्र है, वहां प्रायः 'सह' धातु का प्रयोग है; उनको सहन करने को कहा गया है। सहन का अर्थ बताते हुए टीकाकार प्रायः यह कहते हैं कि, वेद में 'सह' धातु का अर्थ 'अभिभव' है। इसका प्रसिद्ध अर्थ आप जानते ही हैं, "सहना" ऐसा होता है! 'षह मर्षणे' धातु है। और सहन-करना अर्थही ज्यादा संमत और साफ है। अथर्व वेद के पृथिवी सूक्त का एक मन्त्र देखिये।

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्यां।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः।'

अथर्व १२।१।५४

इसमें चार जगह [अर्थात् सहमान, अभिषाड्, विश्वाषाड् और विषासहि] सह् धातुका प्रयोग हुआ है। यहां सहना यह अर्थ सर्वथा उपयुक्त है, किन्तु यदि इसका अर्थ अभिभव है, तो भी 'मारना या घात करना' नहीं होता। अभिभव का यही अर्थ है कि, अपनी शक्ति, अपना तेज, इतना अधिक हो कि, दूसरे की शक्ति उसके मुकाबले में स्वयमेव दब जाय। लौकिक साहित्य में अभिभव का यही अर्थ है। इस शब्दका प्रसिद्ध उदाहरण यह है कि, सूर्यके उदय होनेपर अन्य सब नक्षत्रोंका अभिभव हो जाता है।

आशा है इस स्वल्प विवेचनसे वेदोक्त संग्राम की कुछ कल्पना पाठकों को हो सकेगी।



वैदिक धर्ममें विज्ञापन।



"वैदिक धर्म" मासिक पत्रमें विश्वास पात्र विज्ञापन मुद्रित करनेका प्रारंभ हुआ है। हम हर एक विज्ञापन नहीं लेते, परंतु जो विश्वास रखने योग्य और हमारे ग्राहकोंके लिये लाभ कारी होंगे, वेही विज्ञापन हम लेते हैं।

"वैदिक धर्म" में मुद्रित किये विज्ञापनोंसे विज्ञापकों को बहुत लाभ हो सकते हैं, इस के कारण निम्न लिखित हैं—

(१) हरएक ग्राहक इस "वैदिक धर्म" मासिकको संभालकर रखता है, इस लिये इसमें एक वार दिया हुआ विज्ञापन अन्यत्र अनेक वार मुद्रित करनेके बराबर होता है।

(२) हम केवल विश्वास रखने योग्य और चुने हुए। विज्ञापन ही मुद्रित करते हैं, इसलिये हमारे मासिकमें मुद्रित किये हुए विज्ञापनोंपर पाठकोंका विश्वास रहता है।

(३) आप जानतेही हैं विश्वासके स्थानमें मुद्रित किये विज्ञापनोंसे अधिक लाभ हो सकता है।

(४) " वैदिक धर्म " में एकवार मुद्रित किया हुआ विज्ञापन कई वर्षतक पाठकोंको आपका स्मरण देता रहेगा।

(५) धार्मिक पुस्तकें, स्वदेशी कारीगरीकी चीजें, आदि के विज्ञापनों के लिये विशेष सुविधा की जायगी।

इत्यादि बातोंके कारण इस वैदिक धर्ममें विज्ञापन रखना आपके लिये लाभ कारी होगा। आशा है कि आप इससे लाभ उठायेंगे।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल,
औंध; [जि. सातारा.]



वैदिक धर्म मासिक पत्रमें विज्ञापन।

" वैदिक धर्म " मासिक पत्र में विज्ञापन छपाई के नियम निम्न लिखित हैं —

(१) विश्वास रखने योग्य विज्ञापन ही इस पत्र में मुद्रित होंगे।

(२) जिन विज्ञापनों से ग्राहकोंके लिये लाभ होगा, इसी प्रकारके विज्ञापन मुद्रित होंगे।

(३) औषधियोंके विज्ञापन लिये नहीं जायगे।

विज्ञापन का मूल्य।

	१ वर्ष के लिये प्रतिमास	६ मास के लिये प्रतिमास	३ मास के लिये प्रतिमास	१ मास के लिये प्रतिमास
एक पृष्ठ	रु. ७)	रु. ८)	रु. ९)	रु. १०)
आधा पृष्ठ	रु. ४)	,, ४॥)	,, ५)	,, ६॥)
चतुर्थांश पृष्ठ	रु. २।)	,, २॥)	,, ३)	,, ४)

विज्ञापन का मूल्य पहले लिया जायगा।

[४] विज्ञापन छपते समयतक विज्ञापक को विना-मूल्य वैदिक धर्म मासिक पत्र दिया जायगा।

" वैदिक धर्म " मासिक पत्रमें विज्ञापन देना बहुत लाभ दायक है, क्यों कि इस पत्रके अंक ग्राहक सुरक्षित रखते हैं।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध, [जि. सातारा.]

" दिया सलाई का धंदा । "

हम दिया सलाई का धंदा सिखाते हैं । अनेक देसी लकडीयों से दियासलाईयां बनाना, बक्स तैयार करना, ऊपर का मसाला लगाना आदि कार्य दो मास में पूर्णता से सिखाये जाते हैं ।

सिखलाने की फीज केवल ५०) पचास रु. है ।

हमारी रीतिसे दिया सलाई का कारखाना ५००) रु. में शुरू किया जा सकता है और लाभ भी होता है ।

यहां रहने तथा भोजन आदिका व्यय प्रतिमास १५) रु. होता है ।

अनेक विद्यार्थी स्थान स्थानसे आकर सीख रहे हैं । जो इस धंदे को अपने नगर में शुरू करना चाहते हैं यहां शीघ्र आजांय और सीख कर दो मासमें अपना धंदा शुरू करें ।

मोहिनीराज मुळे एम्. ए.
स्टेट लैबोरेटरी, औंध (जि. सातारा)

[हम इस कारखाने की दिया सलाईयां बरत रहे हैं । और यहां यह धंदा सिखाया जाता है । — संपादक - वैदिक धर्म]

स्वाध्याय के ग्रंथ।

—:*:—

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। **नरमेध**। " **मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन**। " मूल्य १)
(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। **सर्वमेध**। " **एक ईश्वरकी उपासना**। " मू. ॥) आठ आने।
(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। **शांतिकरण**। " **सच्ची शांतिका सच्चा उपाय**। " मू. ॥) आठ आने।

[२] देवता- परिचय- ग्रंथ- माला।

(१) **रुद्र देवताका परिचय**। मू. ॥) आठ आने
(२) **ऋग्वेदमें रुद्र देवता**। मू. ॥=) दस आने।
(३) **३३ देवताओंका विचार**। मू. =) दो आने।
(४) **देवताविचार**। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग- साधन- माला।

(१) **संध्योपासना**। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥)
(२) **संध्याका अनुष्ठान**। मू. ॥) आठ आने।
(३) **वैदिक--प्राण--विद्या**। (प्राणायाम--पूर्वार्ध) मू. १) रु.
(४) **ब्रह्मचर्य**। मू. १।) सवा रुपया।
(५) **योग-साधन की तैयारी**। मू. १) एक रु.
(६) **योग के आसन**। मू. २) दो रु.

[४] धर्म- शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. ≁) एक आना ।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । मू. ≈) दो आने ।
(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक । मू. ≋) तीन आने ।

[५] स्वयं शिक्षक माला ।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । मू. १॥) डेढ रु. ।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु. ।

[६] आगम- निबंध- माला ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।≁) पांच आने ।
(२) मानवी आयुष्य । मू. ।) चार आने ।
(३) वैदिक सभ्यता । मू. ≋) तीन आने ।
(४) वैदिक चिकित्सा- शास्त्र । मू. ।) चार आने ।
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥) आठ आने ।
(६) वैदिक सर्प- विद्या । मू. ॥) आठ आने ।
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय । मू. ॥) आठ आने ।
(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥) आठ आने ।
(९) शिव संकल्पका विजय । मू. ॥। बारह आने ।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ॥) आठ आने ।
(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥) आठ आने ।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र । मू. ≋) तीन आने ।
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. ≈) दो आने ।

मंत्री — स्वाध्याय- मंडल; औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक:--श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि.सातारा)

Registered No. B. 1463.

वर्ष ४ अंक १० आश्विन सं. १९८०

क्रमांक ४६ अक्तूबर स. १९२३



वै ...क धर्म" प्रतिमास पहिली तारीख के दिन प्रकाशित ...गा।

...क देख भालकर एकही दिन डाक खानेमें दिये

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-मासिक-पत्र।

संपादकः-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

...मूल्य ३॥) साढे तीन रु.। विदेशके लिये ४॥) साढे चार रु.।

विषय सूची।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। मू. १ ......४६५
(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग। मू. १॥ ...४७१

[६] आगम- निबंध- माला

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।-) पांच

आसनों का अभ्यास।



आसनों के अभ्यास से संपूर्ण शरीर नीरोग होता है। उत्साह, बल, आरोग्य, ओज और कांति बढने के लिये आसनों का व्यायाम सर्वोत्तम है।

आसनों का सचित्र पुस्तक।

इस पुस्तक में आसनोंका वर्णन चित्रों के समेत दिया है। इसको पढकर आप स्वयं आसन कर सकते हैं।

मूल्य २) दो रु० है। शीघ्र मंगवाइये।

मंत्री स्वाध्याय मंडल;
औंध, (जि. सातारा)

वैदिक धर्म के नियम।

[१] "**वैदिक धर्म**" प्रतिमास पहिली तारीख के दिन प्रकाशित होगा।

[२] सबके अंक देख भालकर एकही दिन डाक खानेमें दिये जाते हैं। तथापि किसी कारण किसीको किसी मासका अंक न मिला, तो उसी मासके अंतमें निम्न लिखित पतेपर विदित करनेसे पुनः भेजा जायगा। परंतु एक दो मासके पश्चात् पिछले अंक मिल नहीं सकेंगे, क्यों कि पिछले अंक शीघ्रही समाप्त हो जाते हैं।

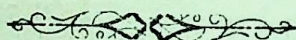
[३] ग्राहक अपने पत्रोंपर अपनी "**चिट संख्या**" अवश्य लिखें, नहीं तो उनके पत्रोंका योग्य उत्तर मिलना कठिन होगा।

[४] **उर्दू पढनेवाला यहां कोई नहीं है, इसलिये कोईभी महाशय उर्दूमें पत्र न लिखें। उर्दूमें लिखे पत्रोंका उत्तर दना हमारे लिये अशक्य है।**

[५] "**वैदिक धर्म**" का वार्षिक मूल्य ३॥) साडे तीन रु. है! विदेशके लिये ४॥) रु. है। **मूल्य मनीआर्डर द्वारा भेजनेमें ग्राहकों का लाभ है।**

[६] मूल्य भेजने तथा प्रबंधके संबंधका सब पत्र व्यवहार "**मंत्री–स्वाध्याय मंडल, औंध** (जि.) सातारा" के नामसे करना चाहिये।

लेखकों के लिये सूचना।



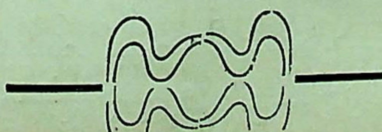
[७] "**वैदिक धर्म**" में प्रकाशनार्थ लेख, कविता आदि, तथा "वैदिक धर्म" के परिवर्तनार्थ पुस्तकें, और मासिक पत्र आदि "संपादक — वैदिक धर्म, औंध (जि. सातारा)" के नाम आने चाहिये।

(८) लेखक अपने लेख कागज की एक ओर ही लिखें, और जहां तक हो सके वहांतक यत्न करके सुवाच्य लिखनेकी कृपा करें। जिससे लेख के मुद्रणमें कोई अशुद्धि होने का संभव नहीं होगा।

[९] लेख जहांतक हो सके वहांतक छोटे हों। उसमें झगडों के शास्त्रार्थ और ईर्ष्या द्वेष के भाव नहों। लेख में कुछ विशेष **विचारकी तथा पाठकोंके हितकी नवीन बात अवश्य हो!**

[१०] "**वैदिक धर्म**" में केवल अनुवाद के लेख छापे नहीं जांयगे।

मंत्री —— स्वाध्याय मंडल. औंध [जि. सातारा]



वैदिक तत्त्वज्ञान के ग्रंथ।

(१) ईश उपनिषद्।

व्याख्या और स्पष्टीकरणके समेत। मू. ॥=)

(२) केन उपनिषद्।

केन उपनिषद्, अथर्ववेदीय केन सूक्त, देवीभागवतकी देवतागर्व हरणकी कथा। इनके स्पष्टीकरण और व्याख्याके समेत। विस्तृत भूमिकामें यक्ष, उमा हैमवती आदिके भाव अत्यंत स्पष्ट रीतिसे बताये हैं। मूल्य १।)

(३) वैदिक प्राणविद्या।

इस पुस्तकमें चार वेद और उपनिषदोंमें जो प्राणविषयक वर्णन आया है वह स्पष्टीकरणके साथ दिया है। मू. १)

(४) ब्रह्मचर्य। सचित्र।

ब्रह्मचर्य रक्षणके अनुभवसिद्ध उपाय। मू. १।)

(५) नरमेध।

मानवी उन्नतिका वैदिक तत्व। मू. १)

मंत्री स्वाध्यायमंडल. औंध (जि. सातारा)

आनंद समाचार ।

अथर्ववेद । पूरा छप गया, शीघ्र मंगाइये. ।

अथर्ववेद का अर्थ अब तक यहां की किसी भाषा में नहीं था और संस्कृत में भी सायण भाष्य पूरा नहीं है । अब परमात्मा की कृपासे इस वेदका हिन्दी संस्कृत में प्रामाणिक भाष्य पं० क्षेमकरण-दास त्रिवेदी का किया हुआ बीसों कांड, विषयसूची, मन्त्रसूची, पदसूची, आदि सहित २३ भागों में पूरा छप गया है। मूल्य ४७॥) (डाक व्यय लगभग ४) रेलवे से मंगाने वाले महाशय रेलवे स्टेशन लिखें, बोझ लगभग ६०० तोला वा ७॥ सेर है । अलग भाग यथासम्भव मिल सकेंगे। जिन पुराने ग्राहकों के पास पूरा भाष्य नहीं है, वे शेष भाष्य और नवीन ग्राहक पूरा भाष्य शीघ्र मंगालें पुस्तक थोड़े रह गये हैं, ऐसे बडे ग्रन्थ का फिर छपना कठिन है।

हवन मंत्रा :— धर्मशिक्षा का उपकारी पुस्तक चारों वेदों से संगृहित मन्त्र ईश्वर स्तुति, स्वस्ति वाचन, शान्ति करण, हवन मन्त्र वामदेव्य गान, सरल हिन्दी में शब्दार्थ सहित संशोधित, गुरुकुल आदिकों में प्रचलित। मूल्य ।-)

रुद्राध्याय : । प्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६[ब्रह्म निरूपक अर्थ संस्कृत हिन्दी अंगरजी में मूल्य ।=)

रुद्राध्याय :—मूल मात्र मूल्य) ॥ वा २) सैंकडा।

वेद विद्यायें — कांगडी गुरुकुल में हिन्दी व्याख्यान । वेदों में विमान, नौका, अस्त्र शस्त्र निर्माण, व्यापार, गृहस्थ, अतिथि, सभा, ब्रह्मचर्यादि का वर्णन । मू० -) ॥

पं. क्षेमकरण दास त्रिवेदी, ५२ लूकर गंज, अलाहाबाद

वैदिक विज्ञान ग्रंथ माला।

विकासवादका युक्तियुक्त खंडन जो कि युरोप में बहुत प्रचलित है और जिसका प्रचार नास्तिकताके रूपमें भारत में भी प्रचलित होता जाता है इस अवैदिक लहर को रोकने के लिए आर्यफिलासफर [illegible]रत्न **श्री. आत्मारामजी** अमृतसरी व्याख्यान वाचस्पतिने - **सृष्टि विज्ञान**—रचकर ईश्वर वादका सुदृढ मंडन करते हुए वैदिक धर्म को रक्षामें बडाकाम किया है। प्रत्येक ईश्वरवादी आर्य के घरमें इस ग्रन्थका रहना परमावश्यक है। सचित्र स्वच्छ छपी पुस्तक का मुल्य २) है। डा. ।=)

द्वितीय सचित्र अनुपम अद्वितीय पुस्तक **शरीर विज्ञान** जिस में बताया गया है कि शल्यविद्याका आदि मूल वेद में हैं और भारत वासी ही इसके आदि प्रचारक हुए है। पुस्तक प्रत्येक मनुष्यको पढनी चाहिये। ऋषियों के पंचभूत तथा वातपित्त कफ के सिद्धान्तकी [illegible]ता दिखाकर युरोप के कई सायंस के मन्तव्योंको युक्तिपूर्वक [illegible]न्य ठहराया है। सुप्रसिद्ध निर्णयसागर यंत्रालय बंबईमें छपी सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ।≡) है।

तृतीय पुस्तक **आत्मस्थान विज्ञान** में बताया है की शरीर में आत्माका स्थान कहां है ? मूल्य ≠)

ब्रह्मयज्ञ वेदशास्त्रों के मानने वाले आर्यों (हिन्दुओं)को यह पुस्तक [illegible]श्य पढनी चाहिए। ब्रह्मयज्ञ की व्याख्या बडी उत्तमतासे की गईहै पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। उत्तम छपी पुस्तक है मूल्य।।।)

तुलनात्मक धर्म विचार १) अवतार रहस्य ।।।) श्रीहर्ष ।।) [illegible]की कथा ।।)समुद्रगुप्त ।।=) नीतिविवेचन ।≡) स्वार्थीग हक।।) [illegible] बनाए जाते हैं।

महेन्द्रप्रताप कं. कारेलीबाग, बडोदा.

सब नमूने मिलकर ६० तोले।

वी. पी. से ५) रु.

ईश्वर उपासना करनेके समय।
वायु शुद्धि से चित्त प्रसन्न करनेके लिये—



हमारी इस मुद्राकी अगरबत्ती लगाइये।
मिलनेका स्थान—सुगंध-शाला, डाकघर किन्हई (जि. सातारा)

वी. पी. से ५) रु.
सब नमूने मिलकर ६० तोले।

ओ३म्

वैदिक धर्म ।

वैदिक तत्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र ।

वर्ष ४ अंक १० | आश्विन १९८०; अक्टूबर १९२३ | क्रमांक ४६.

सब प्रजाओंका एक नेता ।

इममिंद्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम् ॥ निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वास्तान् रंधयास्मा अहमुत्तरेषु ॥ अथर्व. ४ । २२ । १

" हे इंद्र! तूं हमारे इस क्षत्रिय को बलवान् बनाओ। तूं इसको सब प्रजाओंका एक नेता करो। इसके सब शत्रुओंको दूर करो और [अहमुत्तरेषु] अहमहमिकामें अर्थात् स्पर्धाओंमें इनके शत्रुओंका नाश करो।"

वैदिक धर्म मासिक पत्र का विशेष अंक ।

[१] " वैदिक धर्म " मासिक पत्र का ५० वां अंक एक विशेष अंक होगा । इस में वैदिक सिद्धान्तों और वैदिक तत्वज्ञान के विषयोंपर सुंदर और बोधप्रद लेख होंगे ।

[२] अनेक उपयोगी विषयोंपर विविध लेख होनेके कारण यह अंक अत्यंत मनोरंजक होगा ।

[३] यह विशेष अंक " वैदिक धर्म " के इस आकार के दुगणे आकार में छपेगा, और पृष्ठ संख्या १०० होगी, अर्थात् इस वैदिक धर्मके चौगुणेसे भी थोडा अधिक बडा यह विशेष अंक होगा ।

[४] योग विषयक अनुभव के लेख विशेष प्रकार से इसमें होंगे और वे सब " साचित्र " होंगे । इन लेखों से पाठकों को प्रत्यक्ष लाभ हो सकता है ।

[५] इसके आतिरिक्त उपनिषद् और वेदके विशेष सिद्धान्तों का आविष्कार करने वाले साचित्र लेख इसमें मुद्रित

होंगे। इस अंक की विशेषता इन लेखोंसेही स्पष्ट हो जायगी।

[६] इस विशेष अंक का कागज और छपाई विशेष रूपसे अच्छी होगी। इसका मूल्य अन्यों के लिये १) एक रु. होगा। परंतु वैदिक धर्मके ग्राहकों को वार्षिक मूल्य में ही यह विशेष अंक मिलेगा।

[७] इस लिये इस समय से ग्राहक होने में ग्राहकों का यह लाभ है कि वे इस विशेष अंक को विना मूल्य प्राप्त कर सकेंगे।

[८] जिसका वार्षिक चंदा मनी आर्डर से पहिले प्राप्त होगा, उनको यह अंक विना मूल्य मिलेगा। परंतु वी. पी. द्वारा चंदा वसूल होने की अवस्थामें यह अंक विनामूल्य मिल नहीं सकेगा। मनी आर्डर से चंदा भेजनेमें यह विशेष लाभ है।

[९] जितनी ग्राहक संख्या है उतनी ही प्रतियां इस विशेष अंक को मुद्रित होंगी, इसलिये जो ग्राहक बनना चाहते हैं वे अपना चंदा मनी आर्डर से शीघ्र भेज दें। तथा जो अन्य लोग केवल इस अंक को ही खरीदना चाहते हैं वे एक रु. पेशगी भेज दें। यह अंक वी. पी द्वारा नहीं भेजा जायगा।

मंत्री — स्वाध्याय मंडल औंध (जि. सातारा)



उसकी प्रार्थना।

(लेखक—श्री. पं. गणेशदत्त शर्मा गौड "इन्द्र")

ॐ प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥ अथर्व ६ । ३४ । १

भाषार्थः—हे विद्वानो ! [क्षितीनाम्] पृथ्वी आदि लोकोंमें [वृषभाय] बलवान [अग्नये] ज्ञान स्वरूप ईश्वर के लिये [वाचं] वाणी [प्र ईरय] अच्छी प्रकार उच्चारण कर [सः] वह [द्विषः] वैरियोंको [अति=अतीत्य] उलांघकर [नः] हमें [पर्षत्] पाले ।

[चान्द्रायण वृत]

हे विद्वानो ! आप चित्तमें हरि आनिये ।
प्रभु हित वाणी श्रेष्ठ आप उच्चारिये ॥
बल परिपूर्ण दयालु वैरियोंको दलें ।
पा हम कृपाकटाक्ष नित्य फूलें फलें ॥१४॥



स्वास्थ्य-साधन।

"स्वास्थ्य" का अर्थ "स्वस्थता" अर्थात् [स्व-स्थ-ता] अपनी स्थितिसे रहना, अपनी शक्तिसे आनंद के साथ रहना। रोगी अवस्थामें मनुष्य पराधीन होता है, दवाइयोंकी शक्तियोंपर अवलंबित रहता है। इसलिये रोगी अवस्था पराधीनता है। पराधीनता सब प्रकारसे दुःखप्रद है, और स्वाधीनता सब प्रकार का आनंद देती है। मानवी शरीरके अनेक शत्रु हैं, उनमें रोगभी एक शत्रु है। अपने शरीरको रोगरूपी शत्रुके आधीन करना और स्वयं परतंत्र होना, यह मनुष्यको कदापि योग्य नहीं। रोगरूपी शत्रुका आक्रमण जिस समय इस शरीरपर होता है, उस समय शरीरके परमाणु और रोगके बीज, इनका परस्पर युद्ध शुरू होता है; और जिस समय शरीरका पराभव होता है, उसी क्षण मनुष्य-शरीर रोगी हो जाता है। इस लिये इस युद्धमें अपने शरीरका पराभव न हो, ऐसा इंतजाम हरएक को करना उचित है।

* *

और तब उन्होंने शीर्षासनादि बतलाये थे,] स्वप्न दोष की मात्रा भी नाम मात्र को रह गई है, और मुझे पूर्ण विश्वास है कि, थोडे दिन में उसका भी अत्यंताभाव हो जायगा ।

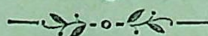
७. अत्यंत हर्ष की बात यह है, कि इन दिनों में मुझे शिर पीडा आदि कुछ भी व्याधी नहीं हुई । यदि कभी आशंकाभी हुई, तो झट शीर्षासन कर डाला, यह आदर्श मेरे सामने हमारे पूज्य प्रो० कृष्ण कुमार जी एम्. ए. तर्काचार्य ने रखा। उन का कथन है, कि आसन करते हुए उनको लगभग ४ वर्ष हुये, तब से उनको कोई किसी प्रकार का रोग नहीं हुआ । जब की सैकडों भाई कोइ आश्विन मासमें मलेरियादि से पीडित रहते हैं।

८. जब मैं अधिक पढते पढते थक जाता हूँ तो शीर्षासन लगाता हूं, जिससे मस्तिष्क की शक्तिका रक्तके साथ पुनरावर्तन होकर पुनः दिमाग ताजा हो जाता है। इस रीतिसे मेरे साथी बहुतसे विद्यार्थी लाभ उठा रहे हैं ।

९. प्राणायाम पूर्वक त्राटक करनेसे चक्षुओंकी शक्ति भी अधिक बढ गई है।

१०. गुरुकुल में रहकर मैंने कुच्छ ब्रम्हचारियों को भी शीर्षासन, जानुशिरासनादि सिखलाये,जिससे उनकी तिल्लीको आधिक लाभ प्रतीत होता था। आगे पुनः लिखा जायगा । इस हेतु विद्यार्थियों से मेरा विशेष आग्रह है, कि बैठे बैठे उदर दरी को न बढाकर—

समझो प्रभुका यह शासन है। सुखस्वास्थ्य प्रदायक आसन है।।



ग्रंथ--परिचय।

हृद्रोग (हार्ट--डिसीज्)--[लेखक--वैद्य **गणेश पांडुरंग परांजपे**, गणपति पेठ, सांगली। मूल्य चार आने] यह पुस्तक मराठी भाषामें है ॥

यह अत्यंत उपयोगी पुस्तक वैद्यजीका प्रसिद्ध किया हुआ है। आज कल हृदयके विकार बहुत बढ रहे हैं और विद्वान् लोगभी हृदयकी क्रिया बंद होनेसे मृत्युके मुखमें पहुंच रहे हैं, इस लिये इस प्रकारके सामयिक उपयोगके पुस्तक इस समय बडे लाभ दायक हो सकते हैं। पुस्तकमें प्रथमतः हृदयकी स्वाभाविक अवस्था तथा क्रियाका वर्णन है। पश्चात् हृद्रोगके कारणोंका विचार किया है। हृद्रोगके उत्पादक कारण मुख्यतया तीन हैं। (१) **जीवन विद्युत्की न्यूनता, (२) मानासिक दुर्बलता और (३) रक्तका विगाड।** योगसाधनमें जिस " **नाडी विशुद्धि** " का वर्णन है, वह न होनेके कारण और नसनाडियोंमें मलका संचय होनेसे इस भयंकर रोगकी उत्पत्ति होती है। यदि यह बात पाठक एकवार जानेंगे, तो उनको

योगके आठ अंग हैं । उनमें पहले दो अंग यम और नियम योगसाधन की तैयारी के लिये हैं । वैयक्तिक और सामाजिक तैयारी करनेके लिये इन नियमोंका पालन करना होता है । आगेके दो अंग "आसन और प्राणायाम" हैं और इनका शरीरके स्वास्थ्य के साथ अत्यंत संबंध है । शरीर को नीरोग बनानेके लिये ही प्रायः ये दो अंग हैं । प्राणायाम का मानसिक स्वास्थ्य के साथ भी संबंध है, परंतु उसका यहां विशेष विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है । तात्पर्य आसन और प्राणायामों का उत्तम अभ्यास करने से मनुष्य अपना स्वास्थ्य सुरक्षित रख सकता है । योग में जो आगेके चार अंग हैं, उनका संबंध मानसिक स्वास्थ्य के साथ विशेष है । योग्य समय इसका विचार हो जायगा।

मनुष्यकी पुरुषार्थ शक्ति मुख्यतः आरोग्य, बल, बुद्धि, विचार, सामर्थ्य, व्यवहार-चातुर्य, सचाई, निष्कपटता, और उद्योग प्रियता के ऊपर अवलंबित है । इन गुणों से जो विशेष मंडित होगा, वही पुरुषार्थ की सिद्धि प्राप्त कर सकता है । आरोग्य के विना प्रवल पुरुषार्थ होना अशक्य है, यह बात सब मानते ही हैं । बुद्धि और विचार शक्ति के विना अपना ज्ञान बढना अशक्य है, और ज्ञानके विना प्रतिबंध-निवृत्तिके उपाय ज्ञात ही नहीं हो सकते । व्यवहार-चातुर्य, सचाई और निष्कपटताके विना मनुष्य इस जगत् में कोई कामधंदा ठीक रीतिसे करके उत्तम सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता । उद्योग-प्रियता अर्थात् सिद्धि मिलनेतक उद्यम करने

का दृढनिश्चय सब प्रकार के पुरुषार्थों के लिये अत्यावश्यक होनेमें किसी को शंका नहीं हो सकती । इसलिये योगवासिष्ठमें कहा है -

उद्यम : साहसं धैर्यं बलं बुद्धि : पराक्रम : ॥
षडिमे यस्य तिष्ठन्ति स सर्वं प्राप्नुयात् पुमान् ॥

"(१) उद्यम, (२) साहस, (३) धैर्य (४) बल, [५] बुद्धि और [६] पराक्रम ये छे गुण जिस पुरुषमें होंगे, वह सब कुच्छ उन्नति प्राप्त कर सकता है । " पुरुषार्थ सिद्धि का यही मूलमंत्र है । तात्पर्य यदि पुरुषार्थ की सिद्धि प्राप्त करनी है, तो उक्त गुण अपने में बढाने चाहिये। अपने में ये गुण वृद्धिंगत करने केलिये शारीरिक और मानसिक स्वस्थता की अत्यंत आवश्यकता है । तथा शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी सुरक्षितता के लिये योगसाधन जैसा सीधा और सुगम उपाय भी दूसरा कोई नहीं है यह बात शताब्दियोंके अनुभवसे निश्चित हो चुकी है ।

सांप्रतमें शरीरस्वास्थ्य के लिये कितने उपाय प्रचलित हुए हैं, औषधि प्रयोग, व्यायाम के प्रकार, भोजन के विधि, विविध प्रकारके जल प्रयोग, विद्युत्संचार, यक्षकिरण प्रयोग, वर्णजल प्रयोग आदि इतने विधि हैं, कि जिनके कारण रुग्ण मनुष्य मोहित हो जाता है, और अपने स्वास्थ्य के लिये किस बातका उपयोग करें और किस का न करें, इस विषयमें मूढसा बन जाता है। तात्पर्य यह है कि, उक्त रीतिके अनेक मार्ग होने पर रुग्णोंकी सुविधा नहीं हुई है। उक्त विधि यद्यपि बुरे नहीं हैं, तथापि हरएक के लिये लाभ दायी

* * *

होने वाला एक भी विधि उसमें नहीं है। विशेषत: निर्धन मनुष्योंका तो इन विविध प्रकारों से लाभ होना अशक्य हुआ है, क्यों कि इनमें धनका बहुत व्यय होता है। इत्यादि बातों का बहुत विचार करनेपर तथा सैंकडों अवस्थाओंके मनुष्यों और रोगियों की स्थितिका विचार करके हमारा यही मत निश्चित हुआ कि, **योग साधन की रीति सबके लिये सुगम, सुसाध्य, और आसानीसे सिद्ध होने वाली है,** इसमें न किसी प्रकारका व्यय करना होता है, और न किसी प्रकारका इसमें विघ्न है। हरएक मनुष्य को हरएक अवस्था में इससे लाभ पहुंचता है तथा पूर्वोक्त अन्य उपायोंके साथ भी यह योगसाधन किया जा सकता है, इस लिये इसकी उपयुक्तता अधिक है।

वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो सिद्धांतकी बात यह है कि, जो मनुष्य अपने खानपानादि व्यवहारका प्रबंध विचार से करता है, और जो अपने स्वास्थ्यको सुरक्षित रखनेके नियम जानता है वही अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकता है। योग के यम नियम और व्रत पालन जो हैं, वे इस बातकी शिक्षा मनुष्यको देते हैं। तथापि प्रत्येक मनुष्यकी प्रकृतिके अनुसार उचित नियम बनाना हरएक मनुष्य के लिये योग्य और अत्यावश्यक है; क्यों कि जितनी व्यक्तियां हैं, उतनी भिन्न प्रकृतियां हैं, इस कारण हरएक को अपना विचार अपनी प्रकृतिके अनुसार करना उचित है। यहां सर्वसाधारण नियम बताये हैं, और इसी प्रकार साधारण नियम

योगशास्त्र में भी कहे हैं। इन साधारण नियमोंका विचार करके विशेष नियम हरएक को अपनी प्रकृति के अनुसार बनाना योग्य हैं।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिये मुख्यतः (१) आसन, (२) प्राणायाम, (३) उपासना, (४) सात्विक खान-पान और (५) योग्य विश्राम, इन पांच बातोंकी आवश्यकता है। इन में से एकके न होनेसे भी बिगाड हो जाता है। इस लिये इनका क्रमशः विचार करेंगे—

[१] आसनों का व्यायाम।

"आसन" शब्द विशेष अर्थमें यहां प्रयुक्त होता है। यद्यपि भाषामें आसन शब्दका अर्थ बैठना है, तथापि योग साधनमें उसका अर्थ विशेष प्रकारके व्यायाम है। आसनोंका व्यायाम इस लिये सब लोगोंको लाभ दायक होता है कि, यह हरएक मनुष्य हरएक अवस्थामें कर सकता है। और इसके लिये कोई व्यय नहीं करना पडता। कमजोर आदमी भी इसको कर सकता है, और बलवान भी कर सकता है। तथा अन्य व्यायामों की अपेक्षा इससे हृदयको बिश्राम अधिक मिल सकता है।

आसनोंके मुख्य विभाग चार हैं। (१) खिंचाव के व्यायाम, (२) प्राणायाम के व्यायाम, [३] बलवर्धक व्यायाम और [४] स्नायुसंचालन के व्यायाम। आसनोंमें ये चार भेद हैं, अथवा आसनों के व्यायाम इन चार विभागोंमें विभक्त होते हैं। कई आसन इन चारों विभागोंमें किये जा सकते हैं, और कई

न्यून विभागोंमें किये जाते हैं। कई आसन अत्यंत वेगसे और अतिशीघ्र परंतु वारंवार करनेसे स्नायुसंचालन के उपयोगी होते हैं। स्नायुसंचालन का अर्थ वेगसे स्नायुओंमें गति करके वेगसे रुधिर का अभिसरण करना है। इस से नसनाडियोंकी निर्मलता हो जाती है, और शरीर में उष्णता आजाती है। शरीर के दोष शीघ्र दूर करनेके काम में यह **"स्नायु-संचालन"** बडाही उपयोगी है।

खिंचावके व्यायामोंके लिये जो आसन करने होते हैं, वे शांतिके साथ करने चाहिएं, और एक एक प्रकारके आसन में देर तक बैठनेका अभ्यास होना आवश्यक है। इस से स्नायु शुद्ध और निर्दोष होते हैं, तथा दीर्घ काल के रोग बीज जो शरीरमें घर बनाकर रहते हैं, इस रीतिके व्यायामसे दूर हो जाते हैं। बलवर्धक आसन में बोझ उठाने के व्यायाम और प्रतिरोधक व्यायाम मुख्य हैं। प्रतिरोधक व्यायामका अर्थ यह है कि, विरोधी शक्तिके साथ विरुद्ध शक्तिका उपयोग करना। जैसा रसीसे खींचना, हातसे ढकेलना इत्यादि। इस प्रतिरोधन से अपनी शक्ति बढ जाती है। श्वास और उच्छ्वास के साथ व्यायाम करना अथवा आसन करनेका नाम प्राणायाम युक्त आसन है। रक्तशुद्धिद्वारा आरोग्य देना इसका प्रयोजन है।

युक्तिसे उक्त प्रकारके चतुर्विध आसन करने से हरएक मनुष्य आरोग्य, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है।

दूसरी दृष्टिसे भी आसनोंके चार भेद समझे जाते हैं। [१] खडे होकर करनेके आसन प्रथम वर्ग में आते हैं, [२] बैठकर करनेके आसन द्वीतीय वर्ग में गिने गये हैं, [३] भूमिपर लेट कर करनेके आसनोंका तृतीय वर्ग है, और (४) उलटा खडा अर्थात् सिर नीचे और पांव उपर करके करनेके आसन चतुर्थ. वर्गमें आते हैं। तृतीय और चतुर्थ वर्गके आसन दिलके कमजोर मनुष्योंको बडे लाभ दायक होते हैं, और इतर आसन अन्योंके लिये उत्तम हैं। इस प्रकार विशेष विचार करनेसे पता लगता है कि ये आसनों के व्यायाम बडा लाभ करने वाले हैं। जो प्रसिद्ध आसन हैं, उनसे कई आसन और भी नये बनाये जा सकते हैं, और इन में भी घट वध करके अपना आवश्यकतानुसार बना-ने से अधिक उपयोगी हो सकते हैं।

आसनोंके व्यायामके अतिरिक्त भी शरीरकी सुस्थिति के लिये यथावकाश दूसरे व्यायाम करनेकी आवश्यकता रहती ही है। भ्रमण, वेगसे चलना, पहाडियोंपर चढना और उतरना, दौडना, कूदना इत्यादि व्यायाम गतिवर्धक हैं। वेदमें कहा है कि —

जंघयोर्जवः । पादयोः प्रतिष्ठा ॥

अथर्व १९। ६०। २.

"जंघाओंमें वेग और पांवोंमें स्थिरता अथात् आधारशक्ति रहे। यह मंत्र वैदिकधर्मियोंको उपदेश देरहा है कि, जंघा और पांवोंमें वेग और बल चाहिये। पहाडी लोगोंकी जंघायें और पिंडरियां कैसी

* * * *

पुष्ट और बलवान रहती हैं, इसका विचार यहां अवश्य करना चाहिये। पहाडियोंपर चढने उतरने का व्यायाम तथा तीव्र वेगसे चलने फिरनेका व्यायाम करनेसे उक्त लाभ हो सकते हैं ।

इसके अतिरिक्त जलमें तैरनेका व्यायाम बहुतही लाभ दायक है । **ब्रह्मचर्य रखनेकी इच्छा करनेवाले यदि दिनमें घंटा डेढ घंटा अच्छीप्रकार तैरनेका व्यायाम करेंगे, तो वीर्यभ्रष्टताका दोष उसी समय दूर होगा** । जल औषधिरूप है, इस दिव्य जल का वर्णन वेदमें अनेक स्थान पर है । उनमें से एक ही मंत्र देखिये--

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ॥ अपामुत प्रशस्तिभिः
अश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः ॥
अ. १ । ४ । ४

"जल में अमृत और औषध है । जलके श्रेष्ठ गुणसे, हे घोडों और हे गौवों, आप बलवान बन जाइये । "इस मंत्रमें जलसे बलवान बननेकी शक्यता वर्णन की है । यद्यपि यह उत्तानार्थ है तथापि इसका गर्भार्थ और है । अश्व और गौ शब्द पुरुष और स्त्री के सूचक हैं । और "**वाजी**" शब्द वीर्ययुक्त अर्थात् पुरुष-शक्तिसे युक्त पुरुष और स्त्री शक्तिसे युक्त स्त्री का सूचक है । वैद्य शास्त्रमें "**वाजी-करण**" के प्रयोग अनेक हैं, उनका उद्देश्य मनुष्यको प्रबल वीर्य शक्तिसे युक्त करना ही है । वही "वाजी" शब्द यहां है । तात्पर्य घोडे और गौवें भी जल प्रयोगसे वीर्य युक्त बन सकती हैं, उसी प्रकार स्त्री पुरुष भी अपने वीर्य दोष

को इसी जल प्रयोगसे दूर कर सकती हैं। सेकडों जवानों के वीर्य दोष जलमें प्रतिदिन घंटाभर तैरनेसे दूर हो गये हैं। किसी औषधिसे जो लाभ नहीं होता, वह तैरनेके अभ्याससे होता है। ऋषिमुनि नदीतट पर रहते थे, इसका अभिप्राय ही यह है कि, जलमें खूब तैरनेसे वीर्य दोष दूर करके, वे "स्थिर वीर्य" हो जाते थे। आजकल भी यह अनुभव लिया है, इसलिये **जो वीर्यसे दोषी हों, वे तैरनेका अभ्यास खूब करें और स्थिर वीर्य बनें।**

खुली हवामें खेलनेके खेल भी सब आयुमें लाभ दायक हैं, विशेषतः मध्य आयुतक अधिक लाभ दायक हैं। देवत्व प्राप्तिके गुणोंमें "**क्रीडा, विजिगीषा**" आदि गुण प्रसिद्ध हैं, उनमें "क्रीडा" सबसे प्रथम है। मर्दानी खेल देवत्व का परिपोष करनेवाले हैं। भूमिक्रीडा मर्दानी खेलोंका नाम है, जल क्रीडा तैरनेके विविध प्रकार हैं, कंदुकक्रीडा गेंदबल्ला का नाम है, वृक्षक्रीडा वृक्षोंपर चढनेके खेल प्रसिद्ध हैं, पर्वतक्रीडन पहाडोंकी उतराईपर खेलनेका स्पर्धाका खेल है; इस प्रकार आर्योंकी कई क्रीडायें हैं, कि जो आर्य युवक खेलते और विजयेच्छु बनते थे। ये सब खेल लाभदायक होते हैं।

इसके अतिरिक्त जो भी खेल शररिका वीर्य, ओज, तेज, बल स्फूर्ती, उत्साह और आयु बढानेवाला हो, उसके खेलनेसे लाभ ही होते हैं। खुली हवाके खेल खेलनेसे अनंत लाभ हैं, जो पाठक जानते हैं। इसलिये उनके विषयमें यहां अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

साधारणतया पसीना आनेतक आसनादि सब व्यायास करने चाहिये । व्यायासके परिश्रमसे पसीना आनेके पश्चात् शरीरका मर्दन करना उचित है आर मर्दन के पश्चात्, आवश्यक हुआ तो योग्य समय व्यतीत होनेके बाद, स्नान करनेसे शरीर निर्मल होता है । तैरनेमें व्यायाम और साथ स्नान भी होता है इस लिये तैरनेसे अधिक लाभ होते हैं । अस्तु ! तात्पर्य यह कि आरोग्यके लिये दिनमें कुछ समय अवश्यही व्यायाम करना चाहिये । शांत व्यायाम घंटाभर करना चाहिये, परंतु वेग का व्यायाम आधा या पाव घंटा पर्याप्त हो सकता है । अपनी शक्तिके अनुसार न्यून वा अधिक समय करना योग्य है ।

पूर्वोक्त व्यायाम के पश्चात् प्राणायाम का विचार करना चाहिये । सब लोग प्राणका महत्व जानते ही हैं, क्यों कि प्राण चला गया, तो इस देहमें कुछभी आदरणीय अवशिष्ट नहीं रहता । प्राणशक्तिके कारण ही यह नाशवंत देह आदरणीय हुआ है !!! सडनेवाले देहमें जीवनकी कला रही है !! सब हमारे व्योपार प्राणके आश्रयसे हो रहे हैं । इसलिये शरीरकी अपेक्षा प्राण के अंगोंका बल अधिक बढाना अत्यावश्यक है । प्राणके अवययोंमें दोष उत्पन्न होनेसे शीघ्रही मृत्यु हो जाती है, वैसी इतर अवयवोंके दोषोंसे नहीं होती ।

जो स्वभावसे पूर्ण श्वसन करता है, उसमें विलक्षण उत्साह दिखाई देता है । प्राणायामका अभ्यास करनेवालोंमें कदापि आलस्य और निरुत्साह नहीं होते । विचारशक्तिकी तेजस्विता भी प्राण उपासना

करनेवालोंमें ही होती है। इसलिये प्राणायामका अभ्यास करके अपने अंदर उत्साहका जीवन लाना चाहिये।

नासिका द्वारा शुद्ध वायु फेंपडों में जाता है, और वहां रक्त की निर्मलता करता है, रक्त निर्मल होनेसे मानो सब शरीर आरोग्य पूर्ण हो जाता है। सबसे अधिक शुद्धता करनेवाला प्राणवायु है, और वह विपुल प्रमाणमें प्राणायामके दीर्घश्वसनसे ही अपने शरीरमें पहुंचता है। इसलिये जिनकी छाती बडी है, नासिका भी बडी है और जो श्वासके समय अपने फेंपडे पूर्ण भरते और उच्छ्वासके समय खाली करते हैं वे अधिक बलवान होते हैं;प्राणको वीरभद्र कहते हैं। यह वीरभद्र जहां पहुंचता है वहां शत्रुभूत रोगबीज दूर भाग जाते हैं। सब उपनिषद् इसी हेतुसे प्राणकी महिमा गा-रहे हैं। जिस प्रकार स्थूल शरीरकी शुद्धता जलसे होती है उसी प्रकार जीवनरूप रक्तकी शुद्धता प्राणसे—अर्थात् प्राणायामसे—हो जाती है।

शुद्ध वायुमें किया हुआ प्राणायाम लाभदायक होता है। इस लिये बंद मकानोंके अंदर किये हुए श्वासोच्छ्वासकी अपेक्षा पहाडों पर या नदियों के समीप अथवा समुद्र किनारे पर किया हुआ श्वासो-च्छ्वास अधिक लाभ दायक होता है। इसी प्रकार प्राणायाम भी शुद्ध वायुमें ही करना उत्तम होता है। तथापि अधिक सर्दीके दिनोंमें बाहिरका वायु अतिशीत होनेसे प्राणायामके लिये अच्छी नहीं होता है। ऐसे दिनोंमें कमरोंमें प्राणायाम करना योग्य है।

* * * * *

सब ऋतुओंमें नगरोंमें रहने वाले लोग अपने स्वच्छ कमरेमें भी कर सकते हैं अथवा नगरके बाहिर शुद्ध स्थानमें प्राणायाम करेंगे, तो अधिक उत्तम होगा।

प्राणायाम अनेक प्रकारके होते हैं, उनका वर्णन अन्य पुस्तकों में पाठक देख सकते हैं। मुख्य बात प्राणायामकी यह है, कि श्वास से अपने फेंफडे पूर्ण भरने चाहिये। फेंफडों के तीन विभाग होते हैं, एक गले और कंधोंके पासका भाग, दूसरा पेटकी ओरका भाग और तीसरा भाग उनके मध्यमें है। अपनी पसलियों के हिसाबसे भी ये विभाग कहे जा सकते हैं। निचला उदरके पासका विभाग पहिले भरना चाहिये, पश्चात् मध्य विभाग और पश्चात् ऊपरका विभाग भरना योग्य है। इस क्रमसे श्वास लेने और उलटे क्रमसे छोडनेका नाम पूर्ण श्वसन है। यह वेगसे करने का नाम "भस्रा प्राणायाम" है। भस्रा प्राणायाम करनेसे तत्क्षणमें शरीरमें उष्णता उत्पन्न होती है, भूख लगती है। रक्त शुद्ध होता है और अनेक लाभ होते हैं। यह श्वास और उच्छ्वास वेगसे न करते हुए मंदगतिसे परंतु श्वास और उच्छ्वास की लंबाई सम करनेसे जो प्राणायाम होता है, उसको "**सूर्य भेदन प्राणायाम**" कहते हैं। इससे उदरस्थानीय "**सूर्य चक्र**" की जागृति हो जाती है, इससे जीवनशक्ति की वृद्धि हो जाती है। ये प्राणायाम अपनी शक्तिके अनुकूल ही करने चाहिये; शक्तिसे अधिक

करनेपर हरएक अभ्यास हानि करता ही है। अन्य प्राणायामका वर्णन पाठक अन्यत्र देख सकते हैं।

कामधंदा करनेवाले मनुष्य घंटा दो घंटा अपना व्यवसाय करनेके पश्चात् दो चार मिनिट ही खुले वायुमें उक्त प्रकार एक दो आसन और प्राणायाम करेंगे, तो उनकी कार्य करनेकी शक्ति द्विगुणित हो जायगी, और उनको थकावट नहीं आवेगी। नियम पूर्वक सवेरे और शामको प्राणायाम करनेवालों को उत्साह के साथ अपूर्व आरोग्य प्राप्त हो सकता है।

प्राणायाम के विषयमें एक ही बात यहां कहनी आवश्यक है वह यह है, कि नाकसे ही श्वासोच्छ्वास करना चाहिये और मुखसे नहीं। क्यों कि मुखसे किया हुआ श्वासोच्छ्वास आयुष्य का नाश करता और रोग लाता है, परंतु नाकसे किया हुआ श्वासोच्छ्वास आयुष्य बढाता और रोगोंको दूर करता है। अस्तु। इस प्रकार आसन और प्राणायामके द्वारा लाभ उठानेके साथ अब उपासनाका विचार करना है —

(३)उपासना। सद्गुण मनन।

ईश्वरकी उपासना मनकी शांति बढाने द्वारा शरीरका आरोग्य प्रदान करती है। प्रत्येक सद्गुणकी परम सीमा का केंद्र परमेश्वर है। प्रत्येक सच्छक्तिकी पराकाष्ठा परमेश्वर में है। और सद्गुण और सच्छक्ति के मनन द्वाराही उपासना करनी होती है, इस लिये सद्गुण और सच्छक्तिका मनन ही उपासना है। मनमें नित्य सद्विचार रखने चाहिये, उपासनासे यही कार्य होता है। इसालिये

इस दृष्टिसे उपासनाका महत्त्व अधिक है। "**जैसा मन वैसा मनुष्य**" यह सार्वभौमिक नियम है। इसलिये मनुष्य की भवितव्यता मनको ठीक रखनेपर अच्छी और ठीक न रखनेपर बुरी हो जाती है।

मनुष्यमें मनन शक्ति का इतना महत्व है कि, जो मनुष्य सदा विजयी, उत्साही पुरुषार्थके विचार अपने मनमें रखता है, वही पुरुषार्थी बनता हुआ उन्नत होता है; परंतु जो मनुष्य ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, मत्सर, पराजय, निरुत्साह, आलस्य आदिके ही विचार मनमें रखता है, वह प्रतिदिन हीन होता जाता है। चिंतासे अपने मनको बिगाडनेवाले मनुष्य नानाप्रकारकी आपत्तियोंमें डूब मरते हैं। इस लिये मनुष्यको सदा श्रेष्ठ विचार ही मनमें धारण करके सदा विजय की ओर जाना चाहिये।

इतिहास, गाथा आदि पुस्तक अथवा अन्य कथाएं कल्पित ही क्यों न हों, यदि श्रेष्ठ विचार परंपराको जागृत करनेवाली होंगी, तो उनके पढनेसे लाभ होगा; अन्यथा हानि होनेमें शंकाही नहीं है। धार्मिक ग्रंथोंमें वीरपुरुषोंके चरित्र पढनेका जो महत्व है, वह यही है; उनकी विजयकी कथाएं पढनेवालोंके मनोंको उच्चविचार-युक्त बनातीं हैं। देवतामें श्रेष्ठ सद्गुण और सच्छाक्तियोंकी कल्पना उपासकको उच्च बना सकती है। क्यों कि ऊसके मननसे उसके मनमें श्रेष्ठ गुण और श्रेष्ठ शाक्तिकी जागृति रहती है। इस बातको छोडकर जो अन्य रीतीकी उपासना होगी वह लाभ दायक नहीं होती।

" देवोंके समान व्रत करनेवाले देव बनते हैं, " यह भगवद्गीताका कथन उक्त नियमानुसारही है। श्रेष्ठ कल्पना मनमें स्थिर करनेसे श्रेष्ठता आती है और उसीसे आरोग्य भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उपासनासे मनकी शांति, आत्माका बल, चित्तकी प्रसन्नता, बुद्धिकी तेजस्विता आदि बढती है, इसलिये उपासक लोग आरोग्य संपन्न रहते हैं। " **मेरा आधार प्रबल ईश्वर है** " यह विश्वास बडा लाभ देता है। धैर्य बढाता है तथा विश्वास और धैर्य किंवा निर्भयता बढनेसे आरोग्य और स्वास्थ्य की दृष्टिसे बडा लाभ होता है।

४ सात्विक खानपान।

आरोग्यका विचार करनेके समय खानपानके विषयमें अवश्य कुछ न कुछ लिखना चाहिये। क्यों कि खानपानके विषयमें आजकल इतना अनाचार बढ गया है कि, उसकी उपेक्षा करना आत्मघात करनेके समान भयानक है। दाल रोटी, दूध, घी, दही, मक्खन, मलाई, छाछ, चावल, सब्जी आदि सात्विक भोजन बडा लाभदायक और आरोग्य वर्धक है। गायका दूध अच्छा है, उसके अभावमें अन्य दूध लेना चाहिये। बाजारकी चीजें जो हलवाइयोंकी दुकानोंमें अथवा छाबडीवालोंके पास मिलतीं हैं, एकभी खाने लायख नहीं होती। उनपर मक्खियां बैठतीं हैं और उनको दूषित बनादेतीं हैं। मक्खियां गटारके मैलपर बैठकर सीधी दुकानके जलदीपर आकर बैठ जाती हैं। इसलिये वे पदार्थ विषयुक्त बनते हैं।

* * * * * *

परंतु जो दुकानदार अपने पदार्थ शीशेके बर्तनोंमें रखकर सुरक्षित रखता हो, उससे लेनेमें कोई हर्ज नहीं है। तथापि तले हुए पदार्थ हानिकारक ही हैं। खानेके सात्विक पदार्थ प्रसिद्ध हैं, शुद्धताके साथ किये हुए ही खाने चाहिये, अन्य पदार्थ न खाने अच्छे हैं। मनुष्यका श्रेष्ठ आहार फल है, इसलिये जो फल अच्छी अवस्थामें मिल सकते हैं, अपनी प्रकृतिके अनुसार होनेपर उनको खाना चाहिये। यही श्रेष्ठ भोजन है। तले हुए पदार्थोंसे फल सौगुणा श्रेष्ठ हैं।

पीनेकी चीजोंमें आजकल बडा अनर्थ हो रहा है। बाजारोंमें हानि कारक पदार्थोंके दुकान दिन प्रति दिन बढ रहे हैं !! चा, कापी, कोको, सोडा आदि वाटर, मद्य, विविध आसव, तथा अन्य शीतपेय बडे हानिकारक हैं, वास्तवमें इनको सरकारद्वाराही प्रतिबंध होना चाहिये, परंतु अपने दुर्भाग्यसे ऐसा प्रतिबंध नहीं हुआ है। इसलिये स्वयं इस विषयमें जागना चाहिये। " शुद्धजल " ही उत्तम पेय है। अच्छे कूवेका अथवा वृष्टिजल सबसे उत्तम है। आरोग्यका विचार करनेवालोंको इस खानपानका इस प्रकार अवश्य विचार करना चाहिये। और कभी अयोग्य खानपानकी ओर झुकना नहीं चाहिये।

५ विश्राम।

परिश्रमके पश्चात् विश्रांति लेनी आवश्यक है। उद्योगधंदा करनेका नाम प्रवृत्ति है और विश्रांतिका नाम निवृत्ति है। प्रवृत्ति

के पश्चात् निवृत्ति आवश्यकही है, प्रवृत्तिमें जो शरीरके स्नायुओं का व्यय होता है, उसको दुरुस्त करनेका कार्य इस निवृत्तिके समय होता है, इसलिये यह विश्राम " **नव जीवन** " देनेवाला होता है। विश्राम में गायन वादन, उत्सव दर्शन, आदि मनोरंजनके विविधप्रकार आते हैं। ऋतु ऋतुमें धार्मिक उत्सव धर्मशास्त्रकारोंनें रखे हैं, इसका यही प्रयोजन है। इस प्रकारके दिलबहावेसे प्रवृत्तिके कार्योंका परिश्रम दूर होता है।

इसके अतिरिक्त प्रातिदिन के लिये स्नायु ढीले करना, दंडासन अथवा शवासन का अभ्यास करना, तथा मनको निर्विचार करना आवश्यक होता है। इतना होनेपर भी पूर्ण विश्रांतिके लिये निद्रा लेनेकी आवश्यकता है। मनुष्य गाढ निद्राका महत्व नहीं समझते, परंतु हमारे आरोग्य पूर्ण जीवन के लिये निद्राकी अत्यंत आवश्यकता है। निद्रासे अनेक लाभ हैं —

निद्रा तु सेविता काले धातुसाम्यमतान्द्रिताम् ॥
पुष्टिवर्णबलोत्साहानाग्निदीप्तिं करोति च ॥

राजनि· ५

" योग्य समयमें निद्रा लेनेसे धातुकी समता, उत्साह, पुष्टि, वर्णकी तेजस्विता, बल, और अग्निका प्रदीपन होता है। " तात्पर्य नवीन जीवनही मिलता है। यह तीन प्रकारका विश्राम लेनेसे मनुष्यका आरोग्य उत्तम रह सकता है, और इनमें निद्राका महत्व सर्वोपरि है।

पूर्वोक्त प्रकार आसन, प्राणायाम, उपासना, सात्विक भोजन, शुद्धजल पान जो करता हैं, उसको पांच छे घंटे उत्तम निद्रा आती है और उतनी उसके लिये पर्याप्त होती है। और इस प्रकार करनेसे वह सदा आरोग्यसंपन्न रह सकता है।

सोनेके पूर्व मुख प्रक्षालन करके, सिरको शांतजलका अच्छा स्पर्श करके, लघुशंका करके शिस्न और उसके आस पासका एक वीत भाग शीत जलसे अच्छी प्रकार धोकर शांत करके, परमेश्वर स्मरण पूर्वक बिस्तरेपर शांतिके साथ लेट जानेसे अच्छी गाढ निद्रा आजाती है और उससे बडा आरोग्य मिल सकता है।

योगशास्त्रका सार।

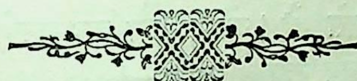
उक्त प्रकार इस छोटेसे लेखमें योगशास्त्रका सार दिया है। अनेक ग्रंथोंमें विस्तारसे जो बातें लिखीं हैं, उनका संक्षेपसे वर्णन इस लेखमें किया है। जो पाठक इसका अच्छीप्रकार मनन करेंगे, वे अपने प्रयत्नसे अपना स्वास्थ्य सुरक्षित कर सकते हैं, अथवा अपनी रोगी अवस्थाको दूर करके अपना स्वास्थ्य कमा सकते हैं।

इस लेखमें कोई ख्याली बात नहीं है, प्रायः सब बातें अनुभव कीं हैं, इसलिये पाठकोंसे भी निवेदन है कि, इस लेखका उपयोग वे अपने स्वास्थ्य रक्षा के कार्य में अवश्य करें।

योगसाधन का विषय बडा गहन है। परंतु इस लेखमें उतनाही लिखा है कि, जितना सर्व साधारणके उपयोगी हो सकता है।

इसलिये जो लोग योगमें बहुत उंची प्रगति करना चाहते हैं। उनको यद्यपि इस लेखसे विशेष लाभ नहीं होगा, तथापि सर्व साधारण लोग जो अपने दैनिक व्यवहारमें रहकरही योगसाधनसे लाभ उठाना चाहते हैं, उनको यह लेख विशेषकर अछा मार्ग दर्शक होगा। इसलिये आशा है कि ये लोग इस लेखसे लाभ उठानेका यत्न करेंगे।

"प्रयत्न करनेसे अवश्य सिद्धि मिलेगी।"





बल बढाने का पुरुषार्थ ।

अपना बल बढानेका प्रयत्न करना हरएक वैदिक धर्मी मनुष्यका कर्तव्य है। धर्म का यही उद्देश्य है। " **धारण और पोषण** " यह धर्मका लक्षण सुप्रसिद्ध है। सत्य धर्मके नियमोंका सूक्ष्म निरीक्षण करने पर पता लग सकता है कि, उन नियमों में अपना बल बढाने का उद्देश्य पूर्णतासे है। जो नियम बल घटानेवाला हो वह सत्य मानवधर्मका नियम नहीं हो सकता।

वैदिक धर्मके नियम, आचार और विचार बल बढानेवाले और बल बढाकर पुरुषार्थ को उद्युक्त करनेवाले हैं। बल अनेक प्रकारके हैं। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, सामाजिक, राजकीय आदि सेंकडों प्रकारके बल हैं। तथा हरएक प्रकार का बल बढाने की अत्यंत आवश्यकता है।

संपूर्ण बलोंकी अभिवृद्धि करनी है यह सत्य है, परंतु —

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥"

" शरीर ही पहिला धर्मका साधन है " इस लिये शरीर का बल बढाना हरएक मनुष्य का पहिला और अत्यावश्यक कर्तव्य है। अपने वैदिक धर्ममें हरएक प्रकारका बल वृद्धिंगत करनेके उपाय

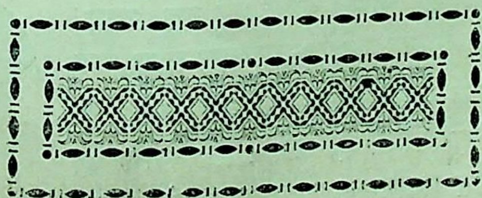
उत्तम रीतिसे कहे हैं । शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक बल बढानेके लिये विशेष कर योग शास्त्र है । योगशास्त्रमें–

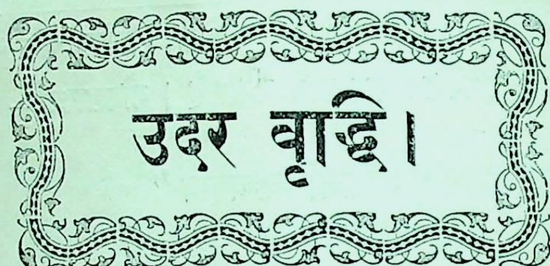
"आसनों का महत्व"

है, यह बात सब जानते ही हैं। शारीरिक आरोग्य की दृष्टिसे ही आसनोंका विशेष महत्व है। इन आसनों में कई आसन केवल ध्यान धारणा के लिये ही हैं, इनका उपयोग मानसिक शक्तिका विकास करने के लिये ही होता है । दूसरे हैं जो नसनाडीकी शुद्धि द्वारा नीरोगिता सिद्ध करनेवाले हैं । कई आसन विशेष रीतिकी चिकित्सा के लिये होते हैं तथा कई रोग प्रतिबंधक भी हैं ।

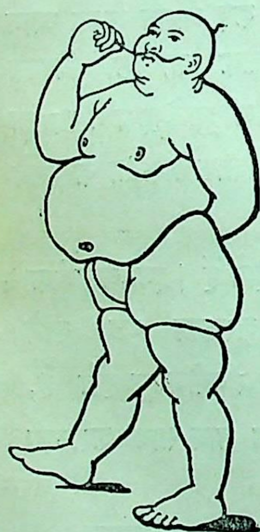
इनके अतिरिक्त कई आसन बलवर्धक होते हैं । इन आसनोंका अभ्यास विशेष क्रम से करनेसे शरीरका बल बढने लगता है, भूख बहुत बढ जाती है, शरीरसे रोगबीज दूर होते हैं, शरीर नीरोग होता है और शारीरिक शक्तिके साथ साथ शरीरकी कांतिभी बढती है ।

क्रमशः





(लेखक-प्राणपुरी)



शरीर का मोटा होना कई प्रकार का है, [१] एक तो वह है, जिसका सारा शरीर ही अति मोटा हो, और इसी मोटाई के कारण चलने फिरने तथा अन्य कार्य करने में भी कठिनाई हो। [२] दूसरे वह है, जो इतना मोठा शरीर हो, जो चलने फिरने में तो कोई कठिनाई न हो, परंतु जो काम फुरती से किये जाते है, उन्हें न कर सके; और धीरे धीरे शरीर मोटे पन की ओर बढ रहा हो।

[३] तीसरे वह शरीर जिसमें अन्य शरीर की अपेक्षा केवल **पेट बढ जाय, अथवा पेटके अतिरिक्त शरीर पतला पड जाय**। कई वार यह पेट वृद्धि उन बालकों को हो जाती है, जिन्हे दूध नहीं मिलता है, और रूखा अन्न ही मिलता है। उस अवस्था में भुजाएं और टांगें पतली



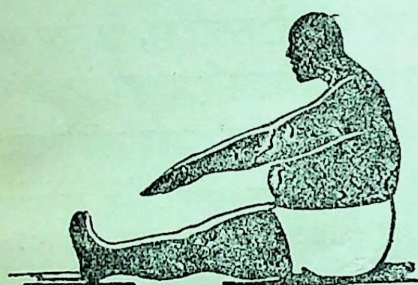
हो जाती हैं, और पेट बढ जाता है उसी बालक के सदृश कई व्यक्तियों का पेट बढ जाता है और कईयों का शेष शरीर पतला नहीं होता है, तो भी पेट अपेक्षा से अधिक बढ जाता है।

उपरोक्त तीनों प्रकार की स्थूलता की चिकित्सा यदि औषधि उपयोग को छोडकर, **योग की रीति से करनी हो, तो योग की क्रियाओं और आसनों द्वारा की जाती है।** इस लेख में मैं प्रथम और दूसरे प्रकार की मोटाई का कोई उपाय नहीं लिखूंगा केवल तीसरे प्रकार की मोटाई का ही वर्णन करूंगा, और यह उपाय कई व्यक्तियों ने किया है, और उनका उदर न्यून हो गया है। इसी लिये मैं ने "**वैदिक धर्म**" में लिखने का उत्साह किया है।

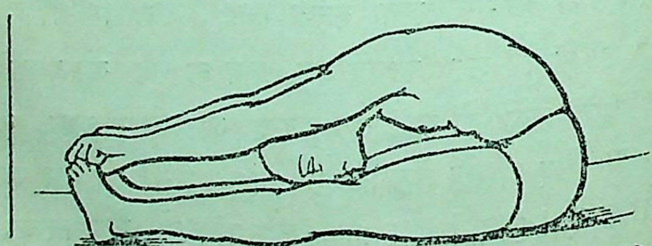
जिसका पेट बढ गया हो, अर्थात् जिसकी तोंद निकल आई हो, जिसे पंजाब में गोगड् कहते हैं, उसे निम्न लिखित रीति से "**योगका व्यायाम**" करना चाहिये।

[१] प्रथम तो वह भूमि पर नितंब टेककर बैठ जाय, और एक टांग को सामने आगे फैला दे और दूसरे पांव को फैलाई हुई टांग के मूल में तलवा उपरको करके जमाले, और धीरे धीरे अपने दोनों हाथ फैला कर फैलाए हुए पांव के पंजे को पकडें। यदि न पकड सकें, तो जहां तक हाथ जा सके ले जाएं, वहां **ठहर कर फिर सिधे बैठ जाएं, । इसी भांति दो वार यत्न करके छोड दें।** [२] और फिर दूसरी टांग को फैल कर अर्थात् पूर्व से विपरीत कर के, पहले की तरह दो वार यत्न करे [३] और

इसके पीछे दोनों टांगों को फैला कर पास पास रखें। सारी टांग भूमिपर लगी हुई हो, और एडी पृथिवी पर लगी हुई और पग का पंजा ऊपर को हो। इस भांति बैठकर दोनों हाथों को फैला कर यत्न करे, जो तर्जनी और मध्यमांगुली से पग के अंगूठे को पकडना है।



यदि प्रथम दिवस न पकडा जाय, तो कोई चिंता नहीं। दोवार यत्न करके छोड देना चाहिये। इसी भांति उस समयतक यत्नवान हो, जिस समय तक पगके अंगूठे न पकड ले। जिस समय अंगूठों को पकड ले उस समय अंगूठों को दृढ पकडकर धीरे धीरे शरीर को आगे झुकावे, जहांतक कि माथा जानु को स्पर्श करने लगे, और इसी रीतिसे अर्थात् माथा को जानु पर रख कर जितना समय ठहर सके, उतना ठहरा रहे। माथे को जानु पर लगने के समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये, टांगें भूमि के ऊपर न उडें, और घुटना इकठ्ठा न हो।



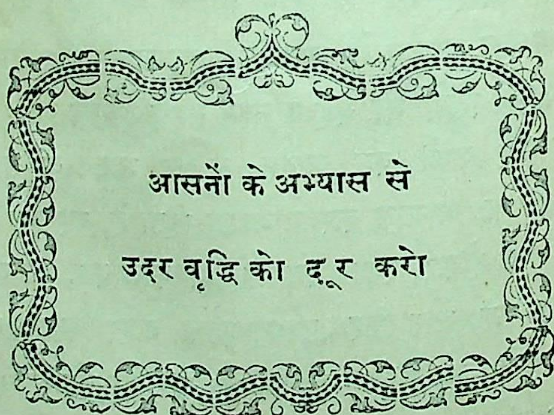
इसी आसन का नाम पुस्तकों में "**पश्चिमतान**" लिखा है, और

'वैदिक धर्म'में इसका नाम **"जानु शीर्षकासन"** पूर्व लिखा गया है। जिस समय यह आसन उपरोक्त विधिसे सिद्ध हो जाय, उस समय उस आसनका समय बढाना चाहिये। मैं ने इस आसन को प्रति दिवस आध आध घंटे तक स्वयं किया है; इस लिये यदि किसी से प्रथम न हो तो उसे निरुत्साहित न होना चाहिये। क्यों कि बल पूर्वक करने से लाभ के स्थान में हानिका भय रहता है। इस लिये यह आसन धीरे धीरे करना उचित है। जो व्यक्ति इस आसन को १५ मिनिट प्रति दिवस करे, उसका उदर अवश्यमेव ठीक हो जाता है, और जिस समय यह आसन अनायास होने लग जाय, लाभ तो उसी समय प्रतीत हो जाता हैं। इस लिये **जिन महानुभावों का पेट बढा हुवा हो, उन्हें औषधियों का पीछा छोड कर, इसी आसन का अभ्यास करना चाहिये। इस रोग के अतिरिक्त इस आसन से क्षुधा भी बढ जाती है, जिन्हें मंदाग्नि हो उनके लिये भी यह आसन लाभ दायक है।**

उदर-वृद्धि वालों को आरंभ से इस आसन के साथ साथ **"नौलिक"** का अभ्यास करना अच्छा रहता है, वह इस प्रकार है

सीधे खडे होकर, श्वास को बाहेर निकाल कर, पेट को अंदिर को संकोच करे, और फिर पूर्ववत् श्वास बाहर निकाल कर, कुछ झुककर, दोनों हाथ दोनों घुटनोंपर रख कर, पेट को उपर खैंचकर दाएं और बांए हिलाए। इसी भांति तीन चार बार प्रति दिवस करे। यह भी पेट को हलका करने में सहायता देता है।

पेट-वृद्धिवाले यदि डाक्टरों की शरण में न जाकर और औषधि पर धनका अपव्यय न करके, उपरोक्त **योगके साधनों में प्रवृत्त हों, तो उन्हे विना धन नष्ट किये ही, लाभ हो सकता है।** यही नहीं और भी कई रोग हैं, जिनकी चिकित्सा इस ढंग से हो सकती है। अतः लोंगो को इसी भांति की चिकित्सा में प्रवृत्त होकर, इन आसनों का विशेष प्रचार करना चाहिये।



सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नतिके वेदोक्त साधन।

(लेखक—श्री. पं. धर्मदेव सिद्धान्तालंकार)

"वैदिक धर्म"के जुलाई मास के अंकमें मैंने ऋग्वेद के अंतिम सूक्त का पद्यानुवाद 'सामाजिक उन्नतिके साधन' इस शीर्षक के नीचे दिया था। आज इसी विषय में दो अत्युत्तम वेद मंत्रों के द्वारा कुछ भाव पाठकों के विचारार्थ रखना चाहता हूं। आशा है विचारशील पाठक उन पर पूर्ण विचार कर के लाभ उठावेंगे। प्रथम मंत्र ऋग्वेद तृतीय मंडल के अष्टम सूक्तका नवम मंत्र है, जो इस प्रकार है—

हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः। उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद् देवा देवानामपि यंति पाथः॥ ऋ ३।८।९

इस मंत्रका सीधा शब्दार्थ—

[हंसा इव] हंसों के समान [श्रेणिशो यतानाः] मिलकर उद्देश्य सिद्धिके लिये यत्न करते हुए (स्वरवः) जिनकी अपनी वाणी उत्तम तत्त्वों का प्रकाश करने वाली है, ऐसे सज्जन (न आगुः) हमें

प्राप्त होवें । (कविभिः) दूर दर्शी विद्वानों के द्वारा (पुरस्तात्) आगे आगे (उन्नीयमानाः) उन्नति के मार्ग की ओर प्रेरित हुए [देवाः] ज्ञानी [अपि] भी [देवानाम्] अपनेसे उत्कृष्ट कोटिके ज्ञानियों के [पाथः] मार्ग पर [यन्ति] चलते हैं ।

इस मंत्र के अन्दर मुख्यतया निम्न लिखित तत्त्वों का प्रतिपादन है-

[१] विद्वानों को मिलकर उद्देश्य की सिद्धि के लिये यत्न करना चाहिये । एक दो व्यक्तियों के ही यत्न से उद्देश्य की सिद्धि अत्यन्त कठिन है । अर्थात् **किसी भी सामाजिक अथवा राजनैतिक सुधार के लिये संगठन की बड़ी आवश्यकता है ।**

[२] ब्रम्हचर्य व्रत के पालन द्वारा वीर्य रक्षण करना प्रत्येक पुरुष के लिये अत्यावश्यक है ।

[३] इस प्रकार वीर्यरक्षक पुरुषार्थी सज्जनों की संगति में रहने से ही वास्तविक उन्नति संभव है ।

[४] संगठन के लिये यह आवश्यक है कि, दूरदर्शी अनुभवी लोग नेता का काम करें और अपने अनुभवसे अनुयायियों को उन्नति के मार्ग की ओर निरन्तर ले जाने का यत्न करें । कवि [क्रान्तदर्शी] अर्थात् दूरदृष्टिसम्पन्न ज्ञानी जबतक नेता नहीं, तब तक सामाजिक उन्नति असंभव है ।

[५] ऐसे पुरुषार्थी वीर्यरक्षक हितवादी दूरदर्शी अनुभवी सज्जनों के बताये मार्ग पर चलना अन्य साधारण विद्वानों का कर्तव्य है । प्रत्येक को अपनी ही सम्मति को प्रधानता देते हुए अपनी "ढाई

चावल की खिचडी अलग पकाकर' समाज के संगठन में बाधा न उपस्थित करनी चाहिये, किंतु अनुभवी ज्ञानियों के पीछे पीछे चलते हुए उनकी सहायता से समाज तथा राष्ट्रका हित सम्पादन करना चाहिये।

ये पांच बातें सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नति के लिये कितनी आवश्यक हैं, इसका प्रत्येक विचारशील पुरुष स्वयं विचार कर सकता है; विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं।

अत: दूसरा अथर्व वेदका एक मंत्र राष्ट्रीय उन्नति के विषय में यहां प्रस्तुत करता हूं।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयंति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।

अ. १२। १। १॥

मंत्र का शब्दार्थ निम्न प्रकार है

[सत्यं] सत्य, [बृहद् ऋतम्] विस्तृत ज्ञान, [उग्रम] क्षात्र बल, [दीक्षा] ब्रह्मचर्यादि व्रतों की दीक्षा, [तपः] धर्म मार्ग में आने वाली आपत्तियो को सहर्ष सहन करना, (ब्रह्म) अन्न अथवा धन (यज्ञ:) देवपूजा, संगतिकरण अथवा संगठन और दान, ये सब मिलकर (पृथिवीं धारयंति) मातृभूमि का धारण वा संरक्षण करते हैं। (सा) वह (न:) हमारे (भूतस्य भव्यस्य पत्नी) भूत और भविष्य के सब पदार्थों की रक्षा करने वाली (पृथिवी) मातृभूमि (न:) हमारे लिये (उरुं लोकं कृणोतु) विस्तृत प्रदेश को करे।

इस पृथिवी सूक्त के प्रथम मंत्र में राष्ट्रीय उन्नति के साधक निम्न तत्वों का प्रतिपादन है —

[१] सत्य के विना मातृभूमि का यथार्थ चिरस्थायी हित असंभव है ! ऋग्वेद में भी **'सत्येनोत्तभिता भूमिः'** ऋ. १०।८५।१ अर्थात् सत्य के कारण ही इस भूमिका धारण होता है, इत्यादि मंत्रों द्वारा राष्ट्रीय उन्नति के लिये सत्य की आवश्यकता को बताया गया है। देश भक्तों को वेद के इस निर्देश को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये। पाश्चात्य राजनीतिज्ञों की असत्यप्रधान कूटनीति का अवलंबन करने से हम देशका सच्चा हित सम्पादन नहीं कर सकते।

[२] राष्ट्रीय उन्नति के लिये ज्ञान के प्रसार करने की बडी भारी आवश्यकता है, साथ ही वह ज्ञान हमारी संकुचित विचारता को दूर करने वाला होना चाहिये।

[३] क्षात्र बल तथा सेना के विना भी राष्ट्र का धारण नहीं हो सकता, अतः क्षात्रियों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

[४] ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन करने वाले जब तक नागरिक न हों, तब तक अन्य बातों के होते हुए भी, पूर्ण उन्नति की आशा न करनी चाहिये।

[५] जो लोग राष्ट्रीय अथवा सामाजिक हित सम्पादन करना चाहते हैं, उन्हें भोग विलास में न फँसते हुए, तपस्वी बनना चाहिये और धर्म मार्ग में आनेवाली आपत्तियों से कभी घबराना नहीं चाहिये।

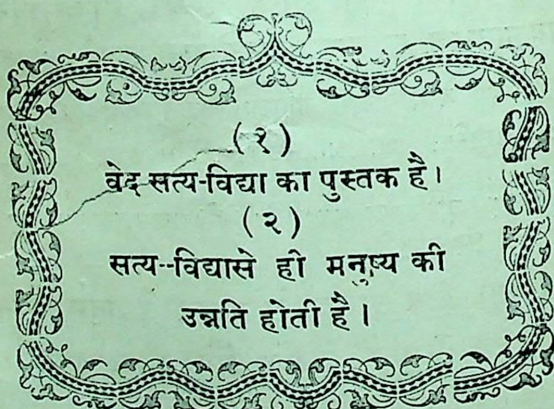
[६] धन तथा अन्न की भी राष्ट्र के लिये बडी जरूरत है इन दोनों के विना राष्ट्र का कार्य चलही नहीं सकता।

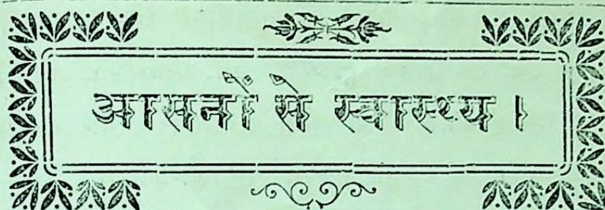
(७) विद्वानों की पूजा, सबको मिल कर राष्ट्र हित साधक बातों का विचार करना, और उत्तम संस्थाओं तथा गरीबों का दान, यह यज्ञ राष्ट्रीय उन्नति के लिये आवश्यक है। यज्ञ शब्द में मुख्यतः स्वार्थ त्याग का भाव आता है, और स्वार्थ त्याग के विना राष्ट्रीय अथवा सामाजिक उन्नति न केवल कठीन अपि तु असंभव है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं हो सकता।

इन बातों का पूर्ण रीतिसे विचार करते हुए, हमें इन सब आवश्यक गुणों को अपने अन्दर धारण करनेका यत्न करना चाहिये। थोडा सूक्ष्म विचार करने पर हमें ज्ञात हो जाएगा कि, "**ऋत, उग्र, ब्रह्म, और तप**" शब्दों से इस मंत्र में क्रमशः "**ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रों**" के कार्यों का साधारण निर्देश किया गया है। "**ब्रह्म**" शब्द के धन और अन्न ये दो अर्थ वैदिक कोश निघंटु में स्पष्ट पाए जाते है। "**तप**" शब्द से प्रधानरूपेण नहीं, तो भी गौण रूपेण शीतोष्णादि द्वंद्वों के सहन करने का अभ्यास शूद्र के लिये आवश्यक होने के कारण उसका ग्रहण संभव है। यजुर्वेद के "**तपसे शूद्रं**" (य. अ. ३०। ९) इस वाक्य से भी इसी अभिप्राय की पुष्टि होती है। इस तरह जब देशवासी राष्ट्रीय हित साधक तत्त्वों को अपने अन्दर धारण करलेते हैं, तभी उनका राज्य का विस्तार होता है। यह भाव मंत्र के अन्तिम भाग में सूचित किया गया है। पृथिवी हमारे प्रदेश को विस्तृत करे, इस का तात्पर्य यही है कि, हमारी मातृ भूमि की

उन्नति होकर उस के शासकों का खूब राज्य विस्तार होवे।

इन दो मंत्रों पर विचार करने से हमें सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नति के साधक अनेक उत्तम तत्त्वों का निर्देश मिल सकता है। इतने उत्तम तत्त्वों का जिस ग्रंथ में प्रतिपादन हो, क्या कोई निष्पक्षपात पुरुष उसे जंगलियों का बनाया हुआ कह सकता है? कभी नहीं। हम आर्य लोगों का यह कर्तव्य है कि, "वेद सब **सत्य विद्याओं का पुस्तक है"** इतना कहते कहते ही अपनी आयु न बिता दें, किंतु वेदोक्त तत्त्वों का मनन करते हुए, उनकी अटल सचाईका सर्वत्र प्रकाश करके, जनता को लाभ पहुंचाएं।





आसनों से स्वास्थ्य।

(लेखक—श्री० पं. सूर्य देवशर्मा विशारद; दयानंद कॉलेज कानपुर)



"वैदिक धर्म" के कई विगत अंकोंमें उन महानुभावों के महा अनुभव दिये गये हैं; जो कि विविध प्रकार की अवस्थाओं में आसनोंसे स्वास्थ्य लाभ कर चुके हैं। मेरी भी एक विचित्र विद्यार्थी की अवस्था है, और इस अवस्था में अति अल्पकाल में आसनों द्वारा मुझे जो अनुपम लाभ प्रतीत हुये हैं, उनका प्रकाश करना भी—'स्वाध्याय मंडल" का एक सभासद होता हुआ—मैं अपने भारतीय विद्यार्थि गण तथा अन्य शिक्षित, किंतु निठल्ले बैठे हुये, भ्राताओं के लिये अनुचित तथा अहितकर नहीं समझता।

प्रारंभ से मेरी वृत्ति उन विद्यार्थियों की श्रेणी में रखी जाने योग्य है, जिनका यह सिध्दांत है:—

"हमें क्या काम दुनियां से मदरसा है वतन अपना
मरेंगे हम किताबों में सफे होंगे कफन अपना।"

मैं ने शारीरिक अवस्था पर कभी ध्यान नहीं दिया, उन का फल यह हुआ, कि जहां मैं पढने में सर्व प्रथम रहा, वहां स्वास्थ्य में सबसे अधम रहा। भोजन भले प्रकार पचन न होता था, बुभुक्षा लगने पर भी बहुत थोडा भोजन कर सकता था। सदा आम और कब्जी की

शिकायत ही रही करती, शौच कभी खुलकर न होता, और शौच के पश्चात् भी पेट भारीसा ही प्रतीत होता, कुछ आलस्य की भी मात्रा बढने लगी। उस अपचन के ही कारण सप्ताह में प्रायः दो दिवस का उपवास करना पडता, तब कहीं निज छात्र जीवन–यात्रा में चलने के योग्य रहता। लेकिन ठीक मंजिल पर पहुंचकर –परीक्षा के दिनों में —मेरी शरीररूपी गाडीका कोई न कोई पुरजा बिगड ही जाता और परीक्षोत्तीर्ण होने का वह सुख जो सब श्रेष्ठ विद्यार्थी को होना चाहिये,कभी न मिलता।

इसी मध्य में अपचन और अस्वास्थ्य का साथी एक और जीवन नाशक रोग—धातुविकार–पीछे लगता हुआ प्रतीत हुआ। जिससे मुझे सारे सांसारिक जीवन से निराशा होने लगी, क्यों कि उसके परीणामों को मैं पहले से सुन चुका था; जिसके निराकरण के लिये मैं ने पूर्व कई "वैद्यशास्त्री" "आयुर्वेदाचार्यों" की औषधियों कासेवन प्रारंभ कर दिया। लेकिन उनसे मुझे कोई स्थायी लाभ नहीं प्रतीत हुआ। मैं वहां से निराश हो, शोक समुद्र में डूबने ही को था, कि **"वैदिक धर्म का"** नौकारूप एक अंक प्राप्त हुआ। उसमें "**ब्रह्मचर्य रक्षण के तीस नियम**" पढकर कुछ सांत्वना हुई !! इसी बीच में हमारे सुयोग्य प्रो. कृष्ण कुमार जी एम्.ए. ने मेरी रुची देखकर कुछ आसनों का अभ्यास मुझे कराया। वैदिक धर्म के दूसरे ही अंक में सचित्र "**शीर्षासन**" दिया गया। जैसे ही मैं ने वह अंक पढा, उसी समय अपने मित्रों की सहायता से शीर्षासन को करना प्रारंभ कर दिया, और तब से निरन्तर करता रहा हूं।

आज कल उस को लगभग आध घंटे तक किया करता हूं, और उसके पश्चात् अन्य आसन, लगभग ३० के, प्रतिदिन किया करता हूं। जिनका फल यह हुआ है, कि जितनी आपत्तियां स्वास्थ्य के मार्ग में विघ्न उपस्थित करने वाली होती थीं, वे प्रायः सभी पराभूत हो चुकी हैं।

१. मेरा शरीर पहले से लगभग १॥ गुना अधिक हृष्ट पुष्ट प्रतीत होता है. और इसी में किसी रोग का प्रवेश सरलतासे नहीं हो सकता।

२. मैं कभी तैल आदि मर्दन नहीं करता, तब भी सारा शरीर नर्म, लचीलापन लिये हुये और तैलमर्दित चिकना सा रहा करता है।

३. जहां पहले शौच में आध घंटा तक लग जाता था, वहां अब दो मिनिट भी नहीं व्यय होते, और देर तक बैठकर पेट को मरोडना और श्वास साधना नहीं पडता।

४. जहां पहले सप्ताह में दो दिन उपवास करना पडता था, वहां अब एक समय के लिये भी भोजन छोडने की आवश्यकता नहीं पडती।

५. अब मुझे बडी कडाके की भूख लगती है, और भोजन भी पहले से अधिक कर लेता हूं।

६. अन्य सारे धातु विकार दूर हो कर [जिन के निराकरण के लिये मैं ने संपादक वैदिक धर्म को भी पत्र द्वारा उपाय पूछा था.

नीरोगताके विना मनुष्य कोई पुरुषार्थ कर नहीं सकता। रोगी मनुष्य सदा बिस्तरेपर लेटा रहता है, और पराधीन रहता है,। रुग्ण अवस्थाके कारण न वह अपनी उन्नति कर सकता है, और न समाज तथा राष्ट्रका हित कर सकता है। (१) "**धर्म**" अर्थात् कर्तव्य पालन, (२) "**अर्थ**" अर्थात् धनोपार्जन, (३) "**काम**" अर्थात् महत्वकी आकांक्षा और (४) "**मोक्ष**" अर्थात् स्वाधीनता ये चार पुरुषार्थ मनुष्य के लिये करने आवश्यक हैं। परंतु रोगी इन पुरुषार्थोंको कर ही नहीं सकता। इस लिये हरएक मनुष्यको आवश्यक है, कि वह अपनी स्वस्थता सुरक्षित रखे और अपने ऊपर रोगोंका आक्रमण होने न दें।

"**आमय**" शब्द रोग का वाचक है, इसका अर्थ यह है कि "जो आमसे बनता है," शरीरमें अपाचित अन्नसे "आम" होता है, इस आमका कोष्ठादि स्थानमें संचय होनेसे रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिये वेदमें स्वास्थ्य का नाम "अन् + आम + य" (अनायम) है। देखिये--

अयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे
जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मे ॥ य० १८। ६

"मेरी नीरोगता, स्वस्थता, जीवन और दीर्घआयु यज्ञसे बढे।" इस मंत्रमें "**अनामयत्**" शब्द रोग रहित अवस्थाका द्योतक है। इसी अर्थका वाचक "**अनमीव**" [अन + अमीव] शब्द है, इसका तात्पर्य भी उक्त प्रकार ही है। "आम" से उत्पन्न होने-

वाली बीमारी " अमीव " कहलाती है, और उस रोगी अवस्था-से भिन्न स्वास्थ्य की अवस्था " अनमीव " शब्द बता रहा है। यह अवस्था हरएक को प्राप्त करनी चाहिये। इस विषयमें वेदकी प्रार्थना देखिये—

स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ॥
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥

ऋ. ३। १६। ३

" हे (अग्ने) तेजस्विन्! तूं हम सब को ऐसा धन दो, कि जो उत्तम (सुवीर्य) पुरुषार्थ से युक्त, (प्रजावतः) संतान युक्त, (अनमीवस्य) नीरोगतासे युक्त और [शुष्मिणः] बलसे युक्त हो। " तात्पर्य ऐसा धन नहीं चाहिये, कि जो वीर्यहीनता, रोग, निर्बलता और संतान न होने की अवस्था उत्पन्न करनेवाला हो। प्रत्युत ऐसा धन चाहिये कि, जो नीरोगताके साथ उत्तम संतति, पौरुष प्रयत्न करनेकी हिंमत, और बल की वृद्धि करनेवाला हो। तात्पर्य **वेदकी दृष्टिसे (१) स्वास्थ्यके साथ [२] उत्तम जीवन, [३] दीर्घायुत्व, [४] सुप्रजा निर्माण की शक्ति, तथा [५] बलका संवर्धन, [६] और उग्रता चाहिये।** यही वैदिक आदर्श है। हरएक वैदिक धर्मी मनुष्य को इसकी सिद्धता करने का यत्न करना अत्यावश्यक है। इसकी सिद्धता करनेके लिये योग साधन का मार्ग ऋषिमुनियों द्वारा निश्चित हुआ है, उसके अनुसार चलनेसे हरएक मनुष्य उक्त गुणोंका विकास अपने अंदर कर सकता है।

योगके आसनोंके अभ्यासका महत्व उसी समय ज्ञात हो सकता है, क्योंकि आसनोंसे नसनाडीकी निर्मलता सिद्ध होती है। अपने वैद्यग्रंथोंमें भी इस रोगका यही लक्षण किया है—

१ अत्युष्णगुर्वन्नकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसंगैः ॥
५ संचिंतनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पंचविधः प्रदिष्टः ॥

भावप्रकाश ।

" अत्युष्ण, जड, खट्टा, इम्ली, मिरच आदि, तथा कडुवा आदि अन्न खानेसे, शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम अधिक करनेसे, हृदयपर आघात होनेसे, पहिला अन्न न पचनेकी अवस्थामें पुनः बार बार खानेसे, चिंता बहुत करनेसे; मलमूत्रोंके वेगोंका अवरोध करनेसे हृदयके रोग उत्पन्न होते हैं। उनके पांच भेद हैं " इस प्रकार आर्य वैद्यक ग्रंथोंमें हृद्रोगके कारणोंका विचार किया है।

आजकल चा, काफी, तमाखू आदि दुर्व्यसन बहुत फैले हैं। इनके कारण भी हृदयकी कमजोरी दिन प्रतिदिन बढ रही है! इसी प्रकार कामोत्तेजक औषधोंके विज्ञापन अखबारी दुनियामें प्रसिद्ध हो रहे हैं, इस कामकी उत्तेजनासे भी हृदयकी कमजोरी हो रही है। जितना कामविषय बढेगा उस प्रमाणसे हृदयका रोग बढेगा और उतना जनताका नाश होगा। इसलिये इस प्रकारके विज्ञापन वास्तवमें मुद्रित नहीं होने चाहिये परंतु [१]जनतामें मूर्खता है ; इसलिये अज्ञ लोग अपनी कामेच्छा बढाना चाहते हैं , [२] धनेच्छुक वैद्य लोग इसका फायदा उठाना चाहते हैं !! और [३] दोनोंसे अखबार वाले अपना स्वार्थसाधन करनेकी इच्छा करते हैं !!! इस " त्रि दोषके"

कारण जनतामें हृदयका रोग बढ रहा है, इस बातका पाठक विचार करें और सावध रहें।

हृद्रोगको दूर करनेवाले सुगम उपाय ग्रंथकार की दृष्टिसे ये हैं– [१] **व्यायाम,** [२] **शुद्ध भोजन ,** [३] **शुद्ध वायुका** सेवन, [४] **वीर्यरक्षण अर्थात ब्रह्मचर्य,** [५] **दुर्व्यसनों का त्याग,** [६] शीतोदकसे स्नान ! इनका अवलंबन अपनी शक्तिके अनुसार करनेसे हृद्रोग दूर हो सकता है। कई लोग डराते हैं , और कहते हैं कि, व्यायामसे हृद्रोग बढता है, परंतु अनुभवकी बात यह है कि, योग्य व्यायाम न करनेसे ही इस रोगकी वृद्धि हो रही है। हृद्रोग होनेपर [१]उष्ण जलका सेक [२] विद्युद्वर्धक उत्तम औषधका सेवन , [३]लंघन , [४]योग्य प्राणायाम और (५) नमस्कारों का योग्य प्रमाणमें "सूर्य भेदन व्यायाम" करनेसे बहुतही लाभ होता है। ग्रंथकार कहते हैं कि, सवेरके समय शुद्ध वायुमें प्राणशक्ति अधिक होनेसे इस समयमें शुद्ध वायुका सेवन करने तथा योग्य प्रमाणमें थोडा प्राणायाम करनेसे हृद्रोगके बीमार को बडा लाभ होता है ! भोजनमें फलोंका उपयोग बहुत करना लाभ कारी है ! तैरने से वीर्यकी स्थिरता होती है, मज्जातंतुका बल बढता है और हृद्रोग दूर होता है। इसलिये तैरना अच्छा है। हृद्रोगके लिये सूर्य प्रकाश बडा आरोग्यप्रद है, इस विषयमें वेद कहता है —

हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥

ऋ–१।५०।११

"हे सूर्य! मेरा हृद्रोग और कामिला रोग नाश कर।" और मुझे आरोग्य दो। इस वेदकी प्रार्थनासे सूचना मिलती है कि सूर्य प्रकाशसे इन रोगोंका नाश होता है और आरोग्य प्राप्त होता है।

हृद्रोग पर उत्तम औषधि "अर्जुनवृक्ष" है इसका हिंदी भाषाका नाम "कहू, किंवा कोह" है। इसकी अंतरत्वचा सुखाकर कूटकर पानीमें मिलानी, पश्चात् उसका सत्त्व पानीके नीचे जम जाता है, उसका प्रतिदिन दो मासे सेवन घी और मधुके साथ अथवा दूधमिश्रीके साथ करनेसे बहुत लाभ होता है। पित्तजन्य हृद्रोगमें अर्जुनादि चूर्ण, वातज हृद्रोगमें पुष्करमूलादि चूर्ण, कफजन्य हृद्रोगमें एलादि चूर्ण, तथा क्रिमिजन्य हृदयविकार के लिये वाय वडिंग—कोष्ठादि चूर्ण बहुत उपयोगी है!

हृदयके विकार में लंघन से बहुत लाभ होते हैं। प्रायः इस रोगके मूल में अपचन होता है, इसलिये साप्ताहिक अथवा पाक्षिक उपवास करनेसे लाभ होता है।

इस प्रकार इस पुस्तकमें बहुत उपयोगी ज्ञान है और आज कलके दिनों में यह ज्ञान बहुत ही आवश्यक है। यह ग्रंथ मराठी भाषामें है, इसलिये जो लोग मराठी जानते हैं इसको अवश्य पढें।

(२) **शारदा**=[मराठी सचित्र मासिक पत्र। संपादक श्री. के. र. काशीकर, भारतीय साहित्य मंदिर, पुणें। वार्षिक मू. ४]

श्री० काशीकर जी के उत्साह पूर्ण संपादकत्वसे इस मासिक का प्रकाशन हो रहा है। हमारे सन्मुख इस मासिक के तीन अंक हैं,

जिसको देखनेसे निश्चय होता है कि, यह मासिक मराठी साहित्यकी अभिवृद्धि करेगा। इस समय मराठी भाषामें अनेक मासिक हैं, परंतु केवल साहित्यसेवाका पवित्र उद्देश्य जैसा इस मासिक के सन्मुख रहा है, वैसा बहुत थोडे मासिकोंनें अपने सन्मुख रखा है। इस लिये प्रबल आशा है कि इस मासिक की गणना शीघ्रही उच्च कोटीके मासिकों में हो जायगी। मराठी भाषा जाननेवाले पाठक इसके ग्राहक बनें और संपादक महोदयजीका उत्साह द्विगुणित करें।

(३) **स्वराज्य रत्नाकरः।** – (लेखक = श्री. पं. **रामाचार्य, गलगली**, जि. धारवाड। मू. तीन आने)

इसमें स्वदेशीय लहरी, गांधीटोपीलहरी, चक्रलहरी, बहिष्कार लहरी, कारागृह लहरी, ये पांच काव्य संस्कृत भाषा में हैं! काव्य उत्तम हैं और पढने योग्य हैं। संस्कृत लेख और संस्कृत काव्य रचनामें पं. रामाचार्य जी सुप्रसिद्ध हैं।

(४) **अछूत।** – मासिक पत्र। – (संपादक — श्री **हरिहर स्वामी**, पहाड गंज देहली। वार्षिक मू. १॥)

यह मासिक पत्र अछूतों के उद्धारके लिये प्रसिद्ध हो रहा है। इसका उद्देश पवित्र है और अछूतों को पवित्र करनेका योग्य कार्य इस समय करना आवश्यक है। अछूतोंको अछूत अवस्थामें रखना पाप है, इसलिये इस कलंक को धोना हरएक राष्ट्राभिमानी का आवश्यक कार्य है। श्री. महात्मा गांधीजीका कहना है कि— "यदि तुम गुलामीसे मुक्त हो, स्वराज लेना चाहते हो, तो पहिले

अपनी गुलामीमें जकडे हुए अछूतों को छुटकारा दो ।" यह महात्माजीका उपदेश है और यह सत्वर कार्यमें लाने योग्य है। श्री. रामानुजाचार्य जीने अछूतोध्दारका पवित्र कार्य कई शताब्दियोंके पूर्व प्रारंभ किया था । उन्होंने इनका नाम "अछूत" न रखते हुए "श्रेष्ट" (तिरुक्कुलतार) रखा था । इसी प्रकार हम सबको "अंत्यज, अछूत" आदिनाम भूलने चाहिये और इनका कोई अन्य नाम रखना चाहिये और जहांतक हो सके वहांतक अतिशीघ्र उनको पावन समझना चाहिये । संभवतः इसीलिये इस मासिकके संपादक ने "अछूत [पवित्र]"ऐसा नाम रखा है।

(५) **दयानंदप्रकाश**-यह साप्ताहिक पत्र माननीय विद्वान पं. ब्रह्मदत्तजी सिद्धांतालंकार के संपादकत्वमें देहलीसे प्रकाशित होता है। वार्षिक मूल्य ४)रु. है ।

(६) **शांतिनिकेतन माला !**–(मराठी)–शांतिनिकेतन मालाकार्यालय।४८३ शनिवारपेठ, पूना ॥ कवि–सम्राट् श्री०रवींद्रनाथ ठाकूर के बंगला सारस्वत का मराठी रूपांतर करने का प्रशंसनीय कार्य उक्त कार्यालयसे हो रहा हैं ।इस समय हमारे सन्मुख इस ग्रंथ माला का द्वितीय भाग है । इसको देखनेसे हम कह सकते हैं कि इसमालासे कवींद्रके विचारोंका रसास्वाद मराठी वाचकोंको सुगमतासे प्राप्त होगा



ॐ



"योग की आरोग्य वर्धक व्यायाम पद्धति"।



"संध्योपासना" आदि सब धर्मकृत्योंमें सबसे प्रथम "आसन" लगानेकी आवश्यकता है। आसन लगानेके विना कोईभी धर्मकृत्य नहीं होता। इतना धर्मकृत्यके साथ आसनोंका दृढ संबंध है

× × × ×

आसनोंका महत्व।

आसनोंका महत्व उतनाही है कि, जितना आरोग्यका महत्व है। आरोग्यके साथ आसनोंके व्यायामोंका घनिष्ठ संबंध है। शरीरके सब आंतरिक अवयवों और अंगों तथा नसनाडियोंका

ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् प्राचीन काल के ऋषि मुनि और योगियोंने इस आसन पद्धतिकी सिद्धता की है। ऋषिकालसे इस समय तक जिन्होंने आसनोंका अभ्यास किया है, उनको—

* * * *

आसनों के अभ्यास से लाभ

अर्थात् आसनोंसे आरोग्य प्राप्तिका अनुभव हुआ है। यह बात केवल श्रद्धा अथवा अंध-विश्वाससे ही माननेकी नहीं है। इस समयमें भी सहस्रोंकी संख्यामें अनेक लोगोंने इस आसन पद्धतिके व्यायामसे अपूर्व लाभ उठाया है! आप भी केवल तर्क न कीजिये। परंतु—

÷ ÷ ÷ ÷

स्वयं अनुभव लीजिये।

जहां स्वयं एक दो मासके अंदर ही अनुभव आ सकता है, वहां तर्कका और दलीलोंका काम ही क्या है? अनेक असाध्य बीमारियां इस पद्धतिके आसनोंके व्यायामसे दूर हो गई हैं। औषधिके सेवन की आवश्यकता नहीं है, इसमें व्यय कुछ भी नहीं है। केवल प्रतिदिन १५अथवा २० मिनिट कुछ आसन

आप करते जाइये, आपको आठ दस दिनों के अंदरही इससे आरोग्यका अनुभव निःसंदेह हो जायगा। अनुभव होनेके पश्चात् शंका करनेके लिये स्थान ही नहीं होता है। इस लिये आपसे प्रार्थना है कि आप स्वयं अनुभव लीजिये।

\+ + + +

इसमें कोई कठिनता नहीं है।



कई लोग ख्याल करते हैं कि आसन करनेमें बडी कठिनता होती है। परंतु यह वास्तविक नहीं हैं। आसनोंका अभ्यास बडा सुगम है। आप जितना सुगम चाहते हैं उससेभी सुगम है। इसीलिये इस अभ्याससे इस समयभी ७० और ७५ वर्षके वृद्ध पुरुष लाभ उठा रहे हैं।

जो आसन ७५ वर्षके वृद्ध कर सकते हैं वे आसन उससे कम आयुवाले निःसंदेह कर सकते हैं। छः वर्षोंसे लेकर ७५ वर्षतक के आयुवाले इस पद्धतिसे इस समय लाभ उठा रहे हैं। बाल,तरुण, वृद्ध, निर्बल, बलवान, रोगी, नीरोग, आदि सबोंको इस पद्धतिसे लाभ हुए हैं। इस लिये यह प्रत्यक्ष अनुभव होनेके कारण ही हम कह सकते हैं कि, इस से सबको निःसंदेह लाभ होगा।

स्त्रियों के लिये लाभ।

स्त्रियोंको प्रसूतिके बहुत कष्ट होते हैं। चारों ओर आज कल ये कष्ट बढ रहे हैं। इसका एक मात्र उपाय आसनोंका अभ्यास ही है। अनेक स्त्रियोंने इसका अनुभव लिया है, जिससे यह निश्चय पूर्वक और बलपूर्वक कहा जाता है कि, जो स्त्रियां नियम पूर्वक आसनोंका व्यायाम करेंगी और विशेषतः गर्भवती होनेपर करने योग्य आसन करती जायगी, तो उनको प्रसूतिके कष्ट कदापि नहीं होंगे।

स्त्री और पुरुषोंके लिये लाभकारी।

इस प्रकार यह आसनोंका व्यायाम स्त्रियों और पुरुषोंके लिये लाभ कारी है।

आसनों का पुस्तक।

इस आसनोंके पुस्तकमें अनुभवके सब आसन दिये हैं। आसनोंके तत्त्वका वर्णन किया है और नवीन आसन बनानेकी भी विधि बताई है। पुस्तक सर्वांग सुंदर, सचित्र और अत्यंत सुगम है।

मूल्य केवल २) दो रुपये है। अतिशीघ्र मंगवाइये।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

[भा. मु. मुद्रित।]



वैदिक धर्ममें विज्ञापन।



" वैदिक धर्म " मासिक पत्रमें विश्वास पात्र विज्ञापन मुद्रित करनेका प्रारंभ हुआ है। हम हर एक विज्ञापन नहीं लेते, परंतु जो विश्वास रखने योग्य और हमारे ग्राहकोंके लिये लाभ कारी होंगे, वेही विज्ञापन हम लेते हैं।

" वैदिक धर्म " में मुद्रित किये विज्ञापनोंसे विज्ञापकों को बहुत लाभ हो सकते हैं, इस के कारण निम्न लिखित हैं—

(१) हरएक ग्राहक इस " वैदिक धर्म " मासिकको संभालकर रखता है, इस लिये इसमें एक वार दिया हुआ विज्ञापन अन्यत्र अनेक वार मुद्रित करनेके बराबर होता है।

(२) हम केवल विश्वास रखने योग्य और चुने हुए विज्ञापन ही मुद्रित करते हैं, इसलिये हमारे मासिकमें मुद्रित किये हुए विज्ञापनोंपर पाठकोंका विश्वास रहता है।

(३) आप जानतेही हैं विश्वासके स्थानमें मुद्रित किये विज्ञापनोंसे अधिक लाभ हो सकता है।

(४) "वैदिक धर्म" में एकवार मुद्रित किया हुआ विज्ञापन कई वर्षतक पाठकोंको आपका स्मरण देता रहेगा।

(५) धार्मिक पुस्तकें, स्वदेशी कारीगरीकी चीजें, आदि के विज्ञापनों के लिये विशेष सुविधा की जायगी।

इत्यादि बातोंके कारण इस वैदिक धर्ममें विज्ञापन रखना आपके लिये लाभ कारी होगा। आशा है कि आप इससे लाभ उठायेंगे।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल,
औंध; [जि. सातारा.]



वैदिक धर्म मासिक पत्रमें विज्ञापन।

"वैदिक धर्म" मासिक पत्र में विज्ञापन छपाई के नियम निम्न लिखित हैं —

(१) विश्वास रखने योग्य विज्ञापन ही इस पत्र में मुद्रित होंगे।

(२) जिन विज्ञापनों से ग्राहकोंके लिये लाभ होगा, इसी प्रकारके विज्ञापन मुद्रित होंगे।

(३) औषधियोंके विज्ञापन लिये नहीं जांयगे।

विज्ञापन का मूल्य।

	१ वर्ष के लिये प्रतिमास	६ मास के लिये प्रतिमास	३ मास के लिये प्रतिमास	१ मास के लिये प्रतिमास
एक पृष्ठ	रु. ७)	रु. ८)	रु. ९)	रु. १०)
आधा पृष्ठ	रु. ४)	,, ४॥)	,, ५)	,, ६॥)
चतुर्थांश पृष्ठ	रु. २।)	,, २॥)	,, ३)	,, ४)

विज्ञापन का मूल्य पहले लिया जायगा।

[४] विज्ञापन छपते समयतक विज्ञापक को विना-मूल्य वैदिक धर्म मासिक पत्र दिया जायगा।

"वैदिक धर्म" मासिक पत्रमें विज्ञापन देना बहुत लाभ दायक है, क्यों कि इस पत्रके अंक ग्राहक सुरक्षित रखते हैं।

मंत्री–स्वाध्याय मंडल, औंध, [जि. सातारा.]

"दिया सलाई का धंदा।"

हम दिया सलाई का धंदा सिखाते हैं। अनेक देसी लकडीयों से दियासलाईयां बनाना, बक्स तैयार करना, ऊपर का मसाला लगाना आदि कार्य दो मास में पूर्णता से सिखाये जाते हैं।

सिखलाने की फीज केवल ५०) पचास रु. है।

हमारी रीतिसे दिया सलाई का कारखाना ५००) रु. में शुरू किया जा सकता है और लाभ भी होता है।

यहां रहने तथा भोजन आदिका व्यय प्रतिमास १५) रु. होता है।

अनेक विद्यार्थी स्थान स्थानसे आकर सीख रहे हैं। जो इस धंदे को अपने नगर में शुरू करना चाहते हैं यहां शीघ्र आजांय और सीख कर दो मासमें अपना धंदा शुरू करें।

मोहिनीराज मुले एम्. ए.
स्टेट लैबोरेटरी, औंध (जि. सातारा)

[हम इस कारखाने की दिया सलाईयां बरत रहे हैं। और यहां यह धंदा सिखाया जाता है। — **संपादक - वैदिक धर्म**]

स्वाध्याय के ग्रंथ।

—:*:—

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। **नरमेध**। " **मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन**। " मूल्य १।)

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। **सर्वमेध**। " **एक ईश्वरकी उपासना**। " मू. ॥) आठ आने।

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। **शांतिकरण**। " **सच्ची शांतिका सच्चा उपाय**। " मू. ॥) आठ आने।

[२] देवता- परिचय- ग्रंथ- माला।

(१) **रुद्र देवताका परिचय**। मू. ॥) आठ आने

(२) **ऋग्वेदमें रुद्र देवता**। मू. ॥=) दस आने।

(३) **३३ देवताओंका विचार**। मू. =) दो आने।

(४) **देवताविचार**। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग- साधन- माला।

(१) **संध्योपासना**। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥)

(२) **संध्याका अनुष्ठान**। मू. ॥) आठ आने।

(३) **वैदिक-प्राण-विद्या**। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) **ब्रह्मचर्य**। मू. १।) सवा रुपया।

(५) **योग-साधन की तैयारी**। मू. १) एक रु.

(६) **योग के आसन**। मू. २) दो रु.

[४] धर्म– शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. ॰) एक आना ।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । मू. =) दो आने ।
(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक । मू. ≡) तीन आने ।

[५] स्वयं शिक्षक माला ।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । मू. १॥) डेढ रु. ।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु. ।

[६] आगम– निबंध– माला ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।॰) पांच आने ।
(२) मानवी आयुष्य । मू. ।) चार आने ।
(३) वैदिक सभ्यता । मू. ≡) तीन आने ।
(४) वैदिक चिकित्सा– शास्त्र । मू. ।) चार आने ।
(५) [illegible] स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥) आठ आने ।
(६) वैदिक [illegible] । मू. ॥) आठ आने ।
(७) मृत्युको दूर [illegible] उपाय । मू. ॥) आठ आने ।
(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥) आठ आने ।
(९) शिव संकल्पका विजय । मू. ॥। बारह आने ।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ॥) आठ आने ।
(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥) आठ आने ।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र । मू. ≡) तीन आने ।
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. =) दो आने ।

मंत्री — स्वाध्याय– मंडल; औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक;--श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि. सातारा)

Registered No. B. 1463.

वर्ष ४ अंक ११
क्रमांक ४७

कार्तिक सं. १९८०
नवंबर स. १९२३

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-मासिक-पत्र।

संपादकः—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

आसन

योग के आरोग्य वर्धक व्यायामों की सचित्र पद्धति। मूल्य २) दो रु.

[वा]र्षिक मूल्य ३॥) साढे तीन रु.। विदेशके लिये ४॥) साढे चार रु.।

विषय सूची।

महाभारत।

महाभारत का महत्व।



(१) महाभारत का महत्व अनेक दृष्टियोंसे है। …योंका प्राचीन इतिहास जाननेके लिये हरएक को …भारत की शरण लेनी पडती है। भारतीय वीरोंके अद्भुत …त्र महाभारत में ही देखने चाहिये। प्राचीन आर्योंका …कीय, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उत्क्रांतिका संपूर्ण …िहास यदि देखनेकी इच्छा है, तो महाभारतही देखना …हिये। अर्थात् इतिहासिक दृष्टिसे महाभारत का अभ्यास …ा आवश्यक है।

(२) महाभारतमें राजनीति तथा सामान्य नीति इतनी …तृत रूपसे लिखी है कि आर्य—नीतिशास्त्रका अभ्यास …ने वालेको महाभारत जैसा दूसरा कोई ग्रंथ नहीं है।

(३) धर्मशास्त्र तथा अध्यात्म शास्त्र के विषय में भी लेखकों और वक्ताओंके लिये प्रमाणवचन महाभारत में ही विपुल मिलते हैं। इसी लिये महाभारतको " पंचम वेद " भी कहते हैं। इस कारण इसके अध्ययन करनेकी वडी भारी आवश्यकता है।

वेद और महाभारत।

व्यास महर्षिकी प्रतिज्ञा।

(१) वैदिक धर्मियोंको उचित है कि वे अपने वेदमंत्रोंकी " गुप्त विद्या " के साथ महाभारत तथा अन्य पुराण आदि ग्रंथोंकी " व्यक्त विद्या " की तुलना करें। भगवान व्यास महर्षिजीकी प्रतिज्ञा है कि " जो वेदकी विद्या है वही महाभारत के मिषसे वर्णन की है। " इस लिये आवश्यक है कि वेदके कौनसे भाग का किस रीतिसे रूपांतर महाभारत में हुआ है और उसमें इतिहासिक भाग कहां और कितना है, इसका स्पष्ट विचार हो।

(२) इस तुलनात्मक अध्ययनसे हमें एक यह लाभ होगा कि जो वेदमूलक कथाएं अन्य पुराणोंमें हैं, उनका भी वैदिक मूल हमें विना आयास मिल सकेगा।

महाभारत बडा ग्रंथ है।



महाभारत बहुतही बडा ग्रंथ है, साधारण लोग उसको खरीद नहीं सकते। इसके अधिक मूल्यके कारणही महाभारत पढनेकी इछा करनेवाले बहुतसे पाठक चुप रहते हैं. और खरीदनेका नाम नहीं लेते।

एक युक्ति है।

जिस युक्तिसे हरएक पाठक महाभारत खरीद सकता है। और किसीको भी किसी प्रकारकी कठिनता नहीं हो सकती।

हम प्रतिमास १०० पृष्ठ मूल महाभारत और उसका सरल भाषानुवाद मुद्रित करना चाहते हैं। एक वर्षमें १२०० पृष्ट ग्राहकोंको दिये जांयगे। कागज और छपाई वढिया होगी। चित्रभी दिये जांयगे।

वार्षिक मूल्य मनी आर्डरसे ६) रु. और वी. पी.से ६॥=) होगा। इस रीतिसे यह ग्रंथ थोडेही वर्षों में समाप्त होगा। और विना आयास हरएक ग्राहक को मिलता जायगा। जो ग्राहक बनाना चाहते हैं शीघ्र अपना मूल्य भेज दें।

मंत्री—स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)



वैदिक धर्म मासिक के पिछले अंक।



" वैदिक धर्म " के पिछले अंक प्राय: समाप्त हो चुके थे। परंतु ग्राहक पिछले अंकोंकी मांग करते थे । इसलिये प्रयत्न करके निम्न अंक इकट्ठे किये हैं । प्रत्येक अंक का मूल्य पांच आने है । जो मंगवाना चाहते हैं, शीघ्र मंगवायें, क्यों कि थोडे समयके पश्चात् मिलेंगे नहीं। प्रतियां थोडी ही मिली हैं —

द्वितीय वर्ष के क्रमांक २० से चतुर्थ वर्षके चालू अंक तक अंक तैयार हैं। केवल २५ वां अंक नहीं है।

मंगवाने वाले त्वरा करें।

मंत्री — स्वाध्याय मंडल औंध (जि. सातारा)

ॐ

आसन।

"योग की आरोग्य वर्धक व्यायाम पद्धति"।



"संध्योपासना" आदि सब धर्मकृत्योंमें सबसे प्रथम "आसन" लगानेकी आवश्यकता है। आसन लगानेके विना कोईभी धर्मकृत्य नहीं होता। इतना धर्मकृत्यके साथ आसनोंका संबंध है

× × × ×

आसनोंका महत्व।

आसनोंका महत्व उतनाही है कि, जितना आरोग्यका महत्व है। आरोग्यके साथ आसनोंके व्यायामोंका घनिष्ठ संबंध है। शरीरके सब आंतरिक अवयवों और अंगों तथा नसनाडियोंका

ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् प्राचीन काल के ऋषि मुनि और योगियोंने इस आसन पद्धतिकी सिद्धता की है। ऋषिकालसे इस समय तक जिन्होंने आसनोंका अभ्यास किया है, उनको—

* * * *

आसनों के अभ्यास से लाभ

अर्थात् आसनोंसे आरोग्य प्राप्तिका अनुभव हुआ है। यह बात केवल श्रद्धा अथवा अंध–विश्वाससे ही माननेकी नहीं है। इस समयमें भी सहस्रोंकी संख्यामें अनेक लोगोंने इस आसन पद्धतिके व्यायामसे अपूर्व लाभ उठाया है! आप भी केवल तर्क न कीजिये। परंतु–

÷ ÷ ÷ ÷

स्वयं अनुभव लीजिये।

जहां स्वयं एक दो मासके अंदर ही अनुभव आ सकता है, वहां तर्कका और दलीलोंका काम ही क्या है? अनेक असाध्य बीमारियां इस पद्धतिके आसनोंके व्यायामसे दूर हो गई हैं। औषधिके सेवन की आवश्यकता नहीं है, इसमें व्यय कुछ भी नहीं है। केवल प्रतिदिन १५अथवा २० मिनिट कुछ आसन

आप करते जाइये, आपको आठ दस दिनों के अंदरही इससे आरोग्यका अनुभव निःसंदेह हो जायगा। अनुभव होनेके पश्चात् शंका करनेके लिये स्थान ही नहीं होता है। इस लिये आपसे प्रार्थना है कि आप स्वयं अनुभव लीजिये।

\+ \+ \+ \+

इसमें कोई कठिनता नहीं है।



कई लोग ख्याल करते हैं कि आसन करनेमें बडी कठिनता होती है। परंतु यह वास्तविक नहीं हैं। आसनोंका अभ्यास बडा सुगम है। आप जितना सुगम चाहते हैं उससेभी सुगम है। इसीलिये इस अभ्याससे इस समयभी ७० और ७५ वृद्ध पुरुष लाभ उठा रहे हैं।

जो आसन ७५ वर्षके वृद्ध कर सकते हैं वे उ कम आयुवाले निःसंदेह कर सकते हैं। छः वर्षोंसे र्षतक के आयुवाले इस पद्धतिसे इस समय ला बाल,तरुण, वृद्ध, निर्बल, बलवान्, रोगी, नी सबोंको इस पद्धतिसे लाभ हुए हैं। इस लिये अनुभव होनेके कारण ही हम कह सकते हैं कि, निःसंदेह लाभ होगा।

स्त्रियों के लिये लाभ ।

स्त्रियोंको प्रसूतिके बहुत कष्ट होते हैं । चारों ओर आज कल ये कष्ट बढ रहे हैं । इसका एक मात्र उपाय आसनोंका अभ्यास ही है । अनेक स्त्रियोंने इसका अनुभव लिया है, जिससे यह निश्चय पूर्वक और बलपूर्वक कहा जाता है कि, जो स्त्रियां नियम पूर्वक आसनोंका व्यायाम करेंगी और विशेषतःगर्भवती होनेपर करने योग्य आसन करती जायगी, तो उनको प्रसूतिके कष्ट कदापि नहीं होंगे ।

स्त्री और पुरुषोंके लिये लाभकारी ।

इस प्रकार यह आसनोंका व्यायाम स्त्रियों और पुरुषोंके लिये लाभ कारी है ।

[भा. मु. मुद्रित ।]

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र।

वर्ष ४ अंक ११ | कार्तिक १९८०; नवंबर १९२३. | क्रमांक ४७.

चार वर्णों में तेज।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ॥
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥
य. १८।४८

" ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र अर्थात् चारों वर्णों के सब मनुष्यों में तेजकी स्थापना कर। "

वैदिक धर्म का ५० वां अंक।

(१) " वैदिक-धर्म " के ५० वें अंकमें वैदिक साहित्य पर विशेष लेख होंगे । इसकी पृष्ठ संख्या १०० होगी और अनेक चित्र होंगे। इस की छपाई भी विशेष उत्तम कागज पर होगी और यह अंक विशेष रीतिसे चित्ताकर्षक किया जायगा।

(२) अपनी " इंद्रशक्ति " विकसित करने के साधनोंपर विशेष लेख होंगे, इस लिये जो लोग अपने अंदर इंद्रशक्तिका विकास करनेकी इच्छा करते हैं, वे इसके अवश्य ग्राहक बनें।

(३) यह विशेष अंक उनकोही मिलेगा कि जिनका चंदा मनी आर्डर से पेशगी जमा हुआ होगा । अथवा जो लोग इसका मूल्य एक रु० पेशगी भेज देंगे । यह अंक वी . पी . से भेजा नहीं जायगा ।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध (जि . सातारा)

गृहाश्रम व्यवस्था।

(१) आश्रम का अर्थ।

"श्रम्" धातुका अर्थ तप करना, परिश्रम करना अथवा मेहेनत करना है। "आ-श्रम" का अर्थ, तप करनेका स्थान, परिश्रम करनेका स्थान, मेहेनत करके उन्नतिके लिये यत्न करनेका स्थान है। यह इस शब्दका मूल यौगिक अर्थ अथवा धात्वर्थ है। इसके अनंतर इसके रूढिगत अर्थ=पवित्र स्थान, तपकी कुटिया, गुहा, विद्यालय, पाठशाला, विश्वविद्यालय, वन, जंगल, आयुष्यके चार विभागोंके नाम जैसा ब्रह्मचर्याश्रम गृहस्थाश्रम इ०, विष्णु, व्यापक देव इत्यादि होगये हैं। आश्रम शब्दके ये सब अर्थ देखने योग्य हैं।

(२) गृहाश्रम का तात्पर्य।

"गृहाश्रम" किंवा "गृहस्थाश्रम" शब्दके अर्थ पूर्व अर्थोंसेही स्पष्ट हो जाते हैं। घरके अंदर रहकर तप करना, घरमें रहकर परिश्रम करना, घरमें रहकर उन्नति प्राप्त करनेके लिये यत्न करना, घरको पवित्र स्थान बनाना, घरको तपोभूमि बनाना, अपने घरको विद्यालय बनाना, अपने घरके अंदर वनकी शांति स्थापन करना और घरमेंही व्यापक विष्णुदेव का साक्षात्कार करना, ये भाव

" गृहाश्रम " शब्दमें हैं, यह बात पूर्वोक्त यौगिक अर्थ देखनेसेही स्पष्ट हो सकती है । हरएक को प्रयत्न करके इन भावोंको अपने गृहाश्रममें साक्षात् करनेका यत्न करना चाहिये । यह सब सुव्यवस्थासे होना संभव है, अन्यथा नहीं । साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि, गृहाश्रम भोग भोगनेका आश्रम है ! परंतु उक्त भाव देखनेसे पता लगता है कि, **जो तप अन्य आश्रमोंमें वनमें होता है, वही तप इस आश्रममें घरमें होता है**, इस लिये स्मरण रखना चाहिये कि, विशेष तपके लिये ही यह आश्रम है, न कि केवल भोग विलासके लिये । यदि यह बात ठीक ठीक प्रकार ध्यानमें आजायगी, तोही गृहाश्रमकी वास्तविक कल्पना पाठकोंके मनमें आसकती है । इस प्रकार आदर्श गृहाश्रमकोही वेद " **गृहराज** " कहता है, देखिये —

(३) गृहराजकी कल्पना ।

एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागं
अथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥ अ० ११ । १ । २९

" यह गृहराज का भाग है, इससे विपरीत दूसरा (निर्ऋतेः) अधोगतिका भाग है । " उत्तम गृहव्यवस्था, आदर्श गृहस्थाश्रम, ही उन्नतिका मार्ग है, इससे विपरीत अर्थात् घरकी अव्यवस्था, दुर्व्यवस्था जो है वह दुर्गति का भाग है । इसलिये हरएक को दुर्गतिको छोड सुगतिके मार्गसे प्रगति करनी चाहिये । यही उत्तम गार्हपत्यका ध्येय है देखिये —

सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिम् ॥ अ.१२।२।४५

"(सु – गार्हपत्य :) उत्तम गृहस्थी (अ – रातिं) अदाता शत्रुको विशेष ताप देकर, अर्थात् उसको दूर करके" अपने गृहाश्रमको सच्ची शांतिका स्थान बनाता है। अथवा उसको ऐसाही बनाना चाहिये। नहीं तो घरके अंदर देवासुर संग्राम स्थान स्थानमें है ही, उसको बढाना अभीष्ट नहीं है, परंतु उसको न्यून करना अभीष्ट है। वैदिक धर्म यही आदर्श गृहाश्रम-व्यवस्था पाठकों के सामने रखता है। देखिये —

(४) गृहाश्रम का वैदिक आदर्श।

इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायु र्व्यश्नुतम् ॥
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥

ऋ. १०।८५।४२

क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥

अ.१४।१।२२

हे स्त्रीपुरुषो! (इह एव स्तं) यहां ही रहो, (मा वि यौष्टं) विरोध न करो। (विश्वं आयुः व्यश्नुतं) पूर्ण आयु प्राप्त करो, पुत्र और नातियोंके साथ (क्रिडन्तौ) खेलते हुए और (स्वे गृहे) अपने घरमें (मोदमानौ) आनंद करते हुए रहो। और (सु+अस्तकौ) अपने घरको उत्तम आदर्शरूप बनाओ ॥

इस मंत्रमें आदर्श गृहाश्रम की कल्पना वेदने बताई है, इसमें निम्न लिखित बातें हैं – (१) गृहाश्रममें स्त्रीपुरुषोंका प्रेमसे

••

निवास हो, (२) उनमें झगडा कलह आदि न हो, (३) उनका व्यवहार ऐसा हो कि, जिससे वे दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें, (४) बालबच्चोंके साथ खेलते और कूदते हुए आनंदसे घरमें रहें, अर्थात् बालबच्चोंकी नीरोगता, शक्ति और सुशिक्षाका उत्तम प्रबंध करें, और उनके आनंदसे आनंदित हों, (५) अपने घरमें आनंदसे रहें, अर्थात् दूसरेके घरमें ही निवास न करें, तथा (६) अपने घरको (सु+अस्तक) उत्तम घर बनाकर रहें, अर्थात् हीन और मलीन घरमें न रहें। परंतु अपने घरको आदर्श घर बनाकर उसमें निवास करें। यह वेदका उपदेश अपने जीवनमें किस रीतिसे आसकता है, इस बातका विचार हरएक को करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि, वेदकी दृष्टिसे स्त्रीपुरुषके इकठ्ठे रहनेसे गृहाश्रम नहीं होता, प्रत्युत गृहाश्रम वैदिक उपदेशानुसार सिद्ध करनेके लिये विशेष सुव्यवस्थासे रहना अत्यावश्यक है, यह सूचना " **स्वस्तकौ** (सु+अस्तकौ) " शब्द उत्तम रीतिसे दे रहा है। अपना घर उत्तम बनाकर रहनेवाले स्त्रीपुरुष हों, यह भाव उस शब्दमें है। गृहास्थितिका सुधार करनेकी सूचना इस शब्दसे मिलती है। कलकी अपेक्षा आज अधिक सुधार होना चाहिये, गत वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष अधिक सुधार दिखाई देना चाहिये, तथा पिताके समयकी अपेक्षा पुत्रके समय अधिक सुव्यवस्था रहनी चाहिये। इस क्रमपूर्वक उन्नतिका नाम ही सुधार है। इसका उपदेश निम्न मंत्रसे स्पष्ट शब्दों द्वारा हुआ है देखिये —

(५) उत्तम गृहस्थी कौन हैं ?

स्योनाद्योनेरधिबुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ॥
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ॥
अ० १४ । २ । ४३

सुभौ सुपुत्रौ सुकृतौ चराथो जीवावुषसा विभातीः ॥
पिप्पलाद अथर्व १४ । २ । ४३

(स्योनात्) सुख कारक (योनेः) प्रकृतिसे (अधिबुध्यमानौ) विज्ञान प्राप्त करनेवाले, (हसामुदौ) हास्य विनोद करनेवाले, (महसा मोदमानौ) महत्वाकांक्षासे उत्साह धारण करनेवाले, (सु--गू) उत्तम गौवें पास रखनेवाले, (सु--पुत्रौ) उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाले, (सु--गृहौ) गृहकी उत्तम व्यवस्था करनेवाले, (जीवौ) जीवनके उत्साहसे युक्त स्त्रीपुरुष तेजस्वी उषःकालमें उठकर (तराथः) अपनी कठिनता ओं में से तैरकर पार हो जांय॥ तथा (सु--भौ) वे उत्तम तेजस्वी, उत्तम पुत्रोंसे युक्त, (सु-कृतौ) उत्तम पुरुषार्थी (जीवौ) दीर्घकाल जीवित रहते हुए तेजस्वी उषः कालमें उठकर (चराथः) अपने कार्यको करें ॥

इस मंत्रका प्रत्येक शब्द आदर्श गृहाश्रमका तत्त्व उत्तम रीतिसे बता रहा है। इस मंत्रका " योनि " शब्द प्रकृतिका वाचक है, जो सब सृष्टिकी योनि अर्थात् उत्पत्तिस्थान है। यह प्रकृति सुखदायी है, क्यों कि संपूर्ण ऐश्वर्योपभोग इसी प्रकृतिसे प्राप्त होते हैं; इसलिये (१) गृहस्थाश्रमी स्त्रीपुरुषोंको चाहिये कि,वे इस

शुरू करना चाहिये ॥ ये दस उपदेश पूर्वोक्त मंत्रमें हैं, गृहस्थी लोग इसका विचार करें और इसको अपनानेका यत्न करें। वैदिक धर्म केवल शब्दोंका धर्म नहीं है, प्रत्युत आचरणका धर्म है, पाठक इस बातको कभी न भूलें ।

(६) गृहाश्रम में स्त्रीका समान अधिकार ।

उत्तम गृहस्थाश्रम में सुशिक्षित स्त्रीका कितना महत्व है, इस बातका विचार आजकल कम किया जाता है । वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो वेदका उपदेश इस विषय में स्पष्ट है। जिस प्रकार पुरुष गृहपति है, उसी प्रकार स्त्री गृहपत्नी है। देखिये -

पत्नी त्वमसि धर्मणा
अहं गृहपतिस्तव ॥ अ. १४।१।५१

(१) तू स्त्री धर्म से गृहपत्नी है और (२) मैं धर्म से गृहपति हूं। जैसा पति घरका स्वामी है इसी प्रकार स्त्री भी घरकी स्वामिनी है। यह बात यहां स्पष्ट होती है। इसी लिये वेद स्त्री शिक्षाका महत्व बता रहा है, देखिये —

(७) स्त्री शिक्षा का महत्व ।

प्रबुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय
शतशारदाय ॥ गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो
दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥ अ० १४।२।७५

" हे स्त्री ! तूं (सु - बुधा) उत्तम ज्ञान संपादन करके (प्र - बुध्यस्व) विशेष ज्ञानी बन, और (बुध्य माना) ज्ञान

संपादन करके सौ वर्ष का दीर्घ आयु प्राप्त कर। घर की स्वामिनी बन कर अपने घरमें प्रविष्ट हो। सविता तेरी आयु दीर्घ करे।" यह मंत्र स्पष्ट शब्दों में स्त्रीशिक्षा का प्रतिपादन कर रहा है।

" सुबुधा बुध्यमाना प्रबुध्यस्व। "

ये शब्द विशेष ही महत्त्व पूर्ण हैं। " सुशिक्षासे सुशिक्षित होकर ज्ञानी बन " यह वेद का उपदेश स्त्री के लिये है। आज कल की शिक्षित स्त्रियें क्षयीसीं होती हैं। परंतु वेद सुशिक्षित स्त्रियों के लिये (१) दीर्घ आयु प्राप्त करना, (२) घरकी उत्तम व्यवस्था रखना, और (३) सूर्य प्रकाशसे अपना आरोग्य सुरक्षित करने का उत्तम उपदेश दे रहा है। सुशिक्षासे आयु क्षीण नहीं होनी चाहिये, परंतु आयु बढनी चाहिये, यह बात यहां स्पष्ट हो रही है। सूर्य प्रकाशसे आरोग्य बढाने का उपदेश स्पष्टतासे " गोषा " का निषेध कर रहा है, और गृहस्वामिनी बनने का उपदेश स्त्रियों का समान अधिकार बता रहा है। सब वैदिकधर्मी इस का अधिक विचार करें और अपने गृहस्थाश्रममें इस उपदेश को प्रत्यक्ष करने का यत्न अवश्य करें। वेदके ये उपदेश अपने दैनिक आचरण में किस रीतिसे लाये जा सकते हैं, इस का विचार अब करना है।

(८) घर कैसा होता है ?

स्त्रीपुरुष एक छप्परके नीचे रहनेसे ही केवल घर नहीं होता है। घर उसको कहते हैं कि जहां स्त्रीपुरुष और बालबच्चे प्रेमके

• • •

साथ रहते हैं और शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक प्रगतिके मार्गसे सुव्यवस्थाके साथ चल रहे हैं । विचार यह करना चाहिये कि, पिताके समय जो प्रगति उक्त केंद्रोंके विषयमें थी, उससे कितनी अधिक प्रगति पुत्रके समय हुई है । आयु आरोग्य और शांति अधिक बढी है, या न्यून हो रही है । इसका योग्य विचार करके अपने कर्तव्यका निश्चय करना चाहिये ।

(९) जगत् का मध्य बिंदु ।

गृहस्थका परिवार राष्ट्रीय, सामाजिक और जनताके विषयकी उन्नतिका मध्य बिंदु है । **आप अपने आपको, और अपने परिवारको, अपने ग्राम, प्रांत, राष्ट्र तथा अपनी जातिका मध्य बिंदु समझ लीजिये. और उस स्थानको शोभा देने योग्य उसको बनाइये** । अपना हृदय सब सृष्टिका मध्य बिंदु है, परंतु उसके योग्य अपने हृदय को बनाना चाहिये । इसकी जिम्मेवारी आप पर है, इस बातको कभी न भूलिये । अपने हृदयको भुवनका मध्य समझना अभीष्ट है देखिये —

उरो वेदिः ॥ महा. ना. उ. २५ । १

उर एव वेदिः ॥ छां० उ. । १८ । २

यावती वै वेदी तावती पृथिवी ॥ श. ब्रा. १ । २ । ३ । ९

इयं वेदिः परो अंतः पृथिव्याः ॥ श. ब्रा. १३ । ५ । २ । २१

" अपनी छाती वेदी है । जितनी वेदी होती है, उतना ही पृथिवी है । यह वेदी पृथिवीकी अंतिम सीमा है । " इस प्रकार वर्णन आते हैं, वे सूचना दे रहे हैं कि, अपने हृदयका इतना

विस्तार होना चाहिये !! पाठक जान गयेही होंगे कि, यह विस्तार छातिके आकारका नहीं है, प्रत्युत भावना का है। अपने हृदयमें ऐसी उच्च भावना रखनी चाहिये, कि जो जगत् भरमें व्यापक होकर वहां कार्य करके प्रभावशाली बने !! अपना हृदय इतना विस्तृत बनाकर अपने परिवारको उससे उद्दीपित करना चाहिये, क्यों कि हरएक मनुष्य अपनी भावना अपने परिवारमें सबसे प्रथम व्यक्त कर सकता है, और पश्चात् नगर, प्रांत, तथा राष्ट्रमें फैला सकता है। तात्पर्य यह है कि अपने परिवारको इस प्रकार अपने राष्ट्रका केंद्र बनाइये।

वैदिक धर्मका यह उच्च आदर्श आपके सन्मुख है। यदि आपको अपने हृदयकी इतनी व्यापकता बनाना कठिन प्रतीत होता है, तो प्रथम अपने नगरकी सीमातक उसको विस्तृत बनाइये। अपना जीवन नागरिक बनानेसे उक्त बात सिद्ध हो सकती है। नगरका प्रत्येक मनुष्य जिस समय अपने आपको पूर्ण नागरिक भावनासे युक्त अनुभव करेगा, उस समय सब नगर "विभिन्न मनुष्योंका जत्था" न रहता हुआ, वह नगर एक जीवनसे संचालित होनेके कारण एकही नगरव्यापक "पुरुष" बन जायगा। पुरुष किसको कहते हैं ? जो —

पुरि वसति = अर्थात् नगर भर में बसता है,

जो नगर में व्यापक है, उस जीवित और जागृत समाजका नामही पुरुष है, इस पुरुषके अवयव देखिये —

(१०) राष्ट्र पुरुषके अवयव ।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ॥
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥
ऋ. १०।९०।१२

" इस पुरुषका मुख (ब्राह्मण:) ज्ञानी है, (क्षत्रिय:)शूर इसके बाहु बनाये हैं, व्योपारी इसके ऊरू हैं और शूद्र इसके पावोंके लिये हैं। " अपने नगरमें जो ज्ञानी, शूर, व्योपारी, और कारीगर हैं, वे इस पुरुषके सिर बाहु ऊरू और पांव हैं। इस पुरुषके देहमें मेरा स्थान श्रेष्ठ अवयव में होनेका अनुभव हरएक को आना चाहिये ॥ अपने आपको इतना उच्च बनाना चाहिये कि, उस पुरुषके हृदय स्थानमें अपने लिये स्थान प्राप्त हो। यही जनसंघरूपी पुरुषकी कल्पना अधिक व्यापक बनाकर प्रांत और राष्ट्रमें व्यापक मानी जा सकती है, कितनी भी व्यापक मानो जाय, अपने आपको और अपने परिवार को उसके हृदय स्थानमें मानने योग्य उच्च बनानेका ध्येय अपने सामने रहना चाहिये। यदि यह ध्येय बहुत ऊंचा है, तो उस पुरुषके किसी अवयवके योग्य अपने आपको बनाना तो आपके लिये अत्यावश्यक ही है। अपनी कुटुंब स्थिति इस योग्य बनानी चाहिये। गृहस्थ धर्मका यही ध्येय है। हरएक गृहस्थीको इस उद्देश्यकी पूर्ति करनेके लिये प्रयत्न करना आवश्यक है।

यदि गृहस्थी ज्ञानयज्ञ करेगा, तो वह उस पुरुषके मास्तिष्कमें बैठेगा; यदि वह शौर्यसे आत्मयज्ञ करेगा, तो बाहुओंके स्थानमें गिना जायगा; यदि वह व्यापार व्यवहार से धन बढायेगा, तो उरुस्थानमें समझा जायगा; और यदि वह कारीगरी करके हुनर बढायेगा, तो वह उस पुरुषका आधार समझा जायगा; तथा आत्मानुभव करके संत महात्मा बनेगा, तो वह हृदय स्थानमें गिना जायगा । इस प्रकार किसी भी स्थानमें गिनती क्यों न हो, उस स्थानके लिये अपने आपको और अपने परिवारको योग्य बनाना प्रत्येक परिवारका उत्तम ध्येय है । वैदिक धर्मके आदर्श जीवनसे यह साध्य हो सकता है ।

अपने आपको " **राष्ट्रपुरुष** " का एक उत्तम अवयव समझना चाहिये । परंतु यहां केवल समझनाही कामका नहीं है, प्रत्युत वैसा बनना अत्यावश्यक है । अपने परिवारको इस इष्ट स्थानके योग्य बनानेके लिये अति सुगम उपायसे, अतिशीघ्र प्रयत्न करना और जहांतक हो सके वहांतक अतिशीघ्र उस स्थानका अपना कर्तव्य करना ही धार्मिक उच्च अवस्थाका ध्येय है। ज्ञानी ज्ञान-प्राप्ति और ज्ञान प्रचार से अपने आपको सिर स्थानके लिये योग्य बनावे, शूर सबके संरक्षण के लिये अपने आपको समर्पित करके अपना कर्तव्य योग्य रीतिसे पालन करे, व्योपारी न्यायानुकूल मार्गसे धन बढाकर उसकी उन्नतिके लिये समर्पित करे, कारीगर लोग हुनर की प्रवीणतासे उसको दृढ आधार दें, महात्मा लोग

३२

अपनी श्रेष्ठ भावनाके प्रचारसे सबके अंतः करण सचेत करें और इस प्रकार उस राष्ट्र पुरुष को तेजस्वी और आवेशयुक्त बनावें। इसी कार्यके लिये सबके प्रयत्न होने चाहिये । हरएक कुटुंबको यह स्पर्धा होनी चाहिये कि, मैं अपना कर्तव्य उत्तम प्रकार पालन करूंगा, और राष्ट्र पुरुष के लिये अपना समर्पण करके कृतकार्य बनूंगा,

(११) विघ्नका स्वरूप

वैदिक धर्मका यह उपदेश संपूर्ण आश्रम वासियों को है, परंतु विशेषतः गृहास्थियों को ही है, क्यों कि गृहस्थके आधारसेही अन्य आश्रम रहते हैं। परंतु इसमें अंधपरंपराके कारण बडे विघ्न उत्पन्न हुए हैं। वैदिक धर्म नाम मात्र जागृत है, वर्णाश्रम धर्म मूल शुद्ध अवस्थामें नहीं है, मतमतांतरोंका अभिमान मूल धर्माभिमानसे अधिक प्रबल होनेके कारण मूल धर्मकल्पना प्रायः लुप्तप्राय हुई है, और उस स्थानपर अनेक हीन आचार प्रचलित हुए हैं। जनता साधारणतया रूढिप्रिय होती है, इसलिये मतमतांतरकी कल्पनाओंके स्थानपर शुद्ध धर्मकी स्थापना करनाभी इस समय कठिन हुआ है। और यह कठिनता इसलिये अधिक बढगई है कि, धर्म प्रचारक भी स्वयं सत्य धर्मसे बहुत अंशमें अनभिज्ञ हैं। धर्म जागृतिकी कठिनता बढनेका दूसरा मुख्य कारण यह है कि, प्रायः सब मनुष्य अपने आपको परम धार्मिक समझते हैं, और अपना व्यवहार धर्म पुस्तककी आज्ञाओंके अनुकूल है या प्रतिकूल है, इसकाभी विचार करते नहीं ।

इतनाही नहीं, प्रत्युत कईयोंमें उदासीनता इतनी है, कि वे अपने धर्मपुस्तक पवित्र "वेद" का अध्ययन भी करना नहीं चाहते और अध्ययनके विना अपने धर्मका पता लगना भी अशक्य है। इसीलिये उनकी उन्नति रुक जाती है।

(१२) कटिबद्ध होनेकी आवश्यकता।

प्रिय पाठको! आप इस गलतीमें न रहिये। और उठ कर अपने गृहस्थाश्रमकी उन्नति करने के लिये कटिबद्ध हो जाइये। यदि आप अपनी उन्नति के लिये प्रयत्न न करेंगे, तो आपकी उन्नति कौन करेगा? दूसरे के भरोंसे पर रहना बडी भारी गलती है। अंधविश्वास दूर कीजिये, अपने धर्मका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त कीजिये, और उन्नति का शुद्ध आदर्श अपने सन्मुख रख कर, वेग से प्रयत्न कीजिये। पुरुषार्थ से ही सब कुछ साध्य हो सकता है।

ब्राह्मणों को ज्ञानोन्नतिका ध्येय अपने सामने रखना चाहिये, क्षत्रियों को वीर पुरुषों का आदर्श रखना चाहिये, वैश्योंको प्रचंड धनिकों को अपना आदर्श बनाना चाहिये, और कारीगरों को श्रेष्ठ कलावानों का आदर्श अपने सामने रखना उचित है। आपका जो मार्ग होगा, उसके अनुकूल अपना आदर्श चुन लीजिये, और अपना कार्य प्रारंभ कीजिये। देरी और सुस्ती करेंगे, तो बडी हानि होगी। पुरुषार्थ कर के अपने आपको और अपने परिवार को आदर्श रूप बनाइये। अपने आपको आदर्श रूप बनाना ही इस समयकी उन्नति की अंतिम सीमा है।

आप राष्ट्र पुरुष के एक अवयव हैं, इस लिये अपने कर्तव्य से राष्ट्र पुरुष के लिये कुछ न कुछ अर्पण करना आपका धर्म ही है। इसलिये कुछ न कुछ उत्पादक कर्म करना आवश्यक है। उत्पादक कर्म वह होता है कि, जो कुछ न कुछ धन उत्पन्न कर सकता है। यह धन चार प्रकारका है। (१) ज्ञान, (२) शौर्य, (३) द्रव्य और (४) कारीगरी इस विषय में वेद कहता है कि —

कारुरहं ततो भिषगुपल-प्रक्षिणी नना ॥
नानाधियो वसूयवो ऽनु गा इव तस्थिम ॥

ऋ. ९।११२।३

"मैं (कारुः) कारीगर हूं, मेरा (ततः) पिता वैद्य है, मेरी (नना) माता चक्की पीसती है। इस प्रकार (नाना--धियः) विविध कर्मोंको करते हुए (वसू-यवः) धन कमाते हैं। और गौवें जैसीं एक घरमें रहतीं हैं, उस प्रकार विविध धनोत्पादक कर्म करते हुए हम एक घरमें रहते हैं।"

एक घरमें रहते हुए भी मनुष्य भिन्न भिन्न कर्म करते हुए धन कमा सकते हैं। जो जिसको सुगमता पूर्वक उत्तम रीतिसे आ सकता है, वह कर्म उसको करना चाहिये, और धन उत्पन्न करना चाहिये। देखिये इस विषय में वेदकी आज्ञा —

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ॥

ऋ. ९।११२।१

" मनुष्यों की बुद्धियां भिन्न प्रकारकी हैं और उसी कारण उनके कर्म भी भिन्नही होते हैं, तथा –

अक्षण्वंतः कर्णवंतः सखायो
मनोजवेष्वसमा बभूवुः ॥

ऋ. १०।७१।७

" सभी मनुष्य आंखों और कानों से युक्त होते हैं, परंतु मनके वेगमें हर एक न्यूनाधिक होता है।" यह बात है इसीलिये हर एक को अपने मनके वेगके अनुसार उन्नति का साधन करनेके मार्ग खुले होने चाहिये और इस प्रकार हर एक को अपना तथा अपने परिवार का अभ्युदय करना चाहिये। इतनाही नहीं, प्रत्युत हरएक को परम पुरुषार्थ करके, अपनी पराकाष्ठा करके, परम सीमातक अपना उदय सिद्ध करना आवश्यक है।

(१३) आपकी शक्ती

हर एक मनुष्य के पास शारिरिक और इंद्रियों की शक्ति रहती है, मन, बुद्धि, चित्त और आत्माका बल होता है। तथा अपने विभाग का स्थावर तथा जंगम धन भी संभवतः थोडा बहुत होता ही है। घरके सब मनुष्यों की इतनी शक्तियां इकट्ठी की जाय तो कोई कम शक्ति नहीं होती। विचार किया जायगा, तो यह एक प्रचंड शक्ति है; परंतु योजना पूर्वक प्रयत्न करनेकी आवश्यकता अवश्य रहती है। प्रबल पुरुषार्थ के अभावमें यह सब शक्ति जहां की वहां ही सुप्त रहती है। इसलिये हर एक को



निश्चय करना चाहिये कि, मैं इस सब शक्तिका उपयोग करुंगा, और अपने आपको उन्नत करता हुआ अपने परिवारको भी सब प्रकार से उच्च बनाऊंगा। स्वास्थ्य, सुख शांति, निर्भयता आदिकी स्थापना करने द्वारा मैं अपना आदर्श गृहाश्रम बनाऊंगा।

यहां प्रश्न आता है कि, आपका आदर्श क्या है ? यह स्पष्ट रीतिसे ध्यानमें धारण कीजिये कि, यदि आप गृहस्थ हैं और आपका आदर्श भिन्न है और साधु संन्यासीका आदर्श भिन्न है। प्रत्येक आश्रम और प्रत्यक वर्णका विभिन्न आदर्श होता है। गृहस्थीमें धनप्राप्ति और सुख बढानेका ध्येय भूषण रूप है, परंतु वही संन्यासीमें दूषण रूप होगा। त्याग भी संन्यासीके लिये जैसी शोभा देगा, वैसा गृहस्थीके लिये नहीं। यह ध्येयोंका सारासार विचार आजकल रहा नहीं है, इसीलिये गृहास्थियोंमें उदासी और त्यागी तथा संन्यासियोंमें लोभी दिखाई देते हैं !!! पाठक पूछेंगे कि क्या गृहस्थीको त्यागी बनना नहीं चाहिये? तो उत्तर में कहा जा सकता है कि यदि उसकी प्रवृत्ति त्याग की ओर है तो वह संन्यासी बने। गृहस्थीने तो सब आश्रमोंका पालन करना है, इसीलेये उसको धन बहुत कमाना आवश्यकही है। यदि वह त्यागी बनेगा, तो अपने आश्रमके प्रतिकूलही कार्य करेगा, इसलिये गिरेगा। इसलिये गृहस्थीका धर्म " **बहुत कमाना और बहुत परोपकार करना** " है। अस्तु, तात्पर्य यह कि अपने ध्येयोंकी संकीर्णता न कीजिये। और अपनी परिस्थितिके अनुकूल श्रेष्ठ ध्येय अपने सामने रखिये।

(१४) अपनी शक्तिका पूर्ण विकास।

अपनी किसी एक शक्तिका पूर्ण विकास करनेका उद्देश्य अपने सामने रखिये। यह जगत् "**प्रगति**" करनेके लिये ही बनाया है। विकास इसका स्वभावधर्म है। आपके अंदर अनंत शक्तियां हैं, कमसे कम किसी एक शक्तिका विकास करनेका परम पुरुषार्थ आप कीजिये। **निश्चयके साथ पुरुषार्थ करके आगे बढेंगे, तो आपको प्रतिबंध कोई नहीं कर सकेगा।** अपनी शारीरिक शक्ति बढाइये, मनका विकास कीजिये, बुद्धिका तेज फैलाइये, अथवा आत्मिक बल बढाइये। किसीभी शक्तिका विकास कीजिये, इसीसे आपका परिवार प्रभावित होगा, और इसीसे आदर्श गृहव्यवस्थाभी बन जायगी। गृहस्थाश्रमके उत्तम सुधारका मूल-तत्त्व यही है।

अपना आदर्श निश्चित करनेके समय अपने मन और बुद्धिसे पूर्ण विचार कीजिये, तथा अपने इष्ट मित्रोंका भी विचार सुनिये। परंतु जिस समय विवक्षित मार्गसे जानेका पूर्ण निश्चय हो जायगा, उस समय पुरुषार्थ करनेमें न्यूनता न कीजिये। क्यों कि नियम यह है —

उद्यमः साहसं धैर्यं बलं बुद्धिः पराक्रमः॥
षडिमे यस्य तिष्ठंति स सर्वं प्राप्नुयात् पुमान्॥

योगवासिष्ठ मु. व्य.

"उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये छे गुण जिसके पास होंगे, वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है।" इससे सिद्ध है कि, असिद्धि

होनेपर निश्चय समझिये कि आपके प्रयत्नमें ही दोष था इसलिये निवेदन यह है कि, अपने पुरुषार्थमें कोई न्यूनता न रखिये । अपना उद्देश्य निश्चित होनेपर उसके अनुकूल अपना घर बनाइये । यदि आपको शारीरिक शक्तिका विकास करना है तो अपने घरका वायुमंडल ही वैसा बनाइये । जो आपके अनुकूल हो। इसी प्रकार अन्य ध्येय सामने रखनेपरभी यही बात करनी चाहिये । ऐसा न करनेपर बडे विघ्न उत्पन्न होते हैं, और उनके कारण इष्ट सिध्दिमें देरी होती है ।

आपका उद्देश्य पूर्ण और शीघ्र सिद्ध होनेके लिये खानपान, ऐष-आराम, कपडे लत्ते, उत्सव महोत्सव तथा अन्य विभागों के विषयमें भी आपको परम दक्षता रखनी चाहिये । घरकी व्यवस्था भी ऐसी रखनी चाहिये कि, जो साधक हो और बाधक न हो ।

(१५) गृहाश्रम की व्यवस्था का स्वरूप ।

गृहाश्रम व्यवस्था का सामान्य वर्णन इस प्रकार है। अब थोडासा विशेष बताना चाहिये । सबसे पहिली बात "स्वच्छता" की है इसका संबंध आपके आरोग्य के साथ है । इसलिय स्वच्छता के विषयमें आपको बडी दक्षता रखनी चाहिये । अपने सुधारका यहां प्रारंभ होता है । अपने कपडे, अपने पदार्थ और अपना कमरा शुद्ध और स्वच्छ रखनेसे जो आनंद मिलता है, उसको आप थोडे समयमें विना किसी व्ययके प्राप्त कर सकते हैं। इसके पश्चात् अपने परिवारको आप इस स्वच्छताकी कल्पनासे

शोभायमान कीजिये। ऐसा करनेसे आपका सब घर सुंदर, स्वच्छ और पवित्र बनेगा। शुद्धता और पवित्रता के आधार पर सब सुधार होना है। इसके पश्चात् अपने पदार्थों की व्यवस्था कीजिये कई लोग ऐसे देखे हैं, कि उनके कमरे अव्यवस्था का नमूना और मलीनता का मुर्तिमान स्वरूप होते हैं। ऐसे स्थानों में उच्च विचारों का उद्भव होना असंभव होता है।

यह बाह्य पवित्रता होने के पश्चात् मनको शांत और संतुष्ट तथा हास्य विनोद युक्त रखिये। यहां से मनकी पवित्रता शुरू होगी। मन चिडचिडा, लोभी, क्रोधी, कामी, द्वेषी रखेंगे तो आपसे पुरुषार्थ होना अशक्य होगा। पुरुषार्थ के लिये आपका मन शांत और प्रसन्न चाहिये। इसलिये अभ्यास करके अपने मनको ऐसा बनाइये। अपने शरीर की शीत उष्ण आदि द्वंद्व सहन करनेकी शक्ति बढाइये। इससे नीरोगता सिद्ध होगी, और आप निर्विघ्न पुरुषार्थ कर सकेंगे।

इसके पश्चात् आप को अपनी स्थिति और उन्नतिका विचार करना चाहिये और अपनी उन्नतिके साधक ही ग्रंथ पढने चाहियें। इस पठन पाठनसे आपके मनमें अधिकाधिक उच्च विचार आ जांयगे, और अधिकाधिक पुरुषार्थ करनेकी ओर आपकी रुची हो जायगी।

इतना विचार संक्षेपसे अपने विषयमें हुआ। अब दूसरोंके साथ व्यवहार करनेके विषयमें थोडासा सोचना चाहिये। अपनी ओरसे किसी दूसरेको व्यर्थ कष्ट न देनेका निश्चय कीजिये। शरीर



मन और विचार से प्रेमके स्रोत बढने दें। सब व्यवहारोंमें कदापि सचाइको न छोडिये। किसीको धोखा देकर अपना लाभ करनेका यत्न न कीजिये। श्रेष्ठताका ध्येय सन्मुख रख कर, उसको प्राप्त करनेके लिये अपनी शक्ति बढाइये और परमेश्वरपर दृढ विश्वास रखिये। व्यवहारके ये नियम ध्यानमें धरकर प्रथम अपना व्यवहार इनके योग्य बनाइये, और पश्चात् अपने गृहस्थाश्रमके सब लोगोंपर इनका प्रभाव जमाइये। और अपनी गृहाश्र व्यवस्था इसके अनुकूल बनाइये।

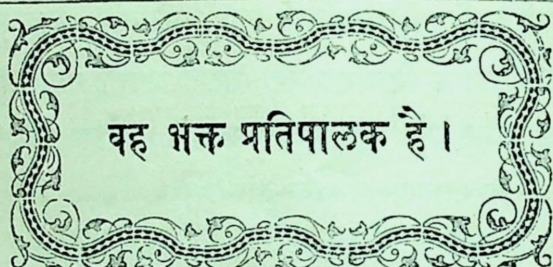
इस प्रकार यदि आप प्रयत्न करेंगे, तो आपका गृहस्थाश्रम आदर्श गृहस्थाश्रम हो जायगा। इस लेखमें सामान्य नियम हा स्पष्ट रूपसे बताये हैं। प्रत्येक की परिस्थिति के अनुकूल विशेष नियम हरएक को बनाना योग्य है, क्यों कि प्रत्येक की परिस्थिति इतनी भिन्न है कि, सबके लिये विशेष नियम बनाना अशक्य ही है।

सारांशरूपसे इतना ही कहना है कि, **हरएक मनुष्यका जन्म "शक्ति विकास" के लिये ही है।** जो अपनी शक्तिका विकास करेगा, उसका जन्म सफल होगा, परंतु जो इस दिशासे प्रयत्न ही नहीं करेंगे, उनका जन्म व्यर्थ चला जायगा। अपने परिवारको अपनी शक्ति विकासके लिये अनुकूल बनाना, और परिवार के हरएक मनुष्यकी शक्ति विकसित करनेके लिये अवकाश रखना आवश्यक है। इसलिये गृहाश्रम व्यवस्था ऐसी

बनानी चाहिये कि, जिसमें उक्त बात आसानीसे सिद्ध हो सके। आशा है कि, उत्तम विचार करके पाठक अपनी गृहाश्रम व्यवस्था इस वैदिक आदर्शके अनुकूल बनायेंगे, और अपनी शक्ति विकसित करके आदर्शरूप बन जायंगे।

सब आश्रमों में वेद और स्मृतिकी मर्यादानुसार गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है। क्यों कि वह अन्य तीनों आश्रमोंका भरण पोषण करता है।

मनुस्मृति ६। ८९



वह भक्त प्रतिपालक है ।

ओ३म् यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा ।
स नः वर्षदति द्विषः ॥ अथर्व ६।३४।२

भाषार्थः—[यः] जो [अग्निः] ज्ञानस्वरूप तेजस्वी परमेश्वर [तिग्मेन] तीव्र [शोचिषा] तेजसे [रक्षांसि] राक्षसों को [निजूर्वति] मार गिराता है [सः] वह [द्विषः] वैरियोंको [अति] अतिक्रमण करके [नः] हमें [पर्षत्] भरपूर करे ।

राधिकावृत

जो ज्ञान रूप जगदीश भक्त भयहारी ;
वह तीव्रतेज युत निश्चय है असुरारी ।
है मार गिराता असुर शत्रु सब मारे ।
कर प्रेम वृष्टि निज भक्त जगतसे तारे ॥१५॥

सूर्य भेदन व्यायाम।

(संख्या ३)

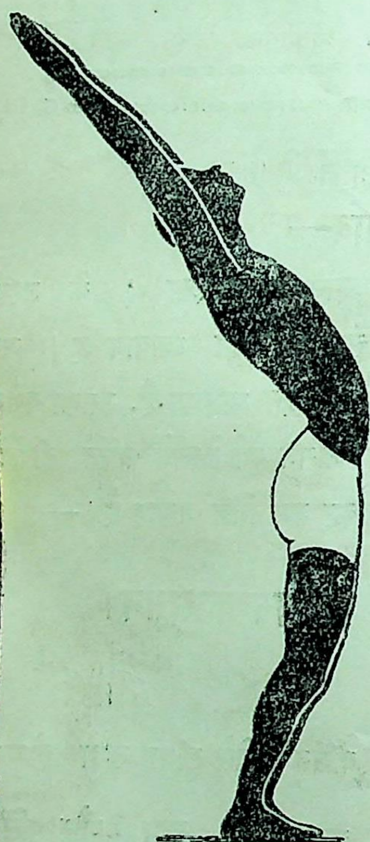
सबसे सुगम " सूर्य भेदन व्यायाम " संख्या १ के लेखमें वर्णन किया है। उससे कठिण संख्या दो का व्यायाम है। अब इससे और थोडासा कठिण जो सूर्य भेदन व्यायाम है, उसका वर्णन इस लेखमें करना है। इसमें कई आसन पूर्व लेखोंमें वर्णित ही हैं, परंतु कई आसन नवीन हैं। उनका क्रम निम्न प्रकार है —



(१) नमस्कारासन।

पूर्व वर्णित रीतिसे सीधा खडा होकर पांव, चूतर, पीठ गला, और सिर समसूत्र में रख कर दोनों हाथ जोड कर नमस्कार करना। इसके पश्चात्

(२) ऊर्ध्व नमस्कारासन।



ऊर्ध्व नमस्कारासन करना चाहिये। साधारण नमस्कारासन में दोनों हाथ अपनी छातीके पास होते हैं; वे वहांसे सीधे ऊपर ले जाकर ऊर्ध्व दिशा में हाथ जोड कर नमस्कार करनेका यत्न करनेसे यह ऊर्ध्व नमस्कारासन होता है। इसमें पेट को थोडासा आगे बढाकर हाथोंको जितना हो सके उतना पीछे हटानेसे पेटपर अच्छा खिंचाव आता है और यह पेटके लिये बडाही आरोग्यप्रद होता है। आध सेकंद इस ऊर्ध्व नमस्कारासन की स्थितिमें ठहर कर पश्चात्–

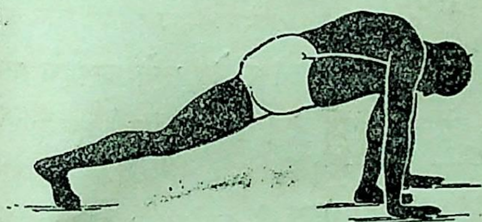
(३) हस्तपादासन।

हस्तपादासन करना चाहिये। पूर्व आसनमें जो हाथ ऊपर थे,



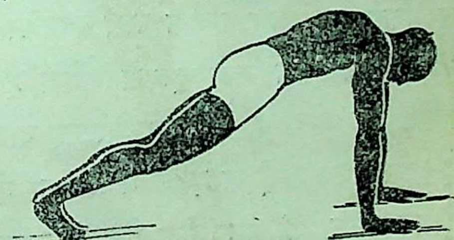
उनको वहांसे नीचे लाकर अपने दोनों पांवोंके दोनों ओर भूमिके ऊपर रखिये । घुटने सीधे रहें और पेट अंदर आकर्षित किया जाय, ये दो बातें इसमें मुख्य हैं । इस लिये इस समय इनके विषय में भूलना नहीं चाहिये । इसके नंतर —

(४) एकपाद–प्रसरणासन ।



एक पांव पीछे ले जाकर पूर्ववत् एक पाद प्रसरणासन कीजिये । तदनंतर –

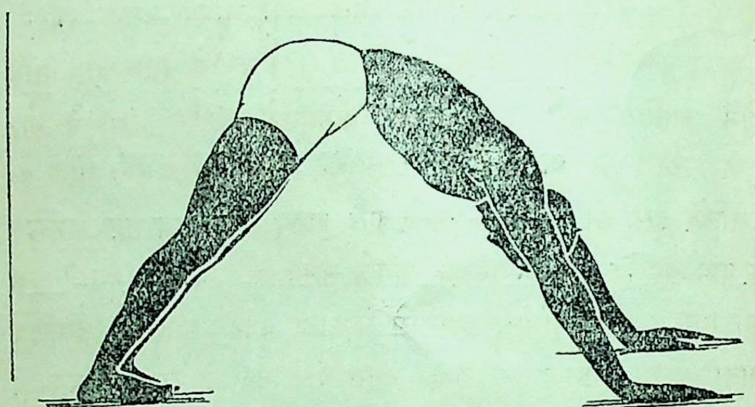
(५) द्विपाद प्रसरणासन ।



दोनों पांव पूर्वोक्त प्रकार पीछे ले जाईये । इस रीतिसे द्विपाद प्रसरणासन हो जाता है । तत्पश्चात्–

(६) भूधरासन ।

भूधरासन करना चाहिए । इसको करने के लिये अपने पांव जितने पीछे ले जा सकें उतने ले जाइये,



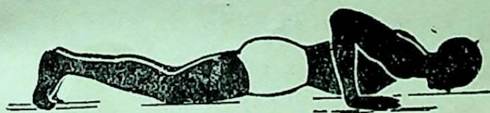
परंतु इसमें यह स्मरण रहे कि, घुटने सीधे रहने चाहिये और पांवके तलवे जमीनको पूरे लगने चाहिये । पांवोंके संपूर्ण नसनाडियों पर इसका अच्छा परिणाम होता है ।

इस समय हाथोंके तलवे पूर्व स्थलमें ही जमीन पर लगे रहते हैं, और पांवोंके तलवे अपने नवीन स्थानपर भूमिपर पूरे लगे रहते हैं। इस प्रकार हाथों और पांवोंके चारों तलवोंपर पर्वत जैसा शरीर रहता है, इसलिये इसका नाम भूधरासन होता है । भूमिको हाथों और पांवोंसे धरा जाता है, इस कारणभी यह नाम अन्वर्थक प्रतीत होता है । इस समय ठोडी कंठ मूल में लगाकर कंठबंध करना चाहिये । जिसमें गलेका पृष्ठ भाग ठीक होता है । इसका संबंध बुद्धिवर्धन के साथ होनेसे इसका करना मज्जा प्रवाहके लिये बडा ही लाभ दायी होता है । यह आसन प्रारंभ में करनेके लिये थोडासा कठीन है, परंतु प्रयत्न करनेपर आठ दस दिनों के अंदर ही साध्य हो जाता है।

(१) हाथों और पांवोंके तलवे पूरे भूमिपर लगने चाहिएं, (२) घुटने सीधे रखने चाहिये, (३) कोहनीके साथ हाथ सीधे होने चाहिये और (४) ठोढी कंठमूलमें लगनी चाहिये और (५) पेट अंदर आकर्षित होना चाहिए। इतनी पांच बातें मुख्य हैं, इसलिये इस का अभ्यास करनेवाले पाठक इनको न भूलें। प्रारंभ में पांव बहुत पीछे ले जानेपर पांवके तलवे – (एडीसे अंगुली तक का भाग) — भूमिपर पूर्णतासे टिकाना कठिन होता है। इसलिये थोडा अभ्यास होने तक पांव बहुत पीछे नहीं ले जाने चाहिएं। अभ्यास होनेके पश्चात् कोई कठिनता नहीं होती।

इस भूधरासनमें एक सेकंद ठहरकर पश्चात् –

(७) अष्टांग प्रणिपातासन।



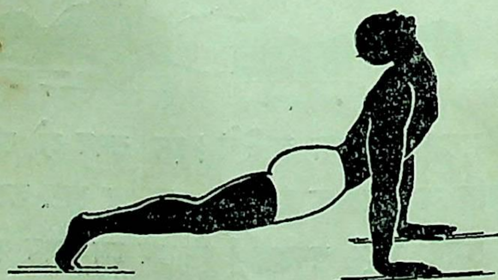
अष्टांग प्रणिपातासन करना चाहिये। इस समय दो पांव, दो घुटने दो हाथ, छाति और मस्तक इतने भाग भूमिपर स्पर्श करने चाहिये। पेट भूमिको लगना नहीं चाहिये। इसलिये इस समय पेटको बल के साथ अंदर खींचना अत्यंत आवश्यक होता है। छाति भूमिको लगे और पेट न लगे यह बात इसमें मुख्य है। प्रायः मनुष्यों की निर्बलता इसमें ही व्यक्त होती है, इनका पेट भूमिको लगता है और छाति नहीं लगती !!

वास्तवमें छातिका घेर बडा चाहिये और पेटका कम चाहिये शरीरस्वास्थ्य का यही चिन्ह है। परंतु साधारणत: पेट बढता है और छाति घटती है।

अष्टांग प्रणिपातासन में प्रतिसमय मनकी प्रवल शक्तिके साथ प्रयत्न होता है, कि छाति भूमिको लगे और पेट अंदर आकर्षित हो। इस प्रयत्नसे छातिका घेर फैलता है और पेट पतला होता जाता है। स्वास्थ्य के लिये इसकी बडी भारी आवश्यकता रहती है। उदरवृद्धिके मनुष्योंके लिये यह सूर्य भेदन व्यायाम एक दिव्यौषधि है। अस्तु।

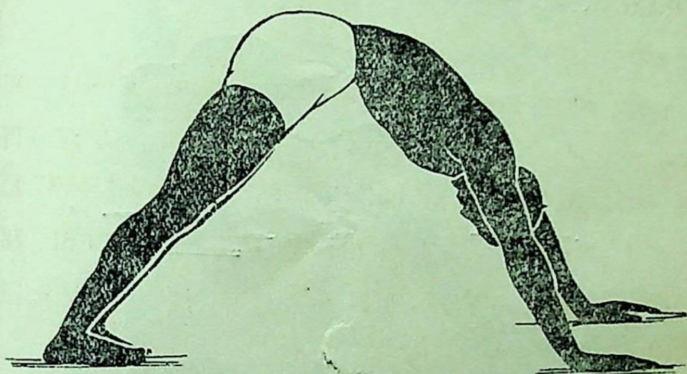
इस प्रकार अष्टांग प्रणिपातासनके पश्चात्

(८) सर्पासन



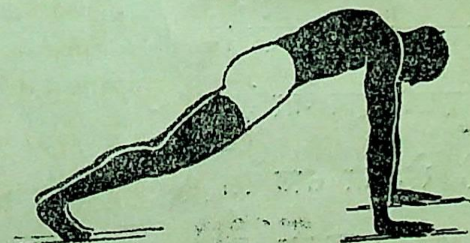
सर्पासन करना चाहिये। फणी सांप के समान आसन करनेसे यह सिद्ध होता है। इसमें सिर जितना पीछे जाये उतना लाभ दायक होता है। यहांतक पीछे चला जाय कि आकाश के सामने अपना मुख हो। इसके पश्चात् पुन:—

(९) भूधरासन



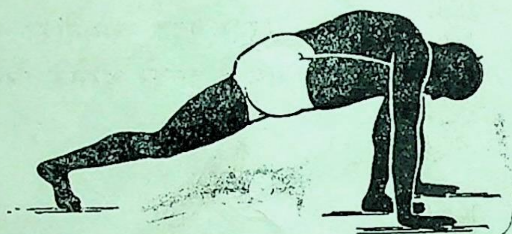
भूधरासन पूर्ववत् करना चाहिये। घुटने सीधे, पांव समरेखामें कोहिनी के साथ हाथ सीधे, हाथों और पांवों के तलवे पूरे भूमिपर लगे हुए, तथा ठोढी कंठमूलमें लगनी, आदी सब बातें पूर्ववत् होनी चाहियें और किसी बातको भी भूलना नहीं चाहिये। और अशुद्धि नहीं करनी चाहिये। इसके बाद —

(१०) द्विपाद प्रसरणासन और



(११) एकपाद प्रसरणासन

करके तत्पश्चात् —





(१२) हस्तपादासन

पूर्ववत् हस्तपादासन करके, तदनंतर —

(१३) उपवेशनासन



उपवेशनासन करना चाहिये। जहां हस्तपादासनमें हाथ और पांव थे वहां ही रहे, और सरल बैठा जाय और बैठते ही उठ कर

(१४) **नमस्कारासन** और पश्चात् (१५) **ऊर्ध्व नमस्कारासन** करना चाहिये।



इस प्रकार पंद्रह आसनोंका यह सूर्यभेदन व्यायाम है इसको करनेके लिये पंद्रह सेकंद



लगते हैं और इस वेगसे ये एक मिनिटमें चार होते हैं। संख्या एक के सूर्य भेदन के पांच व्यायामोंके बराबर यह एक है, इस प्रमाणसे इसकी संख्या अपने लिये निश्चित करनी चाहिये। तात्पर्य जहां संख्या एक के व्यायाम २०० करने आवश्यक हैं वहां ये ४० अथवा ५० पर्याप्त हैं। तथापि अपनी शक्तिके अनुसार न्यूनाधिक करनेमें भी कोई हानि नहीं है।

वास्तवमें ये सब आसन एक ही कुंभकमें करने चाहिये । अर्थात् जो पंद्रह सेकंद कुंभक कर सकते हैं वे एक कुंभकमें ये सब आसन कर सकते हैं । परंतु दस वीस वार करनेके पश्चात् और अधिक व्यायाम करना मुश्किल प्रतीत होता है । इस लिये प्रारंभमें एक कुंभकमें सब आसन न किये जांय और प्रथम श्वास लेकर अष्टांग प्रणिपातासनके बाद उच्छ्वास छोडा जाय और सर्पासन के नंतर श्वास लेकर नमस्कारासनके समय छोडा जाय ।

अथवा अशक्त मनुष्य जहां चाहिये वहां श्वास लें और छोड दें। परंतु सबको उचित है कि वे नाकसे ही श्वास लें और नाकसे ही उच्छ्वास छोड दें । तथा मुख बंद रखें ।

दूसरा प्रकार

इस व्यायाम का दूसरा एक प्रकार है, उसमें अष्टांग प्रणिपातासन के स्थान पर चतुरंग प्रणिपातासन करना होता है। चतुरंग प्रणिपातासन के करनेसे यह सूर्य भेदन व्यायाम और भी थोडासा कठिन होता है । इसलिये जो मनुष्य चतुरंग प्रणिपातासनके साथ इसको करना चाहते हैं वे अपनी शक्ति के अनुसार करें ।

पूर्वोक्त सूर्य भेदन व्यायाम संख्या १ तथा संख्या २ में भी ऊर्ध्व नमस्कारासन किया जा सकता हैं और इसके करनेसे लाभ भी अधिक होते हैं ।

ये सब व्यायाम स्त्रियों और पुरुषों के लिये अत्यंत लाभदायक हैं। इसके अभ्यास से १०।१५ दिनों के अंदर ही लाभ प्रतीत होता

है और ३।४ महिनों में शरीर पुष्ट होनेका अनुभव होता है। पेटके विकार, सिरके दोष, आंतोंके व्याधि तथा हाथ पांवोंकी कमजोरी, छातिकी अशक्तता, मज्जातंतुओंके विकार, गलेके रोग, आदि सब इसके करनेसे दूर होते हैं।

सहस्रों मनुष्योंने इस सूर्यभेदन का अनुभव लिया है इसलिये ऐसा कहने में कोई शंकाही नहीं है कि, यह व्यायाम निःसंदेह लाभ कारी है। इस समय भी स्त्री पुरुष युवा, बाल और वृद्ध इससे लाभ उठा रहे हैं।

इस सूर्य भेदन व्यायाम का अभ्यास करने के लिये प्रातःकालका समय प्रशस्त है। वास्तव में प्रातःकाल के सूर्य के सन्मुख रहकर सूर्य के कोमल किरणों में ही यह व्यायाम करना चाहिये। इस प्रकार सूर्यकी अद्भुत प्राणशक्ति के साथ अपना संबंध हो जाता है और अपने शरीरमें जीवनकी कला बढ जाती है। ओज, तेज, उत्साह और वीर्य आदिकी वृद्धि होकर शरीर की नीरोगता अखंड रहती है। शुद्ध स्थानमें प्रातःकालके सूर्य प्रकाशमें जो लोग इस व्यायामको दो चार मास नियम पूर्वक करेंगे उनको इसका महत्व वर्णन करनेको कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी। क्यों कि चार मास के अंदर इसका अपूर्व लाभ अनुभवमें आजाता है।

प्रायः यह अनुभव लिया है कि जो नियमपूर्वक और यथा विधि इस सूर्य भेदन व्यायाम को करते हैं उनके पास कोई व्याधि नहीं ठहरती। इस प्रकार प्रत्यक्ष लाभदायी यह व्यायाम है।

हठयोग और पातंजलयोग का निदर्शन ।

(लेखक — श्री॰ पं॰ प्रियरत्न विद्यार्थी)



हठयोग में आठ प्रकार के प्राणायाम वतलाये हैं जो कि " उज्जायी सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा, प्लाविनी, या केवल " नामों से प्रसिद्ध हैं, परंतु सब हठयोगी आठों प्राणायामों में ' भस्त्रिका ' प्राणायाम को ही अति श्रेष्ठ और सब में मुख्य प्राणायाम कहते हैं, जिस की विधि यह है कि, सिद्धासन लगाकर बैठ जावें, और वाम (बांया) हाथ का अंगुठा नासिका के वाम पत (परदे) के ऊपर तथा कनिष्ठा और अनामिका (कनिष्ठा के पास की अंगुली) नासिका के दक्षिण (दाये) पत (परदे) के ऊपर रखें । फिर अङ्गुठे से नासिका के वाम पत को दबाकर नासिका के दक्षिण छिद्र से पूरा श्वास भीतर लेते ही फिर उतको ही दक्षिण छिद्र से बाहिर निकाल देवें । पुनः वैसे ही भीतर लें और वाहिर निकालते रहे । एवं श्वास प्रश्वास [प्राण] की गमनागमन क्रिया से वारंवार घर्षण करें । जब

ऐसे करते हुए थक जावें, तो फिर उसी दक्षिण छिद्र से श्वास लेकर भीतर रोक लेवें। अङ्गुठे और अनामिका व कनिष्ठिका से नासिका के दोनों पत बन्द कर लेवें। एवं कुछ काल भतिर रोक कर, पुनः नासिका के वाम छिद्र से प्रश्वास प्राण को बाहिर निकाल दें, और उसी वाम छिद्र से फिर पूर्ववत् दक्षिण छिद्र जैसा श्वास प्रश्वास का घर्षण करें। थक जाने पर श्वास लेकर पूर्ववत् भीतर रोक लेवें। एवं यह लोहार की भस्त्रा [धोंकनी] के समान किया हुआ हठयोग का प्राणायाम भस्त्रिका नाम से प्रसिद्ध है। भास्त्रिका की यह उक्त विधि केवल पुस्तकों की ही नहीं है, प्रत्युत एक बडे हठयोगी साधु से क्रियात्मक प्राप्त की है, जो हठयोग की मुद्रा आदि सब क्रियाओं का पूरा अभ्यास कर चुके थे, और संस्कृत भी पढे हुए थे, तथा ऐसे भी जान पडता था कि, उन्हों ने पातञ्जल योग भी देखा है। जब उन से समागम हुआ था, वार्तालापान्तर्गत यह भी उन का कथन था, कि पतंजलि से अधिक योगविषय में कहने वाला कोई नहीं है। अस्तु॥

वस्तुतः इस भस्त्रिका के अभ्यास करने से पता लगता है कि, निःसन्देह भास्त्रिका प्राणायाम हठयोग के उज्जायी आदि आठ प्राणायामों में ऐसा है कि, जैसे प्रजा के बीच राजा माननीय और श्रेष्ठ होता है। एवं भास्त्रिका पूर्वोक्त प्रणायामों में अति श्रेष्ठ है, तथा हठयोगियों का कथन है कि, " कुंडलिनी को जागरित " अंतर्मुख वृत्ति कर देता है। स्यात्। अब हम कुछ मीमांसा करके एक उत्तम परिणाम लावेंगे, वह मीमांसा यह है कि —

ऐसे अन्तर्मुख या अंतर्वृत्ति करने वाले इस उपाय को अथवा इस जैसा प्राणद्वारा कोई उपाय पतंजलिने अपने योगदर्शन में भी वर्णन किया है या नहीं। यदि वर्णन किया है तो किस शैली और विधि में है, तथा क्या भस्त्रिका जितना ही लाभ भी है अथवा न्यूनाधिक। एवं हम आपके सन्मुख इस आंशिक पातंजल योग का स्वरूप रखते हैं, वह यह है कि।—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ यो. द. १।६४

प्रच्छर्दन और विधारण इन दो क्रियाओं से भी मन किसी एक उच्च स्थिति पद को प्राप्त होता है। अब प्रच्छर्दन और विधारण क्या है? इस बात को व्यासभाष्य द्वारा दर्शाते हैं " **कौष्ठयस्य वायोर्नासिकापुटाभ्यां प्रयत्नविशेषाद्वमनं प्रच्छर्दनम्** =उदर के वायु का नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा प्रयत्न विशेष से वमन जैसे फेंकना 'प्रच्छर्दन' कहलाता है "। " **विधारणं प्राणायामः** "= विधारण प्राणायाम को कहते हैं अर्थात्—

श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

श्वास प्रश्वास की गति का रोक देना प्राणायाम है, जो कि इस पातंजल योग दर्शन में बाह्यवृत्ति प्राणायाम, आभ्यंतर वृत्ति प्राणायाम, स्तम्भवृत्ति प्राणायाम और बाह्याभ्यंतराक्षेपी प्राणायाम यह चार प्रकार का प्राणायाम कहा है। जो 'विधारण' नाम से भी व्यवहृत किया है। " **ताभ्यां मनसः स्थितिं सम्पादयेत्** " उन प्रच्छर्दन और विधारण [प्राणायाम] द्वारा मन की स्थिति सम्पादन करे। हमें

यहां पातंजलानुसार प्राणायाम के विषय में कुछ वक्तव्य नहीं है, किन्तु प्रच्छर्दन का स्वरूप आप के सामने रखना है। तो "[१] उदर के वायुका नासिका के [२] दोनों छिद्रों द्वारा [३] प्रयत्न विशेष से [४] वमन जैसे फेंकना" प्रच्छर्दन है अर्थात् —

[१] नाभिगत देश का वायु [२] नासिका के एक ही छिद्र से नहीं प्रत्युत दोनों छिद्रों द्वारा [३] प्रयत्न विशेष से = साधारण अवस्था में वायु बिना प्रयत्न विशेष के फेंका जाता है; परन्तु प्रच्छर्दन क्रिया में प्रयत्न विशेष से फेंकना है। जो कि स्वस्थ और सरल आसन से बैठकर अर्थात् सिद्धासन, यथा सुखासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन आदि ही ये चार पांच योग के लिये उपयोगी हैं, और सिध्दासन सब में विशेषोपयोगी है। क्यों कि आसन तीन प्रकार के होते हैं [१] "**व्यायाम सम्बन्धि आसन**, [२] **चिकित्सा संबंधि आसन और** [३] **योग संबंधि आसन**।" योग संबंधि जो आसन हैं उन को तो योग की परिभाषा से आसन कहते हैं। उस योग की परिभाषा का सूक्ष्म लक्षण किसी और समय आप के सन्मुख रखूंगा, प्रत्युत यहां इतना कह देना उचित समझता हूं कि, वह सूक्ष्म लक्षण सिद्धासन में विशेषतया घटता है। और जो अन्य व्यायाम या चिकित्सा सम्बंधि आसन हैं, उनको यौगिक या व्याकरण परिभाषा मात्र से ही आसन कहते हैं। जैसे बैठने के स्थान को कुशासन आदि नाम से व्यवहृत करते हैं। अर्थात् "**आस्यते यस्मिन् तदासनम्**— बैठते हैं जिसके ऊपर वह आसन कहाता है। इसी

प्रकार **" आस्यते इत्यासनम् "** – शरीरको किसी भी अवस्था में भूमि आदि पर स्थापित कर देना भी आसन है । सो यह लक्षण व्यायाम, चिकित्सा संबन्धि आसनों में घटता है । व्यायाम संबन्धि आसन और चिकित्सा सम्बन्धि आसन चौरासी ही नहीं किन्तु सैंकडों से अधिक कल्पना किये जा सकते हैं । क्यों कि वे व्यायाम शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र के जानने वालों की ऊहा कल्पना पर निर्भर है । अस्तु ।

यहां प्रच्छर्दन में सिद्धासन जैसे को लगाकर बैठ जावें, फिर मन में निश्चय करें की, मैं अब उदर के वायु को इतना प्रयत्न विशेष से फैंकता हूं कि जो मेरे उदर का निकला हुआ वायु सीधा भूमिको स्पर्श करे एवं दृढ करके [४] वमन - कै – अर्थात् जैसे अन्न जल मुख से बाहिर बडे वेगसे निकल जाता है, एवं वायु को बाहिर फेंक देवे । ऐसे पूर्वोक्त प्रकार से यह प्रयत्न विशेष अभ्यास करने से बन जाया करेगा । तथापि इस प्रयत्न विशेष की स्पष्ट विधि भी जता दूं, वह यह कि, जैसे कोई कूदने वाला जब दूर तक कूदना चाहता है, तो जहां से कूदना है, वहां से और भी पीछे हटकर कूदता है । एवं नाभिगत उदर के वायु को जब दूर तक फेंकता है, तो नाभि (तुण्डी) के नीचे से वायु का उत्थान (नाडी संकोच रूप) करो, फिर वायु को वेग से बाहिर फेंक दो । निःसंदेह दूर तक वायु पहुंचे गा, इस संकोच रूप वायु के उत्थान में योगियों के तीन मत हैं, वे ये कि —

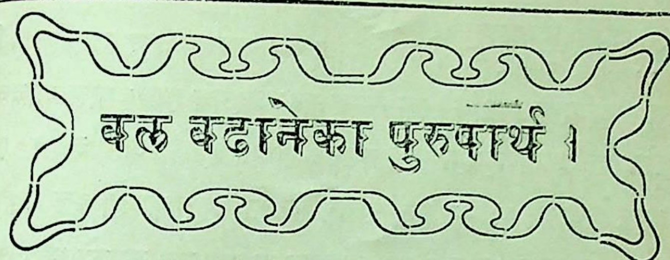
(१) कुछ एक कहते हैं कि, वायु को बाहिर फेंकते समय गुदा का संकोच (सुकेडना) करो।

(२) कोई एक कहते हैं कि, वायु को बाहिर फेंकते समय उपस्थेंद्रिय का संकोच करो, जैसे सभा आदि में बैठे हुए लघुशंका (पेशाब) का आना रोक लेते हैं, वैसी चेष्टा करनी चाहिये।

(३) अन्य कुछ एक ऐसा कहते हैं कि, अण्डकोष और गुदा के मध्य भाग को संकोच करो। अस्तु।

इस त्रिविध विवाद में हम अपना निर्णय आपके सामने रखते हैं, वह यह है कि, यदि तीनोंका पृथक् पृथक् भावना से भी संकोच करें, तो किसी प्रकार की हानि नहीं होती, प्रत्युत लाभ ही होता है ऐसा अनुभव से सिद्ध हुआ है। वास्तव में यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें, तो इन तीनों में से किसी एक का भी संकोच किया जावे, तो तीनों का ही संकोच हो जाता है। उदाहरण से प्रत्यक्ष कर सकते हैं, अर्थात् लघुशङ्का (पेशाब) करते हुए गुदा को संकोच कीजिये, तो तत्काल ही लघुशंका बन्द हो जावेगी। एवं शौच समय उपस्थेंद्रिय का संकोच भी शौच को रोक देगा, इस लिये किसी एक के संकोच से तीनों का ही संकोच बन पडता है। हां जिसका प्रधान भावना से संकोच किया जाता है, उसका औरों की अपेक्षा विशेष संकोच होता है। वस्तुतः इन तीनों का ही संकोच इष्ट है और इन तीनों के सम विभाग (बराबर) में संकोच होनेसे विशेष लाभ है। इस सब संकोच की विधि यह है कि, पूर्वोक्त प्रकार स्वस्थ और सरल बैठे हुए वायु बाहिर फेंकने को जब उद्यत हो, तो उदर

के भीतर की नाडी को नाभि (तुण्डी) के नीचे से ऊपर उठाओ, एवं उस समय संकोच हो जावेगा । पुन: संकोच करते ही नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा वेगसे वायु को बाहिर दूर तक फेंकदो, एवं फेंकते ही धीरेसे वायु को भीतर लो और फिर भी वैसा ही संकोच कर फेंक दो और धीरेसे भीतर लो । एवं कोई दस या पन्द्रह बार करके फेंके हुए वायु को बाहिर ही रोकदो और जब तक बाहिर रोको तब तक संकोच भी बना रहे । एवं बाहिर रोके हुए ही मनको भीतर नाडियों की प्रतीति में लगादो, तो उस समय आप की अवस्था कितनी अंतमुर्ख होती है इसका अनुभव प्रत्यक्ष करेंगे । एव यह प्रच्छर्दन का लाभ है तथा विशेष और नित्य प्रति निरंतर अभ्यास से विशेष लाभ होता है । अन्तर्मुख वृत्ति भी इतनी दृढ होती जाती है कि, प्रच्छर्दन के पश्चात् बाह्यावरोध दशा में विना श्रोत्र (कान) बन्द किये वह सुन्दर सूक्ष्म प्रेम भरी ध्वनी प्रतीत होगी, जो कदाचित् कान बन्द करने पर विशेष ध्यानसे प्रतीत होती है । एवं विशेष अभ्यास के ऊपर बहुत कुछ अनुभव निर्भर हैं । इस प्रच्छर्दन को कुछ मात्रा भस्त्रिका में भी है, इस लिये वह भी लाभ दायक है । परन्तु जितना लाभ भस्त्रिका में है उससे कई वीसो गुणा अधिक लाभ प्रच्छर्दन में है । एवं 'प्रच्छर्दन क्रिया' पातंजल की अपूर्व लाभ दायक समझें । अभ्यासी पुरुषों को, जो आन्तरिक अनुभव और आनन्द लेना चाहते हैं, उन को पातंजल ज्ञानयोगान्वाख्यायक कर्मयोग का आश्रय अवश्यमेव लेना अनिर्वाच्य है । इति शम् ॥



सूर्य भेदन व्यायाम।



(पूर्व अंकसे समाप्त)

बलवर्धक व्यायामपद्धतियोंमें—सूर्यभेदन व्यायाम पद्धति विशेष महत्व रखती है। यह सुगम और हरएक अवस्थामें लाभकारी है। इस का वर्णन " **वैदिक धर्म** " के गत दो अंकोंमें हो चुका है और आगेभी कई अंकों तक होता रहेगा। लेख लिखने के समय हमारी इच्छा थी कि इस " **सूर्यभेदन व्यायाम** " से पाठक लाभ उठावें! हमारी हार्दिक इच्छाके अनुसार स्थानस्थानके पाठकोंसे पत्र आ रहे हैं कि उन्होंनें सूर्यभेदन व्यायाम का अभ्यास शुरू किया है। निःसंदेह यह प्रसन्नताकी बात है। जो इसका अभ्यास करेंगे उनको प्रत्यक्ष अनुभव आजायगा और मास दो मास के पश्चात् वे ही इसके प्रचारक बनेंगे। जो कठिनता है वह प्रारंभ करनेको ही है।

गत दो मासोंके अंदर कई पाठकोंने तो सूर्यभेदन व्यायाम (संख्या १) का प्रमाण प्रतिदिन ३०० सौ से भी अधिक बढाया है।

यह निः संदेह उत्साह का चिन्ह है । इनके अनुभव हम क्रमशः इसी मासिक में प्रकाशित करेंगे। इस समय तक जो पत्र हमारे पास आचुके हैं उनसे पता लगता है कि भूख बढने , कब्जी हटने और शरीर के स्नायु पुष्ट होने का अनुभव इन अभ्यासियोंको हो चुका है। इस प्रकार जो मनुष्य सूर्यभेदन व्यायाम का अभ्यास करेंगे उन सबको निःसंदेह लाभ हो सकता है ।

संघमें व्यायाम

यह सूर्यभेदन व्यायाम संघमेंभी किया जा सकता है। बोर्डिंग हौस तथा स्कूल और कालेजों के विद्यार्थि मिलकर यह व्यायाम करेंगे तो उनको बडा आनंद होगा और शारीरिक बलभी बढेगा । इस प्रकार का प्रयत्न म० बापुलाल जी पटेल, (भूत पूर्व प्रबंधकर्ता " वैदिक धर्म ") द्वारा संताक्रुस में हो रहा है -

संघमें सूर्यभेदन व्यायाम और आसन

संताक्रुस नगरके पास ही समुद्र है और समुद्र के साथ विस्तीर्ण वालुका प्रदेश है । इस में प्रतिदिन पचासों मनुष्य जाकर संघमें आसनों और सूर्यभेदन व्यायामों का अभ्यास कर रहे हैं । इसके पश्चात् सब मिलकर समुद्र जलका स्नान करके घरमें आते हैं । आज दो मास में यह संघ इस प्रकार कार्य कर रहा है । इस प्रयत्नका सब यश वैदिक धर्मके भूत पूर्व व्यवस्थापक को ही है। इस संघमें जो व्यायाम करते हैं, उनमें से हर एक को लाभ हुआ है, इसका

वृत्तांत हम क्रमशः समयानुसार देंगे। इसमें ऐसे लोगभी हैं कि जो सालोंसाल दवाइयां पीते पीते थक चुके थे। जिनको ८।१५ दिनमें ही अपने शरीरमें परिवर्तन होनेका अनुभव हुआ है और वे अब नियमपूर्वक दृढाभ्यासी हुऐ हैं। इस संघमें प्रतिदिन अधिकाधिक मनुष्य, जो कि कब्जी, बद हजमी, पांडुता, दमा, श्वास खांसी आदिके शिकार हो चुके थे, संमिलित हो रहे हैं और लाभ उठा रहे हैं।

यह कोई ख्याली बात नहीं है।

जो करेगा उसको लाभ जरूर होगा। इस लिये पाठकों से सानुरोध प्रार्थना है कि वे चुप न रहें। इस सूर्यभेदन व्यायामका चमत्कार वे स्वयं देखें, और अपने मित्रोंमें इसका खूब प्रचार करें। यदि नगर के पास उद्यान हो तो उसमें संघमें जाकर सवेरके समय यह व्यायाम करने योग्य है। बहुत सर्दी हुई तो मंदिरमें भी किया जा सकता है।

जो बोर्डिंगोंमें हैं अथवा जिनका संबंध बोर्डिंगोंके साथ है, वे बोर्डिंगके विद्यार्थियोंको कतार में खडा करके उनसे सूर्यभेदन व्यायाम करावें, पहिले महिनेमें उनमें उत्साह उत्पन्न करनेकी आवश्यकता है। जिस समय उनको भूख बढनेका अनुभव होगा, उनकी चुरती बढेगी और उनके बाहुओंमें बल बढेगा, उस समय के पश्चात् वे स्वयं इसके दृढाभ्यासी हो जांयगे।

जो वैदिक धर्म के पाठक कालेजों और बोर्डिंगों में तथा गुरुकुलों और ऋषिकुलों में हों, वे अपने सहाध्यायियोंमें इसका प्रचार जितना हो सकता है अवश्य करें।

दो मासके अभ्यास से ही शक्ति बढनेका अनुभव ।

हो जाता है । इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है । यहां कई विद्यार्थी ऐसे हैं कि जिन्होंनें संकल्प किया है कि—

एक लाख

सूर्यभेदन व्यायाम करेंगे । प्रतिदिन बारासौ सूर्य भेदन व्यायाम करेनसे तीन मास के अंदर ही एक लाख से अधिक संख्या हो जाती है । इस प्रकार एक लाख की पूर्णता होने पर पुन : निश्चय करते हैं और पुन:एक लाख करते हैं । जो इस प्रकार कर रहे हैं उनके शरीर एक वर्षके अंदर देखने लायख बन गये हैं। संदेह करने वाले स्वयं करके अनुभव ले सकते हैं।

प्रतिदिन २००, ३०० अथवा ५००सूर्यभेदन व्यायाम करने वाले यहां बहुत ही हैं । जिनमें ५० वर्ष और ६० वर्ष के वृद्ध भी संमिलित हैं और २० तथा २५ वर्ष के जवान भी हैं । इनमें से हरएक को यदि लाभ हुआ है तो अन्यों को क्यों नही होगा ?

बल बढानेका समय ।

यह समय बल बढानेका है। इस समय अपना बल न बढाते हुए जो पीछे रहेगा, वह जगत् में आगे बढ नहीं सकता । वैदिक धर्म के लिये ऐसे आलसी मनुष्यों की आवश्यकता नहीं । वैदिक धर्म उत्साही और पुरुषार्थी नरवीरोंका धर्म है। इसलिये जो वैदिक धर्ममें हैं उनको

अपनी हरएक शक्तिका विकास करनेका यत्न करना चाहिये। और सबसे प्रथम अपनी शारीरिक शक्तिका विकास तो अवश्य करना चाहिये। जिस योगके व्यायामसे भीमसेन जैसे लोग विशाल शक्तिसे संपन्न बने थे वही यह सूर्य भेदी व्यायाम है। जो इसका अभ्यास करेंगे, उनको निःसंदेह लाभ होगा। यहां से थोडी दूर वांई नगर में

प्राज्ञपाठशाला।

है। यहां सेकडों विद्यार्थी हैं जो इस सूर्यभेदन व्यायाम को प्रतिदिन कर रहे हैं। वहां ही कई ब्रह्मचारी ऐसे हैं कि जिन्होंनें लाख सूर्यभेदन नमस्कार करनेकी प्रतिज्ञा की है और कईयोंनें प्रतिज्ञा को पूर्ति भी की है। यहां के सब ब्रह्मचारी प्रतिदिन आसनों का अभ्यास भी करते हैं। यह सब इसलिये होता है कि यहांके प्रधान आचार्य श्री. परमपूजनीय पं. नारायण शास्त्री जी स्वयं बाल ब्रह्मचारी और आसनाभ्यासी हैं। वे अपने सब छात्रोंसे इन योगके व्यायामोंका अभ्यास यथा शास्त्र करवाते हैं। यदि इसीप्रकार स्थान स्थानके विद्यापीठोंमें व्यवस्था हो जायगी, तो देशके नवयुवकों में निःसंदेह नवजीवन उत्पन्न होगा। आजकल जो निरुत्साह दीख रहा है वह नहीं रहेगा। भविष्य की संतान अधिक बलवान बनेगी तथा अधिक पुरुषार्थी और कार्य करनेमें समर्थ हो जायगी।

विदेशी व्यायामों का खर्च

इस समय अपने देशमें विदेशी व्यायाम घुस रहे हैं। इन विदेशी व्यायामोंके लिये बहुत ही खर्च करना पडता है। और खर्च के साथ लाभ भी वैसा नहीं होता। परंतु इस -

योगके व्यायाम के लिये कोई व्यय नहीं है

हरएक गरीबसे गरीब और अमीर से अमीर भी इससे लाभ उठा सकता है, क्यों कि इसमें कोई भी व्यय करने की आवश्यकता ही नहीं है। बिना व्यय करने के शरीर के संपूर्ण स्नायुओं को लाभ पहुंचता है। किसीभी अन्य व्यायाममें यह बात नहीं है। इसलिये पाठकों से सानुरोध प्रार्थना है कि वे इस सूर्यभेदन व्यायाम का स्वयं अनुभव लें और अपने सब इष्टमित्रोंमें इसका खूब प्रचार करें। विशेषतः नवयुवकोंमें इसका अधिक प्रचार होना आवश्यक है। आशा है कि पाठक इस विषयमें अवश्य यत्न करेंगे।



उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, और पराक्रम इन छे गुणोंकी योजना से मनुष्य सब प्रकारका अभ्युदय प्राप्त कर सकता है।

वैदिक तत्त्वज्ञान के ग्रंथ।

(१) ईश उपनिषद्।

व्याख्या और स्पष्टीकरणके समेत। मू. ॥=)

(२) केन उपनिषद्।

केन उपनिषद्, अथर्ववेदीय केन सूक्त, देवीभागवतकी देवतागर्व हरणकी कथा। इनके स्पष्टीकरण और व्याख्याके समेत। विस्तृत भूमिकामें यक्ष, उमा हैमवती आदिके भाव अत्यंत स्पष्ट रीतिसे बताये हैं। मूल्य १।)

(३) वैदिक प्राणविद्या।

इस पुस्तकमें चार वेद और उपनिषदोंमें जो प्राणविषयक वर्णन आया है वह स्पष्टीकरणके साथ दिया है। मू. १)

(४) ब्रह्मचर्य। सचित्र।

ब्रह्मचर्य रक्षणके अनुभवसिद्ध उपाय। मू. १।)

(५) नरमेध।

मानवी उन्नतिका वैदिक तत्व। मू. १)

मंत्री स्वाध्यायमंडल. औंध (जि. सातारा)

आनंद समाचार ।



अथर्ववेद । पूरा छप गया, शीघ्र मंगाइये. ।

अथर्ववेद का अर्थ अब तक यहां की किसी भाषा में नहीं था और संस्कृत में भी सायण भाष्य पूरा नहीं है । अब परमात्मा की कृपासे इस वेदका हिन्दी संस्कृत में प्रामाणिक भाष्य पं० क्षेमकरण-दास त्रिवेदी का किया हुआ बीसों कांड, विषयसूची, मन्त्रसूची, पदसूची, आदि सहित २३ भागों में पूरा छप गया है। मूल्य ४७॥) (डाक व्यय लगभग ४) रेलवे से मंगाने वाले महाशय रेलवे स्टेशन लिखें , बोझ लगभग ६०० तोला वा ७॥ सेर है । अलग भाग यथासम्भव मिल सकेंगे। जिन पुराने ग्राहकों के पास पूरा भाष्य नहीं है, वे शेष भाष्य और नवीन ग्राहक पूरा भाष्य शीघ्र मंगालें । पुस्तक थोडे रह गये हैं, ऐसे बडे ग्रन्थ का फिर छपना कठिन है ।

हवन मंत्रा :– धर्मशिक्षा का उपकारी पुस्तक चारों वेदों के संगृहित मन्त्र ईश्वर स्तुति, स्वस्ति वाचन, शान्ति करण, हवन मन्त्र वामदेव्य गान, सरल हिन्दी में शब्दार्थ सहित संशोधित, गुरुकुल आदिकों में प्रचलित। मूल्य ।–)

रुद्राध्याय : । प्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६[ब्रह्म निरूपक अर्थ] संस्कृत हिन्दी अंगरजी में मूल्य ।=)

रुद्राध्याय :–मूल मात्र मूल्य)॥ वा २) सैंकडा।

वेद विद्यायें — कांगडी गुरुकुल में हिन्दी व्याख्यान । वेदों में विमान, नौका, अस्त्र शस्त्र निर्माण, व्यापार, गृहस्थ, अतिथि, सभा, ब्रह्मचर्यादि का वर्णन । मू० -) ॥

पं. क्षेमकरण दास त्रिवेदी, ५२ लूकर गंज, अलाहाबाद

वैदिक विज्ञान ग्रंथ माला।

विकासवादका युक्तियुक्त खंडन जो कि युरोप में बहुत प्रचलित है और जिसका प्रचार नास्तिकताके रूपमें भारत में भी प्रचलित होता जाता है इस अवैदिक लहर को रोकने के लिए आर्याफिलासफर राज्यरत्न **श्री. आत्मारामजी** अमृतसरी व्याख्यान वाचस्पतिने -

सृष्टि विज्ञान —रचकर ईश्वर वादका सुदृढ मंडन करते हुए वैदिक धर्म को रक्षामें बडाकाम किया है। प्रत्येक ईश्वरवादी आर्य के घरमें इस ग्रन्थका रहना परमावश्यक है। सचित्र स्वच्छ छपी पुस्तक का मुल्य २) है। डा.।≈)

द्वितीय सचित्र अनुपम अद्वितीय पुस्तक **शरीर विज्ञान** जिस में दर्शाया गया है कि शल्यविद्याका आदि मूल वेद में हैं और भारत ऋषि ही इसके आदि प्रचारक हुए है। पुस्तक प्रत्येक मनुष्यको पढनी चाहिये। ऋषियों के पंचभूत तथा वातपित्त कफ के सिद्धान्तकी सत्यता दिखाकर युरोप के कई सायंस के मन्तव्योंको युक्तिपूर्वक अमान्य ठहराया है। सुप्रसिद्ध निर्णयसागर यंत्रालय बंबईमें छपी तथा सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल।≈) है।

तृतीय पुस्तक **आत्मस्थान विज्ञान** में बताया है की शरीर में आत्माका स्थान कहां है? मूल्य ≠)

ब्रह्मयज्ञ वेदशास्त्रों के मानने वाले आर्यों (हिन्दुओं) को यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिए। ब्रह्मयज्ञ की व्याख्या बडी उत्तमतासे की गईहै यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। उत्तम छपी पुस्तक है मूल्य॥।)

तुलनात्मक धर्म विचार १) अवतार रहस्य ॥।) श्रीहर्ष ॥) ऋषिकी कथा ॥) समुद्रगुप्त ॥≈) नीतिविवेचन ।≡) स्थायीग्राहक॥) लेकर बनाए जाते हैं।

महेन्द्रप्रताप कँ. कारेलीबाग, बडोदा.

सब नमूने मिलकर ६० तोले।

वी. पी. से ५) रु.

ईश्वर उपासना करनेके समय।
वायु शुद्धि से चित्त प्रसन्न करनेके लिये—



हमारी इस मुद्राकी अगरबत्ती लगाइये।
मिलनेका स्थान—सुगंध-शाला, डाकघर किन्हई (जि. सातारा)

सब नमूने मिलकर ६० तोले।

वी. पी. से ५) रु.

आप को ज्योति क्यों पढ़नी चाहिये ?

१ सारे हिन्दी संसार में ज्योति ही एक मात्र मासिकपत्रिका है जिस के पन्ने भारत के वर्तमान काल से सम्बन्ध रखने वाले राजनीतिक और धर्म सम्बन्धी लेखों के लिये सदा खुले रहते हैं; हमारी भाषा में राजा नैतिक पत्रिकायें हैं, धार्मिक पत्रिकायें हैं और ऐसी भी पत्रिकायें हैं जो कि इन दोनों विषयों से कोसों दूर रह कर समाज; साहित्य, विज्ञान इत्यादि अन्य विषयों पर ही अपना ध्यान देती हैं। परन्तु यह **ज्योति** की ही विशेषता हैं कि यह अपने पाठकों के लिये प्रत्येक विषय पर सरस, भावपूर्ण और खोज द्वारा लिखे हुये लेख उपस्थित करती है ।

२ **ज्योति** की एक और विशेषता है । यह केवल पुरुषों की ही आवश्यक्ताओं को पूरा नहीं करती परन्तु स्त्रियों की आवश्यक्ताओं की ओर भी पूरा पूरा ध्यान देती है। वनिता विनोद शीर्षक से देवियों और कन्याओं के लिये अलग ही एक लेखमाला रहती है जिस में उनके हित के अनेक विषयों पर सरल लेख रहते हैं । इस के कला कौशल सम्बन्धी लेख जिस में कि क्रोशिया, सलाई इत्यादि द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुजैसा कि लेस फीते, मौजे, टोपियां, कुर्ते, वनियान, स्वैटर इत्यादि बनाने की सुगम रीति रहती है, । वार्षिक मूल्य ४॥ है

अत: प्रत्येक हिन्दी प्रेमी भाई और बहिन को ऐसी सस्ती और सर्वांग—सुन्दर पत्रिका का अवश्य ग्राहक बनना चाहिये।

मैनेजर ज्योति — ग्वाल मण्डी, लाहौर ।

" दिया सलाईका धंदा। "

हम दिया सलाईका धंदा सिखाते हैं। अनेक देसी लकडीयोंसे दियासलाईयां बनाना, बक्स तैयार करना, ऊपर का मसाला लगाना आदि कार्य दो मास में पूर्णता से सिखाये जाते हैं।

सिखलाने की फीज केवल ५०) पचास रु. है।

हमारी रीतिसे दिया सलाई का कारखाना ५००) रु. में शुरू-किया जा सकता है और लाभ भी होता है।

यहां रहने तथा भोजन आदिका व्यय प्रतिमास १५)रु. होता है।

अनेक विद्यार्थी स्थान स्थानसे आकर सीख रहे हैं। जो इस धंदेको अपने नगर में शुरू करना चाहते हैं यहां शीघ्र आजांय और सिख कर दो मासमें अपना धंदा शुरू करें।

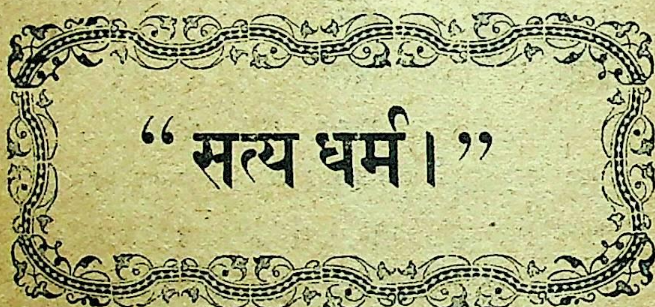
मोहिनीराज मुले एम्. ए.

स्टेट लेबोरेटरी, औंध (जि. सातारा)

[हम इस कारखाने की दिया सलाईयां बरत रहे हैं। और यहां यह धंदा सिखाया जाता है। – संपादक–वैदिक धर्म]

प्रभुभक्तोंको योग वा ज्ञान का संदेश।

देने और मजहबी कशमकशसे निकालकर आत्मज्ञान के विशाल और आनंदप्रद मार्ग में लानेवाला संसार भर में **अद्वितीय मासिक पत्र**—



(ऊर्दू वा हिंदी)

प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती पं॰ सत्यवतीजी शास्त्रिणी के संपादकत्व में शीघ्रही लाहौर से प्रकाशित होनेवाला है।

मंतव्य— (१) सर्व मतों में अमन, शांति, प्रेम वा एकता फैलाना। (२) योग के गुप्त भेदों और ज्ञान के सूक्ष्म अंगों को सर्व साधारण व्याख्या करना। (३) योग संबंधी गलत फहमियों को दूर करना।

वार्षिक मूल्य ३)

पत्र व्यवहार—प्रबंध कर्ता श्री गोविंदमठ
डाक घर ढिलवां, कपूर्थला, से करें।

स्वाध्याय के ग्रंथ।

—:*:—

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। **नरमेध**। "**मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन**।" मूल्य १।)

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। **सर्वमेध**। "**एक ईश्वरकी उपासना**।" मू. ॥) आठ आने।

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। **शांतिकरण**। "**सच्ची शांतिका सच्चा उपाय**।" मू. ॥) आठ आने।

[२] देवता- परिचय- ग्रंथ- माला।

(१) **रुद्र देवताका परिचय**। मू. ॥) आठ आने

(२) **ऋग्वेदमें रुद्र देवता**। मू. ॥=) दस आने।

(३) **३३ देवताओंका विचार**। मू. =) दो आने।

(४) **देवताविचार**। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग- साधन- माला।

(१) **संध्योपासना**। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥)

(२) **संध्याका अनुष्ठान**। मू. ॥) आठ आने।

(३) **वैदिक-प्राण-विद्या**। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) **ब्रह्मचर्य**। मू. १।) सवा रुपया।

(५) **योग-साधन की तैयारी**। मू. १) एक रु.

(६) **योग के आसन**। मू. २) दो रु.

[४] धर्म– शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. ‐) एक आना ।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितियभाग । मू. =) दो आने ।
(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक । मू. ≡) तीन आने ।

[५] स्वयं शिक्षक माला ।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । मू. १॥) डेढ रु. ।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु. ।

[६] आगम– निबंध– माला ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।‐) पांच आने ।
(२) मानवी आयुष्य । मू. ।) चार आने ।
(३) वैदिक सभ्यता । मू. ≡) तीन आने ।
(४) वैदिक चिकित्सा– शास्त्र । मू. ।) चार आने ।
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥) आठ आने ।
(६) वैदिक सर्प– विद्या । मू. ॥) आठ आने ।
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय । मू. ॥) आठ आने ।
(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥) आठ आने ।
(९) शिव संकल्पका विजय । मू. ॥। बारह आने ।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ॥) आठ आने ।
(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥) आठ आने ।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र । मू. ≡) तीन आने ।
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. =) दो आने ।

मंत्री— स्वाध्याय– मंडल; औंध (ज़ि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक:--श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि.सातारा)

Registered No. B. 1463.

वर्ष ४ अंक १२
क्रमांक ४८

मार्गशीर्ष सं. १९८०
दिसंबर स. १९२३

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक-तत्त्वज्ञान-प्रचारक-मासिक-पत्र।

संपादकः-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

वार्षिक मूल्य ३॥) साढे तीन रु.। विदेशके लिये ४॥) साढे चार रु.।

विषय सूची।

वैदिक-धर्म।

चतुर्थ वर्ष—विषय सूची।

महाभारत।

महाभारत का महत्व।



(१) महाभारत का महत्व अनेक दृष्टियोंसे है। आर्योंका प्राचीन इतिहास जाननेके लिये हरएक को महाभारत की शरण लेनी पडती है। भारतीय वीरोंके अद्भुत चरित्र महाभारत में ही देखने चाहिये। प्राचीन आर्योंका राजकीय, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उत्क्रांतिका संपूर्ण इतिहास यदि देखनेकी इच्छा है, तो महाभारतही देखना चाहिये। अर्थात् इतिहासिक दृष्टिसे महाभारत का अभ्यास होना आवश्यक है।

(२) महाभारतमें राजनीति तथा सामान्य नीति इतनी विस्तृत रूपसे लिखी है कि आर्य—नीतिशास्त्रका अभ्यास करनेवालेको महाभारत जैसा दूसरा कोई ग्रंथ नहीं है।

(३) धर्मशास्त्र तथा अध्यात्म शास्त्र के विषय में भी लेखकों और वक्ताओंके लिये प्रमाणवचन महाभारत में ही विपुल मिलते हैं। इसी लिये महाभारतको " पंचम वेद " भी कहते हैं। इस कारण इसके अध्ययन करनेकी बडी भारी आवश्यकता है।

वेद और महाभारत।

व्यास महर्षिकी प्रतिज्ञा।

(१) वैदिक धर्मियोंको उचित है कि वे अपने वेदमंत्रोंकी " गुप्त विद्या " के साथ महाभारत तथा अन्य पुराण आदि ग्रंथोंकी " व्यक्त विद्या " की तुलना करें। भगवान व्यास महर्षिजीकी प्रतिज्ञा है कि " जो वेदकी विद्या है वही महाभारतके मिषसे वर्णन की है। " इस लिये आवश्यक है कि वेदके कौनसे भाग का किस रीतिसे रूपांतर महाभारत में हुआ है और उसमें इतिहासिक भाग कहां और कितना है, इसका स्पष्ट विचार हो।

(२) इस तुलनात्मक अध्ययनसे हमें एक यह लाभ होगा कि जो वेदमूलक कथाएं अन्य पुराणोंमें हैं, उनकाभी वैदिक मूल हमें विना आयास मिल सकेगा।

महाभारत बडा ग्रंथ है ।



महाभारत बहुतही बडा ग्रंथ है, साधारण लोग उसको खरीद नहीं सकते । इसके अधिक मूल्यके कारणही महाभारत पढनेकी इछा करनेवाले बहुतसे पाठक चुप रहते हैं और खरीदनेका नाम नहीं लेते ।

एक युक्ति है ।

जिस युक्तिसे हरएक पाठक महाभारत खरीद सकता है । और किसीको भी किसी प्रकारकी कठिनता नहीं हो सकती । हम प्रतिमास १०० पृष्ठ मूल महाभारत और उसका सरल भाषानुवाद मुद्रित करना चाहते हैं । एक वर्षमें १२०० पृष्ठ ग्राहकोंको दिये जांयगे । कागज और छपाई बढिया होगी । चित्रभी दिये जांयगे ।

वार्षिक मूल्य मनी आर्डरसे ६) रु. और वी. पी. से ६।।=) होगा । इस रीतिसे यह ग्रंथ थोडेही वर्षों में समाप्त होगा । और विना आयास हरएक ग्राहक को मिलता जायगा । जो ग्राहक बनाना चाहते हैं शीघ्र अपना मूल्य भेज दें ।

मंत्री-स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)



वैदिक धर्म मासिक के पिछले अंक।



" वैदिक धर्म " के पिछले अंक प्राय: समाप्त हो चुके थे। परंतु ग्राहक पिछले अंकोंकी मांग करते थे । इसलिये प्रयत्न करके निम्न अंक इकठे किये हैं । प्रत्येक अंक का मूल्य पांच आने है । जो मंगवाना चाहते हैं, शीघ्र मंगवायें, क्यौं कि थोडे समयके पश्चात् मिलेंगे नहीं। प्रतियां थोडी ही मिली हैं

द्वितीय वर्ष के क्रमांक २० से चतुर्थ वर्षके चालू अंक तक अंक तैयार हैं। केवल २५ वां अंक नहीं है।

मंगवाने वाले त्वरा करें।

मंत्री — स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

ॐ

आसन।

"योग की आरोग्य वर्धक व्यायाम पद्धति"।



"संध्योपासना" आदि सब धर्मकृत्योंमें सबसे प्रथम "आसन" लगानेकी आवश्यकता है। आसन लगानेके विना कोईभी धर्मकृत्य नहीं होता। इतना धर्मकृत्यके साथ आसनोंका दृढ संबंध है

× × × ×

आसनोंका महत्व।



आसनोंका महत्व उतनाही है कि, जितना आरोग्यका महत्व है। आरोग्यके साथ आसनोंके व्यायामोंका घनिष्ठ संबंध है। शरीरके सब आंतरिक अवयवों और अंगों तथा नसनाडियोंका

ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् प्राचीन काल के ऋषि मुनि और योगियोंने इस आसन पद्धतिकी सिद्धता की है। ऋषिकालसे इस समय तक जिन्होंने आसनोंका अभ्यास किया है, उनको—

* * * *

आसनों के अभ्यास से लाभ

अर्थात् आसनोंसे आरोग्य प्राप्तिका अनुभव हुआ है। यह बात केवल श्रद्धा अथवा अंध–विश्वाससे ही माननेकी नहीं है। इस समयमें भी सहस्रोंकी संख्यामें अनेक लोगोंने इस आसन पद्धतिके व्यायामसे अपूर्व लाभ उठाया है! आप भी केवल तर्क न कीजिये। परंतु–

÷ ÷ ÷ ÷

स्वयं अनुभव लीजिये।

जहां स्वयं एक दो मासके अंदर ही अनुभव आ सकता है, वहां तर्कका और दलीलोंका काम ही क्या है? अनेक असाध्य बीमारियां इस पद्धतिके आसनोंके व्यायामसे दूर हो गई हैं। औषधिके सेवन की आवश्यकता नहीं है, इसमें व्यय कुछ भी नहीं है। केवल प्रतिदिन १५अथवा २० मिनिट कुछ आसन

आप करते जाइये, आपको आठ दस दिनों के अंदरही इससे आरोग्यका अनुभव निःसंदेह हो जायगा। अनुभव होनेके पश्चात् शंका करनेके लिये स्थान ही नहीं होता है। इस लिये आपसे प्रार्थना है कि आप स्वयं अनुभव लीजिये।

\+ \+ \+ \+

इसमें कोई कठिनता नहीं है।



कई लोग ख्याल करते हैं कि आसन करनेमें बडी कठिनता होती है। परंतु यह वास्तविक नहीं हैं। आसनोंका अभ्यास बडा सुगम है। आप जितना सुगम चाहते हैं उससेभी सुगम है। इसीलिये इस अभ्याससे इस समयभी ७० और ७५ वर्षके वृद्ध पुरुष लाभ उठा रहे हैं।

जो आसन ७५ वर्षके वृद्ध कर सकते हैं वे आसन उससे कम आयुवाले निःसंदेह कर सकते हैं। छः वर्षोंसे लेकर ७५ वर्षतक के आयुवाले इस पद्धतिसे इस समय लाभ उठा रहे हैं। बाल,तरुण, वृद्ध, निर्बल, बलवान, रोगी, नीरोग, आदि सबोंको इस पद्धतिसे लाभ हुए हैं। इस लिये यह प्रत्यक्ष अनुभव होनेके कारण ही हम कह सकते हैं कि, इस से सबको निःसंदेह लाभ होगा।

स्त्रियों के लिये लाभ।

स्त्रियोंको प्रसूतिके बहुत कष्ट होते हैं। चारों ओर आज कल ये कष्ट बढ रहे हैं। इसका एक मात्र उपाय आसनोंका अभ्यास ही है। अनेक स्त्रियोंने इसका अनुभव लिया है, जिससे यह निश्चय पूर्वक और बलपूर्वक कहा जाता है कि, जो स्त्रियां नियम पूर्वक आसनोंका व्यायाम करेंगी और विशेषतः गर्भवती होनेपर करने योग्य आसन करती जायगी, तो उनको प्रसूतिके कष्ट कदापि नहीं होंगे।

स्त्री और पुरुषोंके लिये लाभकारी।

इस प्रकार यह आसनोंका व्यायाम स्त्रियों और पुरुषोंके लिये लाभ कारी है।

[भा. मु. मुद्रित।]

ॐ

वैदिक धर्म।

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक मासिकपत्र।

वर्ष ४ अंक १२ मार्गशीर्ष १९८०; दिसंबर १९२३. क्रमांक ४८.

उच्च बनो।

उत्क्राम महते सौभगाय
अस्मात्स्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ॥

य. ११।२१

"हे बलिष्ठ धनदाता! महान ऐश्वर्य के लिये इस स्थानसे उठो, (और दूसरे स्थानपर जाकर अपना कर्तव्य करो।)

वैदिक धर्म के आकार का परिवर्तन ।



(१) वैदिक धर्मका यह ४८ वां अंक है अर्थात् इस अंक के साथ चतुर्थ वर्ष समाप्त हो जाता है, और अगले अंकसे पंचम वर्षका प्रारंभ होता है।

(२) इस आकार के वैदिक धर्म मासिक का यही अंतिम अंक है। और अगला अंक ही बडे आकार में छपेगा।

(३) अगले अंकसे न केवल आकार में ही परिवर्तन होगा, प्रत्युत विषयों की व्यवस्था, छपाई, कागज, चित्र आदि सबमें विशेष प्रकार परिवर्तन होगा। स्त्रियों और विद्यार्थियों के लिये विशेष लेख मुद्रित करने का भी विचार है। इससे यह वैदिक धर्म मासिक स्त्री पुरुष बाल तरुण और वृद्धोंके लिये सी चित्ताकर्षक हो जायगा।

(४) बहुत पाठकोंसे पत्र आचुके हैं कि वे आकार बढते ही ग्राहक संख्या बढायेंगे। उनसे निवेदन है कि, वे इस समय से ही ग्राहक बढानेका कार्य प्रारंभ करें। पीछेसे ग्राहक संख्या बढानेसे उनको पिछले अंक मिलना कठिन होता है। क्यों कि हम करीब उतनेही अंक मुद्रित करते हैं कि जितनी ग्राहक संख्या होती है।

मंत्री स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

वैदिक मधु-विद्या।

(१) अहिंसाका विधायक रूप।

बहुत लोग धार्मिक ग्रंथ पढते हैं और शब्दोंको स्मरण रखते हैं, परंतु उन शब्दोंका मुख्य आशय क्या है, इसका विचार नहीं करते। महामुनि पतंजलिका यमसूत्र हरएकने देखा होगा, और उसमें " अहिंसा " शब्दका पाठ भी किया होगा। परंतु अहिंसा का तात्पर्य क्या है, इसका सांगोपांग विचार बहुत थोडे मनुष्योंनें किया होगा। समझा जाता है कि, अहिंसाका अर्थ पशुहिंसा नहीं करना, कोई कहता है कि यज्ञमें पशुवध न करना इत्यादि। परंतु वास्तविक आशयसे ये अर्थ बहुतही भिन्न हैं।

पाहिले इस बातका निश्चय करना चाहिये कि, अहिंसा शब्द हिंसाका या किसी बातका निषेधही कर रहा है, या किसी विशेष गुणका बोध दे रहा है। यदि केवल निषेध बतानेवालाही यह शब्द होगा, तो उससे विशेष कोई बोध नहीं होगा। धर्ममें निषेध रूप धर्म भी होता है, परंतु वास्तविक रीतिसे देखा जाय, तो धर्मका सच्चा स्वरूप विधिरूप कर्तव्य ही है। न करनेकी अपेक्षा करनेका महत्व विशेष है। इस लिये अहिंसा शब्दमें किस विधायक बातका उपदेश होता है इसका विचार करना चाहिये।

यदि हिंसा शब्दसे दूसरेका प्राण लेना ही अर्थ होगा, तो मानसिक और वाचिक हिंसाका कोई तात्पर्यही नहीं होगा, क्यों कि केवल वाचा और केवल मनसे किसीके प्राण नष्ट होनेका संभवही नहीं है। तथापि सब धर्माचार्य और तत्त्ववेत्ताओं ने वाचिक और मानसिक हिंसा होती है, ऐसाही माना है। लोग कहेंगे कि, कटुवचन न बोलना और बुरे विचार मनमें न लाना वाचिक और मानसिक अहिंसा होती है। यह सत्य है, इस को वाचिक और मानसिक अहिंसा कहते ही हैं। परंतु इससे अहिंसा के निषेधक स्वरूप का ज्ञान हुआ, हमें विधायक स्वरूप का ज्ञान होने का यत्न करना है वह अबतक नहीं हुआ।

(२) स्वभाव का माधुर्य।

योगसूत्रके भाष्यकार श्रीव्यासजीनें अहिंसाके अनेक सूक्ष्म भेद बताये हैं। उन सबका विचार हो या न हो, हिंसाके तयमें दूसरे को क्लेश देनेका तत्त्व है और अहिंसाके अंदर दूसरे को सुख देनेका भाव है। यही अहिंसाका विधायक स्वरूप है। अर्थात पाठक यहां ठीक रीतिसे यह समझें की, अहिंसा शब्द केवल हिंसा का निषेधही नहीं करता है, परंतु उसके स्थान पर दूसरे को सहायता देकर दूसरेका सुख बढाना भी कहता है। मनुष्य के स्वभाव दो प्रकारके हैं। एक मीठा स्वभाव और दूसरा क्रूर स्वभाव। मधुर स्वभाव से अहिंसा फैलती है और क्रूर स्वभावसे हिंसा होती है। कायिक वाचिक अथवा मानसिक

अहिंसा अथवा हिंसा क्रमशः स्वभावकी मधुरता और क्रूरताके साथ संबंध रखती है। इस लिये अहिंसाका विधायक स्वरूप सरल शब्दों में कहना हो तो "**स्वभाव का माधुर्य**" इन शब्दों द्वारा व्यक्त हो सकता है। तात्पर्य कोई यह न समझे कि अहिंसामें करनेका कुछभी नहीं है और न करनेका ही सब कुछ है। अहिंसामें करनेका बहुत कुछ है और उसकी उत्तम सूचना "स्वभाव की माधुरी" से ठीक प्रकार व्यक्त होती है। अब विचार करना है कि, यह स्वभाव का माधुर्य किस प्रकार प्राप्त हो सकता है और इस से क्या लाभ हो सकता है।

कोई शब्द यदि वारंवार सुना गया तो उसका इष्ट परिणाम कुछ काल के पश्चात् नहीं होता। अहिंसा आदि शब्दों का भी ऐसाही हुआ हैं। इसालिये उनके स्थान पर नवीन शब्दों का प्रयोग प्रारंभ करनेका यत्न करना आवश्यक है, इसलिये कि उसका उद्देश्य सफल हो। इस उद्देश्य से अहिंसाशब्द का उपयोग न करते हुए "स्वभाव का माधुर्य" शब्द का प्रयोग यहां किया है। इस से अहिंसाका भाव आता है और करनेके कर्तव्य का भी इससे बोध होता है।

स्वभाव का माधुर्य केवल शब्दों से ही व्यक्त हो सकता है ऐसा समझना गलत है, अपने हावभावसे और इशारे से भी वह व्यक्त होता है। आखों के देखने में वह टपकने लगता है और अन्य प्रकार से भी व्यक्त होता है। स्वभाव माधुरी हृदयका भाव

••

है, इसीलिये वह संपूर्ण हलचलमें व्यक्त होता है। इस स्वभाव माधुरीसे शत्रु मित्र बनेंगे, द्वेषी सहायक हो जांयगे और इससे विघ्न दूर हो जांयगे । इस विषयमें वेद कहता है —

(३) माधुर्यसे विजय ।

मधुमान् भवति मधुमदस्याहार्यं भवति ॥
मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥

अ. ९।१।२३

"वह मीठा बनता है, उसके सब साधन मीठे होते हैं । वह मीठे लोगोंको प्राप्त करता है, जो यह मधुविद्या जानता है।"

अपने स्वभावकी माधुरी बढानेका नाम " मधु - विद्या " है। विचार करनेसे इस विद्याका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसका प्रभाव बडा विलक्षण होता है। इससे शत्रुके मित्र होते हैं। और इसीसे सर्वत्र विजय होता जाता है। कई लोगोंके सर्वत्र मित्र होते हैं और कईयोंके द्वेषी बहुत होते हैं, इसका कारण उनका हृदय ही है। जिनके हृदयमें मीठास होती है, उनको सर्वत्र मित्र मिलते हैं, परंतु जिनके हृदयमें कटुता बहुत होती है, उनको शत्रुही सर्वत्र होते हैं। इसलिये अपने हृदयके दोषोंका अथवा गुणोंका सबसे पहिले निरीक्षण करना चाहिये। और यदि उसमें कोई दोष, कटुता अथवा काठोरता होगी, तो उसको दूर करना चाहिये और वहां माधुरी बढानी चाहिये। मधु - विद्या यही है। इस विषयमें उपनिषद् के वचन देखने योग्य हैं —

(४) विश्वमें मधुरता।

इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मधु ॥ १ ॥
इमा आप: सर्वेषां भूतानां मधु ॥ २ ॥
अयमग्निः सर्वेषां भूतानां मधु ॥ ३ ॥
अयं वायु: सर्वेषां भूतानां मधु ॥ ४ ॥
अयमादित्यः सर्वेषां भूतानां मधु ॥ ५ ॥
इमा दिश: सर्वेषां भूतानां मधु ॥ ६ ॥
अयं चंद्रः सर्वेषां भूतानां मधु ॥ ७ ॥
इयं विद्यु सर्वेषां भूतानां मधु ॥ ८ ॥
अयं धर्मः सर्वेषां भूतानां मधु ॥ ११ ॥
इदं सत्यं सर्वेषां भूतानां मधु ॥ १२ ॥
इदं मानुषं सर्वेषां भुतानां मधु ॥ १३ ॥
अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मधु १४ ॥

बृ. २।५।

" यह पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आदित्य, दिशा, चंद्र, विद्युत, धर्म, सत्य, मनुष्यत्व और यह आत्मा माधुर्यमय है। " यह उपनिषद् की मधुविद्याका वचन सदा मनन करने योग्य है। इसका तात्पर्य यह है कि, जगत्में कठोरता और क्रूरता कहींभी नहीं है, परंतु जो भाव अपने हृदयमें होता है, वही जगत्में प्रतिबिंबित हुआ दिखाई देता है। यदि आपके हृदयमें माधुर्य रहेगा, तो आपके लिये संपूर्ण जगत् माधुर्यमय हो जायगा और

यदि आपके अंदर दोष होगा, तो सब जगत्में दोषही दोष दिखाई देगा । इसलिये आत्मसुधार की बडी भारी आवश्यकता है । उपनिषद् और कहता है —

(५) अनुभवकी बात ।

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच ॥
तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् ॥ बृ. उ. २ । ५ । १६

" यह मधुविद्या आथर्वण दधीची ऋषिने अश्विदेवोंसे कही ऋषिने यह सत्य देखा, अनुभव किया और जैसा अनुभव हुआ वैसाही कहा । " अर्थात् यह मधुविद्या अनुभवकी विद्या है, केवल कल्पनाके तरंगही नहीं है । आजभी जगत्में इसका अनुभव आता है । हरएक व्यवहारमें हम जगत्में देखते हैं कि, स्वभावकी माधुरीका विजय होता है । जहां स्वभावकी माधुरी है, वहांही आनंद, शांति और स्वास्थ्य रहता है । यह मधुविद्या चारों वेदोंमें है, इस विषयमें देखिये —

(६) माधुर्य फैलानेवाला वैदिक धर्म !

ऋचः ...... यजूंषि .... सामानि ....
अथर्वांगिरस एव मधुकृतः ॥ छां. उ. ३ । १-५

" ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ये सब मधुरता फैलाने वाले हैं । " तात्पर्य वैदिक धर्मही स्वभावकी माधुरी फैलानेवाला धर्म है । परंतु वह आचरणमें आना चाहिये । वैदिक धर्म जबतक शब्दोंमें ही रहेगा, तबतक वह कार्य कारी नहीं होगा । जो वेद

विद्या है, वह सब मधुविद्या ही है, परंतु वह हमारे अंदर प्रविष्ट होनी चाहिये और हमारे अंदर हजम होनी चाहिये। तब हम मधुर बनेंगे। व्यवहारमें माधुरी आनेके लिये सबसे पहिले जिह्वामें मधुरता चाहिये। इस लिये कहा है --

(७) जिह्वाकी मीठास।

जिह्वा मे मधुमत्तमा॥ तै. उ. १।४

"मेरी जिह्वा मीठी हो।" जबानकी कटुतासेही कितने झगडे और फिसाद होते हैं। यदि जिह्वामें मीठास आजायगी, तो सब कुछ मीठा हो जायगा। इसलिये वेदकी आज्ञा है -

जिह्वाया अग्रे मधु मे, जिह्वामूले मधूलकम्॥ २॥
मधुमन्मे निक्रमणं, मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद्, भूयासं मधुसंदृशः॥ ३॥
मधोरस्मि मधुतरो, मदुघान्मधुमत्तमः॥
मामित्किल त्वं वनाः, शाखां मधुमतीमिव॥४॥

अ. १।३४

"मेरी जिह्वाके अग्रभाग में और जिह्वाके मूल में मीठास रहे। मेरा चालचलन मीठा हो। मेरी वाणी मीठी हो। मैं मीठा बनूंगा। मैं मीठेसे भी अधिक मीठा बनूंगा।" इत्यादि वेदोपदेश सदा ध्यानमें धरने योग्य है। स्वभाव की माधुरीका इस प्रकार अत्यंत महत्व है। यह वैदिक मधुविद्या देखनेसे पाठकोंको बहुत बोध मिल सकता है। निश्चयसे विजय प्राप्त करनेकी यह एक कला है। इसलिये विजयेच्छु पाठक इसको अपनानेका यत्न करें।

•••

असभ्य वर्ताव, घमंड, कठोरता, क्रूरता, लापर्वाही, उदासीनता आदि सब दुर्गुण दूर करके उस स्थान में सभ्यता, शालीनता, मार्दव, सौम्यत्व आदि सद्गुण लाने चाहियें । तथा अपने गुणदोषों का पृथक्करण करके दोषोंको दूर करके गुणोंको पास करना और हृदयके अंदर मीठास बढानी चाहिये । इसी मीठाससे सब जगत् को अपने अनुकूल बनाया जा सकता है ।

अपने चालचलन की जो मधुरता है, उसका समाज के ऊपर बडा ही प्रभाव होता है। अपना मनोहर सभाव हुआ, तो सबके मनोंका अपनी ओर आकर्षण किया जा सकता है । इसलिये अपने स्वभावमें सभ्यता, ललितता और साथ साथ गंभीरता भी लानी चाहिये । इस प्रकार सुललित स्वभाव बनानेके पश्चात् अपने अंदर न्यायप्रियता भी बढानी चाहिये; क्यों कि अन्याय करनेसे कभी प्रगति होही नहीं सकती । एक मनुष्यका दूसरे मनुष्यके साथ व्यवहार कैसा होना चाहिये, इसका ज्ञान न्यायबुद्धिसे ही प्राप्त होता है । परंतु यहां यह बात ध्यान में धरना चाहिये कि, न्यायप्रियता चाहिये, तथापि न्याय निष्ठुरता कामकी नहीं है । न्यायनिष्ठुरता वह है कि, जिसमें निर्दयता के साथ न्यायका आचरण किया जाता है । स्वभाव माधुरीके लिये यह न्याय निष्ठुरस्वभाव घातक है अर्थात् न्यायका वर्ताव प्रेमके साथ और दयाके साथ होना चाहिये । दूसरेके हित के कार्य करके परोपकार करनेका भाव भी स्वभाव माधुरी के लिये सहायक होता है । राष्ट्र सेवा,

समाज सेवा, देश सेवा आदि प्रकार की जो परोपकारी सेवा है, उसको करनेकी सद्बुद्धि धारण करनेसे स्वभावका सुधार अच्छीप्रकार हो जाता है। स्वभाव की माधुरी बढनेके लिये भी एकांतवास की अपेक्षा "**समाज सेवा**" करना वडा सहायक होता है। "**स्वयं सेवक**" होनेके प्रसंग इस कारण ही इस स्वभावके लिये सहायकारी होते हैं।

(८) अपने सुधारका निश्चय।

इसके अतिरिक्त अपने स्वभावके अंदर यदि कुछ कटुता, कठोरता आदि दोष हों, तो "**आत्मानुशासन**" से उनको दूर करना चाहिये। बोलनेके समय चुन कर सौम्य, नरम और मीठे शब्दोंकाही उपयोग करना, दूसरेका जिस समय संबंध आजाय, उस समय शांतिसे काम करनेका अभ्यास बढाना, तथा अन्य समयमें भी जहांतक हो सके वहांतक शांत सौम्य और मीठा स्वभाव बनानेका यत्न करना हरएक के लिये लाभकारी ही है। जगत्में जबतक निवास करना है, तबतक क्षण क्षणमें दूसरोंके साथ संबंध आवेगा ही। और जहां दूसरेके साथ संबंध हुआ, उस समय स्वभाव माधुरीसे हित और कटु स्वभावसे कष्ट होगें। इसलिये अपना भाषण, चालचलन, व्यवहार तथा अपना दर्शनभी बडा मधुर और शांतिसूचक होना चाहिये। अन्यथा क्षण क्षणमें झगडे और कलह होंगे और अनेक प्रकारसे हानि उठानी पडेगी। शरीर सुडौल हुआ, वर्ण अच्छा रहा और साथ साथ स्वभाव भी मीठा हुआ, तो वह मनुष्य सबका प्रिय होगा

ही, तथापि शरीरकी और वर्णकी सुंदरता किसीके आधीन नहीं होती । परंतु अपने चेहरेपर सदा हास्य रखना और स्वभावको मीठा बनाना तो हरएकके प्रयत्नके आधीनही है । इसालिये अपने उत्कर्षके लिये यह प्रयत्न हरएकको अवश्य करना चाहिए ।

खडा होना, बैठना, चलना, बात करना, वक्तृत्व करना, शब्द करना, देखना, हावभाव करना, सुनना आदि सब व्यवहारोंमें अंदर का स्वभावही टपकता है । इसालिये प्रत्येक हलचलका सुधार इस दृष्टिसे करना आवश्यक है । मनुष्यकी इतनीं हलचलें हैं कि, उनके विषयमें विस्तारसे कहना अशक्य है । इसालिये केवल सूचना मात्र यहां लिखा है । इसका विचार करके स्वभाव माधुरीको बढानेका उद्योग पाठक करें ।

यदि प्रत्येक मनुष्य अपने स्वभावका परीक्षण करेगा, तो उसको पता लग जायगा कि, किस किस बातमें सुधार होनेकी आवश्यकता है । इस विषयमें वह अपने सच्चे मित्रोंकीभी संमति ले सकते हैं । अपने दोष दूर करके अपना जीवन आदर्शरूप बनानेका दृढ निश्चय होनेपर आत्मसुधार होना कोई अशक्य बात नहीं है । इसालिये पूर्वोक्त वेदमंत्रोंके उपदेशका स्मरण रखकर —

भूयासं मधुसंदृशः ॥ अ. १।३४।३

" मैं मधुके समान मीठा बनूंगा " यह उपदेश अपने जीवनमें ढाल दीजिये । इससे न केवल अपना जीवन सुधर जायगा, परंतु इससे अन्योंके जीवनोंपरभी बडा परिणाम होगा ।

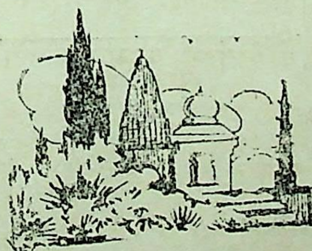
यही "अहिंसा" की प्रतिष्ठा है। इस अहिंसा प्रतिष्ठा की महिमा देखिये, भगवान् पतंजलि मुनि कहते हैं—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ
वैरत्यागः॥ यो. द. २।३५

"जिस पुरुषके मन में उक्त प्रकार अहिंसा की प्रतिष्ठा होती है, उसके सन्मुख अन्य सब प्राणी वैर का त्याग करते हैं।" अर्थात् सब ही प्राणी उसके मित्र बन जाते हैं ऋषियोंकी तपोभूमि में गौ और व्याघ्र एकत्र निवास करते थे, इसका यही तात्पर्य है। अहिंसा से दूसरों के जीवन इसी प्रकार सुधर जाते हैं।

वेदकी यह "**मधुविद्या**" है। वेदमें चारों ओर इस विद्याके अनेक मंत्र हैं, यहां केवल थोडासा दिग्दर्शन ही किया है। आशा है कि पाठक इस प्रकार अन्य स्थानके मंत्रोंका विचार करके अपनी उन्नतिका मार्ग आक्रमण करेंगे।







एक स्थानसे दूसरे स्थान तक पहुंचनेका जो रास्ता होता है उसको मार्ग कहते हैं । मार्ग दो प्रकारका होता है— (१) एक सीधा और सुगम मार्ग, तथा (२) दूसरा तेढा और दुर्गम मार्ग । सीधा मार्ग छोटा होता है और तेढा मार्ग लंबा होता है । दो स्थानोंके बीचम एकही सीधी परंतु लंबाईमें छोटी और सरल रेषा हो सकती है; जितनी अन्य रेषायें होंगीं तेढीं, लंबाईमें अधिक और कुटिल होंगीं । इसलिये " सीधा मार्ग " एकही होता है और वह सबसे छोटा होता है; बाकीके सब मार्ग दूरके और तेढे अथवा कुटिल होते हैं । देखिये —

मनुष्य ०————————० सिद्धि

सीधा मार्ग

मनुष्य जिस अवस्थामें है, वहांसे सिद्धितक एकही सरल सीधा साधन मार्ग होता है, आप जितनीं और रेषायें खींचनेका यत्न करेंगे, सबकी सब तेढीं, कुटिल और अधिक लंबी होगीं ! इसलिये हरएकको उचित है कि, वह अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये

"सीधा मार्ग "ढूंढकर निकाले। ढूंढ कर अथवा अन्वेषण करके देखनेका जो रास्ता होता है, उसीको " मार्ग " कहते हैं । यही " मार्ग "शब्दका यौगिक अर्थ है । हरएक मनुष्य किसी न किसी सिद्धिके लिये प्रयत्न करताही रहता है; इसलिये उसको उचित है; कि वह सीधे सरल मार्गसे सिद्धीके पास चलता जाय, और सब अन्य तेढे कुटिल मार्ग छोड दें ।

वेदमें " मार्ग " का नाम " अध्वन् " है, इस शब्दका धात्वर्थ " खाने वाला" है । पथिक की कठिनताको खा जाता है, इसालिये रास्तेको " अध्वा " कहते हैं । पथिकके मनमें चिंता रहती है, कि मैं प्राप्तव्य स्थानको पहुंच सकता हूं या नहीं, यह चिंता निश्चित मार्ग प्राप्त होनेसे दूर होती है, और पथिक मनमें समझता है, कि मैं निश्चयसे अपने इष्ट स्थानको पहुंचूंगा । यही सत्य निश्चित सीधे और सरल मार्गका महत्व है, जो सिद्धितक निश्चयसे अतिशीघ्र पहुंचाता है ।

सिद्धि प्राप्त करनेके लिये जो अनुष्ठान करना होता है, वह भी एक रीतिसे सिद्धिका मार्गही होता है । इस स्थानमें " अनुष्ठानका मार्ग " कर्मका भाव बताता है । " कर्म " ही अनुष्ठान है और इसलिये " कर्म " ही सिद्धिका मार्ग है । इसीलिये वेदमें कर्मका नाम " अध्व-र " है, अर्थात् जो (अध्वानं राति) मार्गको बताता अथवा देता है । कर्मही उन्नतिके मार्गको देता और सीधा मार्ग बताता है । अर्थात् " अ-ध्वा " जो टेढा नहीं अर्थात्

सीधा मार्ग है, उसको बतानेवाला " अध्व-र " अर्थात् कर्म है। इसका ज्ञान जिसमें है, उसको " अध्व--र वेद " कर्मवेद अथवा यजुर्वेद कहते हैं। " यजुस् "शब्दमें " यज् " धातु " संगति करण " अर्थात् जोडनेके अर्थमें है। मनुष्यको सिद्धिके साथ जोड देता है, इसलिये कर्मवेदको यजुर्वेद (सिद्धिके साथ जोडनेवाला ज्ञान) कहते हैं। पाठक इस मूल अर्थका मनन अवश्य करें।

सिद्धि प्राप्त करनेका सीधा और सुगम मार्ग "अध्व-र" है," इसके साथ जो नियुक्त करता है, उसको "अध्वर्यु (अध्व -रं युनक्ति)" कहते हैं। तात्पर्य अध्वर्यु का कार्य सिद्धिका सीधा मार्ग बता कर उस पर चलनेका उपदेश करना और चलनेमें सहायता देना है। चलनेके पुरुषार्थके विना मार्ग समाप्त नहीं होगा, और प्राप्तव्य स्थानभी प्राप्त नहीं होगा, इसी लिये वेद कहता है कि —

यन्नध्वानमप वृंक्ते चरित्रैः ॥ ऋ. १०। ११७। ७

"(यन्) चलने वाला ही (चरित्रैः) कदमोंसे चलता हुआ (अध्वानं) मार्ग को समाप्त करता है" अर्थात् न चलनेवाला नहीं जा सकता। तात्पर्य यह कि, पुरुषार्थ करनेवाला पुरुषार्थी मनुष्यही सिद्धिको प्राप्त करता है, आलसी सिद्धिको नहीं प्राप्त कर सकता। उक्त मंत्र में " चरित्र " शब्द जैसा पांव का वाचक है, उसी प्रकार " चारित्र्य, स्वभाव, कर्तव्य कर्म, चालचलन "आदिका बोधक है। मनुष्य सदाचारके साथ पुरुषार्थ करके सिद्धिको प्राप्त कर सकता है, यह भाव उक्त मंत्र में है। हर एक मार्ग हित कारक

नहीं हो सकता, परंतु जो श्रेष्ट सर्वोत्तम मार्ग होता है; उसीसे चलनेसे कल्याण प्राप्त होना संभव है, इस विषयमें निम्न मंत्र देखिये —

उरुरध्वा स्वस्तये ॥ ऋ. ८।३१।११

"(उरुः) विस्तृत, श्रेष्ठ, उत्तम मार्ग ही (स्वस्तये) कल्याण के लिये होता है" परंतु जो तंग और दुर्गम मार्ग होता है, वह कष्ट देता है। इसलिये श्रेष्ठ राजमार्गसे अपनी इष्ट सिद्धिकी ओर चलनेका यत्न करना आवश्यक है। किसी समय समीपका मार्ग समझकर किसी तंग गलीसे लोग चलनेका यत्न करते हैं, और फंस जाते हैं !! तंग गलीकी बदबू लेते हुए बडी दूरका चक्कर खाकर बडी देरसे स्वस्थानमें पहुंचते हैं। इसलिये प्रशस्त मार्गसेहीं चलना अच्छा है। तथा—

ओको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥ ऋ. १।१७३।११

"सदाचारी मनुष्यको सीधा मार्ग उत्तम रीतिसे स्वस्थानको पहुंचाता है।" परंतु दूराचारी दुष्ट मनुष्य दुर्मार्गसे चलकर दुःख भोगते हैं; इसलिये किसीभी प्रलोभनमें न फंसते हुए सन्मार्गसेही चलना आवश्यक है। अब कोई शंका करेंगे कि, किसी बातमें प्राचीन लोगोंने यदि सीधा मार्ग बनाया न होगा, और वे अति दूरके मार्गसेही जाते होंगे, तो क्या उनके वंशजोंकोभी उसी लंबे मार्गसे जाना चाहिये अथवा सीधा नया मार्ग तैयार करके उससे सीधा और शीघ्र पहुंचना चाहिये, इस विषयमें वेद स्पष्ट कहता है कि —



अध्वाऽस्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥

अ. १३। २। १४

"यह (पूर्वः) पहिला (विततः अध्वा) विस्तृत मार्ग था, परंतु अब यह (अपरः) दूसरा बना है। जिस समय जो मार्ग होता है, वही ठीक सीधा है, ऐसा लोग समझते हैं; परंतु ज्ञानी सोच विचार करके अधिक सुगम मार्ग देखते रहते हैं; ऐसाही हमेशा करना चाहिये। सोचना चाहिये, विचार करके देखना चाहिये और नवीन सीधे मार्ग ढूंढने चाहिये। यह उपदेश प्रत्येक बातमें लेने योग्य है। तात्पर्य अपनी इष्ट सिद्धिकी ओर सीधे सरल सुगम और छोटे पासवाले मार्गसे जाना चाहिये और यदि ऐसा मार्ग न हो, तो नवीन मार्ग तैयार करना चाहिये; मार्ग होनेपरभी नयी युक्ति करनी चाहिये, कि जिससे शीघ्र और सुगमतापूर्वक इष्ट सिद्धी प्राप्त होसके॥

एक कार्यकी सिद्धि प्राप्त करनेके अनेक मार्ग होंगे, परंतु कार्यकर्ता को विचार करके ही निश्चय करना चाहिये कि, किस मार्गसे मैं शीघ्र इष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकूंगा। सुगमता पूर्वक शीघ्र और उत्तम प्रकारसे कार्य सिद्धि प्राप्त करना मुख्य है। इसीलिये हरएक को प्रयत्न करना अत्यंत आवश्यक है। मार्ग की प्राचीनता से ही केवल उसकी उत्तमता सिद्ध नहीं हो सकती, बहुत समय से विशिष्ट मार्ग प्रयोगमें होगा, परंतु नवीन ज्ञानी और उसको अधिक सुगम कर सकते हैं अथवा नया अधिक सुगम मार्ग भी ढूंढकर

निकाल सकते हैं। इस लिये हरएक समय विचार करने की अत्यंत आवश्यकता है।

प्रत्येक मनुष्य जन्मसे " **सिद्धपुरुष** "नहीं होता। उसको ज्ञान और सुशिक्षण प्राप्त होनेसे ही उसीमें समर्थता आती और बढती है। यह " **समर्थता** " अपने अंदर लाना और इस शक्तिको अधिकसे अधिक बढाना चाहिये। यह जैसा धार्मिक बातों में सत्य है वैसाही, योगविषयक तथा अन्य व्यावहारिक बातों में भी सत्य है। अपने अंदर कौनसी शक्ति है, और मैं उसको किस प्रकार अधिकसे अधिक विकसित कर सकता हूं, इसका विचार करना चाहिये। अपनी शक्तिको विचार पूर्वक सुयोग्य रीतिसे बढाना और योजनापूर्वक उससे अधिकसे अधिक अच्छा श्रेष्ठ और परम उपयोगी कार्य कराना योगका तात्पर्य होता है।

एक मनुष्य अल्प परिश्रमसे एक कार्य बहुत अच्छा करता है, परंतु दूसरा मनुष्य बहुत परिश्रम करनेपर भी वैसा कर नहीं सकता, इसका मूल कारण विचार की आंखसे देखना चाहिये। जिसकी आत्मिक शक्ति विशाल, जिसकी बुद्धि अद्भुत, जिसके मनकी विचारशक्ति दूरतक पहुंचती है, जिसका चित्त गंभीर विषयका आकलन कर सकता है, जिसकी ज्ञान और कर्मेंद्रियां स्वाधीन हैं और सुपुर्द किया हुआ कार्य एकाग्रता पूर्वक उत्तम कर सकतीं हैं, जिसका शरीर नीरोग और स्वाधीन है और जो बाह्य परिस्थितिपर प्रभुत्व रखता है, उसको ही अल्प परिश्रमसे महान कार्य करना सुसाध्य

होता है। यही व्यावहारिक योगसे प्राप्तव्य है इस प्रकारके मनुष्यको ही परम पुरुषार्थी कहते हैं। यह मनुष्य "**नया मार्ग**" बनाता है और अपने मनकी बातें सिद्ध करके बताता है। जगत्में आश्चर्य कारक बातें सिद्ध करके दिखाई देता है, इस पुरुषके एक वाक्यसे जनताकी काया पलट जाती है और जनताकी गतिको नवीन दिशा लगती है !! आत्मपरीक्षा पूर्वक **विचार योग** का अनुष्ठान करनेसे यह शक्ति प्राप्त हो सकती है।

इस प्रकार की शक्ति प्राप्त करनेके लिये बडे कष्ट सहन करने आवश्यक हैं। तप के जीवन के विना शक्ति प्राप्त होना अशक्य है। चार वर्णों और चार आश्रमों के प्रत्येक मनुष्य के जीवन में तप के आचरण से ही शक्तिका विकास होना संभव है। शूद्रोंकी कारीगरीकी उन्नाती, वैश्योंकी खेती पशु पालना, क्षत्रियोंकी युद्ध नीति, ब्राह्मणोंकी वैज्ञानिक संपत्ति, ब्रह्मचारियोंकी वीर्यरक्षा, गृहस्थियोंकी व्यावहारिक उन्नति, वानप्रस्थियोंकी सुशिक्षा पद्धति और संन्यासियोंकी वसुधैव कुटुंबक वृत्ति, इन सब में जो उन्नाति होती है वह पूर्वोक्त मनुष्योंके पुरुषार्थ प्रयत्नसेही होती है। चले हुए मार्ग से ही जो चलता रहेगा, और इधर उधर देखेगा नहीं, और सोच विचार पूर्वक नवीन विचार करेगा नहीं, वह कभी "**मार्ग दर्शक**" नहीं बन सकता; क्यों कि उसमें नेता बननेकी शक्ति नहीं है। संचालक शक्ति का विकास करनेसे ही नेता बनना संभव है। जिसने अपने विचार के बलसे अपनी "**संचालक**

शक्ति" विकसित नहीं की, वह नेता कैसा बन सकता है और उसके नेतृत्वसे लाभभी क्या हो सकता है ?

अपनी संचालक शक्ति किस प्रकार विकसित हो सकती है ? यह प्रश्न यहां हो सकता है। उत्तरमें निवेदन है कि अपने अंतःकरणकी शक्ति केंद्रित करके उससे व्यवस्थित प्रयत्न दीर्घ कालतक करते रहनेसे शक्तिका विकास होता है। **निश्चय, अभ्यास, उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और यश न आने पर पुनः यशःप्राप्ति होने तक प्रयत्न करनेका दृढ निश्चय होनेसे अपनी संचालक शक्ति विकसित होती है।** जो अभ्यास करेगा, उसीकी शक्ति बढेगी, दूसरेकी नहीं बढ सकती। "**निष्ठापूर्वक दृढ अभ्यास**" ही संचालक शक्तिके विकासका मूल मंत्र है। **व्यवस्थित अभ्याससे अशक्य बातें शक्य होतीं हैं,** अशक्तों में विलक्षण शक्ति आती है और वह अद्भुत कार्य करके आदर्शरूप होते हैं।

व्यवस्था, नियम-बद्धता, समयविभागके अनुसार कार्य करनेका अभ्यास, आत्म विश्वास, बौद्धिक चातुर्य, मनका निग्रह और इंद्रियोंकी स्वाधीनता आदि सद्गुणोंको अपने अंदर बढानेका यत्न करनेपर इन गुणोंका विकास प्रत्येक मनुष्यमें होना संभवनीय है। किसीको देर लगेगी और दूसरा शीघ्र करेगा, यह बात और है। परंतु जो लोग इस व्यवहार योगमें अथवा आध्यात्मिक योगमें पीछे रहते हैं, उसका मूल कारण उनकी अयोग्यता नहीं



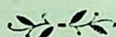
है, परंतु नियमपूर्वक दृढ अभ्यास का अभावही है । पाठक इस सिद्धांतकी बातको अच्छी प्रकार ध्यानमें धरें । इसालिये योगका सिद्धांत है कि, " **प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्तिका विकास करनेका अधिकारी है ।** "

अज्ञानमूलक संपूर्ण दुःख हैं, इसालिये शुद्ध सत्य ज्ञान का उन्नतिके साथ अत्यंत संबंध है । " **सत्य ज्ञान** " के विना किसी भी व्यक्तिकी अथवा जातीकी उन्नाते होना असंभवनीय है । संदेह पूर्ण अनिश्चित बातको ज्ञान नहीं कहते हैं. परंतु जो संदेह रहित निश्चित वास्तविक ज्ञान होता है, वही उन्नातिका हेतु है । यह व्यवहारमें भी सत्य है और परमार्थ में भी सत्य है । इस लिये जिसको जो उन्नति प्राप्त करनी है वह उस क्षेत्रका ज्ञान प्राप्त करे । कई लोग मूर्खतासे ऐसा समझते हैं कि, एक आत्मज्ञानसे सब कुछ हो सकता है, परंतु यह भ्रम है । आत्मज्ञानसे आत्मिक अमरत्व का आनंद मिल सकता है उसी प्रकार सृष्टि विज्ञानसे ऐहिक सुख संपात्ति प्राप्त हो सकती हैं । एक का कार्य दूसरेसे नहीं हो सकता, यह वैदिक सिध्दांत है । इस लिये समविकास होना चाहिये, अथवा जिसको जिस विषयमें सिद्धि प्राप्त करनी हो, वह उस विषयमें सिद्धि प्राप्त करे । उसको भी उस विषय का सत्य ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है, तात्पर्य "सत्य ज्ञान" के विना उन्नति अशक्य है । यही उन्नतिका सीधा मार्ग है ।



वैदिक कर्तव्य शास्त्र।

(लेखक – श्री० पं० धर्म देव सिद्धांतालंकार)



प्रथम परिच्छेद।

कर्तव्य शास्त्र वह शास्त्र है, जो मानवीय जीवन के उद्देश्य और लक्ष्य पर विचार करते हुए, एक व्यक्ति के अपने, अपने समाज, अपने से हीन और उच्च स्थिति के लोगों के प्रति क्या कर्तव्य है, तथा इन कर्तव्यों का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है, इस विषयका स्पष्ट रूपसे प्रतिपादन करती है। भारतीय प्राचीन संस्कृत साहित्य में कर्तव्य शास्त्र (वा Ethics)पर कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं पाया जाता; क्यों कि यह विषय धर्म का एक अत्याव - श्यक अंग होने के कारण धर्म शास्त्रों में सर्वत्र निरूपित है। बौद्धधर्म तथा ईसाई मतके बाइबल इत्यादि ग्रंथों में आचारशास्त्र

संबंधी कई अत्युत्तम उपदेश पाए जाते हैं । निष्पक्षपात दृष्टिसे मनुस्मृति, वाल्मिकीरामायण, महाभारत इत्यादि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन किया जाए, तो निश्चय हो जाएगा कि इन ग्रंथों में दी हुई आचार शास्त्र विषयक शिक्षाएं किसी अंश में भी बौद्ध तथा ईसाई मत की शिक्षाओं से कम नहीं । मानवीय पुस्तकालय में प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है, इस बातको मैक्स-मूलर आदि प्रायः सभी प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकार किया है । विकास वाद को स्वीकार करते हुए उन में से कइयों ने यह कल्पना की है कि, वेद के अंदर आचारशास्त्र विषयक उत्तम शिक्षाएं नहीं पाई जातीं । कर्म काण्ड अथवा यज्ञयाग की फजूल बातों से ही वेदका अधिक अंश भरा हुआ है, इत्यादि । इस विचार की हम आगे चलकर समालोचना करेंगे । यहां वैदिक कर्तव्य शास्त्रके आधारभूत मूलसिद्धान्तों का केवल निर्देश करते हुए, उनमें से प्रत्येक पर वेद मंत्रों के प्रमाण द्वारा संक्षिप्त विचार करेंगे । वे मूलभूत सिद्धांत निम्न लिखित हैं । —

वैदिक कर्तव्य शास्त्र के मूल सिद्धांत ।

(१) **परमेश्वर सब प्राणियोंका एक ही पिता है,** अतः हम सब को परस्पर भ्रातृभाव तथा मित्रता दृष्टि धारण करनी चाहिये । अपने स्वार्थ को सिध्द करने के लिये प्राणियों की हिंसा करना अनुचित है । द्वेषभाव को दूर करके प्रेम भाव की वृध्दि करनी चाहिये ।

(२) **परमेश्वर सर्व व्यापक और सर्वज्ञ है।** उस की अध्यक्षता में सार्वभौम अटल नियम कार्य कर रहे हैं। इनके पालन करने से ही मनुष्य मात्र का कल्याण हो सकता है। इन का उल्लंघन करना अपने को आपत्तियों के मुंह में डालना है।

(३) **मनुष्य जीवन का उद्देश्य दिव्य शक्ति, दिव्य शान्ति, दिव्य ज्योति, दिव्य आनन्द अथवा मोक्ष प्राप्त करना है।** उस उद्देश्य की पूर्तिके लिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, और उपासना, तथा निष्काम शुभ कर्मों का अनुष्ठान, (यज्ञ), मुख्य साधन हैं।

(४) **आत्मा दिव्यशक्तिसम्पन्न, अमर और शरीर, मन बुद्धि का अधिष्ठाता है।** सब प्राणियों में आत्मौपम्य दृष्टि को धारण करते हुए, व्यवहार करना चाहिये। आत्मा के अन्दर काम क्रोधादि शत्रुओं को वशमें करने की पूर्ण शक्ति विद्यमान है; उसको ईश्वरभक्ति, आत्मविश्वासादि द्वारा विकसित करते हुए, पवित्र जीवन बनाना चाहिये।

(५) **कर्म-नियम संसार में कार्य कर रहा है।** किये हुए कर्म के फलसे कोइ अपने को बचा नहीं सकता। परमेश्वर कर्म फलदाता है। प्रार्थनादिका उद्देश्य भावी पापसे अपने को मुक्त करना है।

(६) **प्रत्येक व्यक्ति को सदा अन्धकार से प्रकाश, मृत्यु से अमृत, आर पापसे पुण्यमार्ग की ओर आनेका यत्न करना चाहिये।** इसके लिये दृढ निश्चय अत्यावश्यक है।

(७) शारीरिक मानसिक और आत्मिक शक्तियों का समविकास होना चाहिये । इनमें से किसी एक शक्ति का विकास होना पर्याप्त नहीं । समविकास ही उन्नतिका मूलमन्त्र है ।

(८) व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र में लगभग एकही अटल व्यापक नियम कार्य कर रहें हैं, व्यक्ति और समाज का अटूट संबंध समझते हुए, व्यक्ति को अपनी शक्तियां समाज की सेवा में लगा देनी चाहियें ।

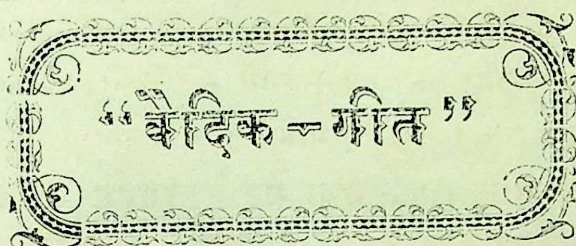
(९) बाह्य और आन्तरिक स्वाधीनता अथवा स्वराज्य को प्राप्त करने से ही सुख प्राप्त हो सकता है । स्वतंत्रता में ही आनन्द है, तथा परतंत्रता में दुःख है । अतः स्वतंत्रता का संरक्षण करना प्रत्येक व्यक्ति का तथा समाजका " मुख्य धर्म " है ।

(१०) कर्तव्य का निर्णय ईश्वरीय ज्ञान वेद तथा पवित्र अन्तः करण की साक्षिसे हो सकता है । सदाचारादि भी उस में सहायक हैं ।

(११) सत्य ही के कारण इस पृथिवी का धारण हो रहा है । सत्य यश और श्री इन तीनों को उत्कृष्ट समझते हुए सत्य रक्षा के लिये सर्वस्व तक अर्पण करने को उद्यत रहना चाहिये ।

(१२) परमेश्वर को सदा अपना रक्षक समझते हुए प्रत्येक व्यक्ति को अपने अंदर निर्भयता पूर्णरूपसे धारण करनी चाहिये ।

इन सिद्धान्तों पर अब क्रमशः विचार करें गे ।—



(ले०–विद्यावाचस्पति गणेशदत्तशर्मा आगर)



(२)

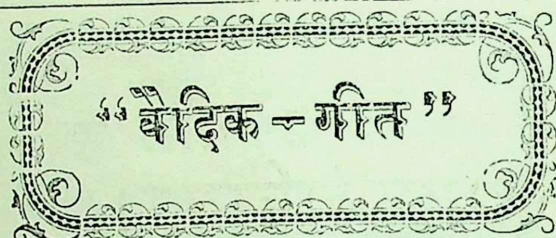
ॐ स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि।
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ यजु. अ. २ मं २६ ॥

अर्थ – हे जगदीश्वर आप (श्रेष्ठ) अत्यंत प्रशंसनीय और (रश्मिः) प्रकाशमान वा (स्वयंभूः) अपनेआप होनेवाले (असि) हैं तथा (वर्चोदाः) विद्यादेनेवाले (असि) हैं, आप इस लियेही (मे) मुझे (वर्चः) विज्ञान और प्रकाश (देहि) दिजीये. मैं (सूर्यस्य) जो आप चराचर जगत्के आत्मा हैं उनके (आवृतम्) निरंतर सज्जन जन जिसमें वर्तमान होते हैं उस उपदेशको (अन्वावर्त्ते) स्वीकार करके वर्त्तता हुं।

(स्वामीभाष्य)

दोहा —

स्वयंप्रकाशित श्रेष्ठ अरु विद्याके दातार।
हे जगदीश्वर! आप हो इस जगके आधार ॥
देहु ज्ञान विज्ञान मोहिं मैं तेरा उपदेश
करता हूँ स्वीकार नित यही विनय अखिलेश ॥



(ले०-विद्यावाचस्पति गणेशदत्तशर्मा आगर)



(१)

ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद । यजुर्वेद अ० ४ मं० ३६

अर्थ — जो (वरुणस्य) जगत्का (उत्तम्भनम्) धारण करनेवाला (असि) है जो (वरुणस्य) वायुके (स्कम्भसर्जनी) आधारों को उत्पन्न करने वा जो (वरुणस्य) सूर्यके (ऋतसदनी) जलोंका गमनागमन करनेवाली क्रिया (स्थः)हैं उनका धारण करने तथा जो (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) सत्य पदार्थों का स्थान रूप (असि) हैं वह (वरुणस्य) उत्तम (ऋतसदनम्) पदार्थों के स्थानको (आसीद) अच्छीतरह धारण करता है अतएव हम उसका आश्रय क्यों न लें । (स्वामीभाष्य)

गीतिका छन्द

जो जगत् धारण किये, उत्पन्न करता है हवा ।
सूर्य को जो दे रहा गमनागमन की सब क्रिया ॥
सत्यका जो स्थान है धारण किये हैं जो इन्हें ।
क्यों न आश्रय मान लें हम लोग भी अपना उन्हें ॥



योगचिकित्सा।

(लेखिका-योगाचारी मताश्रितपाण्डिता सत्यवती शास्त्रिणी, बन्नू)

[१] परिचय

आरोग्यता ही परम धन है, संसारमें कोई भी प्राणी रोगी रहना नहीं चाहता, चाहे वह मनुष्य हो या पशुपक्षी हो। इस लिए मनुष्यका ध्यान कई ऐसी बातों की ओर झुका, जिनसे नष्ट हुई आरोग्यता फिर से प्राप्त हो सके। इस समय वैद्यक, यूनानी, ऐलेपैथी, हाइड्रो पैथी, होमयो पैथी, बाइयो पैथी आदि अनेक उपाय नष्ट हुई आरोग्यता को फिर से प्राप्त करने के लिए प्रचलित हैं, और लोग उनसे लाभ उठा रहे हैं।

परंतु कई ऐसे लोग भी हैं, जो किसी प्रकार की औषधि खाना पसन्द नहीं करते। और कई ऐसे भी हैं जो पानी, मिट्टी, बिजली या बाष्प आदि द्वारा आरोग्यता प्राप्त करना भी ठीक नहीं समझते। और वह केवल मानसिक चिकित्सा को ही पसन्द करते हैं।

इस में सन्देह नहीं, कि उपरोक्त सर्व उपाय रोग निवृत्ति के लिए लाभ दायक साबित हुए हैं, परंतु इसमें भी सन्देह नहीं, कि इन्हीं उपायों के सदके ही बहुत लोग "सदा के रोगी" (दाइमुल् मरीज) रहते हैं, और बहुत लोगों को तो रात दिन औषधियां खानेका ही रोग लग जाता है। चिकित्सा के इन उपायों ने लोगों को आरोग्यता की ओर से निश्चिन्त कर दिया है। इस लिए ही बहुतसे विद्वान् तथा उच्च कोटि के महापुरुषों ने "**मानसिक चिकित्सा**" को बहुत अच्छा कहा है। इससे न केवल यही कि मनुष्य विना किसी व्यय के रोगों को दूर कर सकता है, प्रत्युत सबसे विशेषता तो यह है, कि रोगोंके आक्रमण से ही बचा रहता है।

मानसिक चिकित्सा के कई प्रकार इस समय प्रचलित हैं, परन्तु सबके भीतर एक ही नियम काम कर रहा है। मानसिक शक्ति ही सबका मूल है। जहां भी इसे लगा दो, वहां ही मनोवाञ्छित कार्य ले सकते हैं। इस शक्ति को व्यवहार में लाने के उपायों के नाम ही मंत्र, दम, तावीज, झाडा, आदि रखे गए, और इस समय पढे लिखे लोगों में मैसमेरिजम भी एक ऐसा ही उपाय है।

गुप्तवादियों का मत है, कि मानसिक तथा सर्व प्रकार की शक्तियों का भंडार "प्राण" है सर्व वस्तुओं तथा औषधियों में जो तासीर है, यह प्राण के कारण ही है। तारों सितारों तथा चान्द से जो प्रभाव वनस्पति आदि पर पडता है, वह भी प्राण द्वारा ही है। इसी प्राण का नाम विद्युत्, आकर्षण, जान, शक्ति, हरारत ज्योति, नूर, अमृत, एलेक्ट्रिसिटी, मेगनेटिज़म आदि रखा गया है।

भारत के योगी प्राण विद्या सम्बंधी बहुत कुछ जानते हैं और यही कारण है, कि उन्होंने मेसमेरेजम आदिसे बाढिया और गुणकारी उपाय चिकित्सा सम्बन्धी प्रगट किए हैं।

प्राण ही आरोग्यता का भँडार है, यदि इस की वास्तविकता को समझ लिया जाए, तो आरोग्यता पर अधिकार मिलना, अत्यन्त ही सुगम है। योगी लोग प्राणद्वारा अपने तथा दूसरोंके रोग निवृत्त कर देते हैं। उनके उपायों का नाम ही हमने "**योगचिकित्सा**" रखा है।

योग चिकित्सा की प्रणाली भारतवर्ष में परम्परा से चली आयी है, परन्तु समयके परिवर्तन से इसके साधक बहुत ही कम दिखाई देते हैं, और यहां तक कि, आज इन बातोंपर विश्वास प्रगट करने के लिये हमें बहुत कठिनाइयों का सामना करना पडता है!!! कइयों मनुष्य तो इस की सरलताके कारण ही इस पर ध्यान नहीं देते!! बहुत सा धन पेचोदे और खरचीले उपायों द्वारा स्वास्थ्य की खोज में व्यय कर डालते हैं, परन्तु कई दशाओं में फिर भी रोगों से पीछा नहीं छुडा सकते!

हमारे पास ऐसे कई प्रसिद्ध पुरुषों के प्रमाण हैं जो हर प्रकार की औषधियों का सेवन करके निराश हो चुके, और मृत्युके कन्धे चढ चुके थे; परन्तु किसी प्रकार उन्हें किसी योगी से इस उपायो द्वारा चिकित्सा करनेका ढंग आगया, और उन्होंने पूर्ण आरोग्यता प्राप्त की। इस समय योगाचारी संप्रदाय में इस चिकित्सा विशेषका

प्रचार है और इससे कई प्रकारके असाध्य रोगों को दूर करने के अनुभव प्राप्त किए जा चुके हैं ; परन्तु हम उनका यहां उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझते, क्यों कि हमारे विचार में इन उपायोंकी परीक्षा ही -- जो इस लेख में दिये जायेगें -- सबसे बडा प्रमाण हो सकती है । आशा है, कि भारतवासी अपने स्वास्थ्य और धन की रक्षा के लिये योगचिकित्सा को प्रचलित तथा उन्नत करने का यत्न करें गे ।

(२) प्राणशक्ति ।

मनुष्यके शरीरमें एक " **संजीवनी शक्ती** " रहती है जिसको " **प्राण** " कहते हैं । यही शक्ति मनुष्योंके स्वास्थ्य तथा जीवनका कारण है । और जिस प्रकार यह शक्ति मनुष्यके शरीरमें मौजूद है, उसी प्रकार संसारके प्रत्येक वस्तुमें वर्तमान है । चाहे प्रत्यक्ष रूपमें उसका कोई स्वरूप दिखाई नहीं देता, क्यों कि यह वायुसेभी सूक्ष्म है । जिस प्रकार चुम्बकपत्थरमें आकर्षण शक्ति गुप्त रूपमें रहती है, परन्तु उसको तोडकर देखनेसे भी कोई वस्तु उसमें खेंचने वाली दिखाई नहीं देती; तो भी जब लोहेकी कोई वस्तु उसके सामने रखी जाती है, तो वह उसको खेंच लेता है । और उससे उसकी आकर्षण शक्तिका पता लगता है । इसी प्रकार यह प्राण चाहे प्रत्येक वस्तुमें वर्तमान है, और प्रत्येक वस्तुमें से निकलता तथा प्रत्येक वस्तुमें प्रविष्ट होता रहता है । परंतु इन आंखोंसे दिखाई नहीं देता, पर योगी पुरुषोंको प्राण और उसके रंगभी प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं ।

यह प्राण हर समय मनुष्य शरीरकी नसों नाडियोंमेंसे निकलता रहता है, और बाह्य आकाशसे शरीरमें प्रविष्ट होता रहता है, अर्थात् प्राणकी धाराएं प्रत्येक वस्तुमेंसे निकलकर या तो फिरसे उसमें प्रविष्ट होती हैं, या एक वस्तुसे निकल दूसरी वस्तुमें प्रविष्ट होती रहती हैं।

ब्रह्माण्ड की भांति पिण्ड (शरीर) में भी अनेक ही केंद्र या चक्र मौजूद हैं, और प्रत्येक चक्र की तासीर उसकी सामग्री और उसकी शक्तियां भिन्न भिन्न हैं। (कई लोगों का विचार है कि, यह चक्र खियाली और फरजी हैं, परंतु याद रहे कि ऐसा नहीं है, प्रत्युत यह वास्तव में ही हैं।) योग के इस विचार के सामने कि चक्र शरीर में वस्तुतः विशेष स्थान में हैं, और वह ब्रह्माण्ड के विशेष मण्डलों के प्रतिनिधि और एक विशेष शक्ति रखते हैं,— वर्तमान पदार्थ विद्याने भी सिर झुका दिया है। वह चक्रोंको " नरविस् प्लेक्सिस " कहते हैं। प्रत्येक चक्रसे भिन्न भिन्न प्रकार के रोगों का निवृत्त करना और शरीर के विशेष अंगों, वरन दिल और दिमाग को शक्ति पहुंचा सकना, मानकर उनकी शक्तिका भी प्रमाण दिया है। प्रत्येक चक्र वा मन पर विशेष प्रकारका प्रभाव भी माना है, एक एक चक्र पर अंग्रेजी में कई भारी भारी पुस्तकें लिखी गईं और लिखी जा रही हैं। भेद केवल इतना है कि, वह इन सब बातों को मायिक दृष्टिसे देख और कर रहे हैं। समय आ रहा है कि, जब उनकी आखोंसे मायिक अंधःकार का पर्दा उडकर उन्हें आत्मतत्व का चमत्कार दृष्टिगोचर होगा! और तब वह योग

के पवित्र झंडे को सहर्ष चूमेंगे । योगियों नें प्रत्येक चक्रका एक भिन्न भिन्न अधिष्ठाता माना है । वह क्या है, जो वास्तविक शक्ति उनमें रह कर उनको नियमबद्ध रखती है, वही उसका अधिष्ठाता, धनी, स्वामी, या मुअक्कल है । यह अपने मण्डल में व्यापक होता है । और वह नियम बद्धता का केन्द्र है । इन को भी कई लोग काल्पित और भ्रममूलक समझते हैं, परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है । प्रत्युत वह असलीयत रखते हैं, उनमें विशेष प्रकार की शक्तियें हैं और विशेष प्रकारकी योग्यताएं हैं । यदि साधक उनका ध्यान करते हुए प्राणकी सहायता से उन तक जा पहुंचे, और उन्हें अपनाले, तो वह सुगमतासे साधन और अभ्यास की सहायता से उनकी सिद्धि और शक्तिका अधिकारी होगा । और वह स्वयं शक्ति सम्पन्न और सिद्ध बन जाएगा । प्राण की धारा जिस चक्र में से होकर गुजरती है उसी चक्र की तासीर और गुण को अपने साथ ले जाती है, इस लिए चाहे वह एक ही वस्तु है, परन्तु भिन्न भिन्न स्थानों और उनकी शक्तियों के कारण वह धारा भिन्न भिन्न प्रकार के स्वभाव रखती है । जिस प्रकार वायुकी धार सुगन्धित वस्तुओं को स्पर्श करके सुगंधित, और दुर्गन्धित वस्तुओं को स्पर्श करके दुर्गन्धित हो जाती है। इसी प्रकार भले और आरोग्य पुरुषोंसे निकली हुई प्राणधारा भलाई और आरोग्यता फैलाती है और बुरे तथा रोगी पुरुषों से निकल कर बुराई और रोग उत्पन्न करती है ।

प्राण में दो प्रकार की शक्तियें काम करती हैं, एक स्थापक और दूसरी निषेधक। इन दोनों शक्तियों के सहारे ही संसार की उत्पत्ति तथा लय, प्रेम तथा विरोध, दुख तथा सुख, आदि हैं। इस प्राण का भँडार तो प्रत्येक स्थानमें विद्यमान है, परंतु उससे लाभ कोई भी नहीं उठा सकता, क्यों कि जब तक कोई साधन या शक्ति ऐसी न हो, जिसके द्वारा कि उस भँडार को समझ सकें, या उसको व्यवहार में ला सकें; तब तक किस प्रकार लाभ हो सकता है?

ऐसे साधन को जिस द्वारा कि मनुष्य प्राणशक्ति पर अधिकार प्राप्त कर सके, योगी लोग " **प्राणायाम** " कहते हैं, प्राण की शक्तियों तथा प्राण के महत्व को भली भान्ति समझ लेना आवश्यक है। फिर ही प्राणायाम का साधन सफल हो सकता है।

योगी लोग नियमित साधनों द्वारा प्राण को मस्तिष्क तथा और तन्तु केन्द्रोंमें एकत्र करते हैं, और फिर आवश्यकतानुसार व्यवहार में लाते हैं। हम उसी प्रकार प्राण को एकत्र कर सकते हैं, जिस प्रकार स्टोरेज बेटरी में विद्युत् एकत्रित की जाती है। इस एकत्रित शक्ति को काम में लाने के लिए मन रूप हाथी को हरकत देनेकी आवश्यकता है। जब इच्छा शक्तिरूपी बलसे ध्यानरूपी हरकत दी जाती है, तो प्राणशक्ति विचार संयमरूपी तारों द्वारा आवागमन करके इच्छित कार्य संपादन करती और इस प्रकार योगी इस महती सत्ता से बड़े से बड़े काम ले सकते हैं।

अभ्यासी योगियों में जो शक्तियं देखी जाती हैं, वह इसी भान्ति प्राप्त हुई होती हैं, और इसी एकत्रित भंडार में से काम में लाई गई होती हैं ।

योगी लोग जानते हैं, कि किस प्रकार प्राणको अधिक मात्रामें प्राप्त किया जा सकता है । और अपने आवश्यकीय कार्यों के लिए उसी उपाय से वह प्राण प्राप्त कर लेते हैं । इसी प्रकार वह केवल अपने शरीर के ही सर्व भागों को शक्ति सम्पन्न नहीं बना लेते प्रत्युत दूसरों के रोगों को दूर करके उनको जीवन तथा आरोग्यता दे सकते हैं ।

चिकित्सा की इस विधिके लिए चाहे पूर्ण योगी होना जरूरी नहीं, क्योंकि थोडेसे साधनों से भी इतना काम चल जाता है—परन्तु तो भी दृढ अभ्यास की अत्यन्त आवश्यकता है । आवश्यकतानुसार प्राणपर अधिकार और दृढ इच्छा इसका प्रथम पाठ है । यहां हम इस विषय पर अधिक नहीं लिख सकते, और मान लेते हैं, कि आप इस विषय में कुछ ज्ञान रखते हैं । इस लिए हम केवल रोगी रोग, वैद्य, और चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यक बातों को आरंभ करते हैं ।



योग और दृष्टि।

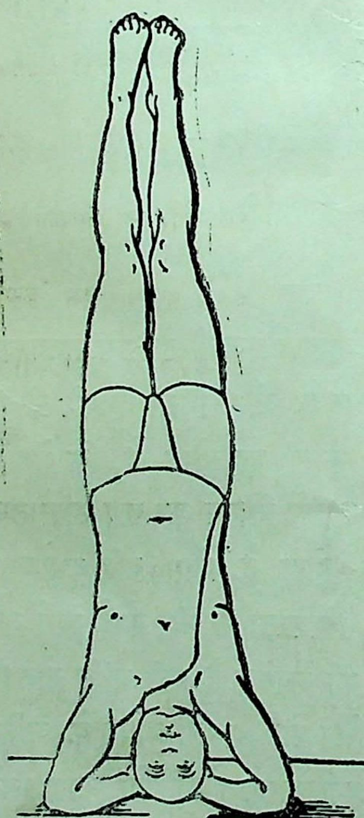


लेखक—प्राणपुरी

कई व्यक्तियों की चक्षु–दृष्टि–मन्द हो जाती है, उस समय कई रोगी तो कोई अंजन आंखमें लगाते हैं, और किसी वैद्यकी दी हुई औषधि खाते हैं। वैद्यका प्रथम काम यह होता है, कि रोग के निदान का पता लगावे। यदि वैद्यने निदान का पता ठीक लगा लिया, तब तो चिकित्सा से लाभ होता है, और यदि दुर्भाग्यवश निदान में ही भ्रम हो जाय, तो चिकित्सा से भी कोई लाभ नहीं होता है। जिस भांति चिकित्सा की अवस्था है इसी भांति योग की आसनों की अवस्था है। यदि सिर पीडादि रोग रुधिर के अधिक जानेसे हो, तब तो शीर्षकासन हानिकारक होगा और यदि इसके विपरीत हो, तो लाभदायक होगा। जैसे जो ज्वर क्षुधा से हो, उसमें

भोजन करना ही औषधवत् है, और यदि अजीर्णसे हो, उस समय भोजन विषवत् है ।

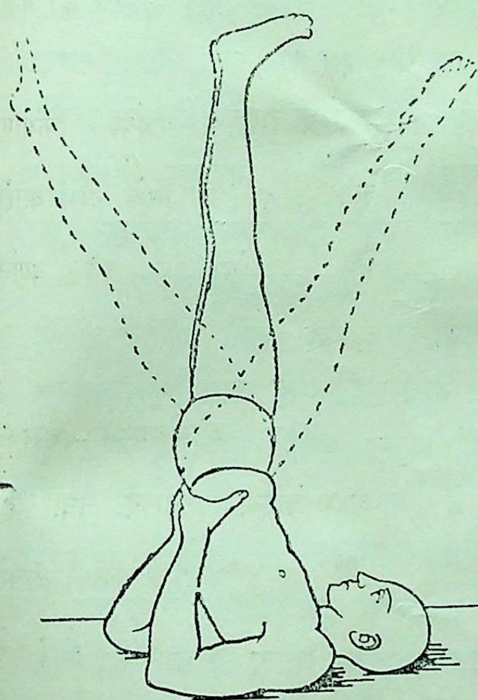
इसी लिये ऐसे ही योग के आसन अथवा अन्य क्रिया करने के इच्छुक का प्रथम कर्तव्य है, उस रोग के कारण का पता लगाना । निश्चय होने पर पीछे काम करना ।



जो आसन अथवा क्रियाएं चक्षु – दृष्टि के लिये लाभ कारी हैं, अब मैं उन का वर्णन करता हूं —

(१) शीर्षकासन इसका वर्णन कईवार आगे हो चुका है, इस लिये इसपर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है । जो व्यक्ति मास्तिष्क संबंधी अधिक काम करते हैं, यदि उन्हें दृष्टि मंद का रोग हो, उनके लिये यह आसन विशेष लाभ दायक है ।

(२) विपरीत करणी सीधे लेट कर टांगों को ऊपर उठा कर कंधोंके सहारे खडा होना, और कमरमें दोनो हाथों को लगाकर स्थूणावत् सहारा देना। इसे विपरीत करणी कहते हैं।



उपरोक्त दोनों आसनों के अतिरिक्त कुछ और भी साथ साथ करना चाहिये। कई स्थानोंपर तो आसन न करने पर भी इस क्रिया के करने से ही पर्याप्त लाभ हो गया और यह क्रिया करनीअत्यन्त सुगम है। इसका नाम है—

"जलकी नेति"

इसकी विधि निम्न लिखित है। एक टूटीदार बर्तन में जल डाल लें। बर्तन टूटीदार से प्रयोजन उसी भांति के बर्तन से है, जैसे साधुओं के पास कमंडलु होता है, वैसा हो, अथवा जिसे पंजाब में गंगा-

सागर कहते हैं, जो गडवे जैसा होता है, और उसमें एक ओर टूटी लगी होती है, अथवा जैसा मुसलमानों का लोटा होता है, वैसा हो, उस पात्र की टूटी को नासिका के एक छिद्रमें लगाकर सिर को थोडासा दूसरी ओर झुकाकर उस पात्र से जल डाले और उस समय श्वास मुंह से ले और यत्न यह करें कि, जल जो नासिका के छिद्र में पात्रसे जाता है, वह नासिका के दूसरे छिद्र से निकले। इसी भांति कोई आध सेर जल एक छिद्र में डालकर निकाल दे, और फिर इसी भांती उस पात्रकी टूटी को दूसरे नासिका छिद्रमें लगाकर करें। ताकि नाकके दोनों छिद्र साफ हो जायं।

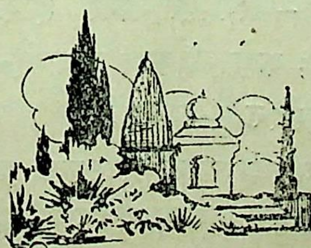
इस क्रियामें जो जल लिया जाय, वह अति शीतल न हो। यदि अति शीतल होगा, तो माथेमें पीडा हो जायगी। जिन स्थानों में कूप का जल काम में लाते हैं, उन स्थानों पर शीत और उष्ण ऋतु में कूप का जल काम दे देता है। जहां पर नलके का जल हो, वहां उष्ण ऋतु में तो उससे ही नेति कर सकते हैं, परंतु शीत ऋतुमें वह ठीक नहीं है। उस समय उसे थोडासा गरम कर लेना चाहिये। यदि कोई इस जलमें थोडासा नमक भी डाल ले, तो लाभ अधिक होता है। इस क्रिया से अनेक व्यक्तियों को लाभ हुआ है। उदाहरणार्थ एक का वर्णन करता हूं।

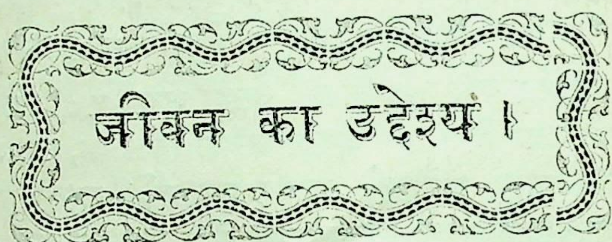
गत वर्ष गयाजी पर मैं एक दिन बाहर जा रहा था, पंडित विष्णुदास जी वैद्य मेरे साथ थे, हम परस्पर इसी विषय पर बातें करते जाते थे। आगे नदी तट पर एक व्यक्ति ने स्नानार्थ वस्त्र उतारे

और जल के पास जाकर प्रथम उसने नेति करनी आरंभ की। पंडितजी ने कहा, इनसे पूछें, यह क्यों ऐसा करते हैं? हम उसके समीप गए, और यही प्रश्न किया। उसकी आयु ५० वर्षसे ऊपर थी, उसने उत्तर दिया, मुझे जुकाम अधिक रहता था, एक महात्माने यह उपाय बताया। मैं इसे लगभग एक वर्षसे करता हूं। मैंने कहा आपको क्या लाभ होगया? उसने उत्तर दिया, जुकाम तो हट गया, उसके अतिरिक्त एक लाभ और हुआ जिसके लिये मैंने इसे छोडा नहीं, किये जाता हूं। पंडित जीने कहा वह क्या है? उसने कहा, मैं पहले दीपक के आलोक में अक्षर नहीं देख सकता था, किंतु अब भली भांति पढ सकता हूं, और मेरी दृष्टी पहले से बहुत अच्छी है।

इस लिये यदि जल की नेति प्रति दिवस की जाय, तो नेत्रों के लिये अत्यंत लाभ दायक है अनेक स्थानों पर इसका परीक्षण किया है।

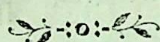
यदि कोई इससे भी अधिक लाभ का आकांक्षी हो, तो उसे धागे की नेति करनी चाहिये, जिस का वर्णन वैदिक धर्म में पूर्व हो चुका है।





जीवन का उद्देश्य ।

(लेखक :—श्री० पं० मुन्शीराम शर्मा विशारद, दयानंद कालेज, कानपूर)



पथिक! संसारयात्रा के बटोही! कहो तुम्हें कहां जाना है जीवन मार्ग में पदार्पण करने वाले! तुम्हें किस स्थान पर पहुंचना है कहो, तुम्हारे मार्ग का कहां अन्त होता है, तुम्हारा क्या लक्ष्य है, कौनसा तुम्हारा ध्येय है, जिस की प्राप्ति के लिए तुम इतना परिश्रम कर रहे हो ; तुम्हारे जीवनका उद्देश्य, तुम्हारा सर्वस्व, तुम्हारा परम प्राण — बताओ तो क्या है, वहांतक पहुंचने के लिए तुमने जिस मार्ग का अवलंब किया है, वह कंटकाकीर्ण तो नहीं ? विपदापन्न, विघ्न --परिबाधित मार्गसे हटकर सरल मार्ग का अन्वेषण किया वा नहीं; कहो तो कहां जाना है— वहांतक पहुंचने के लिए संसरण पथ सुरक्षित है वा नहीं ?

तुम्हारा उद्देश्य-- जीवन का लक्ष्य, उसकी प्राप्ति के लिए सत्य मार्ग में [illegible] तुम्हारे लिय परमावश्यक है! हाँ, तुम तो सुहावनी उषा के [illegible] में, परम [illegible] ब्राह्मयाम में, [illegible] दिन, अपने

अभीष्ट --- अपने चिर कांक्षित ध्येय --- की प्राप्ति के लिए उस कल्याणमयी महती शक्तिका आह्वान करते हो --- उस दिव्य गुणमयी सरस्वती देवी को पुकारते हो, जो चर और अचर, तुम और तुम्हारा मार्ग, दोनों की संचालिका है ! स्वस्थता, निर्भयता, और शांति की परिचालिका है!

देखो न, श्रुति भगवती भी तुम्हारे ही विचार, विभावके अनुरूप कैसा मधुर एवं शांतिप्रद उपदेश कर रही है। यजुर्वेद अ० ३६ मंत्र १२ निकालो, पढो : —

"ॐ शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवंतु
पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः।"

"अयि यात्री, तुम अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए, पूर्णानंद तृप्ति के लिये उस दिव्यगुणमयी, चराचर पोषिका शंकरी का आराधन करो। वही तुम्हारे ऊपर सुख स्वास्थ्य और निर्भीकता की वर्षा करनेवाली है।"

कहो, क्या समझे ? है न तुम्हारे अभीष्ट की प्राप्ति ? तुम चाहते क्या हो ? — वही जो तुम्हें अभीष्ट है, जीससे तुम्हारी तृप्ति है, जिसमें तुम और तुम्हारा मार्ग दोनों कल्याण मय है। किन्तु यह अभीष्ट है क्या ? वह पूर्ण तृप्ति कौनसी है ? वह स्वस्थता, और अभयशीलता किस स्थानपर है ? कौनसा है वह शान्ति का स्रोत, अभ्युदय का आगार कल्याण का कलित कुंद और विधान का विधाता ? कौन है तुम्हारा अभीप्सित, निर्णीत, नियाते — नायक ? हां, हां, वह खिलाडी जिस-

के साथ तुम खेल खेलने जारहे हो, ? वह मनोतीत देव, जो तुम्हारे जीवन को तुमरो पृथक करे, यात्रासे मुक्ति दे, और तुम्हारे इष्ट की पूर्ति करे !

अच्छा, यात्री ! तुम यात्रा कर रहे हो – जीवन मार्ग में चल रहे हो । अच्छा चलो, आगे बढो । देखो । अभीष्ट का स्मरण कराके उषा उद्देश्यका उदय कर रही है। शान्तिदायक समीर के मन्द मन्द झोंको से इन्द्रिय गोलकों में नवजीवन डालती है । सप्तर्षि मण्डल रूपी सप्तव्याहृतियों द्वारा तुम्हें पवित्रता के सर्वोच्च सोपान पर ले जारही है! कहो क्या देखते हो ? संसरणपथ? संसार निर्माण ? चहुं ओर जाज्वल्यमान ज्योति ? श्रद्धेय सम्राट् का साम्राज्य ? स्वस्थता, निर्भयता की मूर्ति ? कल्याण की प्राप्ति, तुम्हारे जीवन का उद्देश्य? क्या नहीं विचारा ? अच्छा परीक्षण करो । देखो तो -- आगे बढो -- वह निकटतम, समीपसे समीप, कैसा आश्चर्य जनक, दिव्य दृश्य आंखों के आगे नवल नृत्य कर रहा है !! सुनो, श्रुति खोलो, संगीत श्रवण करो !! वह गाता है : —

"ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥"
य० ३५।१४

"हमें ज़ाना वहां है, है जहां पर जोति उजियाली ।
प्रभा के पुंज सविता से जहां फैली ललित लाली ॥
हमारा देव, देवाधार, देवाराध्य सुखशाली ।

जहां पर आत्म आभासे मिटाता है निशा काली।।
प्रकृति से पार होकर, श्रेष्ठतर निज तेजको देखो।
जहां है जोति उत्तम, तुम उसी परमेश को पेखो।।"

अहा! कैसा मधुर गान है!! कैसा शांति दायक, चिन्ता विदारक, औदासिन्य अपहारक, शीतल, सुखद, हृदयाह्लादकारी, मनोमालिन्य हारी, आत्मानंददायी, रमणीय राग है!!! पथिक! चिंता न करो। स्वच्छ मार्ग है -- सुरक्षित संसरण-- पथ है। बढे चलो, अविवेकका नाश करो, तेजको पास करो, दिव्य-धाम-प्रकाश-पुंज, सर्व श्रेष्ट धाम को प्राप्त हो जाओ। यही तुह्मारा ध्येय, अभीष्ट का. प्राप्ति स्थल और जीवन का उद्देश्य है!!



सूर्यभेदन व्यायामसे स्त्रियोंका लाभ ।

सूर्यभेदन व्यायाम पर लेख प्रसिद्ध होनेके पश्चात् कई स्त्रियोंके पत्र आगये हैं। उनकी शंका यह है, कि इन व्यायामोंसे स्त्रियोंको लाभ पहूंच सकता है वा नहीं? कुमारिकाओंके लिये तथा माता ओंके लिये भी यह व्यायाम हितकारक है वा नहीं ? सूर्यभेदन व्यायामके प्रथम लेखमें लिखा ही गया है, कि यह व्यायाम स्त्री और पुरुषके लिये लाभदायक है। तथापि पुरुषको यह व्यायाम लाभ कारी होता है, इस विषयमें किसीको कोई शंकाही नहीं है। जो शंका है, वह स्त्रीयोंके विषयमें है। इसलिये इस विषयमें थोडासा अधिक स्पष्टीकरण करता हूं।

कुमारिका, कन्या, युवती और वृद्ध अर्थात् सब आयुकी स्त्रियोंके लिये यह सूर्यभेदन व्यायाम अत्यंत लाभदायक है। परंतु इसमें निम्न बातोंका विचार करना आवश्यक है।

(१) मासिक ऋतुके चार पांच दिन यह व्यायाम अथवा कोई अन्य व्यायाम विशेष रूपसे नहीं करना चाहिये। यह समय स्त्रियोंके लिये विश्रांतिका है। इस समय अतिशीत, अतिउष्ण आदि अवस्थाओंसे बचना और कोई श्रमका कार्य न करना उत्तम होता है।

(२) गर्भवती होनेकी अवस्थामें गर्भके चार मास के पश्चात् यह व्यायाम नहीं करना चाहिये । विशेषतः सर्पासन करना उचित नहीं है । सर्पासनके विना सौम्य रीतिसे पांच या छे मासतक भी यह व्यायाम किया जा सकता है । परंतु छठे मास के बाद सूर्यभेदन करना नहीं चाहिये । इस समयसे प्रसूति होनेके पश्चात् तीन अथवा चार मास तक यह व्यायाम करना नहीं चाहिये । इतने विश्रामके पश्चात् फिर शनैः शनैः किया जा सकता है ।

(३) उक्त विश्रांतिके पश्चात् पुनः प्रारंभ करना हो, तो प्रथम दिन चार पांच वार, दूसरे दिन आठ वार, तीसरे दिन बारा वार इस प्रकार प्रति दिन दो अथवा चार की संख्या बढा कर अपनी व्यायामकी संख्यापर शनैः शनैः आना चाहिये ।

(४) किसी प्रकार शीघ्रतासे कोइ लाभ नहीं होता ।

(५) यह सूर्य भेदन व्यायाम स्त्रियोंको न्यून वेगसे करना चाहिए । जों स्त्रियां शक्तिशालिनी हैं, उनको पुरुषोंके बराबर वेगसे करनेमें लाभ ही है । परंतु जो स्त्रियां अशक्त हैं, उनको शांतिके साथ मंद वेगसे करना उचित है । तथा दस बारह वार व्यायाय करके थोडा विश्राम लेकर पुनः करना उचित है । इस प्रकार अपनी संख्या का व्यायाम करना चाहिये ।

यह सूर्य भेदन व्यायाम यहां कई स्त्रियां करतीं हैं । थोडे दिन पूर्व इस्लामपुरमें सूर्य भेदन व्यायाम की " स्पर्धा " हुई थी । इस स्पर्धामें कन्या भी संमिलित थी । जहां सूर्य भेदन व्यायाम की स्पर्धामें कुमारों के साथ कन्याएं भी संमिलित होतीं हैं , वहां इस

व्यायामका प्रचार स्त्रियोंमें भी है इसकी सिद्धता करनेकी आवश्यकता ही नहीं है ।

इसके अतिरिक्त कई सरदार और जहागिरदारोंकी धर्मपत्नियां वीस पचीस वर्षोंसे इस सूर्य भेदन व्यायामको कर रहीं है । पूर्वोक्त नियमोंका पालन करके यह व्यायाम किया जाता है, इसलिये संतति होने में भी कोई कष्ट नहीं होते हैं । संतति भी हृष्टपुष्ट है और नीरोग है । सूर्य भेदन व्यायाम करने वाली माताएं भी नीरोग और स्वास्थ्य संपन्न हैं । ये स्त्रियां प्रतिदिन दो सौ तक सूर्य भेदन (संख्या १) का व्यायाम करती हैं ।

बालिकाएं, कुमारिकाएं तथा प्रौढ स्त्रियां भी अनेक हैं कि जो इसको नियम पूर्वक कर रहीं हैं । कई डाक्टरों का अनुभव यह है कि जो स्त्रियां इस व्यायाम को कर रहीं हैं, उनकी तनदुरुस्ती अन्यों की अपेक्षा बहुत ही अच्छी है और उनको प्रसूतिके कष्ट अन्यों की अपेक्षा बहुत ही कम होते हैं । इस अनुभव के अनंतर ये डाक्टर लोग इसी व्यायामको करनेका उपदेश अन्य स्त्रियोंको देने लगे हैं ।

मुंबई के प्रसिद्ध डाक्टरोंकी संमति यह है कि पूर्वोक्त नियमोंके अनुसार यह व्यायाम करनेपर स्त्रियोंको बड़ा लाभ पंहुच सकता है।

इस लिये सूर्य भेदन व्यायाम संख्या १ स्त्रियों के लिये बडा लाभदायक है । इसविषयमें कोई शंका नहीं है ।



वैदिक तत्त्वज्ञान के ग्रंथ।

(१) ईश उपनिषद्।

व्याख्या और स्पष्टीकरणके समेत। मू. ॥|=)

(२) केन उपनिषद्।

केन उपनिषद्, अथर्ववेदीय केन सूक्त, देवीभागवतकी देवतागर्व हरणकी कथा। इनके स्पष्टीकरण और व्याख्याके समेत। विस्तृत भूमिकामें यक्ष, उमा हैमवती आदिके भाव अत्यंत स्पष्ट रीतिसे बताये हैं। मूल्य १|)

(३) वैदिक प्राणविद्या।

इस पुस्तकमें चार वेद और उपनिषदोंमें जो प्राणविषयक वर्णन आया है वह स्पष्टीकरणके साथ दिया है। मू. १)

(४) ब्रह्मचर्य। सचित्र।

ब्रह्मचर्य रक्षणके अनुभवसिद्ध उपाय। मू. १|)

(५) नरमेध।

मानवी उन्नतिका वैदिक तत्व। मू. १)

मंत्री स्वाध्यायमंडल. औंध (जि. सातारा)

आनंद समाचार।

अथर्ववेद। पूरा छप गया, शीघ्र मंगाइये।

अथर्ववेद का अर्थ अब तक यहां की किसी भाषा में नहीं था और संस्कृत में भी सायण भाष्य पूरा नहीं है। अब परमात्मा की कृपासे इस वेदका हिन्दी संस्कृत में प्रामाणिक भाष्य पं० क्षेमकरण-दास त्रिवेदी का किया हुआ बीसों कांड, विषयसूची, मन्त्रसूची, पदसूची, आदि सहित २३ भागों में पूरा छप गया है। मूल्य ४७॥) (डाक व्यय लगभग ४) रेलवे से मंगाने वाले महाशय रेलवे स्टेशन लिखें, बोझ लगभग ६०० तोला वा ७॥ सेर है। अलग भाग यथासम्भव मिल सकेंगे। जिन पुराने ग्राहकों के पास पूरा भाष्य नहीं है, वे शेष भाष्य और नवीन ग्राहक पूरा भाष्य शीघ्र मंगालें। पुस्तक थोडे रह गये हैं, ऐसे बडे ग्रन्थ का फिर छपना कठिन है।

हवन मंत्रा :— धर्मशिक्षा का उपकारी पुस्तक चारों वेदों से संगृहित मन्त्र ईश्वर स्तुति, स्वस्ति वाचन, शान्ति करण, हवन मन्त्र, वामदेव्य गान, सरल हिन्दी में शब्दार्थ सहित संशोधित, गुरुकुल आदिकों में प्रचलित। मूल्य ।-)

रुद्राध्याय : । प्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६ [ब्रह्म निरूपक अर्थ] संस्कृत हिन्दी अंगरेजी में मूल्य ।=)

रुद्राध्याय :—मूल मात्र मूल्य)॥ वा २) सैंकडा।

वेद विद्यायें — कांगडी गुरुकुल में हिन्दी व्याख्यान। वेदों में विमान, नौका, अस्त्र शस्त्र निर्माण, व्यापार, गृहस्थ, अतिथि, सभा, ब्रह्मचर्यादि का वर्णन। मू० ~)॥

पं. क्षेमकरण दास त्रिवेदी, ५२ लूकर गंज, अलाहाबाद

वैदिक विज्ञान ग्रंथ माला।

विकासवादका युक्तियुक्त खंडन जो कि युरोप में बहुत प्रचलित है और जिसका प्रचार नास्तिकताके रूपमें भारत में भी प्रचलित होता जाता है इस अवैदिक लहर को रोकने के लिए आर्यफिलासफर राज्यरत्न **श्री. आत्मारामजी** अमृतसरी व्याख्यान वाचस्पतिने -

सृष्टि विज्ञान—रचकर ईश्वर वादका सुदृढ मंडन करते हुए वैदिक धर्म को रक्षामें बडाकाम किया है। प्रत्येक ईश्वरवादी आर्य के घरमें इस ग्रन्थका रहना परमावश्यक है। सचित्र स्वच्छ छपी पुस्तक का मुल्य २) है। डा. ।=)

द्वितीय सचित्र अनुपम अद्वितीय पुस्तक **शरीर विज्ञान** जिस में दर्शाया गया है कि शल्यविद्याका आदि मूल वेद में हैं और भारत ऋषि ही इसके आदि प्रचारक हुए है। पुस्तक प्रत्येक मनुष्यको पढनी चाहिये। ऋषियों के पंचभूत तथा वातपित्त कफ के सिद्धान्तकी सत्यता दिखाकर युरोप के कई सायंस के मन्तव्योंको युक्तिपूर्वक असत्य ठहराया है। सुप्रसिद्ध निर्णयसागर यंत्रालय बंबईमें छपी तथा सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ।≡) है।

तृतीय पुस्तक **आत्मस्थान विज्ञान** में बताया है की शरीर में आत्माका स्थान कहां है? मूल्य ≠)

ब्रह्मयज्ञ वेदशास्त्रों के मानने वाले आर्यों (हिन्दुओं)को यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिए। ब्रह्मयज्ञ की व्याख्या बडी उत्तमतासे की गईहै यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। उत्तम छपी पुस्तक है मूल्य।।।)

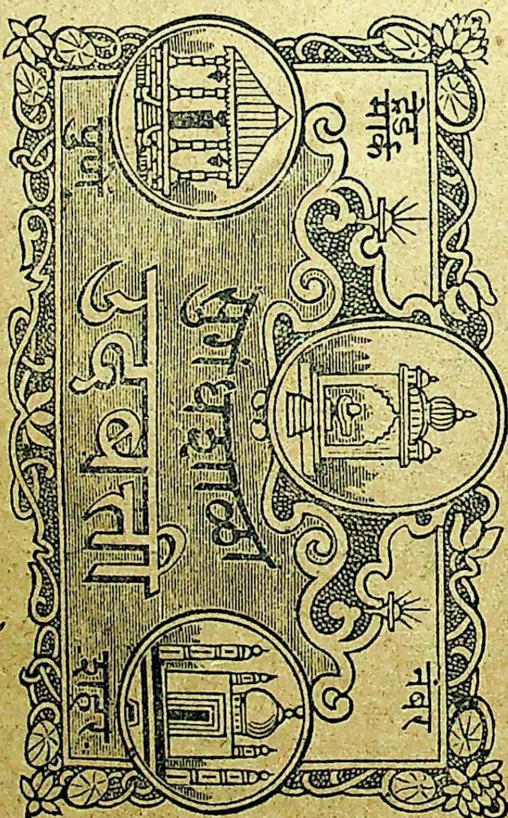
तुलनात्मक धर्म विचार १) अवतार रहस्य ।।।) श्रीहर्ष ।।) कोषकी कथा ।।)समुद्रगुप्त ।।=) नीतिविवेचन ।≡) स्थायीग्राहक ।।) लेकर बनाए जाते हैं।

महेन्द्रप्रताप कँ. कारेलीबाग, बडोदा.

सब नमूने मिलकर ६० तोले।

वी. पी. से ५) रु.

ईश्वर उपासना करनेके समय।
वायु शुद्धि से चित्त प्रसन्न करनेके लिये—



हमारी इस मुद्राकी अगरबत्ती लगाइये।
मिलनेका स्थान—सुगंध-शाला, डाकघर किन्हई (जि. सातारा)

सब नमूने मिलकर ६० तोले।
वी. पी. से ५) रु.

आप को ज्योति क्यों पढ़नी चाहिये ?

१ सारे हिन्दी संसार में ज्योति ही एक मात्र मासिकपत्रिका है जिस के पन्ने भारत के वर्तमान काल से सम्बन्ध रखने वाले राज नीतिक और धर्म सम्बन्धी लेखों के लिये सदा खुले रहते हैं: हमारी भाष में राजा नैतिक पत्रिकायें हैं, धार्मिक पत्रिकायें हैं और ऐसी भी पत्रिकायें हैं जो कि इन दोनों विषयों से कोसों दूर रह कर समाज; साहित्य, विज्ञान इत्यादि अन्य विषयों पर ही अपना ध्यान देती हैं। परन्तु यह **ज्योति** की ही विशेषता हैं कि यह अपने पाठकों के लिये प्रत्येक विषय पर सरस, भावपूर्ण और खोज द्वारा लिखे हुये लेख उपस्थित करती है।

२ **ज्योति** की एक और विशेषता है। यह केवल पुरुषों को ही आवश्यक्ताओं को पूरा नहीं करती परन्तु स्त्रियों की आवश्यक्ताओं की ओर भी पूरा पूरा ध्यान देती है। वनिता विनोद शीर्षक से देवियों और कन्याओं के लिये अलग ही एक लेखमाला रहती है जिस में उनके हित के अनेक विषयों पर सरल लेख रहते हैं। इस के कला कौशल सम्बन्धी लेख जिस में कि क्रोशिया, सलाई इत्यादि द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तु जैसा कि लेस फीते, मौजे, टोपियां, कुर्ते, वनियान, स्वैटर इत्यादि बनाने की सुगम रीति रहती है,। वार्षिक मूल्य ४॥ है

अत: प्रत्येक हिन्दी प्रेमी भाई और बहिन को ऐसी सस्ती और सर्वांग—सुन्दर पत्रिका का अवश्य ग्राहक बनना चाहिये।

मैनेजर ज्योति — ग्वाल मण्डी, लाहौर।

" दिया सलाईका धंदा । "

हम दिया सलाईका धंदा सिखाते हैं । अनेक देसी लकडीयोंसे दियासलाईयां बनाना, बक्स तैयार करना, ऊपर का मसाला लगाना आदि कार्य दो मास में पूर्णता से सिखाये जाते हैं ।

सिखलाने की फीज केवल ५०) पचास रु. है ।

हमारी रीतिसे दिया सलाई का कारखाना ५००) रु. में शुरू-किया जा सकता है और लाभ भी होता है ।

यहां रहने तथा भोजन आदिका व्यय प्रतिमास १५)रु. होता है ।

अनेक विद्यार्थी स्थान स्थानसे आकर सीख रहे हैं । जो इस धंदेको अपने नगर में शुरू करना चाहते हैं यहां शीघ्र आजांय और सीख कर दो मासमें अपना धंदा शुरू करें ।

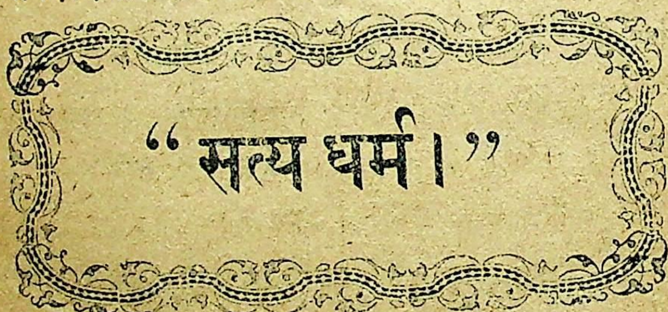
मोहिनीराज मुले एम्. ए.

स्टेट लेबोरेटरी, औंध (जि. सातारा)

[हम इस कारखाने की दिया सलाईयां बरत रहे हैं । और यहा यह धंदा सिखाया जाता है । – **संपादक-वैदिक धर्म**]

प्रभुभक्तोंको योग वा ज्ञान का संदेश।

देने और मजहबी कशमकशसे निकालकर आत्मज्ञान के विशाल और आनंदप्रद मार्ग में लानेवाला संसार भर में **अद्वितीय मासिक पत्र**—



"सत्य धर्म।"

(उर्दू वा हिंदी)

प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती पं॰ सत्यवतीजी शास्त्रिणी के संपादकत्व में शीघ्रही लाहौर से प्रकाशित होनेवाला है।

मंतव्य— (१) सर्व मतों में अमन, शांति, प्रेम वा एकता फैलाना। (२) योग के गुप्त भेदों और ज्ञान के सूक्ष्म अंगों की सर्व साधारण व्याख्या करना। (३) योग संबंधी गलत फहमियों को दूर करना।

वार्षिक मूल्य ३)

पत्र व्यवहार—**प्रबंधकर्ता श्री गोविंदमठ**

डाक घर **ढिलवां**, कपूर्थला, से करें।

अंक १० क्रमांक ४६

अंक ११ क्रमांक ४७

अंक १२ क्रमांक ४८



स्वाध्याय मंडल के नवीन पुस्तक।

स्वाध्याय के ग्रंथ।

—:*:—

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। **नरमेध**। " मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन। " मूल्य १।)

(२) य. अ. ३२ की व्याख्या। **सर्वमेध**। " एक ईश्वरकी उपासना। " मू. ॥) आठ आने।

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। **शांतिकरण**। " सच्ची शांतिका सच्चा उपाय। " मू. ॥) आठ आने।

[२] देवता- परिचय- ग्रंथ- माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥) आठ आने

(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=) दस आने।

(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. =) दो आने।

(४) देवताविचार। मू. ≡) तीन आने।

[३] योग- साधन- माला।

(१) संध्योपासना। योग की दृष्टिसे संध्या करनेकी प्रक्रिया इस पुस्तकमें लिखी है। मू. १॥)

(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥) आठ आने।

(३) वैदिक-प्राण-विद्या। (प्राणायाम-पूर्वार्ध) मू. १) रु.

(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।) सवा रुपया।

(५) योग-साधन की तैयारी। मू. १) एक रु.

(६) योग के आसन। मू. २) दो रु.

[४] धर्म– शिक्षाके ग्रंथ ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा । प्रथमभाग । मू. -) एक आना ।
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा । द्वितीयभाग । मू. =) दो आने ।
(३) वैदिक पाठ माला । प्रथम पुस्तक । मू. ≡) तीन आने ।

[५] स्वयं शिक्षक माला ।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक । प्रथमभाग । मू. १॥) डेढ रु. ।
(२) वेदका स्वयं शिक्षक । द्वितीय भाग । मू. १॥) डेढ रु. ।

[६] आगम– निबंध– माला ।

(१) वैदिक राज्य पद्धति । मू. ।-) पांच आने ।
(२) मानवी आयुष्य । मू. ।) चार आने ।
(३) वैदिक सभ्यता । मू. ≡) तीन आने ।
(४) वैदिक चिकित्सा– शास्त्र । मू. ।) चार आने ।
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा । मू. ॥) आठ आने ।
(६) वैदिक सर्प– विद्या । मू. ॥) आठ आने ।
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय । मू. ॥) आठ आने ।
(८) वेदमें चर्खा । मू. ॥) आठ आने ।
(९) शिव संकल्पका विजय । मू. ॥। बारह आने ।
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता । मू. ॥) आठ आने ।
(११) तर्कसे वेदका अर्थ । मू. ॥) आठ आने ।
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र । मू. ≡) तीन आने ।
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न । मू. =) दो आने ।

मंत्री— स्वाध्याय– मंडल; औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशकः--श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
भारत मुद्रणालय, स्वाध्यायमंडल, औंध (जि.सातारा)

